औरंगज़ेब

(१६१८–१७०७)



यदुनाथ सरकार

औरंगज़ेब

(१६१८–१७०७ ई०)

लेखक
सर यदुनाथ सरकार, सी० आई० ई०
एम्० ए०, डी० लिट० (आनररी),
आनररी एम्० आर० ए० एस० (लण्डन),
एफ्० आर० ए० एस्० (बंगाल),
कारस्पान्डिंग मेम्बर—रायल हिस्टॉरिकल सोसाइटी (इंगलैण्ड)

प्रकाशक
हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड
बम्बई • दिल्ली

प्रकाशक
यशोधर मोदी, मैनेजिंग डायरेक्टर
हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड
हीराबाग, पो० बॉ० ३६२२
बम्बई-४

नया संस्करण १९७०

AURANZEB
By Sir yadunath Sarl ar
(HISTORY)

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
महावीर प्रेस
भेलूपुर, वाराणसी-१

प्रकाशकका वक्तव्य

इतिहासाचार्य सर यदुनाथ सरकार कृत 'ए शार्ट हिस्ट्री आफ औरंगजेब' का यह संशोधित संक्षिप्त हिन्दी संस्करण हिन्दी संसारको भेंट करते हुए हमे विशेष हर्ष होता है। औरंगजेबकी जीवनी तथा उसके शासन-कालके भारतीय इतिहासका सविस्तार अध्ययन करनेमे इस अस्सी-वर्षीय तपस्वीने पूरे पच्चीस वर्ष (१९००-१९२४ ई०) तक अथक परिश्रम किया था। तदर्थ अत्यावश्यक आधार-ग्रन्थों तथा अन्य ऐतिहासिक सामग्रीको एकत्र करनेमे उन्होने कोई बात नही उठा रखी थी। यही कारण था कि मोटी-मोटी पाँच जिल्दोमे प्रकाशित उनका लिखा हुआ औरंगजेबका इतिहास तबसे ही एक प्रामाणिक इतिहास-ग्रन्थ मान लिया गया है। इधर इन पिछले पच्चीस वर्षोंमे औरंगजेब या उसके शासन-काल सम्बन्धी जो भी नई सामग्री यदा-कदा प्राप्त होती रही है उसका भी समुचित उपयोग कर वे समय समयपर अपने ग्रन्थमे आवश्यक सुधार भी करते रहे हैं। पुनः इस हिन्दी संस्करणको तैयार करवाते समय उन्होंने आज तककी सारी पिछली खोजोका सारांश भी उसमे सम्मिलित कर उसे सर्वथा प्रामाणिक और आधुनिकतम बना दिया है। यो औरंगजेब सम्बन्धी उनकी इन पिछले साठ वर्षोंकी समस्त सूक्ष्मतम खोजो, गहरे अध्ययन तथा गम्भीर चिन्तनका परिणाम हमे इस हिन्दी ग्रन्थ रत्नमे एकत्र देखनेको मिलता है।

सर यदुनाथके इतिहास-ग्रन्थ सर्वथा प्रामाणिक तथा घटनाओंसे परिपूर्ण होते हैं, तथापि उनमे कही नीरसता नही आने पाई है। उनकी लेखन-शैली इतनी रोचक है कि उनके ग्रन्थोमे उपन्यासकी सी सरसता मिलती है और पाठक बिना रुके प्रारम्भ से अन्त तक उन्हे बराबर पढता ही जाता है। अपने प्रमुख नायककी जीवनीका इतना सजीव वर्णन लिखने पर भी सर यदुनाथके विवरण तथा विवेचन मे उसके प्रति या विरुद्ध किसी प्रकार का पक्षपात या कोई असतुलित भावना देखनेको नही मिलती है। जिस स्पष्टताके साथ वे उसके गुणो तथा सफलताओंका उल्लेख करते हैं, उसी तत्परता और विस्तारके साथ उसकी त्रुटियो और भूलोको भी वे अपने पाठकोके सम्मुख खोलकर रख देते हैं। अपने शासन-कालके अन्तिम वर्षोंमे अदृष्ट कठोर नियतिके साथ अन्त तक लगातार दृढतापूर्वक जूझते हुए

तथा दिनोदिन अधिकाधिक अशक्त एव विशृंखलित होते एक पतनोन्मुख साम्राज्यपर वही मेहनत और धीरजके साथ शासन करते हुए बेबस औरगजेका जो मार्मिक चित्र सर यदुनाथने हमारे सामने प्रस्तुत किया है, वह भारतीय इतिहास साहित्यमे सर्वथा अनुपम है।

औरंगजेबका व्यक्तिगत इतिहास भी एक तरहसे बहुत-कुछ भारतका ही साठ वर्षोका इतिहास है। ईसाकी सत्रहवी शताब्दी के सारे उत्तरार्द्ध मे एकमात्र उसका ही शासन-काल (१६५८-१७०७) पडता है। हमारे देशके इतिहासमे यह अर्द्ध शताब्दी बहुत ही महत्त्वपूर्ण थी। औरगजेबके समयमे मुगल साम्राज्य अपनी चरम सीमाको पहुँच गया। मुसलमानी सत्ताने भारतमे अन्तिम बार अपना आधिपत्य ही नही बढाया था, किन्तु धार्मिक दृष्टिसे उसकी कट्टरताका पूर्ण उत्कट स्वरूप भी तब देख पडा। औरगजेब स्वय प्रकाण्ड विद्वान् सुयोग्य जागरूक कर्मठ शासक और चरित्रवान् सदाचारी धमपरायण व्यक्ति था। यह निर्भीक योद्धा एक बहुत ही चतुर सुकुशल सेनापति भी था। उसकी बुद्धिमत्ता और गूढ कूटनीतिका लोहा उसके शत्रु भी मानते थे। इतना सब होते हुए भी इस अनुभवी सम्राट्के इस दीर्घकालीन शासनका अन्तिम परिणाम सर्वथा विपरीत ही हुआ। अद्वितीय विस्तारवाले इस महान् साम्राज्यके निकट भविष्यमे होनेवाले घोर पतन और पूण विशृखलनके चिन्ह भी औरगजेबकी मृत्युसे पहिले ही स्पष्टतया देख पडने लगे थे। तब तक साम्राज्यका विगत गौरव बहुत-कुछ मिट चुका था, उसका सारा वैभव विलीन होने लगा था, आर्थिक स्थिति बिगडकर उसका दिवाला निकल चुका था, शासन-सगठन छिन्न-भिन्न हो गया था और उस लम्बे चौडे साम्राज्यमे सुव्यवस्था तथा शक्ति बनाए रखना भी सम्राट और उसके अधिकारियोके लिए बिलकुल ही एक असम्भव बात हो गई थी।

हमारे देशके इतिहासमे अब एक सर्वथा नए युगका प्रारम्भ हुआ है। हमारे अग्रेज विजेता यहाँसे बिदा लेकर हमे स्वाधीन कर गए हैं। धर्मके आधारपर भारतका बटवारा हो जानेसे हमारे सम्मुख कई एक नई अनपेक्षित समस्याएँ उठ खडी हुई हैं। आर्थिक कठिनाइयाँ और भुखमरीकी भयकर उलझनें हमारी राहमे बाधक बन रही हैं। सारे देशमे भ्रष्टाचार और असन्तोष साथ ही साथ निरन्तर बढते जा रहे हैं। किन्तु फिर भी देश और समाजके नव निर्माणका काय नही रोका जा सकता। अपने विगत

पतनकी पुनरावृत्ति नही होने देनेके लिए हमे अपने उस भूतकालीन जातीय जीवनका ठीक-ठीक अध्ययन कर उसकी त्रुटियो और कमजोरियोको जानने तथा अब उन्हे दूर करनेका प्रबल प्रयत्न करना होगा। किन किन कारणो से मुगल साम्राज्य विफल हुआ तथा तब समूचे भारतमे राजनैतिक एकता स्थापित होनेपर भी क्यो यहाँ एक सुसगठित पूर्णतया समन्वित भारतीय राष्ट्रका निर्माण नही हो सका था, इन महत्त्वपूर्ण विचारणीय प्रश्नोका सही उत्तर जानकर भविष्यमे उनकी ओर विशेष ध्यान देना होगा। इन सब बातोको ठीक तरह समझने बूझनेके लिए औरगजेबके शासन कालका गहरा अध्ययन अत्यावश्यक है। इस ग्रन्थके उन्नीसवें अध्यायमे सर यदुनाथने इन्ही सब प्रश्नोकी सविस्तार विवेचना की है, जो बहुत ही महत्त्वपूर्ण तथा विचारोत्पादक है। कई एक समस्याएँ, जो औरगजेबके समयमे भारतीय राष्ट्रके सम्मुख थी और तब किसी प्रकार सुलझाई नही जा सकी, आज भी बहुत-कुछ उसी रूपमे हमारे सामने खडी है। अतएव हमे पूर्ण विश्वास है कि हिन्दीमे प्रकाशित औरगजेबका यह सक्षिप्त इतिहास ज्ञानवर्द्धनके साथ ही हमारे राष्ट्र के नव निर्माणमे भी बहुत सहायक हो सकेगा।

ग्यारह वर्ष पहिले हमने सर यदुनाथ कृत 'शिवाजी'का सक्षिप्त हिन्दी सस्करण प्रकाशित किया था। उसका हिन्दी ससारमे बहुत आदर हुआ है, और दो वर्ष पहिले हमे उसका द्वितीय सशोधित सस्करण निकालना पडा। उससे प्रोत्साहित होकर अब सर यदुनाथ कृत 'औरगजेब'का यह सक्षिप्त हिन्दी सस्करण प्रकाशित कर रहे हैं। जहाँ तक हमे ज्ञात है हिन्दीमे अब तक औरगजेबका ऐसा सच्चा और प्रामाणिक जीवन चरित्र प्रकाशित नही हुआ, यो यह ग्रन्थ हिन्दीके ऐतिहासिक साहित्यकी एक बहुत बडी कमी पूरी करता है। आशा है कि हिन्दी भाषा-भाषी इस ग्रन्थका हृदयसे स्वागत करेंगे।

हम सर यदुनाथके बहुत ही कृतज्ञ है कि उन्होने ऐसे महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ रत्नको प्रकाशित करनेका हमे सुअवसर दिया। सीतामऊ (मालवाके) कर्मठ साहित्य प्रेमी महाराजकुमार डा० रघुबीरसिंहके भी हम बहुत ही अनुगृहीत हैं। अपने इतिहास गुरु सर यदुनाथके मूल अग्रेज़ी ग्रन्थका यह हिन्दी सस्करण तैयार करवानेमे उन्हे स्वय अत्यधिक परिश्रम करना पडा है। इस हिन्दी अनुवादकी भाषामे सर यदुनाथकी मनचाही

सरलता, सरसता और प्रवाह लाना कोई आसान बात नही थी। परन्तु एक इतिहासकार होनेके साथ ही महाराजकुमार एक उच्चकोटिके सफल गद्य-लेखक भी हैं, अतएव उन्हे इस प्रयत्नमें पूर्ण सफलता मिली। इस हिन्दी सस्करणकी भाषामें सारे अत्यावश्यक सशोधन कर उन्होने उसे ऐसी अच्छी तरह सँवार दिया है कि एक अनुवाद होते हुए भी यह ग्रन्थ सर्वथा मौलिक हिन्दी रचना ही जान पडती है। सर यदुनाथके समान हमे भी "दृढ विश्वास है कि हिन्दी साहित्यको उनकी इस अमूल्य सेवाके लिए हिन्दी भाषा भाषी उनके चिर-ऋणी रहेगे।"

नाथूराम प्रेमी

भूमिका

समकालीन मौलिक ऐतिहासिक उपादानोके आधारपर लिखकर मैंने पाँच जिल्दोंमे अपने अग्रेजी इतिहास ग्रन्थ "हिस्ट्री आफ औरगजेब"को सन् १९२५ मे पूरा किया था। उस गन्यकी रचना करते समय मैंने उस कालके इतिहास विषयक छपे हुए सारे आधार-ग्रन्थोंके सिवाय फारसी, मराठी, अग्रेजी, फ्रेंच और पुर्तगाली भाषाओमे प्राप्य हस्तलिखित इतिहास-ग्रन्थो, समकालीन लेख-सग्रहो, शाही दरवारके अखवार, आदि सारे उपादानोंका भी पूरे पच्चीस वर्ष तक लगातार अध्ययन किया था। उस कालके इतिहासके लिए मेरा यह अग्रेजी गन्य पूरी तरह प्रामाणिक मान लिया गया है। अपनी उच्चतम परीक्षाओम मुगल-कालीन भारतीय इतिहास पढानेके लिए सब ही भारतीय विश्व विद्यालयोने इस ग्रन्थको अपनी पाठ्य-पुस्तक बनाया। किन्तु उसकी उन पाँचो जिल्दोंकी पृष्ठ सख्या कुल मिलाकर कोई दो हजारसे भी अधिक हो जाती है, एव विश्व विद्यालयोके विद्यार्थियोंकी सुविधा तथा उपयोगके लिए उस विस्तृत इतिहासको सक्षिप्त कर कोई पाच सौ पृष्ठोके एक सुसम्बद्ध ग्रन्थके रूपमे "ए शार्ट हिस्ट्री आफ औरगजेब"के नामसे प्रकाशित किया था। इस सक्षिप्त इतिहासमे मैंने कई एक विवेचनात्मक नए महत्त्वपूर्ण अध्याय जोड दिए थे। किन्तु अग्रेजी भाषा न जाननेवालोके लिए तो औरगजेवके शासन काल सम्बन्धी मेरी सारी खोजें एव ये ग्रन्थ अब तक बिलकुल ही अज्ञात रहे हैं।

किसी भी अन्य भारतीय भाषामे अपने इस ग्रन्थका अनुवाद करवानेसे पहिले उसको हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दीमे ही इस प्रस्तुत पुस्तकके रूपमे प्रकाशित करना अधिक उचित जान पडा। मेरे सुयोग्य प्रिय शिष्य सीतामऊ (मालवाके) महाराजकुमार डाक्टर रघुबीरसिंहकी निष्ठापूर्ण साधना तथा हिन्दी साहित्यकी उन्नतिके लिए हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर ग्रन्थ मालाके सुप्रसिद्ध सस्थापक श्री प्रेमीजीके उत्साहपूर्ण उद्योगके फलस्वरूप ही अपने ग्रन्थका यह सशोधित हिन्दी सस्करण प्रकाशित कर सकनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जिसके लिए मैं उन दोनोका अनुगृहीत हूँ। उसमेसे कुछ नगण्य विवरणो तथा कई एक वर्णनात्मक अशोको छोडकर इस अनुवाद के लिए मैंने अपने उक्त अग्रेजी ग्रन्थ "ए शार्ट हिस्ट्री आफ

औरगजेब" को और भी सक्षिप्त कर दिया है। किन्तु अंग्रेजीके उस मूल ग्रन्थको सारी सारभूत बाता तथा महत्त्वपूर्ण राजनैतिक विवेचनोंका यहाँ पूराका पूरा ही अनुवाद किया गया है। इस हिन्दी अनुवादका तैयार करनेमे कौन-कौन-सी विशेष बातोंका ध्यान रखा जाय, इसकी भाषा कैसी हो, आदि प्रश्नो सम्बन्धी अनुवादके लिए सारे आवश्यक निर्देश महाराजकुमारके साथ बैठकर उनकी सलाहसे मैंने सविस्तार तय किए थे। हिन्दी अनुवादका काम इतिहासके एक प्राध्यापकको सौंपा गया था। बडी मिहनतसे यह कार्य पूरा किया, परन्तु वह अनुवाद मेरी रुचिके अनुसार नहीं बन पाया था एव महाराजकुमारने स्वय ही उस अनुवादमे सारे आवश्यक सशोधन कर उसे यह वर्तमान स्वरूप दिया। इस सशोधित अनुवादका ध्यानपूर्वक पढने तथा उसमे यत्र-तत्र उचित सुधार करनेके बाद ही छपनेके लिए उसे प्रेसमे देनेकी मैंने अनुमति दी। मेरे सक्षिप्त अंग्रेजी इतिहासके प्रकाशित होनेके बाद जो बीस वर्ष बीत चुके हैं उनमे कई एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक खोजें हुई हैं। इस हिन्दी सस्करणमे उन नवीनतम खोजोके परिणामोका भी मैंने समावेश कर दिया है, जिससे इस सशोधित हिन्दी सस्करणका महत्त्व बहुत बढ गया है। अपने ढगके ऐसे एकमात्र महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थको तैयार कर उसे हिन्दीमे प्रकाशित करवानेके लिए महाराजकुमार रघुबीरसिंहने जो प्रयत्न किए हैं, तदर्थ मैं उनका अभिनन्दन करता हूँ और मुझे दृढ विश्वास है कि हिन्दी साहित्य की उनकी इस अमूल्य सेवाके लिए हिन्दी भाषा भाषी उनके चिरऋणी रहेगे।

बहुत चाहनेपर भी इस ग्रन्थकी भाषा मेरे हिन्दी ग्रन्थ 'शिवाजी' की-सी सरल नही हो सकी, जिसे ८ १० वर्षीय बालक भी आसानीसे समझ सकता है। मुगल साम्राज्यके इस ध्वसक सम्राट्के पचास वर्षीय शासन कालका विवरण लिखते हुए कई एक राजनैतिक वाद-विवादो तथा दार्शनिक समस्याओकी विवेचना करना अनिवार्य हो जाता है, जिन्हे शिवाजी (हिन्दी) की सी सरल शैलीमे ठीक तरहसे लिख सकना सम्भव नही था, क्योकि तत्सम्बन्धी विभिन्न अंग्रेजी शब्दोके लिए उपयुक्त सरल सुज्ञात हिन्दी पारिभाषिक शब्दोका अब तक बहुत-कुछ अभाव ही है।

हमारी मातृ भूमिके जीवनमे एक नये महत्त्वपूर्ण युगका प्रारम्भ हुआ है, एव हमारे लिए तो औरगजेब कालीन इतिहास बहुत ही दिलचस्प,

उपयोगी और उपदेशप्रद है। औरंगजेबके समकालीन इतिहासकारोंमें मुसलमानोंकी संख्या ही अधिक थी। औरंगजेबके इस पचास-वर्षीय शासन-कालका उन्होंने जो पूरा सविस्तार विवरण लिखा है, उससे भी यह बात बिल्कुल ही स्पष्ट हो जाती है कि मुसलमान उलेमाओं (धार्मिक विद्वानों) द्वारा निश्चित विधिसे संगठित धर्म-प्रधान शासन किस प्रकार एक बड़े शक्तिशाली साम्राज्यको भी सब तरहसे बरबाद कर सकता है, और तब क्योंकर वहांकी जनता, मुसलमान और हिन्दू दोनों को ही भयंकर दुर्दशा, पूर्ण दारिद्रय, नैतिक पतन तथा विदेशियोंके हाथों पराजय और उनके आधिपत्य तकका सामना करना पड़ता है। अपने गुण लाभ सिद्ध करनेके लिए इस धर्म मूलक शासन-पद्धतिको औरंगजेबके पचास-वर्षीय लम्बे शासन-कालमें सबसे अच्छा अवसर मिला था। औरंगजेबकी विद्वत्ता अगाध थी, वह बहुत ही सदाचारी और कर्मठ शासक था, व्यक्तिगत व्यसन या भोग लिप्सा उसे छू भी नहीं गए थे, और अपने नब्बे वर्षके लम्बे जीवन भर वह लगातार एक साधारण मजदूरकी ही तरह कड़ी मिहनत करता रहा। उस दृढ़ प्रतिज्ञ कर्मनिष्ठ सम्राट्के कोषमें उसके पूर्वजोंका संचित अटूट धन भरा हुआ था और साथ ही भारतके-से धन धान्यपूर्ण सुसमृद्ध उपजाऊ महादेशकी वार्षिक आय भी वहां बराबर पहुँचती रहती थी। उसकी प्रजा ईमानदार, चतुर और प्रारम्भमें तो स्वामिभक्त भी थी। किन्तु अपने जीवन-कालका अन्त होते-होते उसने उन्हें विद्रोही और दरिद्री भी बना दिया था। धर्म मूलक कट्टर मुसलमानी राज्यका यही अन्त है।

सुशिक्षित संसारमें यह कथन सुविख्यात है कि 'भूतकालका विवेचन कर वर्तमानको शिक्षा देना ही इतिहासका प्रधान कार्य है, जिससे भावी पीढ़ियोंको पूरा-पूरा लाभ पहुँच सके।' अतएव उसके समकालीनोंके आँखों-देखे विवरणोंके आधारपर लिखा गया औरंगजेबका प्रामाणिक इतिहास भारतीय शासन एवं संस्कृतिके नेताओंके लिए स्थायी महत्त्वका एक बहुत ही हितकर उदाहरण है।

यदुनाथ सरकार

विषय-सूची

भाग १

अध्याय १

आदि जीवन-काल : १६१८-१६५२ ई०

१ उसके शासन-कालका महत्त्व

औरंगजेबका जीवन-चरित्र कोई ६० वर्षका भारतवर्षका इतिहास ही हो जाता है। १७ वी शताब्दीके पिछले पचास वर्षों तक (१६५८-१७०७) वह शासन करता रहा। उसका शासन-काल अपने इस देशके इतिहासमे बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। उसके आधिपत्यमे मुगल-साम्राज्यकी सीमाएँ अपनी अतिम हद तक पहुँच गई थी। प्रारम्भिक कालसे लेकर अग्रेजी राज्य की स्थापना होने तक भारतमे ऐसे विशाल साम्राज्यकी स्थापना कभी नही हुई थी। गजनी से लेकर चटगाव तक और काश्मीरसे लेकर कर्नाटक तक भारतीय महादेश एक ही शासकके आधीन था। इस्लामने भारतमे अपना आखिरी कदम इसी शासन-कालमे बढाया। विस्तार मे अभूतपूर्व होते हुए भी इस विशाल-सामाज्यकी राजनैतिक एकता अक्षुण्ण थी। इस साम्राज्यके विभिन्न प्रातोका प्रबध छोटे राजाओंके हाथमे न रह कर सीधे बादशाह द्वारा नियुक्त कर्मचारियो द्वारा ही होता था। इसी विशेषताके कारण औरगजेबका भारतीय साम्राज्य अशोक, समुद्रगुप्त या हर्षके साम्राज्यसे कही अधिक विशाल तथा परिपूर्ण था।

किंतु जिस शासन-कालमे इतना विशाल भारतीय साम्राज्य स्थापित हुआ जितना अग्रेजोंके आधिपत्यसे पहले कभी नही हुआ था, उसी समयमे इस साम्राज्यके पतन व छिन्न-भिन्न होनेके लक्षण

भी स्पष्ट दिखाई देने लगे। फारसके नादिरशाह व अफगानिस्तानके अहमदशाह ने मुगल बादशाहतका खोखलापन व उसकी राजधानी दिल्लीकी महत्त्वहीनता सिद्ध कर दी थी। मराठोंने दिल्लीके साम्राज्यमें अपना एकाधिपत्य स्थापित कर मुगल सम्राटोंका तिरस्कृत किया था। किंतु इन सबसे बहुत पहले, औरंगजेबकी आंखें बंद होनेसे भी पूर्व, मुगल साम्राज्यके खजाने और गौरवका दिवाला निकल चुका था, उसकी शासन-व्यवस्था नष्ट भ्रष्ट हो चुकी थी, और मुगल-राजसत्ताने देश में शांति व राज्यकी एकता बनाये रखनेमें अपनी असमर्थता स्वीकार कर ली थी।

औरंगजेबका शासनकाल दो और बातोंके लिए भी उल्लेखनीय है। इन्हीं दिनो अल्पकालीन मराठा-राजवंशके भग्नावशेषोंमें से मराठा जातीयताका (Nationality) उद्‌भव हुआ, और सिख सम्प्रदायने भी इसी शासन-कालमें सैनिकरूप धारण करके मुगल-साम्राज्य के विरुद्ध तलवार उठाई। अतएव ईसाकी १८ वी तथा प्रारम्भिक १९ वी शताब्दियोंकी प्रमुख ऐतिहासिक धाराओंका प्रारंभ औरंगजेबके शासन-कालमें उसकी नीतिके कारण ही हुआ।

मुगल-साम्राज्य दूजके चांदके समान बढ़ता हुआ अपने पूर्णत्वको पहुँचा और उसके बाद ही पुन स्पष्ट रूपसे घटने लगा, तब तो उसी शासन-कालमें एक नये युगके प्रभातकी झलक राजनैतिक आकाशमें दिखाई दी। भारतके भावी शासकोंने अपने पैर अच्छी तरह जमा लिये थे। ईस्ट इंडिया कम्पनीने १६५३ ई० मे मद्रास प्रांत व १६८७ई० मे बंबई प्रांतकी स्थापना की थी। १६९० ई०में कलकत्ताकी नींव पडी। इस प्रकार युरोपवासियोंके हाथमें आये हुए इन आश्रय-स्थानोंने एक साम्राज्यके भीतर दूसरे ही स्वाधीन राज्यका रूप धारण कर लिया।

१७वी शताब्दीके आखिर तक मुगल-साम्राज्यकी जड भीतर ही भीतर खोखली हो गई थी। खजाना खाली पडा था। मुगल-सेना दुश्मनो के हाथो पराजित व अपमानित हो चुकी थी, देशमे अलग-

अलग खड-राज्य स्थापित होने लगे और मुगल-साम्राज्य छिन्न-भिन्न होनेको ही था। साम्राज्यका नैतिक पतन भौतिक पतनसे भी अधिक भयकर था। लोगोकी निगाहमे मुगल-साम्राज्यके प्रति आदरका भाव नाम-मात्रको भी नही रह गया था, सरकारी कर्मचारी ईमानदारी व कार्य-कुशलता सर्वथा खो चुके थे, मन्त्रियो और राजाओ दोनोमे ही शासन-पटुताकी पूरी-पूरी कमी थी, सेना बिलकुल निस्तेज तथा बलहीन हो चुकी थी।

इस सर्वव्यापी पतनका कारण क्या था ? सम्राट न तो व्यसनी था और न बुद्धिहीन या आलसी ही। उसकी मानसिक सतर्कता प्रसिद्ध थी। वह राजकाजमे उसी लगनसे काम करता था जो अधिकतर मनुष्य विषय-भोगोमे दिखाते हैं। धार्मिक पुस्तको या आचार विचारसबधी ग्रथोमे सगृहीत मानवीय ज्ञान तथा विद्याके भडारपर उसने पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया था। साथ ही अपने पिताके शासन-कालमे उसे युद्ध तथा कूटनीतिकी पूरी-पूरी शिक्षा भी प्राप्त हो चुकी थी।

फिर भी ऐसे सम्राटके ५० वर्षके शासनका परिणाम निकला पूर्ण असफलता और घोर अशाति। यही राजनैतिक विषमता उसके शासन-कालको राजनीति और भारतीय इतिहासके विद्यार्थीके लिए बहुत ही शिक्षाप्रद तथा चित्ताकर्षक बना देती है।

२ औरगजेबके जीवनकी दुखात कहानीका विकास

औरगजेबका जीवन एक लम्बी दुखात कहानी थी, वह एक ऐसे मनुष्यकी कहानी थी, जो जीवन-भर अदृश्य परतु निष्ठुर कठोर भाग्यके साथ असफलतापूर्वक लडता ही रहा और जिसने यह दिखा दिया कि किस प्रकार कठिनसे कठिन पुरुषार्थ भी समयके चक्रके सामने विफल ही होता है। ५० वर्षके कठिन शासनका अत घोर असफलतामे ही हुआ, तथापि बुद्धि, चरित्र और साहसमे औरगजेबका स्थान एशियाके बडेसे बडे शासकोमे है। इतिहासके इस दुखात

[illegible] विशाल साम्राज्यकी पूर्णताको [illegible]
परंपरागत रस्मानुसार ही घटित हुआ।

औरंगजेबके जीवनके प्रारम्भिक ४० वर्ष राजा इस उत्तम पदके उपयुक्त बनानेकी तैयारीमें लगातार कठिन काम सीखनेमें ही व्यतीत हुए (भाग [illegible] प्रथम खंड १)। इस प्रारंभिक कालके बाद एक वर्ष सिंहासनके लिए कठिन युद्ध होता (खंड २)। इस युद्धमें उसकी सारी योग्यताओंकी पूरी-पूरी परीक्षा हुई, जिसके परिणाम-स्वरूप उसकी योग्यता, साहस व बुद्धिमत्ताकी दिग्विजय सुनहला छत्र पारितोषिकके रूपमें उसे दिया। शासन-कालके पहले २३ वर्ष शांति व समृद्धिपूर्ण थे, तब वह उत्तरी भारतकी राजधानियोंमें स्थायी रूप से रहा (खंड ३)। उसके मार्गमें सब शत्रु हट चुके थे। भारतका विशाल साम्राज्य उसकी आज्ञाओंको शिरसावंद्य मानता था, और उसके दृढ व सतत शासनके परिणामस्वरूप धन व समृद्धि बढ रहे थे। तब औरंगजेब मानवोचित सुख और यशकी सर्वोच्च चोटीपर पहुँच गया-सा जान पडने लगा था। उसके जीवन-नाटकका यह तीसरा अंक था। इसके पश्चात उसका पतन प्रारंभ हुआ। निर्दयी विधाताने यूनानी दुःखांत कथानक (Greek Tragedy) के समान उसके कुल-मे ही उसका शत्रु पैदा कर दिया। शाहजहाँका विद्रोही पुत्र बहुत दिनो तक अपनी जीतका आनन्द न ले सका, उसका प्यारा पुत्र मुहम्मद अकबर १६८१ ई० मे अपने पिता औरंगजेबके ही विरुद्ध विद्रोही बन बैठा।

इस पराजित विद्रोही शाहजादेने मराठा राजाके यहाँ शरण ली और साथ ही वह औरंगजेबको भी दक्षिण खीच ले गया, औरंग-जेबके अन्तिम २६ वर्ष प्रवासमे वही बीते। साम्राज्यका कोष, उसकी सेना व संगठित शासन-पद्धति और स्वयं सम्राट का स्वास्थ्य भी लगातार असफल युद्धमे नष्ट हुए। परन्तु प्रारंभमें उसके इन प्रयत्नो-की विफलता और उसके जीवनकी आगामी दुःखपूर्ण अन्तको भाग्य-चक्रने औरंगजेब व उसके समसामयिकोंकी आंखोसे छिपा रखा था।

उसके जीवनके चौथे भागमे (जो इस इतिहासके चौथे खडमे वर्णित है) ऊपरी दृष्टिसे सब कुछ ठीक ही मालूम होता था। बीजापुर व गोलकुण्डाके राज्य साम्राज्यमे मिला लिए गए थे, मगरका बेरड सामन्त अधीनता स्वीकार करने पर विवश हो गया था, मराठा राजा मार डाला गया था, उसकी राजधानी जीत ली गई थी, और उसका सारा कुटुम्ब भी सन् १६८९ ई०मे बन्दी बनाया जा चुका था। यो तब औरगजेबकी विजयकी सम्पूर्णतामे कोई त्रुटि नही दिखाई देती थी। इस समय साम्राज्यकी चमक-दमकसे चकाचौध होकर अधिकतर लोग उसके भविष्यके बारेमे कुछ भी सोच न पाते थे, तथापि कुछ विचारशील पुरुषोको आगामी पतनके अशुभ लक्षणोकी झलक इधर उधर स्पष्ट देख पडने लगी थी। अपने जीवनके तीसरे भागमे जो बीज औरगजेबने फलकी ओर ध्यान दिये बिना अनजाने ही बोये थे, चौथे भागमे वे उगने लगे और पाँचवे अर्थात् अन्तिम भागमे उनकी विनाश-कारिणी फसल उसे ही काटनी पडी।

औरगजेबके जीवनकी यह दु खान्त कथा उसके इन अन्तिम १८ वर्षमे (१६८९-१७०७) घटित हुई जिसका विवरण पाचवे भागमे किया गया है। धीरे धीरे किन्तु साथ ही अधिकाधिक स्पष्टताके साथ यह दु खपूर्ण कथानक विकसित होता है, और अन्तमे औरगजेबने अपने विरुद्ध इकट्ठी हुई इन शक्तियोका असली स्वरूप व समयकी सच्ची विरोधी गतिको पहचान लिया, फिर भी उसने सघर्षसे मुह नही मोडा। इस सघर्षकी यह पूर्ण असफलता उसको व उसके अधिकारियोको पूरी तरह ज्ञात हो गई, तथापि उसकी कोशिश पूर्ववत् चलती ही रही। उसने नये साधनो तथा उपचारोका प्रयोग किया और राजनैतिक परिस्थितिमे परिवर्तन और शत्रु-सेनाके सचालन आदिकी नूतन पद्धतिके साथ ही वह भी अपनी चाले बदलता रहा। प्रारम्भमे वह अपने सेनाध्यक्षोको युद्धमे भेजता था और स्वय केन्द्रसे उनका सचालन करता था। उसके कुछ सेनापति अपने कायमे असफल होते, रहे। तब ८२ वर्षका यह वयोवृद्ध सम्राट् स्वय युद्धस्थलमे उतर पडा

और ६ वर्ष (१६९९-१७०५) तक उसने स्वयं युद्ध संचालन किया। जब मृत्युका प्रथम सन्देश उसके पास पहुँचा तभी जाकर वह अहमदनगरको लौटा। तभी वह बुढ़ापेके साथ उसने साफ-साफ देखा कि अहमदनगरमें ही उसके जीवन-नाटकका अन्तिम दृश्य खेला जावेगा, यहीं उसका जिन्दगीका नाटक समाप्त होना बदा था।

२ उसके इतिहासकी आधार-सामग्री

सौभाग्यवश मुगल शासन कालकी साहित्यिक भाषा फारसीमें लिखी हुई औरंगजेबकी जीवनसम्बन्धी सामग्री बहुत अधिक मिलती है। सबसे पहिले हमारे सामने 'पादशाह नामा' आता है, जिसमें तीन विभिन्न लेखकोंने बारी बारीसे शाहजहांके राज्य-कालका सरकारी वृत्तान्त तीन अलग अलग भागोंमें लिखा है। 'आलमगीर नामे' में औरंगजेबके राज्य शासनके पहिले १० वर्षोंका वर्णन है। उसके राज्य-कालके पिछले ४० वर्षोंका वर्णन उसकी मृत्युके बाद सरकारी कागज-पत्रोंके आधार पर संक्षेपमें लिखी गई पुस्तक 'मासीर-इ-आलमगीरी' में मिलता है।

इनके बाद अन्य गैर सरकारी इतिहासोंमें मासूम, बंगालके रोजनामी सैनिक काव्यकार, आकिलखां, और खफीखांके ग्रंथ उल्लेखनीय है। इन ग्रंथो की रचना सरकारी कर्मचारियोंने की थी, किन्तु वे बादशाहके सामने जानेवाले न थे। यही कारण है कि राज्याधिकारियोंके इन वर्णनोंमें सरकारी इतिहासोंमें न पाई जानेवाली अनेक गुप्त बातोंका हाल मिलता है, परन्तु उनकी तारीखों व नामोंमें कई बार गलतियाँ भी पाई जाती है, तथा उनके बहुत-से वर्णन बहुत ही संक्षिप्त तथा अधूरे ही होते हैं।

दो हिन्दुओने भी फारसी भाषामें औरंगजेबके राज्यकालका इतिहास लिखा है। एक 'नुस्खा-इ-दिलकश' है। इसे औरंगजेबके सेनानायक दलपतराव बुंदेलाके उत्साही कर्मचारी भीमसेन बुरहानपुरीने लिखा था। वह बहुत ही उद्योगी और तीव्र बुद्धिवाला यात्री था।

भौगोलिक विशेषताओंकी ओर उसकी दृष्टि विशेष तौर पर जाती थी मथुरासे मलाबार तक जो कुछ भी उसने देखा उसका पूरा-पूरा विवरण उसने लिखा है। बाल्यकालसे लेकर उसने प्राय अपना सारा जीवन दक्षिणमे ही बताया था जिससे वहाकी घटनाओ सम्बन्धी इतिहासके लिए उसका यह ग्रथ बडा ही उपयोगी है। इसी प्रकार गुजरातके पाटण नगरमे जीवन भर रह कर शेख-उल्-इस्लामकी सेवा करनेवाले कर्मचारी, ईश्वरदास नागर रचित 'फतूहात-इ-आलमगीरी' ग्रन्थ है, जिसमे राजपूतो सम्बन्धी ऐतिहासिक विवरण बहुत महत्त्वपूर्ण है।

इन साधारण इतिहासोके अतिरिक्त हमें उस समयकी विशिष्ट घटनाओपर खास तौरपर प्रकाश डालनेवाली अनेक पुस्तिकाएँ भी मिलती है। इनमें तत्कालीन महान् व्यक्तियो और घटनाओके विशेष वर्णन है, जैसे नियामत खा अलीकृत गोलकुण्डाके घेरेका वर्णन, शहाबुद्दीन तलीशकी कुचबिहार, आसाम और चिटगावकी विजयसम्बन्धी डायरी, व औरगजेबके शासनके अन्तिम समयसे प्रारम्भ होने वाले कालपर प्रकाश डालनेवाले इरादत खा, आदि बहादुरशाह प्रथमके कुछ कर्मचारियोके सस्मरण। गोलकुण्डा और बीजापुरके दोनो दक्षिणी राज्योके इतिहासोमे भी उन राज्योके प्रति किए गए मुगलोके व्यवहारपर प्रकाश पडता है। आसामसम्बन्धी इतिहासके लिए हमे बहुत ही महत्त्वपूर्ण तद्देशीय 'बुरजी' ग्रन्थ मिलते है।

औरगजेबके राज्य-कालके अनेकानेक विशिष्ट कालोपर अधिक एव नया प्रकाश डालनेवाले बहुत-से मौलिक साधन प्रथम बार मुझे मिले है, जिनमे दिया हुआ विवरण उपयुक्त सरकारी वृत्तान्तोसे भी कही अधिक महत्त्वपूर्ण है। इनमे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है शाही दरबारकी घटनाओ का तत्कालीन हस्तलिखित दैनिक विवरण (अखबार-इ—दरबार—इ—मुअल्ला), जो जयपुर राज्यके मुहाफिजखाने और रायल एशियाटिक सोसाइटी लडनके पुस्तकालयमे सुरक्षित है। साथ ही साथ ईसाकी १७वी

शताब्दीमे भारतके ऐतिहासिक रगमचके अभिनेताओ, तत्कालीन महत्त्वपूर्ण पुरुषोके निजी पत्रोको भी भुला नहीं जा सकता है। मेरे निजी सग्रहमे औरगजेबके नामा-वालके ऐसे कोई छ हजार पत्र हैं, जिनमेसे एक हजारसे अधिक अकेले औरगजेबने ही लिखे थे। इन पत्रोमे हमे उस समयकी घटनाओका ज्यो-का-त्यो वर्णन मिलता है। अपनी निजी उद्देश्य-पूर्तिके लिए इतिहासकारो द्वारा की गई कोई भी अनावश्यक काट-छाँट हम उनमे नहीं पाते हैं। तत्कालीन भारतीय इतिहासके निर्माताओंकी आशाओ तथा आकाक्षाओ, योजनाओ और उनके व्यक्तिगत मतोका सच्चा चित्रण हमे उनमे मिलता है।

औरगजेबके समयमे आनेवाले विभिन्न यूरोपियन यात्री, टेवरनियर, बरनियर, करेरी, मनुची, आदिने भी उसके राज्य एव शासनका विस्तृत विवरण लिखा है। इनकी रचनाओमे उस समयकी सामाजिक स्थिति, व्यापार तथा उद्योग-धन्धो और भारतमे ईसाई धर्मके प्रचारके इतिहासका पूरा-पूरा उल्लेख है। इन सब बातोंके लिए यह रचनाएँ नि सन्देह बहुत ही उपयोगी हैं।

४ जन्म और शिक्षा

मुहीउद्दीन मुहम्मद औरगजेब, शाहजहा और मुमताज महलकी सातवी सन्तान था। इसका जन्म दोहद* मे १५ जीकाद, सन् हिजरी १०२७ (२४ अक्तूबर, १६१८ ई०) के दिन हुआ था। यही औरगजेब बादमे आलमगीर प्रथमके नामसे दिल्लीके राज्यसिहासन पर बैठा। उसकी तीव्र बुद्धि और स्वाभाविक विलक्षण स्मृतिके विवरणपर हमे सहज ही विश्वास हो जाता है। कुरानका ज्ञान तथा मुहम्मद पैगम्बरके (हदीस) परम्परागत कथनोसम्बन्धी उसका

* दोहद (२२ ५० उ०, ७४ २० पू०) बम्बई सूबेके पचमहाल जिलेमे इसी नामके तालुकेका प्रधान शहर है। यह शहर पश्चिमी रेलवेके दोहद नामक स्टेशनसे दक्षिणमे बसा है।

अध्ययन गम्भीर और सम्पूर्ण था, यह बात उसके पत्रोमे स्पष्टतया झलकती है। हर समय वह उनके उपयुक्त उदारण देने को तैयार रहता था। अरबी व फारसी भाषाओपर उसका पूरा पूरा अधिकार था, तथा उन भाषाओके पडितकी तरह उन्हे लिख और बोल सकता था। उस समय तक मुगल-दरबारके घरेलू जीवनमे हिन्दुस्थानीका प्रयोग होने लगा था, यही उसकी मातृभापा भी थी। उसे हिन्दीका भी साधारण ज्ञान था। साधारण बातचीतमे वह हिन्दीकी लोक-प्रिय कहावतो को भी काममे लाता था।

निरर्थक-काव्य साहित्यकी औरगजेब उपेक्षा करता था। प्रशसात्मक काव्यसे उसे घृणा थी। उपदेशात्मक, सुसम्मत कविता उसे पसन्द थी। धार्मिक ग्रन्थ और विवेचनाएँ, कुरानकी टीकाएँ, मुहम्मदके जीवनसम्बन्धी वृतान्त, इमाम मुहम्मद गजलीकी कृतिया मुनीर-निवासी शेख शर्फ याहिया और शेख जेनुद्दीन कुतुब मुही शीराज़ीके चुने हुए पत्र तथा इसी प्रकारके अन्य लेखकोकी रचनाएँ वह बडे प्रेमसे पढता था।

चित्रकारी उसे कभी भी पसन्द न रही थी। और अपने राज्य-कालके दस वर्षकी पूर्तिके उपलक्षमे होनवाले उत्सवके समय उसने गायन विद्याको अपने राज-दरबारसे निकाल बाहर किया था। चीनी मिट्टीके सुन्दर बर्तन उसे बहुत ही प्रिय थे। अपने पिताके समान स्थापत्य कलासे उसे कोई प्रेम न था। अपने राज्य-कालमें उसने कोई भी उल्लेखनीय सुन्दर मसजिद,* सुविशाल भवन या

* दिल्लीके लाल किलेकी मोती मस्जिदमे हम एक उल्लेखनीय अपवाद अवश्य मिलता है। १० दिसम्बर, १६५७ ई० को इसकी नीव डाली गई और पाच वर्षम बनकर पूरी हुई। इसके बनानेमे एक लाख साठ हजार रुपये व्यय हुए थे (आ० ना०, पृ० ४६८)। लाहौरम औरगजेबकी बनवाई मसजिद उस शहरमे सब-सुन्दर नही है। अपनी बेगम दिलरस बानूकी कब्रपर औरगाबादमे उसने जो मकबरा बनवाया था, वही उसके शासन-कालकी सब-श्रेष्ठ इमारत है।

मकवरा नही वनवाया। उसकी विजय-सूचक साधारण मसजिदें श्रौर दक्षिण व पश्चिमके राज-पथोंपर पाई जाने वाली सरायें श्रादि श्रवश्य पाई जाती हं।

५ हाथीसे मुठभेड

वाल्यकालकी एक घटनाने श्रौरगजेवकी ख्याति सारे भारत-वर्ष मे फैला दी थी। २८ मई, १६३३ के दिन शाहजहाने श्रागरामे जमनाके समतल तटपर सुधाकर श्रौर सूरत-सुन्दर नामक दो हाथियोकी लडाईका श्रायोजन किया। कुछ दूर तक दौडनेके वाद वे दोनो हाथी किलेके उस झरोखेके नीचे, जहा सुवहमे वादशाह दर्शन देता था, श्रापसमे भिड गये। हाथियोकी यह लडाई देखनेको उत्सुक शाहजहाँ शीघ्रतासे वहाँ पहुँचा। उसके तीनो वडे पुत्र उससे कुछ कदम श्रागे घोडेपर सवार चल रहे थे। युद्ध देखनेके श्रभिप्रायसे श्रौरगजेव हाथियोके वहुत ही निकट पहुँच गया।

कुछ समय वाद दोनो हाथी एक दूसरेको छोडकर पीछे हट। श्रपने प्रतिद्वन्द्वीको पास न पाकर सुधाकरने वही खडे श्रौरगजेवपर हमला कर दिया। यह चौदह-वर्षीय शाहजादा श्रपने घोडेको सम्हाले वही डटा रहा श्रौर नि शक होकर उसने श्राक्रमण करते हुए हाथीके सिरपर भाला फेका। चारो श्रोर श्रातक छा गया श्रौर लोग भागने लगे। हाथीको डरानेके लिए पटाखे श्रादि छोडे गए पर सव प्रयत्न व्यर्थ हुए। हाथी वढा चला श्राया, श्रौर श्रपने वडे-वडे दातोंकी टक्कर मारकर उसने श्रौरगजेवके घोडेको धरतीपर गिरा दिया। परन्तु वह वहादुर शाहजादा फुर्तीसे उठ खडा हुश्रा श्रौर उसने खडे खडे ही तलवारसे उस क्रुद्ध हाथीका सामना किया। उसी समय उसका वडा भाई शुजा घोडा दौडा कर वहाँ जा पहुँचा श्रौर श्रपने भालेसे उस हाथीको घायल किया। राजा जयसिंह भी वहाँ श्रा गया श्रौर उसने भी हाथीपर वार किया। सूरत-सुन्दर हाथी भी तव तक फिरसे युद्धके लिए उस श्रोर श्राया। भालोकी चोटो श्रौर पटाखोंकी

आवाजसे त्रस्त सुधाकर चिंघाडता हुआ भागा और सूरत-सुन्दरने उसका पीछा किया। इस प्रकार औरंगजेब बच गया। शाहजहाने उसे छातीसे लगाया और 'बहादुर' की पदवी देकर उसकी वीरताकी प्रशंसा की। दरबारियोने भी मुक्तकंठसे समर्थन करते हुए कहा कि पुत्र भी पिताके समान पूरा साहसी था, और यो उन्होंने स्मरण दिलाया कि अपनी जवानीमे किस प्रकार केवल तलवार हाथमे लिए हुए शाहजहाने भी जहांगीरके सामने एक जंगली शेरका सामना किया था।

जब शाहजहाने इस अविवेकी साहसके लिए प्यारपूर्वक उसे डाटा, तब औरंगजेबने उत्तर दिया कि इस 'युद्धमे यदि मै मारा भी जाता तो लज्जाकी बात न होती। मृत्यु तो बादशाहोपर भी अपना पर्दा डालती है, इसमे अपमान क्योकर होता है।' १३ दिसम्बर १६३४के दिन औरंगजेबको १० हजार घोडोका शाही मनसब मिला।

६ बुन्देला युद्ध, १६३५

ओरछानरेश वीरसिंह देवने जहांगीरके आदेशसे अबुल फजलका वध किया और और इसी प्रकार उसका कृपापात्र बनकर बहुत धनी तथा शक्तिशाली हो गया। सन् १६२७ ई० मे उसका पुत्र जुझार-सिंह गद्दीपर बैठा और शाहजहाके राज्य-कालमे विद्रोही हो गया। उसने गोडोकी पुरानी राजधानी चौरागढको घेरकर वहांके राजा प्रेमनारायणको मार डाला। वहाँ दस लाखका खजाना भी उसके हाथ लगा। मृत राजाके पुत्रने शाहजहाँकी शरण ली (१६३५ ई०)।

शाहजहाँने बुंदेलखण्डपर आक्रमण करनेके लिए तीन सेनाएँ भेजी। बुन्देलोकी एक दूसरी शाखाके वंशज देवीसिंहको राजसिंहा-सनपर बैठानेका वचन दिया, जिसपर उसने इन सेनाओंकी पूरी पूरी सहायता की। औरंगजेब इन तीनो सेनाओका सर्वोच्च नायक बनाया गया था, परन्तु उसे ये अधिकार नाम-मात्रको ही दिये गए थे। सेनाके पिछले हिस्सेमे ही उसे रहना पडता था, तथापि उसकी

सलाह लिए बिना सेनापति कुछ भी नही कर सकते थे ।

२ अक्तूबर, १६३५ ई० को ओरछाके निकट देवीसिहने एक पहाडीपर धावा बोल दिया और ४ अक्तूबरको मुगलोने ओरछापर अधिकार कर लिया । जुझार हिम्मत हारकर धामोनी भाग गया और वहासे नर्मदा पार कर चौरागढ चला गया । मुगलोने १८ अक्तूबरको धामोनीपर कब्जा करनेके बाद उसका पीछा किया और चाँदा तथा देवगढके गोड राज्यो तकमे उसे जा खदेडा। अन्तमे जुझार जगलके बीच सोता हुआ गोडो द्वारा मार डाला गया । ओरछामे वीरसिहके बनाए हुए श्रेष्ठ मन्दिरको तोड कर उसके स्थान पर मसजिद बनाई गई । इस चढाईमे एक करोडका लूटका माल मुगलोके हाथ लगा, जिसमे वीरसिहका गुप्त कोष भी सम्मिलित था ।

७ औरगजेबकी दक्षिण की प्रथम सूबेदारी

मलिक अम्बरकी मृत्युके कुछ समय बाद सन् १६२७ मे जब शाहजहा गद्दीपर बैठा, तब उसने प्रारम्भसे ही दक्षिणमे आक्रमण-पूर्ण नीति बरतनी शुरू की । अहमदनगरके निजामशाही राज्यकी नई राजधानी दौलताबादपर उसने अपना अधिकार जमा लिया, और साथ ही उस राज्यके अन्तिम सुलतान हुसेनशाहको भी कैद कर लिया । किन्तु उसी समय एक नई उलझन पैदा हो गई । बीजापुर (आदिलशाही) और गोलकुण्डाके (कुतुबशाही) सुलतानोने अपने अपने राज्यसे लगे हुए अहमदनगरके नष्ट-भ्रष्ट राज्यके बाकी रहे प्रदेशोपर अधिकार करनेकी चेष्टा की । सुविख्यात मराठा राजा शिवाजीके पिता शाहजीने बीजापुर राज्यकी सहायतासे एक नए निजामशाह सुलतानको अहमदनगर राज्यके सिहासन पर बैठाया, जो उनके हाथकी कठपुतली ही था, और तब उसके नामसे अहमदनगर राज्यके बाकी रहे प्रदेशोपर शासन करना आरम्भ किया ।

शाहजहाने वहाँ अपना अधिपत्य जमानेके भरसक प्रयत्न किये। सुव्यवस्थित शासन कार्यके लिए दौलताबाद और अहमदनगरको खानदेश सूबेसे अलग कर, उन्हे अलग ही सूबेदारके सिपुर्द किया (नवम्बर, १६३४)। युद्ध-सचालनके लिए फरवरी, १६३६ ई० मे सम्राट स्वय दक्षिण आया। ५० हज़ार सैनिकोकी तीन मुगल सेनाएँ बीजापुर और गोलकुण्डापर आक्रमण करनेके लिए तैयार की गई और ८००० सैनिकोकी एक और चौथी सेनाने महाराष्ट्रपर आक्रमण किया, तब तो कुतुबशाह डर गया। उसने मुगलोका अधिपत्य स्वीकार करके प्रति वर्ष दो लाख हूण (दक्षिणी भारतका सिक्का) देना स्वीकार किया।

स्वतन्त्र बने रहनेके लिए बीजापुर सुलतान तो मुगलोका सामना करनेको तत्पर हुआ। तब मुगलोकी तीनो सेनाओंने बीजापुर राज्यमे घुसकर वहांके गाँवो व खेतोका उजाड़ा और वहाँकी प्रजाको वे गुलाम बनाने लगी। अन्तमे मई १६३६ ई०मे समझौता हो गया। इस सधिसे अहमदनगरका सारा निजामशाही राज्य दो भागोमे बाँटा गया। बीजापुर सुलतानको भीमा और सीना नदियोके बीचवाला सोलापुर और वांगीका, उत्तरपूर्व और भालकी और चिडगुपका, पूना जिला, और उत्तरी कोकणके प्रदेश मिले, जिनकी कुल आय२० लाख हूण की (८० लाख रुपये) होती थी। अहमदनगरका बाकी रहा सारा राज्य मुगल साम्राज्यके अधीन कर दिया गया। इसके अतिरिक्त आदिलशाहने मुगल सम्राट का आधिपत्य भी स्वीकार कर लिया और अपने ही समान मुगलोकी अधीनतामे रहने वाले पडोसी, गोलकुण्डा राज्यके सुलतानने मेल रखनेका वादा किया। गोलकुण्डा राज्य की सीमा मजेरा नदी तक मान ली गई। इस युद्धकी हानि-पूर्तिके लिए २० लाख रुपये भी देने स्वीकार किये। परन्तु आदिलशाह पर कोई कर नही लगाया गया।

इस प्रकार दक्षिणका मामला तय करके शाहजहाने दक्षिणमे मुगल राज्यकी दक्षिणी सीमा निर्धारित कर दी, जिसे दक्षिणके सब

राज्योने स्वीकार कर लिया। सम्राट उत्तरी भारत को लौट गया। जाते समय औरंगजेबको दक्षिणी सूबोका सूबेदार बनाया (१४ जुलाई १६३६), और अब औरंगाबाद उसकी राजधानी बनी। खिडकी नामक गावके स्थानपर मलिक अम्बरने यह नहर बसाया था और अपने तीसरे लडकेके नामपर इसका नाम 'औरंगाबाद' रखनेकी आज्ञा शाहजहाने भी दी थी।

८ औरंगजेबका परिवार

औरंगजेबके चार पत्नियां थी —

(१) दिलरस बानू—फारसके शाह इस्माइल सफावीके छोटे पुत्रके प्रपौत्र शाह नवाजखांकी वह पुत्री थी। इसका विवाह ८ मई १६३७ को आगरामे बडी धूमधामसे औरंगजेबसे हुआ था। मुहम्मद अकबरके जन्मके समय प्रसूति में ही इसकी मृत्यु ८ अक्तूबर, १६५७ को औरंगाबादमे हुई थी। उसे औरंगाबादमे ही दफना दिया गया। मृत्युके बाद वह 'रबिया-उद्-दौरानी' याने 'आधुनिक-पवित्रात्मा-रबिया' नामसे कहलाई। उसका मकबरा दक्षिणी ताजमहलके नाम से प्रसिद्ध है। अपने पिताकी आज्ञासे औरंगजेबके पुत्र आजमने उसकी मरम्मत करवाई थी। प्रतीत होता है, कि वह बहुत ही उद्धत स्त्री थी और फारसके राजवंशीय होनेका उसे बडा गर्व था। औरंगजेब भी उससे डरता था। ('ऐनेक्डोट्स आफ औरंगजेब' स० २७)।

(२) रहमत-उन्निसा—प्रचलित नाम 'नवाब बाई'—कश्मीरके अन्तर्गत 'राजोरी' राज्यके राजा राजूकी वह पुत्री थी। पहाडी राजपूत घरानेमे उसका जन्म हुआ था। उसके पुत्र बहादुरशाहने स्वयं सिंहासनपर बैठनेके बाद उसकी झूठी वंशावली तैयार कराई थी कि उसके आधारपर बहादुरशाह स्वयको सैयद घोषित कर सके। उसने घाटोके तले फरदापुरमे एक सराय बनवाई और औरंगाबाद शहर के पास ही बाईजीपुरा उपनगर बसाया। उसके पुत्र मुहम्मद सुलतान और मुअज्जमने कुसंगतिमे पडकर बादशाहकी आज्ञाओका उल्लघन

किया, जिसके कारण उसके जीवनके अन्तिम दिन दुखमय ही रहे। उसके उपदेशोका मुअज्जमपर कोई भी असर नही हुआ और अन्तमे वह कैद कर लिया गया। अपने पति व पुत्रोके कई वर्षोके वियोगके बाद दिल्लीमे ही उसने अपनी जीवन-लीला समाप्त की (१६९१ई०)।

(३) औरगाबादी महल—औरगाबादमे शाहजादेके हरममे प्रवेश करनेके कारण ही उसकी इस तीसरी पत्नीको यह नाम दिया गया था। इसकी मृत्यु बीजापुरमे प्लेगके कारण १६८८ई०मे हुई थी।

(४) उदयपुरी महल—यह कामवख्शकी माँ थी। वेनिसके समकालीन यात्री मनुचीके कथनानुसार वह दाराशिकोहके हरममे रहने वाली जार्जिया देशकी दासी थी। दाराकी हारके बाद वह अपने नए स्वामीकी उपपत्नी बन गई। इस समय उसकी अवस्था किशोर थी। वृद्धावस्था तक सम्राट उससे प्रेम करता रहा और सम्राट की मृत्यु तक उसपर वह अपना प्रभुत्व और सौन्दर्य-प्रभाव बनाए रही। उसकी सुन्दरताके प्रभावके कारण ही उसकी मद्यपानकी आदतपर औरगजेबने कभी ध्यान नही दिया और उसके पुत्र कामवख्शके अनेको अपराध क्षमा किए। औरगजेबके समान पाक मुसलमानको अपनी इस दुर्बलताके लिए अवश्य ही कभी-कभी आत्म-ग्लानि हुई होगी।

इसके अतिरिक्त बादशाहके जीवनमे एक और प्रेम-लीलाका विवरण मिलता है। प्रेमिकाकी चचलता, निपुणता, सगीत और सौन्दर्य ही इसके कारण थे। यह स्त्री थी हीराबाई, जो जैनाबादी नामसे प्रसिद्ध हुई। मीर खलील नामक व्यक्तिके साथ औरगजेबकी माँकी बहिनका विवाह हुआ था। यह नवयुवा दासी उसीकी उपपत्नी थी। दक्षिणकी सूबेदारी के दिनोमे एक बार औरगजेब अपनी मौसीके घर बुरहानपुर गया। तब वहाँ ताप्तीके तटपर बागमे टहलते समय मौसी की अन्य दासियोके साथ उसने हीराबाईको एक बार बिना घूघटके देखा। शाहजादेकी उपस्थितिकी उपेक्षा कर फलो से लदे हुए आमके वृक्षपरसे हीराबाईने बडी चचलता पूर्वक रसमय भावसे एक आम तोडा। इस घटनासे औरगजेबपर उसके अद्वितीय सौन्दर्यका प्रभाव

पडा और वह उसपर मोहित हो गया। वडी अनुनय-विनय करके उसे वह अपनी मौसीके यहासे ले आया और जी-जानसे उसपर निछावर हो गया। औरजवकी सारी प्रार्थनाओंको अनसुनी करके हीराबाईने उसे एक दिन मद्यपानके लिए बाध्य किया। निराश होकर अन्त मे जब औरगजवने प्याला ओठोसे लगाना चाहा त्योही हीराबाईने उसके हाथसे मदिराका वह प्याला छीन लिया और बोली—मेरा आशय केवल तुम्हारा प्रेम परखना था न कि तुम्हे पापके गढेमे गिरानेका। इस प्रेमिका की जीवन-लीला उसके यौवन-कालमे ही समाप्त हो गई। इसकी मृत्युका शाहजादेको वडा ही दु ख रहा। औरगाबादमे एक सरोवरके पास उसे दफनाया गया।

औरगजेबके अनेक सन्ताने थी। उसकी प्रधान बेगम दिलरस बानूके ही पांच बच्चे हुए—

(१) जेबुन्निसा—यह पुत्री १५ फरवरी १६३८ ई०को दौलताबादमे पैदा हुई। इसकी मृत्यु २६मई १७०२ को हुई। दिल्लीमे काबुल-दरवाजेके पास 'तीस हजार वृक्षवाले' बागमे इसे दफनाया गया था। रेलवे बनानेके लिए इसका मकबरा तुडवा दिया गया। अपने पिताकी-सी तीव्र बुद्धि और साहित्य-प्रियता उसमे भी थी। इसका निजी पुस्तकालय भी बहुत बडा था। अनेको विद्वान् उसके आदेशानुसार नए-नए ग्रन्थ लिखने और हस्तलिखित पुस्तकोकी नकल करनेके लिए नियुक्त थे, जिनको वह अपने निजी खर्चसे ही पर्याप्त वेतन देती थी। वह स्वय कविता भी करती थी। औरगज़ेब कवितासे घृणा करता था, एव कवियोको आश्रय देकर वह शाही दरबारसे न प्राप्त होनेवाली इस बडी कमीको पूरा करती थी। 'मखफी' (अज्ञात)उपनामसे उसने अनेको गीत फारसीमे लिखे। परन्तु 'दीवाने मखफी' नामक जो ग्रथ आजकल प्राप्त है, वह उसका लिखा नही है।

(२) जीनत-उन्निसा—बादमे वह 'पादिशाह बेगम' नामसे प्रसिद्ध हुई। इसका जन्म भी ५ अक्तूबर १६४३ ई० को औरगाबादमे हुआ था। अपने वृद्ध पिताकी मृत्यु-पर्यन्त कोई २५ वर्ष तक दक्षिणमे वह

शाही राजघरानेका सारा काम-धन्धा देखती रही। अपने पिताके बाद भी वह कई वर्षों तक जीवित रही, और औरंगजेबके उत्तराधिकारी उसे आदरकी दृष्टिसे देखते थे, वह एक महान-कालकी पवित्र स्मृति समझी जाती थी। इतिहास-लेखकोने उसकी पवित्रता और दान-शीलताकी बडी प्रशसा की है। इसकी मृत्यु ७ मई १७२१ ई० को दिल्ली मे हुई और 'जीनत-उल्-मसजिद' नामक आलीशान मसजिदमे उसे दफनाया गया।

(३) जुबदत्-उनिसा — इसका जन्म २ सितम्बर १६५१ ई० को मुलतानमे हुआ था। इसका विवाह अपने सगे चचेरे भाई भाग्य-हीन दाराशिकोहके दूसरे पुत्र सिपरशिकोहके साथ ३० जनवरी १६७३ ई० को हुआ और फरवरी १७०७मे उसकी मृत्यु हुई।

(४) मुहम्मद आजम—इसका जन्म २८ जून १६५३ ई० को बुरहानपुरमे हुआ। पिताकी मृत्युके बाद वह उत्तराधिकार के लिए युद्ध करता हुआ सन् १७०७ ई० की जून मे जाजवमे मारा गया।

(५) मुहम्मद अकबर—इसका जन्म ११ सितम्बर १६५७ ई० को औरंगाबादमे हुआ। भारत छोडकर वह फारस चला गया और वही नवम्बर १७०४ मे मर गया। उसे मशहदमें दफनाया गया।

नवाबबाईसे बादशाहके तीन सन्ताने हुई —

(६) मुहम्मद सुलतान—इसका जन्म १९ दिसम्बर १६३९ई० को मथुरामे हुआ। वह कैदखानेमे ही ३ दिसम्बर १६७६के दिन मरा। ख्वाजा कुतबुद्दीनकी कब्रके घेरेमे उसे दफनाया गया।

(७) मुहम्मद मुअज्जम— इसका जन्म ४ अक्तूबर १६४३ ई० को बुरहानपुरमें हुआ। उसकी मृत्यु १८ फरवरी १७१२मे हुई। इसका उपनाम शाह आलम था और यही बहादुरशाह प्रथमके नाम से अपने पिताके बाद गद्दीपर बैठा।

(८) बदरुन्निसा—जन्म ७ नवम्बर १६४७ ई०, मृत्यु ९ अप्रैल १६७० ई०।

(९) औरंगाबादी महलसे बादशाहकी केवल एक ही लडकी, मेहर्-उन्निसा, १८ सितम्बर १६६१ को हुई। इसका विवाह उसके सगे चचेरे भाई मृत मुरादबख्शके पुत्र इजीदबख्शके साथ २७ नवम्बर १६७२ को हुआ, और उसकी मृत्यु जून १७०६में हुई।

(१०) मुहम्मद कामबख्श—वह उदयपुरी महलका पुत्र था। इसका जन्म २४ फरवरी १६६७ ई० को दिल्लीमें हुआ। उत्तराधिकार-प्राप्तिके लिए युद्ध करता हुआ वह ३ जनवरी १७०९ ई० को हैदराबादमें मारा गया।

६ औरंगजेबका बल्ख-युद्ध १६४७

दो वर्ष तक गुजरातकी सूबेदारी करनेके बाद औरंगजेब बल्ख और बदख्शांका सूबेदार तथा प्रधान सेनापति नियत किया गया (२१ जनवरी १६४७ ई०)। बल्ख और बदख्शांके ये प्रान्त हिन्दुकुश पर्वतके उस पार, काबुलके ठीक उत्तरमें बुखारा राज्यके आश्रित थे। वहांका सुलतान नजर मुहम्मदखां एक कमजोर और अयोग्य शासक था। अनेक अधिकारियोंको अपने पदसे अलग करनेके कारण सन् १६४५ में उसके विस्तृत राज्यके कई भागोंमें विद्रोह हो गया। ये दोनों प्रान्त तैमूरकी राजधानी समरकन्दकी राहमें थे और एक समय बाबरके पूर्वजोंका उनपर अधिकार रहा था। शाहजहांने उनपर अपना अधिकार जमानेके लिए सेनाएँ भेजीं।

शाहजादे मुरादबख्शने बडी सरलतासे जून, १६४६ में इनपर अधिकार कर लिया था। परन्तु मुराद मध्य एशियामें रहना नहीं चाहता था और उजबेगोंका सामना करनेसे हिचकता था, एवं अपनी पिताकी इच्छाके विरुद्ध दो माह बाद ही वह बल्ख छोडकर चला आया। शाही सेना पीछे बिना नायकके रह गई। वहांकी परिस्थिति सम्हालनेके लिये तब औरंगजेब भेजा गया। अलीमर्दानखां उसका प्रधान सहायक था। पग-पग पर उन्हें उजबेग सैनिक-दलोंका सामना करना पडा। उन्हें हराता हुआ औरंगजेब आगे बढा और ७ अप्रैल १६४७

ई०को वह बल्ख शहर तक जा पहुँचा।

नजर मुहम्मदका ज्येष्ठ पुत्र अब्दुल अजीजखाँ एक योग्य तथा शूरवीर सेनापति था। उसने बुखारा राज्यकी रक्षा का भार उठाया। उसकी आज्ञासे उजबेग योद्धाओके बडे-बडे दल बल्ख प्रान्तके विभिन्न स्थानोपर एकत्रित होकर मुगल सैनिकोको यत्र-तत्र घेर लेनेका प्रयत्न करने लगे। बल्खसे ४० मील वायव्यमे अकचासे शत्रुओको भगाने लिए जब औरगजेब बल्ख शहरसे चला तब उसे नित्य-प्रति उजबेगो का सामना करना पडा। इसी समय उजबेगोकी एक और सेना बुखारासे भी आ पहुँची। यह समाचार पाकर औरगजेबको बल्ख शहर लौट जाना पडा। कभी न थकने वाले चपल शत्रुओसे मुगलो को निरन्तर युद्ध करना पड रहा था। साथ ही शाही सेनामे खाने-पीनेके सामानकी कमी थी। एक-एक रोटीका मूल्य अब दो रुपया तक हो गया था और पानी भी ऐसे ही मँहगे दामो मिलने लगा था। फिर भी पर्याप्त मात्रामे इनका मिलना कठिन था। परन्तु इतने कष्ट और कठिनाइयोंके होते हुए भी औरगजेबके धीरज, दृढता और नियन्त्रणने फौजमे किसी प्रकारकी अव्यवस्था या शिथिलता नही आने दी।

अपनी दृढ-निष्ठासे औरगजेब अपने उद्देश्यमे सफल हुआ। अन्त मे अब्दुल अजीजने सन्धि कर लेनेकी इच्छा प्रगट की। औरगजेबको हराकर पस्त कर देनेकी उसकी आशाएँ विफल हुई। औरगजेबके धैर्य व दृढतासे वह बहुत ही प्रभावित हुआ था। एक दिन जब घमासान युद्ध चल रहा था तब सन्ध्याकी नमाजका समय हो जानेपर औरगजेबने युद्ध-क्षेत्रमे ही चादर बिछाई और नमाज पढनेके लिए बडी ही निश्चिन्ततापूर्वक घुटने टककर बैठ गया। उस समय आसपास जो भयकर युद्ध हो रहा था उसकी ओर औरगजेबने कोई ध्यान नही दिया। इस समय उसके पास ढाल, तलवार, आदि कोई भी शस्त्र नही थे। बुखाराकी सेना यह दृश्य देखकर आश्चर्यमे पड गई और अब्दुल अजीजके दिलमे आदर और श्रद्धा उमड आई और वह बोल उठा "युद्ध बन्द कर दो, ऐसे मनुष्यसे लडना, अपने सर्वनाश को ही

बुलावा देना है।"

सन्धिका प्रस्ताव करते हुए अब्दुल अजीजने प्रार्थना की कि बल्ख प्रान्त उसके छोटे भाई सुभान कुलीको दे दिया जावे। औरगज़ेबने यह प्रस्ताव बादशाहकी स्वीकृतिके लिए भेजा। शाहजहाने यह निश्चय किया कि शाही सम्मान बनाने रखनेके हेतु, यदि नज़र मुहम्मद बादशाहसे क्षमा-याचना करे तो यह जीता हुआ सारा देश उसे वापिस दे दिया जावे। नज़र मुहम्मदके माफी माग लेनेपर बल्ख का किला पहली अक्तूबरको नज़र मुहम्मदके प्रतिनिधियोको सौंप दिया और तब मुगल सेना काबुलको लौट पडी। हिन्दुकुशकी घाटिया पार करते समय मुगल सेनाको सामने और पीछेमे उजबेगो और हजाराओ के आक्रमणोका निरन्तर सामना करना पडा, जिससे धन जनकी बहुत हानि हुई। इस युद्धके फलस्वरूप एक इच भी नई जमीन मुगलोके हाथ नही आई, फिर भी इसपर लगभग चार करोड रुपयो का खर्च उठाया गया।

बल्खकी इस चढाईके बाद माच १६४८से जुलाई १६५२ तक औरगज़ेब मुलतान और सिधका सूबेदार रहा। इस बीच वह ईरानियोसे कन्धार छीन लेनेके लिए दो बार वहाँ भेजा गया (जनवरी से दिसम्बर १६४९ और मार्चसे जुलाई १६५२ ई०)। मुलतान और सिधके प्रान्तोमे बसनेवाली अफगान और बलूच जातियाँ बहुत ही जगली और पिछडी हुई थी। मुगल साम्राज्यके इन सीमान्त प्रदेशवासियोको औरगजेब नाम-मात्रके लिए मुगल साम्राज्यके अधीन कर सका। इन प्रान्तोके व्यापारको फिरसे बढानेके उद्देश्यसे औरगज़ेबने वहाँ बहुत-सी सुविधाएँ दी। इसी हेतु समुद्रीय व्यापारके लिए सिन्धु नदीके निचले भागमे एक नया बन्दरगाह स्थापित किया और वहाँ नावो आदिके ठहरनेके स्थान भी बनवाए।

१० औरगज़ेबका कधारके घेरे डालना, १६४९-५२

भारतवर्षमे पश्चिमी दिशासे आनेवाले मार्गके मुख्य-द्वारपर स्थित

तथा दक्षिणसे काबुलको जाने वाली राहको रोकनेवाला कधारका यह किला, इन दो महत्वपूर्ण मार्गोंकी निगाहबानी करता है। कधारसे आगे पूरे ३६० मील तक समतल मैदान चला गया है और उस मैदानके पश्चिमी छोरपर हेरातका सुप्रसिद्ध किला स्थित है। हेरातके पास ही हिन्दूकुशकी पवतश्रेणीकी ऊँचाई कम होने लगती है जिसमे कि मध्य एशिया और फारससे भारतपर आक्रमण करनेवालो को यहाँ हिन्दूकुश पार करनेमे कोई कठिनाई नही होती थी। हेरातसे भारतको आनेवाली इसी राहपर स्थित होनेके कारण कधारका किला सैनिक दृष्टिसे बहुत ही महत्वपूर्ण है। जिस समय काबुलका सूबा दिल्ली साम्राज्यमे सम्मिलित था, उन दिनो भारतकी सुरक्षाके लिए अत्यावश्यक मोर्चोंकी श्रेणीमे कन्धार प्रधान और सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना जाता था।

ईसाकी सत्रहवी शताब्दीमे हिन्द-महासागरपर पुर्तगालियोकी जल-सेनाका एकाधिपत्य बना हुआ था, जिसके कारण भारतसे फारसकी खाडी तकके जल-मार्ग प्राय बन्द-से ही थे। ऐसे समय कन्धारका व्यापारिक महत्व उसके फौजी महत्वसे किसी भी भाँति कम न था। भारतवर्ष और मसाले उत्पन्न करनेवाले द्वीपोंसे पश्चिमी देशोमे जानेवाला सारा व्यापारी सामान थल-मार्ग द्वारा मुलतान, पिशन और कन्धारकी राह ही फारस और यूरोप जाता था। सन् १६१५ ई० के लगभग प्रति वर्ष विभिन्न मालसे लदे हुए कोई १४ हजार ऊँट इस मार्गसे फारस जाते थे। इसी कारण कुछ ही समयमे कन्धार शहर वस्तुओके आदान-प्रदानका एक बहुत बडा व्यापारिक और धनपूर्ण केन्द्र बन गया।

अपनी इस भौगोलिक स्थितिके कारण कन्धारका किला भारतवर्ष और फारसके शासकोंके बीच कशमकशका एक प्रधान कारण बन गया था। जहाँगीरकी वृद्धावस्थामे शाह अब्बासने ४५ दिन तक उसका घेरा डाले रहनेके बाद उसपर अधिकार कर लिया था (१६२३ई०)सन् १६३८ ई०मे वहाके ईरानी सूबेदार अलीमर्दानखाँने

अपने स्वामीकी अप्रसन्नता से डरकर यह किला शाहजहांको चुपचाप सौंप दिया । पर ईरानी चुपचाप बैठनेवाले नहीं थे । केवल ५७ दिनके घेरेके बाद (फरवरी, १६४९ ई० मे) उन्होंने यह किला मुगलोसे सदा के लिए छीन लिया । किलेकी मुगल सेनाको सहायता भेजनेमे शाहजहाने बहुत देरी कर दी थी ।

पर मुगल-साम्राज्यकी मान-रक्षाके लिए इस किलेको ईरानियोंसे वापिस छीन लेना अत्यावश्यक था । इसके लिए शाहजहांके पुत्रोंने कन्धारके तीन घेरे डाले, जिनमे हर बार बहुत सा द्रव्य व्यय हुआ तथापि एक भी घेरा सफल नहीं हुआ । कधारका पहला घेरा १४ मई १६४९ को औरंगजेब और वजीर सादुल्लाखाके सेनापतित्वमें ५० हजार सैनिकोने डाला था । पर किला मुगलोंकी छोटी तोपोंकी मारसे परे था । भारी तोपोके अभावके कारण उस किलेकी दीवारोंको तोडकर उस पर आक्रमण करना असम्भव था । शाहजहाके शासन-कालके सरकारी इतिहासकारको भी स्पष्ट रूपसे स्वीकार करना पडा था कि—"तुर्कोंके विरुद्ध निरन्तर काम पडनेके कारण लम्बे समय तक चलनेवाले युद्धो और किलोके बचाव तथा उनपर आक्रमण करनेकी कलामे ईरानी बहुत ही निपुण हो गए थे । शस्त्र-विद्यामें निपुण होकर उन्होने कन्धारके किलेको भारी तोपो तथा । सुशिक्षित तोपचियोसे इस प्रकार सुसज्जित किया था कि शाही सेनाके सारे प्रयत्न व्यथ हुए" । ५ सितम्बरको औरंगजेब कन्धारसे लौटनेके लिए रवाना हुआ । कन्धारसे २० मील उत्तरपश्चिममे अरगधव नदीके तीरपर मुगल सेनापति कलीचखां और रुस्तमखा दक्खिनीका ईरानी सेनासे डटकर मुकाबिला हुआ जिसमे उन्होंने ईरानियोको बुरी तरह हराकर कुश्क-इ-नखुदसे आगे तक पीछा किया ।

दूसरी बार कन्धारको वापिस लेनेकी तैयारियां और भी बडे पैमानेपरकी गई । २ मई १६५२ ई० को फिरसे औरंगजेब और सादुल्लाखाने किलेको जा घेरा । दीवारोको तोडनेके लिए तोपें दागी गईं और उसकी खाइयों तक सुरंगें खोदी गईं। खाइयोका पानी सुखाने

का भी पूरा-पूरा प्रयत्न किया गया। रात्रिमे 'चेहल जीना' (चालीस-सीढीवाले) बुर्जके पीछेवाली पहाडीके सिरेपर धावा किया। परन्तु ये सब प्रयत्न विफल हुए क्योंकि युद्ध-विद्यामे ईरानी सेना जितनी निपुण थी मुगल सेना उतनी ही अयोग्य थी। मुगलोके तोपचियोके निशाने तक ठीक नही लगते थे, जिससे किलेपर उनकी गोलाबारीका कोई भी असर नही हो सका।

एक माहके भीतर ही आक्रमण-सम्बन्धी सामानकी कमीके कारण खाइयोके पानी को सुखाने और सुरग लगानेका कार्य बन्द करना पडा। दो माहकी गोलदाजीके बाद भी किलेकी दीवारोमे कही भी जरा-सी दरारें न पड सकी। अन्तमे शाहजहाकी आज्ञा पाकर घेरा उठा लिया गया और ९ जुलाईको मुगलसेना पीछे भारतके लिए लौट पडी।

शाहजहा औरगजेबकी इस असफलतापर बहुत ही क्रुद्ध हुआ और औरगजेबकी अयोग्यताको ही इस विफलताका कारण बताता रहा। पर वास्तवमे इस युद्धके सचालनका कार्य काबुलसे स्वय बादशाह ही सादुल्लाखाके द्वारा करता था और प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कार्यका आरम्भ करनेसे पहिले उसकी अनुमति लेनी पडती थी।

औरगजेबपर लगाए गए अयोग्यता-सम्बन्धी इस दोषका प्रतिकार अगले वर्ष ही होगया, जब उससे भी अधिक द्रव्य व्यय कर और पूरी तैयारीके बाद भी कन्धारके हमलेमे बुरी तरह हार खाकर दाराशिकोहको विफल मनोरथ लौटना पडा। फारसका शाह गर्वपूर्वक कहा करता था कि दिल्लीके बादशाह सोना देकर ही किला *खरीदना जानते है, भुजाओंके बलसे युद्धमे किले जीतना उन्हे नही* आता। मुगलोके विरुद्ध उनकी इन सफलताओमे ईरानी सेनाका यश बढना स्वाभाविक ही था। कई वर्षों तक ईरानियोके आक्रमण-की यह आशका भारतके पश्चिमी सीमा प्रान्तोपर निरन्तर बनी रही। फारसके इस योद्धा शाहकी मृत्युके बाद ही औरगजेब और उसके मत्रीने शान्तिसे सास ली।

अध्याय २

दूसरी वार दक्षिणकी सूवेदारी

(१६५२–१६५८ ई०)

१ मुगलोके दक्षिणी सूवोकी दुर्दशा एव दुर्गति वहांकी आर्थिक कठिनाइया

कन्धारसे कावुल लौट आनेपर औरगजेव दूसरी बार दक्षिणका सूवेदार वनाया गया (१६५२ ई०)। औरगजेवने मई १६४४ मे जव दक्षिण की सूवेदारी छोडी थी, तवसे वहांकी शासन व्यवस्थामें कोई उन्नति नही हुई। निस्सन्देह उन सूवोमे असाधारण शान्ति बनी रही थी, किन्तु इन वरसोमे वहुत-सी जोती हुई उपजाऊ जमीन पुन पडत रहकर जगलोमे बदल गई थी। किसानो की सख्या भी घट गई तथा उनकी आर्थिक स्थिति विगड गई और साधन भी पहिलेसे न रहे, जिनसे इन सूवोकी आय बहुत कम हो गई। इस दुर्दशाका कारण शीघ्रातिशीघ्र सूबेदारोकी वदला-वदली होते रहना और उनमेसे कईका सवथा अयोग्य होना ही था।

दक्षिणी सूवोपर शाही कोपका अत्यधिक धन व्यय होता रहा था। वहा की भी पूरी पूरी वसूली नही हुई। दक्षिणमे मुगलोके आधीन सारा प्रदेश सूवोमें वँटा हुआ था, जिनकी वार्पिक आय तीन करोड ६२ लाख रुपये थी। परन्तु १६५२ ई० मे इसकी एक तिहाईसेकम केवल १ करोड रुपये ही वसूली हो पाए थे। इस

प्रकार इन सूबोकी आय खर्चमे भी कम होनेके कारण इन प्रान्तोमे सुप्रन्बध बनाए रखने के लिए इस कमीकी पूर्ति साम्राज्यके अन्य समृद्धिशाली प्रान्तोकी आयसे की जाती थी ।

दक्षिण पहुँचकर औरगजेबको इस कठिन आर्थिक परिस्थितिका सामना करना पडा । जागीरोकी निर्धारित आयका एक अश-मात्र ही वास्तवमे वसूल हो पाता था । औरगजेबको दक्षिणमे नियुक्त करते समय शाहजहाने वहाँ खेती-वाडी सुधारने, उसे बढाने और किसानोकी दशा सुसमृद्ध बनानेकी ओर विशेष ध्यान देनेपर खास तौरसे जोर दिया था । औरगजेबने भी उसकी इन आज्ञाओके पालनका वचन दिया था । अतएव इन सब बातोंके लिए पर्याप्त समय, धन और आवश्यक सहायकोके लिए उसने बादशाहसे प्रार्थना की थी । निरन्तर युद्धोके कारण फैली हुई अराजकता, तथा उसी कारणसे उजडे हुए प्रदेशोमे दस वर्षोके अव्यवस्थित शासन-प्रबन्धको केवल दो या तीन ही वर्षो में सुधारना सभव नही था । वहा जाकर औरगजेबने जमीनका जो बन्दोबस्त किया उससे उसकी यह सूबेदारी दक्षिणी भारतकी मालगुजारी-व्यवस्थाके इतिहासमे चिर-स्मरणीय हो गई ।

२ मुर्शिदकुलीखा—उसका चरित्र और उसका मालगुजारी बन्दोबस्त

खुरासान-निवासी मुर्शिदकुलीखा कन्धारसे भागे हुए ईरानी सूबेदार अलीमर्दानखाके साथ ही आकर भारतमे बस गया था । एक वीर योद्धाके गुणोके साथ ही उसमें शासन-व्यवस्थाकी भी अपूर्व योग्यता विद्यमान थी । औरगजेबके दीवानकी हैसियतसे इन दक्षिणी सूबोकी मालगुजारी प्रथामें उसने अनेकानेक महत्त्वपूर्ण सुधार किए । उसकी अपनी यह नई योजना बहुत ही सफल हुई ।

इससे पहिले दक्षिणमे मालगुजारीकी कोई भी स्थायी व्यवस्था नही थी । जमीनको अलग-अलग विभागोमे बाँट कर उनकी सीमाएँ निश्चित करना, खेतोका क्षेत्रफल मापना, प्रति बीघाके हिसाबसे माल-

गुजारी-कर निर्धारित करना, अथवा मालगुजार और किसानोंके बीच कुल उपजके बटवारे आदिके उचित तरीकोंका निश्चित करना, आदि बात पहिले दक्षिणमें कभी प्रचलित नहीं रही। वहांका किसान एक जोड़ी बैल और एक हलसे ही मनचाही जमीन जोत लेता था, चाह जो फसल वह बो सकता था, तथाप्रति हलके हिसाबसे राज्यको थोड़ा-सा कर दाम छटांक या नजराना। मालगुजारीकी दर भी हर स्थानमें अलग-अलग थी, जो अधिकतर शासकोंकी इच्छानुसार ही निर्धारित की जाती थी। छोटे-छोटे हाकिम किसानों पर मनचाहा अत्याचार और अपनी धुनके अनुसार पैसा वसूल करते थे। बरसों तक लगातार वर्षाके अभावके कारण तथा मुगलोंके साथ होनेवाले निरन्तर युद्धोंके फल स्वरूप वे पूरी तरह बर्बाद हो चुके थे। अत्याचार-पीड़ित किसान घर छोड़-छोड़कर भाग गए, आबाद गांव उजड़ गए और खेत पड़त रहकर जंगलोंमें बदल गए।

इस नये दीवानने टोडरमलकी सुप्रसिद्ध व्यवस्थाको दक्षिणमें भी प्रचलित कर वहां सुधारका आयोजन किया। योग्य हाकिमोंकी सुव्यवस्थित देख-रेखमें कठिन परिश्रम करके किसानोंको वहां फिरसे बसाया। प्रत्येक गांवमें आवश्यक लोगोंको आबाद कर वहां वे जरूरी-भरूरी कार्यकर्ताओंका ठीक-ठीक प्रबन्ध कर उन गांवोंकी ऐसी सुव्यवस्था की कि उनका काम सरलतापूर्वक चल सके। सब जगह चतुर बुद्धिमान् अमीनों और ईमानदार पैमायश करनेवाले, जमीन नापने, खेतोंके रकबे, आदि का ठीक लेखा रखने और खेतीके योग्य जमीनको पहाड़ी भूमि तथा नदी-नालोंसे पृथक् निश्चित करनेके लिए उपयुक्त कार्यकर्ता नियुक्त किए गए। जिस गाँवका मुकद्दम (मुखिया) मर जाता था, तब उसी गांवसे चुनकर ऐसे योग्य और चरित्रवान व्यक्तिको ही वहाँका मुकद्दम बना देते, जो खेतीकी देखभाल और गांवकी तरक्की के लिए प्रयत्न कर सके। गरीब प्रजाको शाही खजाने से पशु, बीज और खेतीके लिए अन्य आवश्यक चीजें खरीदनेके लिए तकावी दी जाती थी, जिसे फसलके समय किश्तोंके रूपमें सुविधानुसार

वसूल करते थे ।

स्थानीय परिस्थितिके अनुसार अपनी सूझ-सूझमे ही वह प्रत्येक जगहकी व्यवस्थामे आवश्यक हेर-फेर कर देता था । जहाँके किसान पिछडे हुए थे, आबादी कम थी और जहा सारा देश उजडा पडा था वहाँ उसने प्रति हलकी दरमे मालगुजारी निश्चित करनेकी प्रथा ही कायम रखी । दूसरे कई स्थानोमे खेतोमे उत्पन्न पैदावारको बाँटनेकी प्रथा आरम्भ की ।

मालगुजारी सम्बन्धी उसके बन्दोबस्तका तीसरा तरीका उत्तरी हिन्दुस्तानकी तरह बहुत ही लम्बा-चौडा और पेचीदा था । इस प्रथा-के अनुसार कुल उपजका एक चौथाई भाग सरकार वसूल करती थी, चाहे वह उपज अनाजकी हो या कन्द-मूल, फल या बीज, आदि किसी भी दूसरे प्रकारकी वस्तु ही क्यो न हो । बीज बोनेसे लेकर काटने तकका समय, फसलकी हालत, उसकी उपज, बोई गई जमीन का रकबा, बाजार-भाव आदिको देखकर ही प्रति बीघेके हिसाबसे माल-गुजारी की रकमका स्थायी मान रुपयोकी निश्चित रकमके रूपमे तय किया जाता था । यो यह प्रथा दक्षिणके मुगल सूबोमे प्रथम बार प्रचलित की गई, जो बादमे भी कई शताब्दियो तक 'मुर्शिदकुलीखाँ की धारा' के नामसे कहलाई । उसकी निरन्तर सावधानीपूर्वक निजी देखरेखके कारण ही इस उत्तम प्रबन्धसे कृषिमे शीघ्र ही उन्नति हुई और राज्यकी वार्षिक आय बढ गई ।

३ दक्षिणमें औरगजेबके शासन-सुधार

औरगजेबने सूबेदारी सम्हालते ही राज्य-शासनको सुव्यवस्थित करनेके लिए बूढे और अयोग्य अधिकारियोको हटाकर महत्त्वपूर्ण पदोपर विश्वसनीय तथा परखी हुई योग्यतावाले व्यक्तियोको नियुक्त किया । सेनाकी उच्चतम योग्यता बनाए रखनेके लिए उसने विपुल धनकी आवश्यकता को समझकर उसका भी उचित प्रबन्ध किया ।

सैनिक-सगठन मे जो-जो कुप्रथाएँ तथा कमजोरियाँ घुस गई थी,

उन्हे दूर करनेके लिए उसने एक अनुभवी सेना-नायकको नियुक्त किया, जिसने बडी ही तत्परता और चतुराई से सेनाकी प्रबन्ध—व्यवस्थामे उचित सुधार किए। उसने प्रत्येक किलेमे जा-जाकर वहाँ की सारी विभिन्न छोटी-मोटी वस्तुओ, शस्त्रागारो और अन्न-भडारो का स्वय निरीक्षण किया, और जो-जो कमियाँ उसे देख पडी उन्हे तत्काल ही पूरा किया। जो-जो वृद्ध और निकम्मे सैनिक तोपचियो-के कामपर नियुक्त किए गए थे, उन्हे बाध्य किया कि वे तोप चलाने की विद्या पूरी तरह सीख ले। ऐसे तोपची जो निशानेबाजीमे बिलकुल ही असफल रहते थे वे अपने पदसे अलग कर दिए जाते थे। अपाहिज और बूढे सैनिकोको, उनकी सेवाका खयाल करके, पेन्शने दे दी गई। इस अफसरने फौजकी योग्यता बढानेके साथ ही साथ लगभग ५०,००० रु० की सालाना बचत भी की।

४ गोलकुडा राज्यकी सम्पत्ति मुगलोंके साथ उसके विरोधके कारण

गोलकुण्डा बहुत ही उपजाऊ और सिचाईके साधनोंसे पूरी तरह सुसज्जित देश था। वहाँकी जनसख्या बहुत अधिक और वहाके निवासी बडे ही परिश्रमी थे। इस राज्यकी राजधानी हैदराबाद, केवल एशिया ही नही, सारे ससारमे हीरोंके व्यापारका प्रधान केन्द्र था। कई उद्योग-धन्धोके लिए प्रसिद्ध होनेके कारण यहाँपर बहुत-से विदेशी व्यापारी भी एकत्रित रहते थे। बगालकी खाडीमे मछलीपट्टम शहर इस राज्यका प्रधान तथा ही बहुत सुविधापूर्ण बन्दरगाह था।

यहाके जगलोमे हाथियोके बडे-बडे झुड मिलते थे, जिनसे राज्य की सम्पत्तिमे वृद्धि ही होती थी। तम्बाकू और ताड यहां बहुत अधिक मात्रामे होते थे, जिससे तम्बाकू और ताडीपर लगाए करोसे राज्यको काफी आमदनी हो जाती थी।

गोलकुण्डाके सुलतानमे लडनेके लिए औरगजेबके पास अनेक कारण थे। दो लाख हूणका वार्षिक कर सदैव उसपर बकाया ही

रहता था। प्रत्येक तकाजेके उजरके जवाबमे मुगल सूबेदारको वह कुछ कारण बताकर अधिक समयकी ही माग किया करता था।

५ मीरजुमला—उसकी जीवनी और पद

सन् १६३६ ई० की सधिके समय मुगल साम्राज्य और दोनो दक्षिणी राज्योकी सीमाएँ स्पष्ट रूपसे निर्धारित कर दी गई थी। कृष्णा नदीसे कावेरी पार तजोर तक कर्णाटक प्रदेश था, जिसमे विजयनगर राज्यके भग्नावशेष छोटे-छोटे हिन्दू राज्य सर्वत्र फैले हुए थे। उन राज्योपर अब एकाएक मुसलमान शासकोका आधिपत्य होने लगा। चिलका झीलमे पेनार नदी तकके प्रदेशोको जीतती हुई गोलकुण्डाकी सेनाओने उस राज्य की सीमाओको बगालकी खाडी तक फैला दिया।

दक्षिणी ओर बढते हुए जिजी और तजोरके किनारेको वशमे कर बीजापुर राज्य अब पूवकी ओर बढने लगा। विजयनगरके अन्तिम अवशेषोको सगठित करते ही चन्द्रगिरि राज्यकी स्थापना की गई थी। पूर्वमे नेलोरसे पाडिचेरी तक और पश्चिममे मैसूरकी सीमा तक यह राज्य फैला हुआ था। उत्तर और दक्षिण दोनो दिशाओमे इन दोनो मुसलमानी राज्योके बीचमे यह राज्य अब घिर गया। इसे हडप लेने के लिए गोलकुण्डा और बीजापुर राज्योके बीच अब एक कशमकश शुरू हुई। इस राज्यको जीतनेमे गोलकुण्डाके वजीर मीर-जुमलाका बहुत बडा हाथ था।

मुहम्मद सैयद, जो इतिहासमे मीरजुमलाके नामसे प्रसिद्ध है, फारस देशके आर्दिस्तान प्रान्तका रहनेवाला सैयद था। वह इस्फहानमे रहनेवाले तेलके व्यापारीका पुत्र था। युवावस्थामे ही अपनी जन्मभूमि छोडकर वह दक्षिणी भारतके सुलतानोके दरबारमे भाग्यपरीक्षाके लिए चला आया (१६३० ई०)। हीरे-जवाहरातका व्यापारी बनकर वह अत्यधिक धनवान् हो गया। उसके आश्चर्यजनक गुणोसे बहुत प्रसन्न होकर अब्दुल्ला कुतुबशाहने उसे अपना प्रधान मन्त्री बना

लिया। अपनी उद्योगशीलता, व्यापार-चातुर्य, शासन-क्षमता, युद्ध-कुशलता और जन्मजात नेतृत्व शक्तिके कारण मीरजुमलाको अपने प्रत्येक कार्यमे सर्वथा निश्चित सफलता मिलती रही। राज्य-शासन और युद्धक्षेत्र, दोनामे ही अपूर्व योग्यताके कारण वह शीघ्रही गोल-कुण्डाका वास्तविक शासक बन गया। अपने स्वामीकी आज्ञानुसार कर्णाटक पहुँचकर मीरजुमलाने बहुतसे यूरोपियन गोलन्दाजो तथा तोपे ढालनेवालोको अपनी सेनामे भरती कर लिया, और यो उसने अपनी सेना अधिक शक्तिशाली, रणदक्ष और सुनियन्त्रित बना ली, तथा शीघ्र ही कडप्पा जिलेपर अधिकार कर लिया, और अब तक दुर्गम समझे जानेवाले गडीकोटाके पहाडी किलेको जीत लिया। कडप्पाके पूर्वमे स्थित सिधौतको* जीतते हुए उसके सेनापति अर्काट जिलेके उत्तरमे स्थित तिरुपति और चन्द्रगिरी तक बढते चले गए। गडे हुए खजानेकी खोज कर-करके उन्हे लूटा, जिससे मीर-जुमलाको अटूट सम्पत्ति प्राप्त हो गई। इन विजयो द्वारा उसने अपनी कर्णाटक-की जागीरको एक राज्यमे परिणत कर लिया। इस प्रकार वह अपने स्वामीसे पूर्णतया स्वतन्त्र होकर सचमुच ही कर्णाटकका वास्तविक राजा बन बैठा। अतम ईर्ष्यालु दरबारियोके उकसानेपर कुतुबशाह न आज्ञापालन न करनेवाले अपने इस कर्मचारीको दबानेका खुल्लम-खुल्ला बीडा उठाया।

६ कुतुबशाहकी मुगलोसे अनबन, १६५५

अब मीरजुमला अपने लिए एक उपयुक्त रक्षकको खोजने लगा। उसने बीजापुरके अधीन रहकर उस राज्यकी सेवा करनेका प्रस्ताव किया, तथा साथ ही वह मुगलोसे भी दोस्ती गाठनेका प्रयत्न करने लगा। औरंगजेब मीरजुमलाके समान सुयोग्य सहायक और सलाह-कारको मुगल साम्राज्यका प्रधान मन्त्री बनानेके लिए बडा ही उत्सुक

---

* कडप्पा शहर से सिधौत ९ मील पूर्वमे और गडीकोटा ४२ मील उत्तर पश्चिम मे है। दोनो ही शहर पेनार नदी के किनारे स्थित है।

था। गोलकुण्डामें स्थित मुगल दूतके द्वारा औरगज़ेबने मीरजुमलासे गुप्त पत्र-व्यवहार आरम्भ किया,और मुगलोकी नौकरी स्वीकार करने पर बादशाहसे अनेक उपहार दिलानेका उसे वचन दिया। पर औरगज़ेबके प्रस्तावको स्वीकार करनेकी मीरजुमलाको कोई जल्दी न थी, एव उसने एक वर्षके बाद उत्तर देनेकी इच्छा प्रकट की।

इसी समय वजीर मीरजुमलाके पुत्र मुहम्मद अमीनने कुतुवशाह के प्रति अपने बर्तावसे गोलकुण्डामें एक सकटपूर्ण परिस्थिति उत्पन्न कर दी थी। इधर कई वर्षोंसे गोलकुण्डाके दरबारमें मीरजुमलाका प्रतिनिधि बनकर वह राज्य-शासन का कार्य करता था। वह खुले-आम दरबारमें भी सुलतानका बहुत ही कम अदब करता था। एक दिन वह नशेमें लड़खड़ाता हुआ दरबारमें आया, और खुद सुलतान की गद्दीपर जा लेटा और कै करके उसने गद्दीको खराब कर दिया। उसके व्यवहारोंसे तग हुए सुलतानसे अब रहा न गया, उसने मुहम्मद अमीन को सकुटुम्ब कैदखानेमें बन्द कर दिया और सारी जायदाद जब्त कर ली (२१ नवम्बर १६५५ई०)। दीर्घ कालसे औरगजेब इसी अवसरकी प्रतीक्षा कर रहा था।

१८ दिसम्बरके दिन औरगजेबको बादशाहके पत्र मिले जिनमें मीरजुमला और उसके पुत्रकी मुगलोकी शाही सेवा मे नियुक्तिकी सूचना थी, साथ ही कुतुवशाहको आज्ञा दी गई थी कि वह इन दोनो को शाही दरबारमें जानेसे न रोके, तथा उनकी जायदादपर कोई प्रतिबन्ध न लगावे। औरगज़ेबने यह आज्ञा-पत्र तुरन्त ही कुतुवशाह के पास भेज दिया और उसके न मानने या उसके पालन करनेमे देरी होनेपर युद्धकी धमकी दी। साथ ही साथ उसने अपनी सेना गोलकुण्डा की सीमाकी ओर बढाई। किन्तु कुतुवशाहने मुगलोके इन शाही फरमानोकी कोई परवाह न की।

मुहम्मद अमीनके कैद होने की खबर सुनकर २४ दिसम्बरको शाहजहाने कुतुवशाहको एक पत्र लिखकर आदेश दिया कि मीर-जुमलाके कुटुम्बको मुक्त कर दे। साथ ही औरगजेबको सतुष्ट

करनेके लिए, मुहम्मद अमीनके न छोडे जानेपर ही गोलकुण्डापर आक्रमण करनेकी उसे आज्ञा दे दी (२९ दिसम्बर)। औरगज़ेनने अब गोलकुण्डाको नष्ट करनेके लिए पूरी चतुराईसे काम लिया। शाहजहां को २४ दिसम्बरवाले जिस पत्रमे साफ तौरपर कैदियाको छोड देनेकी आज्ञा दी गई थी, उसे पाकर उसके अनुसार काय करानेके लिग औरगजेबने कुतुवशाहको कुछ भी अवसर नही दिया। उसने घोषित कर दिया कि कुतुवशाहका कैदियोको न छोडना ही शाही आज्ञा-भगका स्पष्ट उदाहरण है। गोलकुण्डापर आक्रमण करनेके लिए इसी एकमात्र कारणकी आवश्यकता थी।

६ गोलकुण्डा राज्यपर औरगजेबकी चढाई, १६५६

औरगजेबकी आज्ञानुसार उसके ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद सुलतानने नान्देरके पास गोलकुण्डाकी सीमा पार की (१० जनवरी १६५६), और अपनी सेना लेकर एकदम हैदराबाद चढ दौडा। उसी माहकी २० तारीखको स्वय औरगजेब भी अपने पुत्रकी सहायताके लिए औरगाबादसे चल पडा।

मुहम्मद मुलतान गोलकुण्डा राज्यमे प्रवेश कर चुका था, उसके बाद ही अब्दुल्लाको शाहजहांका २४ दिसम्बरवाला कडा पत्र मिला। शाहजहांकी आज्ञानुसार अब्दुल्लाने मुहम्मद अमीनको उनके कुटुम्ब और नौकरो सहित औरगजेबके पास तत्काल भेज दिया और साथ ही क्षमा-याचनाका एक पत्र भी शाहजहांको लिखा। परन्तु औरगजेबने ऐसा षड्यत्र रचा था कि उसकी क्षमा-याचनाका यह पत्र ठीक समयपर न पहुँच सके और अब्दुल्लाका बचाव किसी भी प्रकारसे न होने पावे। हैदराबादसे २४ मीलकी दूरीपर मुहम्मद अमीन आकर औरगजेबसे (सभवत २१ जनवरीको) मिला, परन्तु औरगज़ेबने युद्ध बन्द करना अस्वीकार कर दिया, और इसी बहाने कि अभी तक अब्दुल्लाने कैदियोकी जायदाद वापिस नही की, वह हैदराबादकी ओर बढता ही गया। कुतुवशाहकी अंतिम आशाऐं भी नष्ट होगई।

मुगल सवारोके दल इतनी तेजीसे हैदरावाद तक जा पहुँचे कि वह आश्चयचकित ताकता ही रह गया । अव उसे अपना सम्पूर्ण सर्व-नाश निश्चित देख पडा, तव तो वह २२ जनवरीको रात्रिको अपनी राजधानी हैदरावाद छोडकर गोलकुण्डाके किलेमे जा पहुँचा ।

इस प्रकार भाग जानेसे उसके प्राण वच गए । औरगजेवने मुहम्मद सुलतानको जो आदेश दिए थे, उनसे अब्दुल्लाके प्रति औरग-जेवका प्राणघातक विरोध वहुत ही स्पष्ट हो जाता है । उसने लिखा था "कुतुव-उल्-मुल्क वहुत ही कायर है और सभवत वह विलकुल ही सामना न करेगा । इस समाचारके मिलते ही उसपर जोरोंसे धावा वोल दो और यदि तुमसे हो सके तो उसके शरीरको उसके सिरके भारसे हलका कर दो । इस उद्देश्यको पूरा करनेके लिए चतुराई, फुर्ती और हाथकी सफाई ही सफल साधन हैं ।"

२३ जनवरीको आक्रमणकारी हैदरावादसे २ मील उत्तरमे स्थित हुसैन-सागर नामक तालावपर पहुँच गए । गोलकुण्डाके राज-दरवारमे सवत्र घवडाहट मची हुई थी । दूसरे दिन शाहजादा मुह-म्मद हैदरावादमे दाखिल हुआ । कुतुव-उल्-मुल्ककी वहुतसी सामग्री और अनेको भडार, जिनमे अगणनीय वहुमूल्य वस्तुएँ और अनेको अप्राप्य ग्रन्थ थे, मुहम्मद सुलतानने लूट लिये ।

दूसरे दिन गोलकुण्डाका घेरा डाला गया । मुगलोंने उसे तीन ओरसे घेर लिया, केवल पश्चिमकी ओर कोई भी सेना न थी । गोल-कुण्डाका घेरा ७ फरवरीसे ३० माच तक चलता रहा । उसका सचालन वडी ही शिथिलतासे हुआ, क्योकि मुगल शाहजादेके पास जो भी युद्ध-सामग्री थी इससे इस दुगम गढको किसी भी प्रकार हानि पहुँचाना सभव न था ।

इसी समय अब्दुल्लाके दिल्लीमें रहनेवाले प्रतिनिधिने दारा-शिकोह और शाहजादी जहाँनाराके जरिये वादशाहसे मेल कर लिया । इनके द्वारा उसने वादशाहके सामने औरगजेवके सारे षड्-यन्त्रोका सच्चा हाल रख दिया । किस प्रकार अब्दुल्लाको धोखा

देकर उसे मारनेके लिए भरसक प्रयत्न किए गए, किस प्रकार बाद शाहकी आज्ञा-पालनका उसे समुचित अवसर तक नहीं दिया गया, किस प्रकार बादशाहके फरमान राहमें ही रोक लिए गए, और किस प्रकार उसके प्रति शाहजहाँकी कृपा-दृष्टिकी अवहेलना की गई, आदि बातें दूतने स्पष्ट कर दी । इस पर विवेकशील शाहजहा भी क्रोधसे उबल पडा । उसने एक कडा पत्र औरंगजेबको लिखा और उसे गोल कुण्डाका घेरा उठाकर तत्काल उस राज्यकी सीमासे बाहर चले आनेका हुक्म दिया ।

बादशाहका यह अन्तिम आदेश पाते ही तदनुसार ३० मार्चको घेरा उठाकर औरंगजेब गोलकुण्डासे चल पडा । चार दिन बाद एक प्रतिनिधिके जरिये मुहम्मद सुलतानका विवाह अब्दुल्ला कुतुब शाहकी लडकीसे कर दिया गया । गोलकुण्डाके सुलतानको युद्ध-हानि और शेष करके रूपमे लगभग एक करोड रुपयोंके साथ ही साथ रामगिरका जिला (वर्तमान माणिकद्रुग और चिन्नूर जिले) मुगलो को देना पडा । २१ अप्रेलको मुगल सेना पीछे लौट पडी ।

गोलकुण्डाके पडावमे २० मार्चको मीरजुमला औरंगजेबकी सेवामे उपस्थित हुआ । उसका ठाट-बाट एक शाहजादेका-सा था, वह एक साधारण अमीर-सा नही देख पडता था । उसके साथ थे–६ हजार घुडसवार, १५,००० पैदल, १५० हाथी और बहुत ही सुशिक्षित कई एक तोपखाने । तुरन्त ही उसे शाही दरबारमे बुल वाया गया और ७ जुलाईको वह दिल्ली पहुँचा । उसने बादशाहको १५ लाखकी वस्तुएँ उपहारमे भेंट की, जिनमे २१६ रत्ती वजनवाला एक बडा हीरा भी था । उसे तुरन्त ही ६ हजारीका मनसब दिया गया । कुछ ही समय पहिले सादुल्लाखाकी मृत्यु हो जानेसे प्रधान मन्त्रीका पद खाली हो गया था, अब मीरजुमला उस पदपर नियुक्त किया गया ।

८ औरंगजेबका बीजापुरपर आक्रमण १६५७

बीजापुरके राजघरानेका ७वाँ सुलतान मुहम्मद आदिलशाह ४ नवम्बर

१६५६ को मर गया। उसके प्रधान मन्त्री खान मुहम्मद और उसकी वेगम वडी साहिवाके प्रयत्नोसे इसे मृत सुलतानके एक १८वर्षीय पुत्र, अली आदिलशाह द्वितीयको सिंहासनपर बैठाया गया। औरगजेबने तत्काल शाहजहाँको लिखा कि "अली वास्तवमे मृत सुलतानका पुत्र नही है, वह तो एक अनाथ बालक है जिसे मुहम्मद आदिलशाहने हरममे रखकर पाला था।" इसलिए औरगजेबने शीघ्र ही बीजापुर-पर आक्रमण करनेकी आज्ञा चाही। आदिलशाहकी मृत्युके साथ ही कर्णाटकमे बहुत ही गडबडी मच गई, जमीदारोने पहिलेसे अधिक अपने अधिकारमे कर ली। राजधानीकी अवस्था इससे भी बुरी थी। बीजापुरी सरदार एक दूसरेसे और शासन-सत्तामे हाथ बटानेके लिए प्रधान मन्त्री खान मुहम्मदसे लड रहे थे। इस अस्त-व्यस्त दुर्दशाको और भी उलझानेके लिए उन सरदारोसे मिलकर औरगज़ेब पड्यन्त्र भी करने लगा। बीजापुरराज दरबारके अनेक प्रमुख व्यक्ति अपनी सेना सहित मुगल राज्यमे आकर शाही सेवा स्वीकार करनेको उत्सुक थे। सहायताका वचन देकर उन्हे अपनी ओर मिलानेमे औरगजेब सफल हुआ। मीरजुमलाकी सहायतासे दूसरोको भी बहका लेनेकी उसे पूरा आशा थी।

२६ नवम्बरको शाहजहाने आक्रमणकी आज्ञा देते हुए बीजा-पुरके मामलेको अपनी इच्छानुसार तयकर डालनेकी औरगजेबको पूरी स्वतन्त्रता दे दी। कुछ दरबारसे और कुछ जागीरोसे एकत्रित करके अनेक अफसरो सहित कोई २०,००० सैनिक स्वय मीरजुमलाके साथ औरगजेबकी सहायताके लिए भेजे गए। इस प्रकारके युद्धकी आज्ञा देना बीजापुरके प्रति सवथा अन्याय था। बीजापुर कोई आश्रित राज्य नही था, वह तो एक स्वतन्त्र राज्य था जो मुगलोका सहायक मित्र था। बादशाहको बीजापुरके उत्तरा-धिकारके विपयमे कोई आज्ञा देने या उसे अस्वीकार कर उसमे फेरफार करनेका उसे कोई न्यायपूर्ण अधिकार नही था। मीरजुमला १८ जनवरीको औरगाबाद पहुँचा और उसी दिन ज्योतिपियो द्वारा

बताये हुए शुभ मुहूर्तमें उसके साथ औरंगजेब बीजापुरआक्रमणके लिए चल पड़ा । २८ फरवरीको वे बीदरकी सीमापर पहुँचे और २ मार्चको वहांके किलेका घेरा डाला । सिद्दी मरजानने डटकर सामना किया । उसने अनेक बार आक्रमण किए और खाइयोंपर आक्रमण कर मुगलोंको आगे बढ़नेसे रोकने का भी उसने सतत् प्रयत्न किया । पर अन्तमें मुगलोंकी बहुत बड़ी सेनाके आगे एक न चली । मीर जुमलाके सुशिक्षित तोपचियों ने किलेकी दीवारोंको बड़ा नुकसान पहुँचाया । किलेके दो बुर्ज गिर गए तथा नीचेकी दीवालकी मुंडेर और उसके बाहरी भाग भी भग हो गए ।

खाईके यों भर जानेसे २९ मार्चको मुगल सेनाने आक्रमण किया । मुगलों द्वारा चलाए हुए गोलेकी एक चिनगारी बुर्जके पीछे रखे बारूद और गोलेके रखनेके मकानमें गिरी । एक भयंकर धड़ाका हुआ । अपने दो पुत्रों और अनेकों साथियों सहित मरजान बुरी तरह घायल हुआ । विजयी मुगल अपनी खाइयोंसे निकल कर दौड़ पड़े और शहरमें जा घुसे । भयंकर मार-काटके साथ बचे हुए शत्रु सैनिकोंको खदेड़ दिया गया । सिद्दी मरजानने मृत्यु-शय्यापर पड़े-पड़े अपने सात पुत्रोंको किलेकी चाबी देकर औरंगजेबके पास भेजा । इस प्रकार बीदरका दुर्गम किला केवल २७ दिनके घेरेके बाद ही जीत लिया गया । बीदरमें जो सामग्री हाथ आई उसमें नकद १२ लाख रुपये, ८लाख की कीमतकी बारूद, गोलियां, अनाज तथा अन्य वस्तुओंके अतिरिक्त २३० तोपें भी थीं ।

इसके बाद औरंगजेबने महाबतखाके साथ १५ हजार अच्छे घोड़ोंवाले अनुभवी घुड़सवार भेजे कि आगे जाकर शत्रुसैनिकोंके एकत्रित दलोंको मार भगावें और पश्चिममें कल्याणी तक तथा दक्षिणमें गुलबर्गा तकके सारे बीजापुर राज्यमें लूट-मार कर उसे उजाड़ दें । मुगलोंकी इस सेनाने १२ अप्रेलको शत्रुओंका सामना किया । लगभग बीस हजार बीजापुरी सैनिक अपने मुख्य सेनापति खान मुहम्मद, अफ्ज़लखां, और रणदुल्ला तथा रैहानाके पुत्रोंके

नेतृत्वमे मुगलोपर आक्रमण करने लगे। शत्रुसे घिर जानेपर तथा शत्रुओंके घबरा देनेवाले आक्रमणोके समय भी योग्य सेनापतिके अनुरूप महाबतने अपने सवारोको पूरी तरह नियन्त्रणमे रखा। अन्तमे उचित अवसर देखकर उसने भी बीजापुरियोपर धावा बोल दिया तब तो बीजापुरी भाग खडे हुए।

बीदरसे ४० मील पश्चिममे, गोलकुण्डासे सुप्रसिद्धतीर्थ तुलजापुर जाने वाले पुराने मार्गपर, कन्नड प्रदेश तथा चालुक्य राजाओकी प्राचीन राजधानी कल्याणी शहर स्थित है। २७ अप्रेलको औरगजेब थोडी-सी सेना लेकर रवाना हुआ, और सिर्फ सात ही दिनमे कल्याणी पहुँच गया, और एकदम उसका घेरा डाल दिया। किलेकी रक्षा करनेवाली शत्रुसेना उसकी दीवारोपरसे दिन-रात गोलियोकी अविरल वर्षा करती रही। उन्होने मीरजुमलाकी खाईयोपर बडे ज़ोरोसे आक्रमणकर वहाँ भयकर मार-काट मचाई, पर उससे उन्हे कोई लाभ न हुआ। एक बार खानपानकी सामग्री सुरक्षापूवक लानेके लिए कार्यवशात् जाते हुए स्वय महाबतको भी कल्याणीसे दस मील उत्तर-पूर्वमे शत्रुओने जा घेरा। देर तक घमासान युद्ध होता रहा। इस युद्धमे शत्रुओके हमलेका सामना करनेका भार राजपूतोपर ही पडा। खान्न मुहम्मदके घुडसवार राव छत्रसाल तथा उसकी हाडा फौजपर टूट पडे, पर राजपूतोकी पत्थरके समान सुदृढ पक्ति अचल रही एव शत्रुओका आक्रमण विफल हुआ। राजा रायसिह सीसोदियापर बीजापुरवाले बहलोलखाँके पुत्रोने आक्रमण किया और शत्रुओके हमलेमे वह घायल होकर घोडसे गिर पडा। इसी समय सहायताके लिए दूसरी सेना जा पहुँची। महाबतखाँके आक्रमणने शत्रुओको तितर-बितर कर दिया और वे भाग खडे हुए।

इधर जबकि औरगजेब इस घेरेको सफल बनानेका प्रयत्न कर रहा था तभी उसके पडावसे सिर्फ ४ मील दूरीपर ३० हजार बीजापुरी सेना एकत्रित हुई। २८ मईको किलेके चारो ओर तम्बुओका पर्दा छोडकर अपनी अधिकाश सेना सहित शत्रुओकी इस सेनाकी

ओर चल पडा। घमासान युद्ध मे उत्तरके घुडसवारोंके सतत् आक्रमण अन्तमे सफल हुए। मुगल सेनाने शत्रुओको दाएँ बाएँ दोनो तरफसे घेरकर अन्तमे मार भगाया। ठीक उनके पडाव तक शाही फौजने उनका पीछा किया तथा जो उनके हाथ पडे उन्हें पकड लिया और दूसरोको मार डाला। बीजापुरी पडावमे जो भी सामान मिला, वह सब शस्त्र, स्त्रियाँ, घोडे, सामान ढोनेवाले जानवर और अन्य सभी असबाव लूट लिया गया।

यहाँ घेरा बडे ही जोरोंसे चल रहा था, पर उधर अबीसीनिया निवासी दिलावर भी डटकर पूरे साहसके साथ शाही सेनाका मुकाबला कर रहा था। २९ जुलाईको शाही फौजने खाईकी उस पार स्थित कल्याणीके एक बुर्जपर कब्जा कर लिया। यहांपर ही बडी घमासान लडाई हुई। फिर भी आक्रमणकारी किलेमे उमड पडे और इस ओरका हिस्सा वहांके रक्षकोंसे छीन लिया। १ली अगस्तको दिलावरने किलेकी चावियाँ मुगलोको सौप दी। उसे मुगलोकी ओरसे सम्मानसूचक वस्त्र दिए गए और बीजापुर लौटनेकी आज्ञा भी उसे मिल गई।

कल्याणीके किलेके जीत जानेके बाद बीजापुरके सुलताननें सन्धि-की बातचीत प्रारम्भ की। दिल्लीमे रहनेवाले बीजापुरके प्रतिनिधियोने दाराको मिलाकर बादशाहका अनुग्रह प्राप्त करनेका भी सफल प्रयत्न किया। अन्तमे यह तय हुआ कि आदिलशाह बीदर, कल्याणी और परेण्डाके किले और उन्ही किलोंके आसपास का राज्यका भाग भी मुगलोको दे दे, तथा उसके अतिरिक्त युद्धमें हुई मुगलोकी हानिकी पूर्तिके लिए एक करोड रुपया भी चुकावे। इन शर्तोपर सन्धि करके सेना सहित बीदर लौट जानेके लिए शाहजहाँने औरगजेबको हुक्म दिया।

अध्याय ३

शाहजहाँका बीमार पड़ना तथा उसके पुत्रोंका विद्रोह

१ शाजहाका ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह

अपने राज्य-कालके ३० वर्ष पूरे कर ७ मार्च १६५७ को शाहजहाँने ३१वेंमें पैर रखा। उसका शासन-काल अपने पूर्वजोंके समान ही सम्पन्न था। इस महान् मुगल बादशाहके अधिकारमे हिन्दकी जो दौलत थी उसे देखकर विदेशी भी चकित रह जाते थे। उत्सवोके समय बुखारा फारस, तुर्की व अरबके राजदूत तथा फ्रान्स, इटली, आदि देशोंके यात्रीवहाँ के 'तख्त-इ-ताउस' (मयूर-सिंहासन), कोहिनूर हीरे तथा अन्य मणियोको आश्चर्यसे देखते थे। सफेद संगमरमरके महल बनाना उसे पसन्द था, वे सादे व सुन्दर होनेके साथ ही उतने ही मूल्यवान समझे जाते थे। मुगल साम्राज्यके आश्रित सरदार धन और शान-शौकतमे दूसरे कई देशोके राजाओको भी मात करते थे। मुगलोके 'आश्रित साम्राज्य''की सीमा उससे पहलेके सभी बादशाहोसे बहुत अधिक दूर तक बढ गई थी। देशके भीतर अटल शान्तिका राज्य था। कृषकोको पालनेकी ओर पूरा ध्यान दिया जाता था। प्रजाको कष्ट देनेवाले कठोर हाकिम जनताकी शिकायतपर बहुधा अलग कर दिए जाते थे। सभी ओर सम्पदा और ऐश्वर्य बढते ही जा रहे थे। उस दयालु और विवेकशील शासकको सदैव

सुयोग्य अधिकारी घेरे रहते थे। उसका दरबार सम्पूर्ण देशकी विद्वत्ता और चातुर्यका एकमात्र केन्द्र बन गया था। पर इन महान विद्वानो, सेनापतियो और मन्त्रियोको कराल काल एक-एक करके उठाता जा रहा था। उनकी मृत्युपर बादशाह नई पीढीके नवयुवाओमे उनका उपयुक्त उत्तराधिकारी नही पाता था। वह स्वय भी अब ६७ वर्षका हो चुका था। उसके बाद क्या होगा, इसका सोच विचार उसे सदैव बना रहता था।

शाहजहाके चार लडके थे। सब वयस्क थे, और सबको प्रान्तो के शासन व सेनाओके नायकत्वका पूरा-पूरा अनुभव हो चुका था। पर उन सबमें आपसमे कोई भी भ्रातृ-स्नेह नही था। दारा और औरगजेबमे तो विशेषरूपसे वैमनस्य हो गया था, जो दिनोदिन इतना अधिक बढ रहा था कि सारे साम्राज्यमे उसकी चर्चा होती थी। उनमे शान्ति बनाए रखनेके लिए औरगजेबको राजधानीसे दूर भेजकर उसे दारासे अलग रखनेका विशेष प्रयत्न किया जाताथा। शाहजहाने स्पष्टरूपसे सकेत कर दिया था कि एक ही मांसे उत्पन्न इन चारोमे सबसे बडे दाराको ही वह राजगद्दी देगा। शाहजहाँ दाराको धीरे-धीरे पूरे साम्राज्यका एकमात्र अधिकारी बनाने और राज्य-शासनमे पूर्णतया दीक्षित करनेके लिए कई वर्षोंसे उसे अपने पास ही राजधानीमे रखता था। प्रतिनिधियो द्वारा अपने प्रान्तोकी व्यवस्था करवानेकी सुविधा भी दाराको दे दी गई थी। साथमे बाद शाहने उसे इतने अधिकार और ओहदे दे रखे थे कि वह किसी भी सम्राट्से कम नही था। बादशाह तक पहुँचनेके लिए सभीको दाराकी कृपा प्राप्त करना पडती थी।

दारा इस समय ४२ वर्षका था और उसने अपने प्रपितामह अकबरके ही आदर्शको अपने सामने रखा था। विश्व-देववादी दर्शनमें उसका विश्वास था एव इसी इच्छासे प्रेरित हो उसने तालमद, बाइबिल, मुसलमान सूफी और हिन्दू वेदान्त, आदि दर्शनोका अध्ययन किया था। जिन सार्वभौमिक धार्मिक तथ्योपर सभी धर्मोमे मतैक्य

है और जिनको कट्टरपन्थी लोग प्राय अपने अन्धविश्वासके कारण वाह्याचरण-मात्र समझते हैं, उनका उद्घाटन करके हिन्दू और मुसलमानी धर्मोमे समन्वय करना ही उसका प्रधान उद्देश्य था। हिन्दू योगी लालदास और मुसलमान फकीर सरमद, दोनोका ही समान रूपसे शिष्य था और दोनोंसे उसने उनकी उद्धारक धार्मिक विचारधाराओंको ग्रहण किया था। तथापि वह इस्लामका विरोधी नही था। उसने मुसलमान सन्तोके जीवन चरित्रोका सग्रह किया था। वह मुसलमान सन्त मिया मीरका शिष्य भी कहा गया है जो कदापि कोई काफिर नही हो सकता था। पवित्रात्मा जहाँनारा भी उसे अपना आध्यात्मिक गुरु मानती थी। अपनी धार्मिक रचनाओंकी भूमिकामे स्वय दाराने जो शब्द लिखे है वे इस बातके स्पष्ट प्रमाण हैं कि उसने इस्लामके आवश्यक सिद्धान्तोकी कभी अवहेलना नही की। उसने तो केवल सूफियोके व्यापक सिद्धान्तोके प्रति आदर एव विश्वास प्रगट किया था और यह सूफी सम्प्रदाय मुसलमानोका ही एक प्रमुख फिरका था। फिर भी हिन्दू दर्शनकी ओर झुकाव होनेके कारण प्रयत्न करनेपर भी वह अपने को कट्टर-पन्थी और एकमात्र इस्लामका माननेवाला सिद्ध नही कर सकता था, और न सब मुसलमानोको अपने झण्डेके नीचे एकत्र कर वह गैर-मुसलमानोंके विरुद्ध धर्म-युद्ध ही प्रारम्भ कर सकता था।

इस प्रकार पिताके अत्यधिक प्रेमने दाराकी बडी हानि की। उसे हमेशा दरबारमे ही रखा जाता था और कन्धारके तीसरे घेरेको छोड़कर वह कभी प्रान्तीय शासन-व्यवस्थाके लिए अथवा युद्धमे सेना-सचालनके हेतु बाहर नही भेजा गया। युद्ध और राज्य करनेका कोई भी उसे अनुभव नही मिल सका। कठिनाई और खतरेकी कसौटीपर कसकर मनुष्यको आजमाना कभी नही सीखा। सेनाके साथ भी उसका अपना कोई सम्पर्क नही रहा था, इस प्रकार धीरे-धीरे वह उत्तराधिकारके लिये होनेवाले उस युद्धके अयोग्य हो गया, जो मुगलोमे योग्यतम अधिकारीकी परीक्षाके लिए प्रत्यक्ष-परीक्षाका

साधन समझा जाता था। पर उसके एकछत्र प्रभाव उसकी अतुल सम्पदा, उसमे शील, सयम और दूरदर्शिता बिलकुल ही नहीं बढा सकते थे, उसके चारो ओर अनावश्यक झूठी चापलूसीने उसमे दिल्लीके सिंहासनके उत्तराधिकारी युवराज होनेकी स्वाभाविक भावना और उद्दण्डता अवश्य उत्तेजित की थी। उसे मनुष्य-चरित्र पहचाननेका अभ्यास नही था। स्वाभिमानी और सुयोग्य व्यक्ति अवश्य ही ऐसे घमण्डी और अविवेकी स्वामीसे दूर रहा करते होंगे। दारा एक प्रेमी पति, लाडला पुत्र और प्यारा पिता था, पर सकटापन्न प्रजाको अधिकारमे रखनेमे वह असफल ही रहा। पुश्तोसे चली आती हुई शान्ति और सम्पदाने उसकी नसोका रक्त ठडा कर दिया था। परिणामस्वरूप वह बुद्धिमानीके साथ कोई सगठन या साहसपूर्वक कायका खतरा उठा सकनेमे सर्वथा अयोग्य ही था। सतत परिश्रम करनेकी क्षमता उसमे न थी। कभी आवश्यकता पडनेपर हारके मुखमे पहुँचकर यी साहसपूर्ण वीरोचित दृढता दिखाकर मृत्युसे खेलते हुए विजय-श्री को छीन लाना, दाराके लिए सर्वथा एक अनहोनी वात थी। फौजी-सगठन और युद्धावश्यक व्यूह-रचना तो उसकी शक्तिके वाहर वाते थी। सच्चे जन्मजात सेनापतिके समान युद्धके समय शान्ति और पूर्ण विचार-बुद्धिसे उसकी विभिन्न गतियोका उपयुक्त रीतिसे सचलान करने का उसने कभी अभ्यास नही किया। युद्धकलासे अनजान इस नौसिखिया योद्धाको भाग्यवशात् सिंहासनके लिए होनेवाले युद्धमे औरगजेब जैसे चतुर सिद्धहस्त सेनानायकका सामना करना पडा।

२ शाहजहांकी बीमारी (१६५७) और उसके परिणाम स्वरूप साम्राज्यमें अव्यवस्था

६ सितम्बरको शाहजहा एकाएक दिल्लीमे बीमार पड गया। एक हफ्ते तक शाही हकीम उसकी चिकित्सा करते रहे, परन्तु उन्हे सफलता नही मिली। उसकी बीमारी बढती ही गई। नित्य लगने-

वाला शाही दरबार भी बन्द कर दिया गया। झरोखेमें बैठकर प्रजाको दर्शन देना भी बादशाहके लिए सम्भव नहीं था। अन्तमें एक हफ्ते के बाद हकीम बीमारीपर कुछ काबू पा सके। पर बादशाह-की शारीरिक दशामें बहुत ही थोडा सुधार हुआ था, इसलिए उसने आगरा जाकर अपनी प्यारी बेगमके मकबरेके पास ही मृत्यु-पर्यन्त शान्ति-पूर्वक जीवन व्यतीत करनेका निश्चय किया। तदनुसार २६ अक्तूबरको वह आगरा पहुँचा।

शाहजहाकी इस बीमारीके दिनोंमें दारा रात-दिन लगातार उसकी शय्याके पास बैठा उसकी देखभाल करता था। उसने बडी मिहनतसे बादशाहकी सेवा की थी। सिंहासन प्राप्त करनेके लिए उसने कोई भी आतुरता नहीं दिखाई थी। इस बीमारीके प्रार-म्भिक दिनोंमें जब शाहजहाँ जीवनसे निराश होकर परलोककी तैयारी करने लगा, तब राज्यके कुछ विश्वस्त दरबारियों और प्रधान अधिकारियोंको बुलाकर उसने उनके सामने अपनी अन्तिम इच्छा प्रगट की और हुक्म दिया कि वे उसी दिनसे दाराको बादशाह मानकर उसकी आज्ञा मानें। तथापि अपनी स्थिति सुदृढ बनानेके लिए दाराने राजसिंहासन ग्रहण नहीं किया, और वह अपने पिताके नामपर ही शासन-कार्य करता रहा। उसने औरंगजेबके विश्वासपात्र साथी मीरजुमलाको वजीरके पदसे हटा दिया और उसे, महाबत खाँ और अन्य अधिकारियोंको सेना सहित दक्षिणसे लौट-कर दरबारमें आनेकी आज्ञा दी।

आधे नवम्बर तक शाहजहाँ अच्छा होकर इस योग्य हो गया कि उन सब आवश्यक बातोंको, जो तब तक उसे नहीं बताई जाती थी, वह सुन सके। एक खबर यह थी कि शुजाने स्वयको बादशाह घोषित कर दिया था और वह बगालसे दिल्लीकी ओर बढा आ रहा था। शाहजहाँकी स्वीकृति प्राप्त कर २२ हजार सैनिकोंकी फौज अपने ज्येष्ठ पुत्र सुलेमानशिकोह और मिर्जा राजा जयसिंहकी अधीनतामें दाराने उसके विरुद्ध भेजी। शीघ्र ही इस प्रकार चिन्ता-

जनक समाचार गुजरातमे भी आए । वहाँ ५ दिसम्बरको मुरादने अपना राज्याभिषेक कर लिया और औरगजेबसे सधि करके उसको अपना साथी बनाया । इसलिए उसी माहके अन्त तक आगरासे मालवामे दो शाही सेनाएँ भेजी गई, एक औरगजेबको दक्षिणसे आगे आनेसे रोकनेके लिए और दूसरी गुजरातमे जाकर मुरादको वहाँसे निकाल भगानेके लिए । इनमे पहली सेना मारवाडके महाराजा जसवन्तसिंहके मातहत भेजी गई । मालवाके सूबेदार शायेस्ताखाको दरबारमे वापिस बुला लिया गया एव उसकी जगह वह मालवाका सूबेदार नियुक्त किया गया । कासिमखाँको गुजरातका शासक बना कर दूसरी सेनाका नायकत्व स्वीकार करनेके लिए प्रलोभन दिया गया था । शाहजहाने सरदारोंसे विनयपूर्वक कह दिया था कि वे शाहजादोको जानसे न मारें और बिलकुल अनिवार्य न होने तक उनसे कोई प्राणघातक युद्ध भी न करे । पहले तो वे उन शाहजादो को न्यायपूर्वक समझाकर अपने अपने प्रान्तोको लौट जाने दें अन्यथा उन्हें केवल अपनी शक्तिका डर दिखावें । केवल अनिवार्य परिस्थितिमे युद्ध करने की उन्हें ताकीद की गई ।

शाहजहाँकी बीमारीमे दारा अपने विश्वासी एक-दो मन्त्रियोको छोडकर और किसीको भी बादशाह तक नही जाने जाने देता था । पत्र-वाहकोपर कडी नजर रखता था, और अपने भाइयोंके पास बगाल, गुजरात व दक्षिण जानेवाले दूतो और पत्रोको भी उसने रोक दिया था । अपने भाइयोके उन दूतोपर, जो दरबारमे रहते थे, वह नजर रखता था जिससे कि वे अपने मालिकोको वहाका हाल न भेज सकें । पर इन सावधानियोंसे और भी अधिक हानि हुई । दूर-स्थित शाहजादो और प्रजाने इस प्रकार समाचार बन्द हो जाने-के कारणका यही अनुमान लगाया कि बादशाह मर चुका है । परिणाम-स्वरूप मुगल उत्तराधिकारके लिए एकबारगी अशान्ति-अव्यवस्था फैल गई ।

अपने हाथोसे लिखे हुए और उसी की मोहरवाले शाहजहाके पत्र

शाहजादोंके पास पहुँच गए थे, और उनके स्वस्थ हो जानेका निश्चित समाचार उन्हें मालूम हो चुका था, फिर भी वे यही कहते रहे कि वे पत्र शाहजहाँकी हस्तलिपिकी नकल करनेमें सिद्धहस्त दाराने ही लिखे थे, और तब शाही मुहर भी उसके अधिकारमें आ चुकी होगी। इसलिए तीनों छोटे भाइयोंने बादशाहको यह निश्चय कराते हुए पत्र लिखे कि उड़ती हुई अफवाहोंको सुन-सुनकर उनके हृदय विचलित हो उठे हैं, अतएव वे अपनी आखोंसे पिताके दर्शन कर उसकी वास्तविक स्थिति जाननेके लिए आगरा आ रहे हैं।

३ गुजरात में मुरादबख्शका स्वयंको बादशाह घोषित करना

शाहजहांका सबसे छोटा पुत्र मुहम्मद मुरादबख्श शाही कुटुम्बमें सबसे नीच स्वभाववाला व्यक्ति था। अपनी योग्यता साबित करनेका अवसर उसे बल्खमें, दक्षिणमें और गुजरातमें दिया गया था, परन्तु हर जगह वह विफल ही रहा। वह मूर्ख, विलासी और क्रोधी था और अवस्था बढ़नेपर भी उसके चरित्रमें कोई भी सुधार नहीं हुआ था। न तो उसने कभी अपनी वासनाओं को दबाना सीखा था और न उसे कामकाजमें व्यस्त रहनेका अभ्यास ही था। सैन्य-सचालनमें योग्यताकी कमीकी पूर्ति उसकी शारीरिक शक्ति नहीं कर पाती थी।

शाहज़ादे मुरादकी इस अयोग्यताको देखकर शाहजहांने इसकी पूर्तिके लिए अली नकी नामक एक बहुत ही योग्य और ईमानदार अफसरको उसका माल-हाकिम तथा प्रधान सलाहकार बनाकर भेजा था। शाहजादेके अनेकों अनुगृहीत साथी और चापलूस दरबारी उसके सावधानीपूर्ण सच्चे शासनके कारण अली नकीके दुश्मन बन गए। शीघ्र ही मुरादके कृपापात्र खोजाने उसके विरुद्ध एक षड्यन्त्र रचा। एक हस्तलिखित जाली पत्र लिखा, जिसमें दाराके पक्षमें सहायता करनेका वचन दिया गया था, उसपर अली नकीकी मुहर लगाकर वह पत्र एक दूतको दिया गया, जिसने चालाकीसे अपने आपको

मुरादके मार्ग-रक्षकोंके हाथों कैद करवा दिया और पत्रके असली लेखकोंकी बात गुप्त रखी गई। सूर्योदयसे कुछ पहले ही वह छीना हुआ जाली पत्र मुरादके पास लाया गया। उस समय वह अपने विलास-उपवनमे शराबके नशेमे झूम रहा था। उसकी रात्रि-क्रीडाओं की थकान भी तब तक दूर न हुई थी। अतएव पत्र देखते ही आग-बबूला हो उठा और शीघ्र ही अली नकीको अपने सामने पेश करने की आज्ञा दी। अत्यधिक क्रोधसे कांपते हुए उसने अली नकीको भाले से मार डाला और गरजते हुए बोला "अरे नीच ! मेरे इतने उपकारोके बदलेमे भी तूने विद्रोही होकर धोखा ही दिया।"

मुराद इस समय एक बडी सेना संगठन कर रहा था, जिसके लिए उसे धनकी अत्यधिक आवश्यकता थी। एव उसने शाहबाजखां नामक खोजाको शस्त्रोंसे सुसज्जित ६,००० योद्धाओंके साथ सूरतके धनाढ्य बन्दरगाहसे कर वसूल करनेके लिए भेजा। रक्षाके साधनासे रहित उस शहरको शीघ्र ही कब्जेमे करके शाहबाजखानेउसे लूटा। कुछ डच कारीगरोकी सहायतासे शाहबाजखाने सूरतके किलेकी दीवारोके नीचे खाइयां खुदवाई और उनमेसे एकमे बारूद भरकर उस किले को उडानेकी भी कोशिश की। अन्तमे २० दिसम्बर १६५७ ई० को यह किला उसके अधिकारमे आ गया। इस किलेकी सारी युद्ध सामग्री और वहांका खजाना मुरादके हाथ लग गए, और साथ ही वहाके दो धनाढ्य सौदागरोंसे जबरन ५ लाख रुपये भी कर्ज मे लिये।

उधर शाहजहांकी खतरनाक बीमारीकी खबर सुननेके बाद ही विश्वस्त दूतों द्वारा मुराद और औरंगजेबमे गुप्त पत्र व्यवहार भी आरंभ हो गया था। दाराके विरुद्ध सहायता करनेके लिए उन्होंने शुजाको भी आमन्त्रित किया, पर शुजाके अत्यधिक दूर होनेके कारण उनमे कोई निश्चित या व्यवहारिक आयोजन नही बन पाया। किन्तु मुराद और औरंजेबके बीच एक संगठित षड्यन्त्रकी पूरी योजना बन गई। सूरतकी इस सफलताके बाद मुरादने मुरव्वजुद्दीनके नामसे अपने आपको बादशाह घोषित कर दिया (५ दिसम्बर)।

मुगल साम्राज्यके बटवारे-सम्बन्धी एक सन्धि औरगज़ेबने तैयार की और कुरानको साक्षी कर उसका पालन करनेका वचन देते हुए उसे मुरादके पास भेजी, जिसकी शर्तें यो थी —

१ पजाब, अफगानिस्तान कश्मीर और सिन्ध मुरादके अधिकार मे रहेगे और इनपर वह एक स्वतन्त्र बादशाहके रूपमे शासन करेगा। मुगल साम्राज्यका शेष भाग औरगजेब के अधिकारमे रहेगा।

२ युद्धमे प्राप्त सामग्रीका एक तिहाई हिस्सा मुरादको मिलेगा और दो तिहाई भाग औरगज़ेबको दिया जावेगा। *

मुराद पूरी तैयारियाँ करके अहमदाबादमे २५ फरवरी १६५८ई० को रवाना हुआ और मालवामे देपालपुरके पास १४ अप्रेलको औरगज़ेबकी सेनाके साथ जा मिला।

४ गृह-युद्धसे पहिले औरगज़ेबकी चिंताएँ और नीति

बीजापुरकी युद्ध-समाप्तिसे (४ अक्तूबर १६५७ ई०) लेकर सिंहासन-प्राप्तिके लिए हिन्दुस्तानकी ओर रवाना होने (२५ जनवरी-१६५८ ई०) तकका समय औरगजेबने अनेक चिन्ताओ और सकटो मे ही काटा। घटनाएँ बडी शीघ्रतापूर्वक घट रही थी, और उन्हे रोकना या किसी भी प्रकार टालना उसके लिए असभव था। नित्य-प्रति उसकी तत्कालीन स्थिति सकटपूर्ण होती जा रही थी और भविष्य सर्वथा अधकारपूर्ण था। किन्तु इस समय जिन-जिन छोटी-बडी कठिनाइयोपर उसने विजय प्राप्त की वे सब हमे उसकी धीरता, चतुराई और सैन्य-प्रबन्धकी उसकी क्षमता और नीति-कुशलताकी प्रशसा करनेके लिए बाध्य कर देती हैं।

---

* शर्तें स्वय औरगज़ेबके पत्रोंमे (आदाब इ आलमगीरी, पृ०७८), उसके हाकिम आकिलखाँ रज़ीके इतिहासमे (पृ० २५) और 'तज़कीरात-उस-सलातीन-उस् चगताइया' मे स्पष्टरूपसे दी हैं। इनसे बरनियरकी उस कल्पित कहानीका पूरी तरह निराकरण होता है, जिसके अनुसार दाराको हरानेकेबाद मुरादको पूरा राज्य देकर स्वय फकीर बनने तथा मक्का जानेका औरगजेबने वादा किया था।

चारो ओर यह समाचार फैल गया था कि सन्धि करने और अनावश्यक सेनाको दक्षिणसे वापिस बुलानेके लिए बादशाहने हुक्म दिया है। इस प्रकार अपने दीर्घ-कालीन और इस खर्चीले बीजापुर युद्धसे कोई भी लाभ प्राप्त करनेकी औरंगजेबकी सारी संभावनाएँ दुर्भाग्यवश देखती आँखो नष्ट हो रही थी।

बीजापुरसे संधि होनेकी आशाएँ किस प्रकार दिन-दिन कम होती गई, किस प्रकार पिछले वादेके अनुसार राज्यभाग और धन-प्राप्तिके लिए उसने अनेक प्रयत्न किए, बीजापुर द्वारा स्वीकार कराई हुई संधिकी कडी शर्तोंको किस प्रकार एकके बाद दूसरीको वह ढीला करता गया, और अन्तमे बीजापुरसे कुछ भी प्राप्ति कर सकनेकी आशा खोकर, किस प्रकार दक्षिणको एकदम छोड उसने अपना सारा ध्यान और साधनोको उत्तर भारतमे अपनी चालोकी सफलताके लिए गाल दिया, आदि बातो की पूरी कहानी 'आदाब-इ-आलमगीरी' मे संग्रहीत औरंगजेबके पत्रो द्वारा स्पष्ट हो जाती है।

कल्याणीसे ४ अक्तूबर १६५७ई०को चलकर औरंगजेब ५ दिन मे ही बीदर पहुँच गया। इस किलेकी मरम्मत की गई थी तथा उसमे आवश्यक सामग्री और सेना का ठीक-ठीक प्रबन्ध किया गया था। उसी माहकी १८ तारीखको वहाँसे चलकर वह १७ नवम्बरको औरंगाबाद पहुँचा। इससे पहले ही २८ अक्तूबरके आसपास औरंगजेबने एक बहुत ही आवश्यक कार्य कर लिया था। उसने सेना भेजकर नर्मदा पार करने-सारे स्थानोपर अपना अधिकार कर लिया और यो दक्षिण के शाही हाकिमो और दारामे होनेवाले सारे पत्र-व्यवहारको रोक दिया।

आरम्भसे ही औरंगजेबने तय कर रखा था कि जब तक शाह-जहाकी मृत्युका निश्चय नही हो जावे तब तक वह विद्रोह का झंडा न उठावेगा, परन्तु शीघ्रताके साथ घटनेवाली इन घटनाओने उसे दूसरा ही रास्ता पकडनेको बाध्य किया। दक्षिण सम्बन्धी दाराकी नीति अब पूरी तौरसे मालूम हो चुकी थी। अशक्त शाहजहांको उसने

बाध्य किया कि मुरादको गुजरातकी सूबेदारीसे हटाकर वह उसे बरारका सूबेदार बनावे। इस प्रकार औरगजेबसे लेकर बरार मुराद को दिया गया, ताकि दोनो भाइयोमे आपसी झगडा बना रहे। दारा-ने दिसम्बरके अन्त तक अपने इन दोनो भाइयोके विरोधमे दो सेनाएँ दक्षिणको भेजीं तथा औरगजेबके सशक्त सहायक शायेस्ताखांको उसके मालवा प्रान्तसे वापस दरबारमे बुलवा लिया। इसी समय मीरजुमलाको भी शाही फरमान मिला कि वह औरगजेबको छोडकर दिल्ली चला जावे। इस फरमानको न मानना ही विद्रोहके समान होगा। औरगजेबके अन्य अफसरोको भी इसी प्रकारके कई पत्र मिले।

५ सिंहासन-प्राप्ति के लिए औरगजेब की तैयारियां

औरगजेबने देखा कि बादशाह होनेकी आशा पूरी करने या केवल स्वतन्त्रतापूर्वक बने रहनेके लिए प्रयत्न करनेका समय अतमे अब आ ही गया है। जनवरी १६५८के लगभग उसने अपना सारा कार्यक्रम निश्चित कर लिया और उसीके अनुसार शीघ्रतापूर्वक कदम उठाने लगा। सबसे पहले झूठ-मूठ ही झगडा करके उसने मीरजुमलाको दौलताबादके किलेमे कैद कर दिया और बादशाहके नामसे उसकी सारी सेना तथा जायदाद जब्त कर ली। प्रगट रूपमे अपनी इस सारी कार्यवाहीका कारण उसने यही बताया कि मीरजुमला दक्षिणके दोनो सुलतानोसे मिलकर षड्यन्त्र कर रहा था। फिर उसने शाहजहाँ और उसके नये वजीर जाफरखांको यह लिखा कि बादशाहके विषय मे अनेक अफवाहोको सुनकर उसका पितृ-स्नेही हृदय बहुत दु खी हुआ तथा आज्ञाकारी व कर्तव्यनिष्ठ पुत्रके नाते अपने बीमार पिताकी कुशल पूछनेके लिए वह स्वय आगरा आ रहा था। साथ ही उसने यह प्रार्थना भी की कि साम्राज्यको आतक, विद्रोह और अराजकतासे बचानेके लिए बादशाहको दाराके प्रभावसे मुक्त किया जावे।

युद्ध-करका शेषाश शीघ्र ही दे देनेके लिए कुतुबशाहको पत्र लिखे गए। कोलकुण्डा-स्थित मुगल राजदूतको उसके साथ सद्व्यवहार

करनेकी हिदायत की गई तथा उसे सतुष्ट रखकर औरगजेबकी गैर हाजरीके समय दक्षिणमे गडबड न होने देनेका समुचित प्रबध करने की आज्ञा दी गई। मित्रताके नाते बहुत-से उपहार बीजापुरकी राजमाता (बडी साहिबा) को भेजे गए। जो धन देनेका वादा उससे पहले किया जा चुका था उसे भेज देने तथा साथ ही उसकी गैरहाजरी मे बीजापुरी उपद्रव न कर शान्ति बनाए रखें, इसके लिए प्रार्थना की गई।

गुप्त रूपमे राजधानीके दरबारियो और प्रातोके (विशेष कर मालवाके) उच्च पदाधिकारियोंसे मिलकर औरगजेब बडी तत्परता-के साथ षड्यन्त्र रच रहा था। शाहजहाके चारो पुत्रोमे अपनी योग्यता और अनुभवके लिए औरगजेब ही सबसे अधिक प्रसिद्ध था। सभी स्वार्थी सरदार और बडे अधिकारी उसे भारतका भावी बादशाह मानते थे। इसलिए भविष्यमे अपनी रक्षाके लिए सभी उसकी मदद करनेको उत्सुक रहते थे, अधिक नही तो गुप्त रूपसे उसको सहायता देनेका ही पूरा-पूरा विश्वास दिलाते थे।

नये सैनिक लगातार भरती किए जा रहे थे। गोल-बारूद बनाने के लिए गधक, सीसा, शोरा, आदि बहुत अधिक मात्रामे खरीदा गया, और दिल्लीपर चढाई करनेके लिए बारूद तथा तोडे, आदि अन्य आवश्यक चीजें दक्षिणी किलोसे मगवा ली गईं। इस प्रकार बढते-बढते औरगजेबकी यह सेना चुने हुए ३०,००० सिपाहियोकी हो गई। इसके सिवाय उसके साथ मीरजुमलाका बहुत ही सुशिक्षित तोपखाना भी था, जिसमे अग्रेज और फरासीसी तोपची नियुक्त थे।

सेना और सामग्रीके साथ ही साथ औरगजेबके पास सुयोग्य अधिकारियोका भी एक बहुत बडा दल था, जिससे उसका पक्ष बहुत ही सुदृढ हो गया। दक्षिणकी सूबेदारी करते समय उसने अपने पास बहुत ही योग्य कर्मचारियोका एक गुट्ट बना लिया जो उसके पक्के सहायक थे। कुछ तो कृतज्ञतावश ही उसके साथ थे, किन्तु प्राय अन्य सबके हृदयोमे औरगजेबके प्रति अगाध भक्ति और श्रद्धा थी।

सिंहासन-प्राप्तिके लिए प्रयत्न करनेके इरादेसे औरंगजेब ५ फरवरी १६५८ ई० को औरंगाबादसे चल पड़ा। १८ वी तारीखको वह बुरहानपुर पहुँचा। सैन्य-संगठनके हेतु तथा अन्य तैयारियाँ करनेके लिए यहाँ वह एक माह तक ठहरा रहा। मार्च २०को बुरहानपुरसे चलकर उसने अपने ससुर शाहनवाजखाँको पकड़कर कैद कर लिया, क्योंकि वह शाहजहाँके प्रति अपनी स्वामिभक्ति छोड़नेको तैयार न था। बिना किसी विरोधके उसने ३ अप्रेलको अकबरपुरके घाटेपर नर्मदा नदी पार की। इस समय उत्तरमें उज्जैनकी ओर जाते हुए १३ अप्रेल-को उज्जैनसे कोई २६ मील दक्षिणमें देपालपुरके पास उसे पता चला कि मुराद भी उससे पश्चिममें कुछ ही मीलकी दूरीपर आ पहुँचा था। दूसरे दिन दोनों भाइयोंकी सेनाएँ देपालपुरके तालावके पास मिल गईं। उनसे एक ही दिनकी यात्राकी दूरीपर सेनाके साथ जसवन्त-सिंह डटा हुआ था। सन्ध्या होते-होते दोनों शाहजादोंने चंबल नदी-की सहायक नदी गंभीरके पश्चिमी तटपर स्थित धरमत गाँवमें (उज्जैन से १४ मील दक्षिण-पश्चिममें) पड़ाव डाला। दूसरे दिन मुगल-सिंहासनके उत्तराधिकारके लिए होनेवाले युद्धका प्रारम्भ हुआ।

भाग १

अध्याय ४

सिहासन के लिए युद्ध; औरंगजेब की विजय

१ धरमत में जसवन्तसिह, उनकी कठिनाइयाँ

खरईरी, १६५८ ई० के अन्तिम दिनोंमें जसवन्त सिंह अपनी सेना सहित उज्जैन पहुचा। परन्तु औरगजेबका क्या इरादा है? वह किस राहसे आगे बढ रहा है? उसकी सेना कहाँ तक आ गई है? आदि बातोंका उसे कुछ भी पता नही था। औरगजेबकी चढाईकी सूचना जब उसे मिली, तब उसने सुना कि वह शाहज़ादा मालवामें आ पहुँचा था एव बडी ही तेज़ीके साथ वह उज्जैनकी ओर बढ रहा था।

यह समाचार सुनकर जसवन्तसिंह बहुत ही घबडा गया, और उज्जैनसे १४ मील दक्षिण-पश्चिममें धरमतके सामने ही पडाव डाला तथा दक्षिणसे आनेवाले शत्रुका मार्ग रोकनेको तत्पर हुआ। इसी समय उसे एक और चिन्तापूर्ण समाचार मिला, उसने सुना कि मुराद भी औरगजेबके साथ मिल गया था (१४ अप्रेल, तथा दोनो उससे एक ही दिनकी यात्राकी दूरीपर आ गए थे।

जसवन्तसिह इसी उम्मीदसे मालवा आया था कि उनके विरुद्ध शाही सेनाके आनेका समाचार सुनकर ही ये विद्रोही शाहजादे वापिस अपने प्रान्तोंको लौट जावेंगे। अब उसने स्पष्ट देखा कि उसके

शत्रुओंने आगे बढ़नेका पूरा-पूरा निश्चय कर लिया था और वे किसी भी हालतमें युद्ध-मार्गसे पीछे नहीं हटेंगे।

शाहजहांकी यह आज्ञा कि अंतमें विवश होकर ही इन शाहजादोंसे लड़ा जाय, जसवन्तसिंहके लिए एक बड़ी बाधा थी। इधर औरंगज़ेब सोच-विचार कर अपनी बुद्धिके अनुसार ही अपनी नीति निश्चित करता था और अपने निर्णयके अनुसार चलता था, उधर बेचारा जसवन्तसिंह बड़ी ही असमंजसमें पड़ा हुआ था। अब शत्रु क्या करेगा यह जाने बिना वह अपनी नीति निश्चित नहीं कर सकता था।

उसकी सेनामें अनेकों परस्पर-विरोधी दल भी थे। राजपूतोंकी विभिन्न जातियोंके सैनिकोंमें खानदानी वैमनस्यके कारण बहुधा कोई भी एकता नहीं पाई जाती थी। प्रत्येकको अपनी जातिके गौरव और महत्त्वका अभिमान रहता था, जिससे उनमें आपसी वैमनस्य बना रहता था। साथ ही हिन्दू और मुसलमान सेनानायकोंमें भी कोई आपसी मेल नहीं था। धरमतमें एकत्रित सारी फौज भी किसी एक ही सेनानायककी अधीनतामें न थी। कासिमखांको जसवन्तसिंहकी सहायता करनेका ही हुक्म था, उसके आश्रित होकर कार्य करनेका आदेशउसे नहीमिला था। साथ हीअनेक मुसलमान अधिकारी गुप्त रूपसे औरंगज़ेबके पक्षमें थे। कासिमखां और उसकी सेना युद्धके खतरेसे सदैव दूर ही रहे, जिससे इस युद्ध का पूरा भार राजपूतोंपर ही पड़ा।

अन्तत सेनानायककी दृष्टिसे भी जसवन्तसिंह कभी औरंगज़ेबकी बराबरी नहीं कर सकता था। जसन्तसिंहकी दोषपूर्ण योजनाओं और युद्ध-भूमिमे उसके सेना-सचालनसे उसकी अनुभव-हीनता और तुनकमिज़ाजी ही प्रमाणित होती है। उसने युद्धके लिए ठीक स्थान नहीं चुना। एक छोटेसे मैदानमे अपनी सेनाको इस तरह एकत्रित कर रखा था कि उसके घुड़सवार न तो स्वतन्त्रता-पूर्वक अपनी चतुराई ही दिखा सकते थे और न तीव्र गतिसे वे शत्रुपर आक्रमण ही कर पाते थे। जिन टुकड़ियोंकी सहायताकी आवशश्कता

रहती थी, उनकी भी वह समयपर सहायता नही कर पाता था। एक बार युद्धारम्भ होनेके बाद अपनी सेनापर वह आवश्यक नियन्त्रण भी नही रखसका। ऐसा प्रतीत होता था कि वह एक छोटी टुकडीका ही सचालक-मात्र था। उसने आवश्यकतानुसार अपने तोपखानेका उपयोग न करनेकी भी भयकर गलती की। इसके विपरीत जरूरत पडनेपर औरगजेबके फारासीसी औ अग्रेज तोपचियोने अपनी तोपोके मुंह फेरकर राजपूतोपर ऐसी भयकर गोलाबारी की कि उससे वे सारे मारे गए। वास्तवमें इस युद्धमें तलवारोने तोपोका सामना किया था, तोपखानेने सहज ही घुडसवारोपर विजय प्राप्त कर ली।

२ धरमत कायुद्ध

यद्यपि औरगजेबकी सेनाका सगठन और उसका तोपखाना अधिक श्रेष्ठ था, फिर भी दोनो सेनाओकी सख्या प्राय समान ही थी, प्रत्येक सेना मे कोई ३५,००० सैनिक थे।

१५ अप्रेलको सूर्योदयके दो घटे बाद दोनो विरोधी दलोका आमना-सामना हुआ। अपना नियमित सगठन कायम रखते हुए औरगजेबकी सेना शाही सेनाकी ओर आगे बढी। राजपूतोके दल एक ही स्थानपर एकत्रित थे। औरगजेबने उनपर गोलियाँ चलाना शुरू कर दिया। स्वतन्त्रतापूवक हिलने-डुलनेके लिए राजपूतोको पर्याप्त जगह भी नही थी, एव प्रत्येक क्षण अनेको राजपूत गोलियोके शिकार होने लगे। इसी समय उनकी सेनाका अग्र भाग युद्धके लिए आगे बढा। इसका सचालन मुकुन्दसिंह हाडा, दयालदास झाला, अर्जुनसिंह गौड, सुजानसिंह सीसोदिया, आदि वीर कर रहे थे तथा उसमें उन्हीकी जातियोके चुने हुए वीर सवार थे। वे अपनी सारी सैनिक योजनाओको भूलकर "राम! राम!" के जयनादके साथ शत्रुओपर शेरोकी तरह टूट पडे। राजपूतोके आक्रमणका पूरा आवेग पहिले औरगजेबके तोपखानेको ही झेलना पडा। जानको हथेलीपर रखकर राजपूत तोपखानेपर टूट पडे। तोपखानेका

प्रधान सरदार मुर्शिदकुलीखा वीरतापूर्वक लडता हुआ मारा गया, तथा उसके साथी सैनिक घबरा उठे। परन्तु तोपोंकी कोई हानि नही हुई। तोपखानेम हारे हुए ये आक्रमणकारी औरगजेबकी सेनाके अगले भागपर झपटे। यहा कुछ समयके लिए हाथोंहाथ घमासान युद्ध हुआ। राजपूतोका यह दल इस प्रारम्भिक सफलतासे उन्मत्त आगे बढता हुआ औरगजेबकी सेनाके मध्य तक घुस गया। उस सारे दिनके युद्धम यह समय ही सबसे अधिक सकटपूर्ण था। अगर राजपूतोके इस आक्रमणका तब न रोका जाता तो औरगजेबको सफलता नही प्राप्त होती।

परन्तु शाहजादेकी सेनाके इस भागमें बहुत ही चुने हुए वीर अनुभवी सैनिक थे। उनके पैर किसी प्रकार भी नही उखडे। राजपूतोका आवेगपूर्ण आक्रमण उनके चारो ओर मडराता ही रह गया। उस दिनका सबसे भयकर और निर्णयात्मक युद्ध यही हुआ। औरगजेबकी सेनाके इस सुसगठित एव बहुत बडे भागका सामना करनेमें ही राजपूतोकी सारी शक्ति नष्ट हो गई।

कासिमखाके अधीन मुगल सेनाने जसवन्तसिंहकी कोई सहायता नही की। जसवन्तसिंहकी सेनाके इस आक्रमणमें उन्होने हाथ नही बटाया। राजपूतोके आक्रमणके इस आकस्मिक तूफान में पडकर औरगजेबकी जो सेना अलग-अलग हो गई थी, वह फिरसे राजपूतोके पीछे सम्मिलित हो गई, जिससे राजपूतोका वापस लौटना असभव हो गया। तब तक औरगजेब ने परिस्थितिको अच्छी तरह समझ लिया था, वह स्वय सेनाके इस मध्य भागके साथ आगेकी ओर बढा। उसके साथ ही मध्य सेनाके दाए और बाए पक्षोको लेकर शेख मीर और सफशिकनखाने अपने सामने औरगजेबकी सेनाके अगले भागसे लडते हुए राजपूतो को दोनो ओरसे जा घेरा। आक्रमणमे लगे हुए सारे राजपूत सरदार एक-एक कर मारे गए। अपनी मुख्य फौजसे राजपूतोके इस दलका कोई भी लगाव नही रहा था। उनपर सामने और दाए-बाएसे भयकर आक्रमण हुए। धीरे-धीरे उनकी

सख्या बहुत कम रह गई । बडी ही अविश्वसनीय वीरताके साथ लडते हुए वे सब युद्ध-भूमिमे काम आए ।

तब तक सारे युद्ध-क्षेत्रमे सर्वत्र लडाई छिड चुकी थी । मुकुन्दसिंहके ये राजपूत साथी जब दूसरी ओर बढ गये, तब उनके इस हमलेके प्रभावसे सम्हलकर औरगजेबके तोपचियोने अपने तोपोको ऊची पहाडीपर पुन जमा दिया, एव वे जसवन्तसिंहकी सेनाके मध्य भागपर जोरोसे गोलाबारी करने लगे ।

शाही फौज एक बडे सकडे मैदानमे सिमट गई थी । इस मैदानके दोनो बाजुओपर गहरी खाइया तथा दलदल थी, जिससे शाही सैनिक स्वतन्त्रतापूर्वक घूम नही सकते थे । अब अपनी वीर सेनाके हरोलको यो नष्ट होते, तथा औरगजेबको विजयपूर्वक आगे बढते देख, जसवन्तसिंहकी प्रधान सेनाके दाए बाजूसे रायसिह सिसोदिया, सुजानसिंह बुन्देला और अमरसिंह चन्द्रावत अपने सैनिको सहित युद्ध-भूमिसे भाग खडे हुए तथा अपने-अपने घरोको लौट गए ।

उसी समय मुरादने अपनी सेना लेकर जसवन्तके पडावपर आक्रमण किया । यह पडाव युद्ध-भूमिके पास ही था । उसके अनेको रक्षकोको मार भगाया तथा उनमेंसे देवीसिंह बुदेलाने मुरादके प्रति आत्मसमर्पण कर उसकी शरण ली । फिर वहा से आगे बढते हुए युद्ध-भूमिमें पुन आकर उसने शाही फौजकी बाईं बाजूपर हमला किया । थोडी ही देरमें शाही फौजके इस भागकासेनापति इफ्तारखा मारा गया, और वहा की सेनाका सफाया हो गया ।

३ जसवन्तसिंह और शाही सेना का युद्ध-भूमि छोडना

रायसिहके भागनेसे जसवन्तकी सेनाकी दाहिनी बाजू बिलकुल अरक्षित रह गई थी । इफ्तारखाके मारे जानेसे अब उसकी बाईं बगल भी निबल हो गई । इस समय तक उसकी प्रधान सेना भी भागने लगी थी । कासिमखाके मातहत मुसलमान सेना अभी तक युद्धसे दूर ही थी, औरगजेबको सेना सहित बढते देख उसने भी भागना

आरभ कर दिया। अब जसवन्तकी बची हुई सेनापर सामनेसे औरंगजेब, बाई ओरसे मुराद, और दाहिनेसे सफशिकनखा हुकार करती हुई भयकर बाढके समान घेरते हुए तेजीसे बढ रहे थे। स्वय महाराजा सजवन्तसिहको भी दो घाव लग चुके थे और शत्रुके बढते हुए इस प्रवाहमें वीर-गति पानेके लिए वह अपना घोडा बढानेको उत्सुक हो उठा। पर उसके मन्त्रियो और सेनापतियोने उसकी लगाम थामकर उसे युद्ध-भूमिमें जोधपुरके लिए रवाना होनेको बाध्य किया। उसे लेकर वे जोधपुरकी ओर चले। शाही सेना की हार तब तक सुनिश्चित तथा सवथा सुस्पष्ट हो गई थी। जसवन्तसिहके युद्ध-क्षेत्रसे चल देनेके बाद रतनसिह राठौड शाही सेनाका सेनापति बना और वह इस युद्धको चलाए गया, किन्तु अब तो यह युद्ध शत्रुको उलझाए रखकर उन्हें रणक्षेत्र छोडकर जानेवालोका पीछा न करने देने तथा यो उनके पृष्ठ भागकी रक्षाका प्रयत्न-मात्र बन गया था। शाही सेनामें भगदड मच चुकी थी एव इस हारी हुई बाजीको पलट देना रतनसिह और उसके उन मुट्ठी-भर वीर राजपूतोके लिए कदापि सभव नही था। कुछ समय तक वीरतापूर्वक लडते रहनेके बाद अन्तमें रतनसिह भी खेत रहा, और उसके साथ ही शाही सेनाकी ओरका रहा सहा विरोध भी समाप्त हो गया। किन्तु भागती हुई शाहीसेनाका किसीने पीछा नही किया। दोनो ही पक्ष युद्धमें पूरी तरह थक चुके थे। जीतने वालोके सामने विजयमें प्राप्त लूटका सारा माल प्रस्तुत ही था। विजयी शाहजादोने दोनो शाही सेनापतियोके पडावपर अपना अधिकार कर लिया। इनके साथ ही सारी तोप, तम्बू, हाथी, खजाना, आदि सब-कुछ उनके हाथ लगा। सैनिकोने भी शाही फौजके सिपाहियोका सारा सामान लूट लिया।*

---

* फ़ारसी भाषामें प्राप्य आधार ग्रन्थो में दिए गए वर्णनो के आधार पर ही धरमत के युद्ध का वृतान्त मैंने पहिले लिखा था। इस युद्ध-का विवरण हमे दो समकालीन हिन्दी तथा राजस्थानी काव्य-ग्रन्थो में भी मिलता है—खड़िया जगाकृत "वचनिका" (१६५८) तथा कुम्भकर्ण

लूटमें प्राप्त इस सारे माल-मतेकी अपेक्षा युद्धमें प्राप्त विजयके फलस्वरूप मिलनेवाला यश ही औरंगजेबके लिए अधिक महत्त्वपूर्ण था। उसकी भावी सफलताके लिए धरमतका यह युद्ध एक शुभ सगुन बन गया। एक ही हाथमें उसने ऊंचे चढे हुए दाराको अपनी बराबरीका बना डाला और कुछ हद तक अपनी विजय द्वारा औरंगजेब ने उसकी हीनता भी सिद्ध कर दी। सशयमें पड़े हुए लोगोंकी हिचकिचाहटका अब अन्त हो गया। चारों भाइयोंमे कौन भाग्य-

---

कृत "रतन रासो" (१६७५ ई०)। जसवन्तसिंह का चचेरा भाई, रतलाम का शासक रतनसिंह राठौर भी इस युद्ध के समय शाही सेना-के साथ था एवं इस युद्ध में वह काम आया। रतनसिंह राठौर ने इस युद्ध में क्या किया, उसने किस प्रकार युद्ध किया तथा वह किस प्रकार अन्त में वीरता पूर्वक लड़ता हुआ मारा गया, इन्ही बातों का समकालीन विवरण हमें इन दोनों काव्य-ग्रन्थों में मिलता है। इन दो ग्रथो में दी गई बातो के आधार पर मेरे पहिले के विवरण में यत्र-तत्र कुछ परिवर्तन किया जाना आवश्यक हो गया था। 'आलमगीर-नामे' के आधार पर अब तक यह विश्वास किया जाता था कि रतनसिंह राठौर भी प्रारम्भिक आक्रमण में मुकुन्दसिंह हाड़ा के साथ था और तभी जूझ मरा, किन्तु इन ग्रन्थो से ज्ञात होता है कि रतनसिंह मुकुन्दसिंह हाडा के साथ तब नहीं गया था। दूसरे, युद्ध-क्षेत्र से रवाना होते समय बाकी रही शाही सेना के सचालन का भार जसवन्तसिंह ने रतनसिंह को सौंपा था। जसवन्तसिंह के रवाना होने के बाद भी रतनसिंह ने वीरता-पूर्वक शाहजादो की सेना का सामना किया, और वह तथा उसके सारे साथी युद्ध करते हुए खेत रहे। इस युद्ध में रतनसिंह के कोई ८० घाव लगे थे। यो जसवन्तसिंह के रवाना होने के बाद भी कुछ समय तक युद्ध चलता रहा तथा रतनसिंह और उसके साथियो के मारे जाने पर ही उसका अन्त हुआ। इन काव्य-ग्रन्थो के आधार पर महाराजकुमार डा० रघुवीरसिंह द्वारा सुझाए गए इस युद्ध-सम्बन्धी इन दो सशोधनो को उचित मानकर यहाँ उसका यह विवरण लिखते समय मैंने उन्हें पूर्णतया स्वीकार किया है। इस विषयक विशद विवेचन के लिए देखो—डा० रघु-वीरसिंह कृत 'रतलाम का प्रथम राज्य' (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली)।

लक्ष्मीका दुलारा है, यह जाननेमें अब उन्हें कठिनाई नही होती थी ।

जैसे ही जसवन्तसिंह और कासिमखाने पीठ फेरी वैसे ही औरंगजेबकी सेनाने जय-घोष किया । औरंगजेब धरतीपर उतर पड़ा, और वही रणभूमिमे घुटने टेककर बैठ गया, तथा हाथ जोड़कर उसने विजय प्रदान करनेवाले उस परमपिताको धन्यवाद दिया ।

इस युद्धमे शाही फौजके कोई ६ हजार सैनिक काम आए । इस हानिमे अधिकांश सख्या राजपूतोकी ही थी । राजस्थानकी हर एक राजपूत जातिके वीरोने इस प्रकार युद्धमे जान देकर अपनी स्वामिभक्ति दिखाई तथा अपना वीरोचित कर्तव्य निबाहा । रतलाम, सीतामऊ और सैलानाके राजघरानोके आदि-पुरुष, रतनसिंह राठौड़की स्मृतिमे उसके वंशजोने युद्ध-भूमिमे ही जहाँ उसके शवकी दाह-क्रिया की गई थी, वहाँ संगमरमरका एक सुन्दर स्मारक बनवाया ।

४ औरंगजेब का आगरा की ओर बढना

विजयके दूसरे दिन दोनो शाहजादे उज्जैन पहुचे । वहासे चलकर २१ मार्चको वे ग्वालियर आए । यहाँपर उन्हे मालूम हुआ कि दारा भी एक बड़ी सेनाके साथ धौलपुर आ गया है, तथा उसने चम्बल नदीके सारे सुज्ञात तथा कामलायक घाटोको अपने अधिकारमे कर लिया । तब तो औरंगजेबने एक स्थानीय जमींदारकी सहायताली । उसने धौलपुरसे ४० मील पूवमे भदौलीके पास एक निर्जन घाटका पता लगाया जहाँ केवल घुटनो तक ही पानी था । इस घाटपर दाराने कोई सैनिक या पहरेदार नही रखे थे ।

अब देरी करना अनुचित था । २१ मईको ग्वालियर पहुचनेपर उसी शामको औरंगजेबकी सेनाकी एक मजबूत टुकडी तीन सेनापतियो और तोपखानेके साथ रातोरात चलकर इस घाटपर पहुची, और दूसरे दिन प्रातःकालमें कुशलता-पूर्वक नदीको पार किया । सेनाका मुख्य भाग ग्वालियरके पास ही रुक गया था । २२ मईको औरंगजेब स्वयं ग्वालियारसे चला । दो पडावोकी यात्रा समाप्त

करके अपनी शेष सेनाके साथ उसने भी २३ मईको उसी घाटपर नदी पार की। राह उवड-खावड थी, घाट पहुचनेमे सैनिकोंको बडा कष्ट हुआ। रास्तेमें लगभग १५,००० आदमी प्यासके कारण मर गए। किन्तु इस प्रकार चम्बल पार करनेका सैनिक महत्त्व बहुत अधिक था। उसने एक ही चालसे शत्रुके सारे मोर्चोको निरर्थक बना दिया और लम्बी-चौडी खाइयाँ खोदकर तोपें जमानेमें दाराने जो मेहनत की थी वह भारी व्यय हो गई। आगराका मार्ग औरंगजेबके लिए खुला पडा था। अब चम्बलका किनारा छोडकर दाराको पीछे लौटना पडा कि वह राजधानीकी रक्षाके लिए प्रयत्न करे। अनेको भारी तोपे दाराको नदीपर ही छोड देनी पडी, जिसमे वह अगले युद्धमें कमजोर पड गया। औरंगजेबकी विजयी सेना चम्बलसे उत्तरकी बढती गई और तीन दिनमें ही आगरासे कोई १० मील पूवमें सामूगढके पास शत्रुके सामने आ डटी।

५ धरमत के युद्ध के बाद दारा की हलचलें

चम्बल नदीके तीरपर जा पहुचनेके लिए दारा १८ मईको चल पडा। आगरासे रवाना होते समय वहाँके किलेके दीवान-आममे उसने जब अपने वृद्ध पितासे विदा ली तब एक बहुत ही दर्दनाक दृश्य वहाँ उपस्थित हुआ। २३ मईको धौलपुर पहुचकर उसने आसपासके चम्बल नदीके सारे घाटोपर अधिकार कर लिया। उसका उद्देश्य था कि बिना युद्ध किए ही यो औरंगजेबकी सेनाको आगे बढनेसे रोक दे, जिससे सुलेमान शिकोहको सेना सहित आकर मिलनेका अवसर मिल जाए। पर शीघ्र ही उसने सुना कि औरंगजेबने धौलपुरसे ४० मील पूर्वमे २३ मईको ही नदी पार कर ली है। तब तो वह हडबडाकर आगराकी ओर लौट पडा और आगरा शहरसे कुछ ही दूर सामूगढके पास उसने पडाव डाला। औरंगजेब भी २८ मईको वहाँ पहुचा।

औरंगजेबके आनेका समाचार सुनते ही दारा उसी दिन अपनी

फौज सम्हालकर पडावमे बाहर निकला, मानो वह युद्ध करने ही जा रहा हो। परन्तु शत्रु सेनाको देखकर रुक गया, और देखने लगा कि शत्रु क्या करता है। सन्ध्या समय वह अपने पडावको लौट आया। यही उसकी भयकर भूल थी। औरगजेबकी सेना सख्यामें बहुत कम थी तथा उसके सैनिक कडी धूपमें विना पानीके दस मीलकी यात्रा करनेके कारण थक चुके थे। दाराकी फौज बिलकुल ताजा व तैयार थी। दिन भर गर्मीमें घटो वेकार रहनेसे सैनिक और हाथी-घोडे, आदि सब बुरी तरह थक गए। उधर चतुर औरगजेबने अपनी सेनाको सध्या व पूरी रात्रि भर आराम देकर अगले दिनके युद्धके लिए पूरी तरह ताजा कर लिया।

६ सामूगढ का युद्ध, २६ मई १६५८

२६ मईको प्रात कालमे दाराने अपनी सैन्य-पक्तियोको सुसज्जित किया। उसके पास लगभग ५०,००० सेना थी। राजपूत सनिका और दाराके ईमानदार पक्षपातियोपर ही इस सेनाकी पूरी-पूरी शक्ति निर्भर थी। परन्तु उसके साथकी फौजमें लगभग आधी सेना ऐसी थी, जिसपर कोई विश्वास नही किया जा सकता था। उसके अनेक मुखियोको औरगजेबने फोड लिया था, जिनमें खली लुल्लाखाका नाम विशेषरूपेण उल्लेखनीय है। अपनी फौजके अग्र भागके सामने दाराने अपना सारा तोपखाना एक कतारमें जमा दिया। इसके पीछे उसके पैदल बन्दूकची थे और बाद में थे हाथी। सबसे पीछे घुडसवारोकी सेनाका बडा समूह था। दाराका तोपखाना भारी होनेसे अधिक क्रियाशील न था। उसके तोपची भी औरगजेबके तोपचियोकी अपेक्षा कही अधिक अयोग्य थे। उसके घोडे तथा सामान ढोनेवाले जानवर भी बहुत-कुछ वेकार व अनुपयोगी थे।

इसके विरुद्ध औरगजेबके साथ अनुभवी कुशल साहसी वीरोकी सेना थी। उसके श्रेष्ठ तोपखानोकी कतारोका मीरजुमलाके युरोपीय गोलन्दाज सचालन कर रहे थे और गोला-बारूद भी उनके पास पर्याप्त

मात्रामें था । पूर्ण आज्ञाकारिता और सुदृढ संगठन ही उसकी सेनाकी प्रधान विशेषताएं थी । बिना किसी हिचकिचाहट या आशंका किए आज्ञा-पालनकी शिक्षा उसके सारे अधिकारियोको पूर्ण रूपसे दी गई थी ।

मध्यान्ह तक उनका युद्ध आरम्भ हो गया । दारा एकदम आक्रमणके लिए उतारू हो गया । उसका तोपखाना दूरीपर स्थित-शत्रु-सेनाकी बहुत ही थोडी हानि कर पाया । इस समय अपना गोली बारूद बचा रखनेकी औरंगजेबने बुद्धिमानी की ।

एक घंटे तक इस प्रकारकी गोलाबारी होनेके बाद दाराने हमलेका हुक्म दिया । रुस्तमखाकी मातहत उसकी बाई ओरकी फौज नंगी तलवारें लेकर भयकर युद्ध-नाद करती हुई विरोधी शत्रुओं-पर टूट पडी । औरंगजेबके बन्दूकचियो और उनके मुखिया शफ़शिकन-खाने बदूकोकी घातक बाढके साथ इस आक्रमणका सामना किया । परन्तु यह धावा तोपो तक नही पहुंच पाया और न उन्हे नष्ट करनेमें ही उसे कोई सफलता मिली । धीरे-धीरे इस आक्रमणका वेग कम होता गया । तब तो रुस्तमखा दाहिनी ओर मुडा और औरंगजेब की सेनाकी ओर झपटा । पर औरंगजेबकी मध्य सेनाकी दाहिनी बाजूवाली फौजको लिये बहादुरखाने रुस्तमखाका मार्ग रोका । तब घमासान द्वन्द्व-युद्ध प्रारम्भ हुआ । बहादुरखा घायल होकर गिरा । तब तक इस्लामखा और शेख मीर उसकी सहायताके लिए पहुँच गए थे । अब रुस्तमखांके विरोधियोकी संख्या बहुत अधिक हो गई, उधर वह बुरी तरह थक गया था । उसका हाथ भी बुरी तरह घायल हो गया था । फिर भी कोई १०-१२ अन्य साहसी वीरो सहित मार-काट द्वारा अपनी राह बनाता हुआ वह शत्रु सेनाके बीचोबीच जा पहुँचा और वहाँ अनेक शत्रुओको मारकर वही खेत रहा । दाराकी सेनाके बाएँ पक्षके कुछ थके हुए सैनिक अब सिपर शिकोहके साथ पीछेको लौट पडे ।

इसी समय औरंगजेबकी बाई ओर इससे भी भयकर युद्ध मचा

हुआ था। वहाँ छत्रसाल हाडाके नेतृत्वमें राजपूतोकी शाही फौज अपनी पूरी शक्तिके साथ मुरादपर झपटी। राजपूतोंने यो प्रयत्न किया कि मुराद व औरंगज़ेब की सेनाए अलग-अलग हो जावें। राजा रामसिंह राठौड मुरादके हाथीपर झपटा और जोरसे उपहासपूर्वक चिल्लाया कि "तू दारासे सिंहासन छीनने चला है", तथा राजाने मुरादपर अपना भाला फेंका। किन्तु निशाना चूक गया और शाह-जादेने एक ही बाणसे राजाको मार गिराया। मुरादको घेरनेका प्रयत्न करनेवाले दूसरे राजपूत भी एक-एक कर मारे गये। मुरादके हाथी का महावत मारा गया और उसके चेहरेपर भी तीन घाव लगे। उसके हाथीका हौदा शत्रुओंके तीरोंसे भरकर कांटोंसे पूर्ण साहीकी पीठ-सा दिखाई देने लगा। इस आक्रमणके वेगने उसे हाथी सहित पीछेकी ओर धकेल दिया।

विजयी राजपूत अब मध्यकी ओर बढे तथा मुरादकी सहायताके के लिए आते हुए औरंगजेबपर टूट पडे। राजपूत औरंगजेबके पास तक जा पहुचे और उसपर आक्रमण किया। पर उस शाहज़ादेके रक्षकोंने वैसी ही वीरतासे उनका सामना किया। वे बिलकुल ही थके न थे, इसलिए राजपूतोंकी उनके सामने एक न चली। फिर भी राजपूत प्राणोंका मोह छोडकर बहु-सख्यक शत्रुओंसे लडते ही रहे। छत्रसाल हाडा, रामसिंह राठौड, भीमसिंह गौड, शिवाराम गौड, आदि वीर योद्धा एक-एक कर काम आए। राजा रूपसिंह राठौड जानपर खेलकर अपने घोडेसे कूद पडा। नगी तलवार लिये वह औरंगजेबके हाथीकी ओर लपका। औरंगजेबको नीचे गिरा देनेके इरादेसे उसके हौदेकी रस्सियाँ उसने काटनेका प्रयत्न किया। हाथीके पैरपर उसने तलवारका वार किया। किन्तु वह स्वय ही औरंगज़ेबके शरीर-रक्षको द्वारा मारा गया। बचे-खुचे राजपूत भी युद्धमें काम आए। इस प्रकार दाराकी बाई और दाई दोनो ही ओरकी सेनाए इस समय तक नष्ट हो गई।

७ सामूगढके युद्ध में दारा, युद्धका अंत

युद्धके आरम्भमे ही दारा सेनाके मध्यमें अपनी जगह छोडकर मखाकी सहायता करनेके लिए औरगज़ेबकी सेनाके दाहिने पक्षकी र चला गया था । इससे बढकर खतरनाक गलती हो नही सकती । यो सेनाके प्रधान सेनापतिकी हैसियतसे अपनी सेनापर नियन्त्रण सचालन सम्बन्धी जो अधिकार दारा को प्राप्त होना चाहिए उसे वह यो एकबारगी खो बैठा । सारी मुगल सेनामे पूरी गडबड गई । पुन स्वय आगे आकर उसने अपने ही तोपखानेको गोला- ी करनेसे रोक दिया । केवल इस एक गलतीसे ही दाराकी जो ने हुई वह अनेक कारणोसे होनेवाली अन्य भारी हानियोसे कही धिक थी । अब दारा अपने सामने खडे शत्रुके तोपखानेसे बचनेके ए दाहिनी ओर मुडा और शेख मीरकी सेनासे जा भिडा ।

इस समय औरगज़ेबके आसपास कोई सेना नही रह गई थी । दारा स्वय थक गया था । साथ ही रणभूमिकी कठिनाइयोके रण कुछ समयके लिए वह रुक गया । उसके आक्रमणकी तेजी त-कुछ कम हो गई और उसने विजय प्राप्त करनेका यह स्वर्ण सर हमेशाके लिए खो दिया । क्योकि इतनी सी देरमें औरगज़ेबने नी सेनाएँ सम्हाल ली और आवश्यकतानुसार उन्हें नये ढगसे ा दिया । उधर दाराको छत्रसाल हाडाकी सेनाकी सहायताके ए अपनी सेनाकी दाहिनी ओर मुड जाना पडा । इस लम्बी और कानेवाली आवाजाहीसे उसके सैनिक थक गए । उस तेज़ धूपमे घोटनेवाली धूलकी आधीके बीच, जलती हुई वालुकापूर्ण भूमिपर हे चलना पड रहा था, और दुर्भाग्यसे प्यास बुझानेके लिए एक पानी भी नसीब न हो सका था ।

अब तक औरगज़ेबकी सेना अपने स्थानपर दृढतासे डटी हुई । किन्तु अपने पिताकी सेनाको लेकर शाहजादा मुहम्मद सुलतान दारापर आक्रमण करनेके लिए तेज़ीसे आगे बढा । इसी समय रगज़ेबकी दाहिनी ओरवाली विजयी सेना भी दारा की फौजपर

हमला करनेके लिए घूम पडी । दाईं और बाईं, दोनों ओरसे दाराके सैनिकोंपर लगातार गोलियोंकी बौछार पड रही थी । अब वास्तवमें युद्धका अंत आ गया था । अपने मुख्य सेनापतियोंकी मृत्युकी सूचना दाराको मिल चुकी थी । अब अपने सामने तोपें लिये औरंगज़ेबकी सेना उसकी ओर बढी आ रही थी । खुद दाराका हाथी ही अब गोलियोंका निशाना बना, जिससे घबराकर यह हाथी अपने रनवालोंपर ही हमला करने लगा । अभागे दाराके लिये अब यह अनिवार्य होगया कि वह उस हाथीको छोडकर घोडेपर बैठे । तत्काल ही उसकी सेनाके सारे विरोधका अंत हो गया । पूरे रणक्षेत्रमें फैले हुए उसके सैनिकोंने हौदा खाली देख उसे मरा समझ लिया । प्यास और थकानके कारण वे पहले ही अधमरे हो गए थे, अब गम लूके थपेडे खाकर प्यासके मारे ही कई मर गए, हथियार उठाने तककी उनके हाथ-पैरमें तब ताकत न रही थी । शाही फौजमें अब जो कोई बचे थे वे एकदम रण-क्षेत्र छोडकर भाग खडे हुए । कुछ खानदानी अनुचरोंको छोडकर अब दाराके पास कोई न ठहरा, वह बिलकुल अकेला रह गया । उसके वे साथी उसे रणक्षेत्रसे आगराको ले चले ।

औरंगजेबका सामना करनेवाला अब कोई नही रहा था, फिर भी उसने भागते हुए शत्रुओंका पीछा नही किया, क्योंकि इस युद्धमें उसे पूर्ण विजय प्राप्त हुई थी । दाराकी सेनाके कोई दस हज़ार सैनिक काम आए । शाही सेनाकी ओरसे मारे जानेवाले ६ राजपूत और १६ मुसलमान उच्च पदाधिकारी सेनानायकोंके नामोंका उल्लेख मिलता है ।

इस युद्धमें खेत रहनेवाले इस वीर सेनानियोंमें ५२ लडाइयोंका विजेता बंदी-नरेश राव छत्रसाल हाडा विशेष उल्लेखनीय था । धरमत और सामूगढकी दो लडाइयों में हाडा राजघरानेके कुल मिलकार कोई बारह राजपुत्र काम आए । अपने सैनिकोंको लेकर इस वंशके प्रत्येक घरानेके अधिपतिने युद्धक्षेत्रमें अपनी स्वामिभक्तिका स्पष्ट प्रमाण दिया । ईरानियों और उज़बेगोंके विरुद्ध लडे जानेवाले

द्रोका वीर-विजेता सुप्रसिद्ध रुस्तमखाँ उर्फ फिरोज जग भी इस द्धमे काम आया। औरगजेवके पक्षका प्रथम श्रेणीका केवल एक नायक आजमखा मरा और केवल अत्याधिक गर्मी ही उसकी त्युका कारण हुई।

८ आगराकी घटनाएँ और शाहजहाँका कैद होना, जून १६५८

सामूगढके विनाशकारक युद्धसे भागकर अपने कुछ नौकरोके थ दारा रात्रिको ६ वजे आगरा पहुचा और शहरवाले नने मकानमें जा छपा। शाहजहाने सदेश भेजा कि किलेमे आकर ह उससे मिले। परन्तु दारा तो शरीर और मन, दोनोसे ही पूण-या हतोत्साह और मृत-प्रायसा हो रहा था। उमने किलेमे जाना स्वीकार करते हुए कहला भेजा कि मै अपनी इस दुदशामें स प्रकार शाहशाहको मुँह दिखा सकता हू। मेरे सामने जो लम्बी त्रा है उसके लिए बिदाईका आशीर्वाद दीजिए और आज्ञा दीजिए मै यहीसे अपनी यात्रापर चल पडू।

प्रात काल ३ वजे वह अभागा शाहजादा अपनी पत्नी, पुत्रो र दस-बारह नौकरोको लेकर आगरासे दिल्लीके लिए रवाना आ। शाहजहॉकी आज्ञानुसार शाही खजानेसे सोनेकी मोहरे दकर उसके साथ भेज दी गई। अपने पासके हीरे, जवाहरात र नगद रूपये, आदि जो कुछ भी इस जल्दीमे ले जा सका वह थ लेता गया। उसके पक्षवालोके छोटे-छोटे गिरोह रास्तेमे दिनो तक आ-आकर उसके साथ होते गए। दिल्ली पहुँचते-हुँचते उसके पास ५,००० सैनिको की एक अच्छी सेना तैयार हो ई।

सामूगढके युद्धके वाद औरगजेवने जाकर मुरादको वधाई दी, र कहा कि यह विजय मुदराकी ही वीरताका परिणाम थी, इसलिए सी दिनसे मुरादके राज्य-कालका प्रारम्भ माना जाना चाहिए।

सामूगढकी युद्ध-भूमिसे चलकर ये विजेता दो मजिल पार कर १ली जूनको आगराके पास पहुँचे और वहाँ शहरके बाहर नूरमजिल या धाराके बागमें उन्होने पडाव डाला। यहाँ वे दस दिन तक ठहरे रहे। दिन प्रति-दिन अनेको दरबारी, सरदार और हाकिम शाही पक्ष छोडकर उनके साथ मिलने लगे। दाराके पुराने अधिकारियोने भी यही किया।

सामूगढके युद्धके दूसरे दिन औरगजेबने सीधे शाहजहाको एक पत्र लिखा। शत्रुओके कारण विवश होकर इस समय उसे जो कुछ भी करना पड रहा था, उसके लिए उसने क्षमा मागी। नूरमजिल पहुचनेपर शाहजहाँके हाथका लिखा हुआ पत्र उसे मिला। बादशाहने उसे मिलनेके लिए बुलाया था। कुछ सोच-विचारके बाद उसने अपने मित्रो (विशेषकर शायेस्ताखा और खलीलुल्लाखा) की सलाहपर यह निमन्त्रण अस्वीकार कर दिया। मित्रोंने उसे भडकाया कि आगराके किलेमें घुसते ही एक तातारी स्त्री-रक्षक द्वारा उसे मरवा डालनेका शाहजहाँने षडयन्त्र रचा है।

अन्तमें अब औरगजेब खुले-आम शाहजहाँका विरोध करनेको उतारू हुआ। आगरा शहरपर अधिकार कर वहाँ अमन-चैन बनाए रखनेके लिए ३ जूनको ही औरगजेबने अपने बडे लडके मुहम्मद सुलतानको वहा भेज दिया था। शाहजहाने आगरेके किलेके दरवाजे बद करवाकर आक्रमणका सामना करने की तैयारी की। ५ जूनको आगराके किलेका घेरा डाला गया, किन्तु गोला-बारी कर उस किलेको तोडनेमें औरगजेबका तोपखाना विफल ही हुआ। अगर ठीक तौरपर उस किलेका घेरा डालकर उसे जीतनेके लिए प्रयत्न किया जाता तो उसमें कई माह या सभवत वर्ष भी लग जाते और ये दोनो विजयी भाई आगरामें ही रुके रह जाते, तथा उधर दाराको अवसर मिल जाता कि वह पुन नई सेना एकत्रित कर उसे सुसज्जित कर डाले। इसलिये औरगजेबने अपनी सेनाको भेजा कि वह जमुनाकी ओर खुलनेवाली किलेकी खिडकीके पासके बाहरी

भागपर अधिकार कर ले। इस प्रकार क़िलेकी सेनाके लिये आवश्यक जल-प्राप्तिका साधन बन्द हो गया। किलेके कुछ पुराने अनुपयोगी कुओंका पानी खारा और बिलकुल पीने योग्य न था। यह हालत देख बादशाहके अनेक हाकिम तथा मुफ्तमे पानेवाले कई आलसी दरबारी भी चुपचाप किलेके बाहर खिसक गए।

इन परिस्थितियोमे भी शाहजहाने तीन दिन तक किलेके दरवाज़े नही खोले। उसने स्वय औरगज़ेबसे एक बहुत दर्दनाक व्यक्तिगत प्रार्थना की कि वह अपने जीवित पिताको प्यासो न मारे। पर उसके उत्तरमे औरगजेबने यही कहा कि "यह सब आपकी ही करनीका फल है"। अपने चारो ओर षडयन्त्र और विनाश देखकर प्यासे व्याकुल वृद्ध बादशाहने आत्मसमर्पण करनेका निश्चय किया। ८ जूनको उसने औरगज़ेबके अफसरोके लिए किलेके दरवाज़े खोल दिए, तब तो वह स्वय महलके हरममे कैदी बना दिया गया। अब उसे विवश होकर किलेमें दरबार-आमसे लगे हुए कमरोमे ही रहना पडा। उसके सारे अधिकार छीन लिये गए। किलेके भीतर और बाहर मज़बूत पहरे बैठा दिए गए कि उसको छुडानेका प्रयत्न विफल ही रहे। उसके पास रहनेवाले खोजापर भी कडी नज़र रखनेका हुक्म हुआ ताकि वे उसके कोई भी पत्र बाहर न ले जा सकें। आगराका अटूट खजाना, भारतके महान् शक्तिशाली बादशाहोकी तीन पुश्तोमें सगृहीत वह सारा धन, सहज ही औरगज़ेबके अधिकारमे आ गया।

१० जूनको शाहजादी जहानारा बहनके नाते औरगजेबको मनाने और उसपर अपना प्रभाव डालनेके लिए उससे मिलने आई। शाह-जहाकी ओरसे उसने चारो भाइयोमे साम्राज्यको बाट देनेका प्रस्ताव भी पेश किया। परन्तु औरगज़ेबने इस प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया उसका ऐसा करना स्वाभाविक ही था।

९ मुरादबख्शकी कैद और मृत्यु

दाराका पीछा करनेके लिए १३ जूनको औरगजेब आगरासे

रवाना हुआ। पर मुरादके ईर्ष्यालु और हठी बर्तावके कारण कठिन परिस्थिति उत्पन्न हो जानेसे उसे मार्गमें ही मथुराम रुक जाना पडा। इस शाहजादेके दरवारी दिन-रात उसे भडकाया करते थे और कहते थे कि धीरे-धीरे सारी हुकूमत उसके हाथसे निकलकर औरगजेबके ही हाथमे चली जा रही थी और इस प्रकार औरगजेब ही धीरे-धीरे सर्वेसर्वा वनता जा रहा था। इन सलाहकारोंके बहकानेमें आकर मुराद खुल्लम-खुल्ला औरगजेवका विरोध करने लगा। उसने अपनी सेना भी बढा ली और औरगजेबके पास आना-जाना भी उसने वन्द कर दिया।

परिस्थिति वडी ही नाजुक होगई। परन्तु औरगजेबने २३३ घोडे और २० लाख रुपये देकर मुरादके सन्देहको मिटा दिया। साथ ही मुरादको युध्द में लगे हुए घावोंके अच्छे हो जाने के उपलक्षमें, तथा भागते हुए दाराके विरुद्ध युद्ध-यात्राकी योजनाको पूरी करनेके उद्देश्यसे औरगजेबने मुरादको भोजनोत्सवके लिए आमन्त्रित कर दिया। भाईका यह निमन्त्रण स्वीकार कर २५ जूनको शिकारसे लौटते हुए मुराद औरगजेबके पडावमे जा पहुचा।

औरगजवने सादर उसका स्वागत किया। उसे खूब खिलाया और शराब पिलाकर नशेमे चूर कर दिया। जब उसे नशा आगयी, तब उसके हथियार छीन लिये गए और वह कैद करके ग्वालियरके सरकारी कैदखानेमें भेज दिया गया। मुरादके पक्षवालोंको उसके दुर्भाग्यकी कहानी बहुत देर बाद मालूम हो सकी। दूसरे दिन उसकी नेता-रहित सेनाने औरगजेबकी सेवा स्वीकार कर ली। मुराद ग्वालियरके किलेमें तीन साल तक जीवित रहा। अन्तमें सिंहासनारुढ होनेका स्वप्न देखनेवाला यह अभागा शाहजादा ४ दिसम्बर १६६१को उसी किलेके कैदखानेमें दो गुलामो द्वारा कत्ल कर दिया गया तथा उसकी लाश किलेमें ही दफना दी गई।

अध्याय ५

उत्तराधिकार-प्राप्तिके लिए युद्ध; दारा और शुजा का अन्त

१ सामूगढके बाद दाराका पीछा

५ जून १६५८को दारा दिल्ली पहुँचा। वहाँ राजधानीमे एक नई सेना तैयार कर उसे पूरी तरह सुसज्जित करनेकी उसने कोशिश की। परन्तु एक सप्ताहके बाद ही दिल्ली छोड वह लाहौरके लिए चल पडा। बहुत दिनो तक वह पजाबका सूबेदार रह चुका था, और इस समय उसका ईमानदार हाकिम गैरतखा उस प्रान्तका सूबेदार था। दारा ३ जुलाईको लाहौर पहुचा और वहाँ डेढ माह तक युद्धकी तैयारियाँ पूरी करनेमे लगा रहा। उसने २०,००० सैनिकोकी फौज इकट्ठी की। सतलजके तलवान और रूपारके घाटोकी रक्षाके लिए भी उसने सेनाके सुसज्जित दस्ते भेजे।

इसी बीचमे औरगजेबने दाराके अधिकारियोसे इलाहाबाद छीन लेनेके लिए खान-ए-दौरानको वहाँ भेजा, तथा बहादुरखाको पीछा करनेका हुक्म दिया। वह स्वय भी ६ जुलाईको दिल्लीकी ओर बढा। दिल्लीमे तीन हफ्ते रहकर उसने पुराने शासनमें फेरफार कर एक नये सुदृढ प्रबन्धकी स्थापना की। अन्तमे २१ जुलाईको आलमगीर गाजीके नामसे वह स्वय राजगद्दीपर बैठा। खलीलुल्लाखा पजाबका शासक नियुक्त किया गया और दाराका पीछा करनेवालोंकी सहायता करनेके लिए उसे भेजा।

५ अगस्तकी रात्रिको रूपारके पास बहादुरखाँने एकाएक सतलज पार की। दाराके सेनानायकोंको अब व्यासकी ओर पीछे हटना पडा। परन्तु जब औरंगजेब दिल्लीसे सतलज पहुंचा, तब १८ अगस्तको दारा लाहौरसे मुलतानकी ओर भाग गया, और वह अपने कुटुम्ब और खजानेको भी साथ ले गया। यह यात्रा उसने जल-मार्गसे नाव द्वारा की।

औरंगजेबकी सेना ३० अगस्तको लाहौरसे दाराके पीछे-पीछे चली। १७ सितम्बरको औरंगजेब खुद इन पीछा करनेवालोंमें जा मिला। पर दारा १३ सितम्बरको मुलतानसे भी आगे भागा। मुलतानके पाससे ३० सितम्बरको औरंगजेब शुजाके आक्रमणका सामना करनेके लिए पीछे दिल्लीको लौट पडा। परन्तु इससे दाराका पीछा करनेमें किसी तरहकी ढिलाई नहीं आई।

सक्करमें औरंगजेबकी सेनाको २३ अक्तूबरके दिन मालूम हुआ कि भक्करके किलेमें अपनी बडी तोपें और बहुत-सा माल-असबाव छोडकर दारा स्वयं सेहवानकी ओर भाग गया था। उसके सारे सैनिकों और एकमात्र विश्वासपात्र सरदार दाऊदखाने भी उसका साथ छोड दिया। तेजीसे बढते-बढते ३१ अक्तूबरको शाही फौज सेहवानमें दाराके पास आ पहुंची। दाराको घेरनेके इरादेसे उन्होंने सिन्धुके दोनों किनारोंपर अधिकार कर लिया। परन्तु दाराकी नावें अधिक अच्छी थीं, एवं खुली नदीके बीचोबीच तेजीसे अपनी नावें निकालकर २ नवम्बरको वह सेहवानसे चल पडा और थत्ता जा पहुंचा (१३ नवम्बर)। शाही फौज फिर तेजीसे आगे बढी और उसके पीछे-पीछे थत्ता पहुंची (१८ नवम्बर), परन्तु वहां उन्हें पता लगा कि गुजरातकी ओर जानेके लिए दारा तब कच्छकी खाडी पार कर रहा था। पीछा करने वालोंको अब औरंगजेबने वापिस दरबारमें बुला लिया। नावोंके अभावसे पीछा करनेवालोंको इस बार सफलता न मिली।

२ राजपूतानामें दारा, दोराईका युद्ध

थत्तासे ५५ मील पूर्वमें स्थित बादिन छोडकर दाराने कच्छके रणको (नवम्बरके अन्तमें) पार किया, तथा भुज और काठियावाडमें नवानगरकी राह ३,००० सैनिकोके साथ वह अहमदाबाद पहुचा। इस प्रान्तका नया सूबेदार शाहनवाज़खा दाराके साथ हो गया (६ जनवरी १६५६)। सूरतके तोपखानोको भी वह ले आया और बडी तेजीसे वह आगराकी ओर चल पडा। रास्तेमें उसे अजमेर आनेके लिए जसवन्तसिंहका सन्देश मिला। वहाँ अपने राठौडो और दूसरे राजपूतोके साथ दारासे मिल जानेका उसने वादा किया था। परन्तु दारा वहा पहुचे उससे पहिले ही खजवामे (५ जनवरी) मिर्जा राजा जयसिहकी सहायतासे औरंगज़ेबने जसवन्तसिंहको अपनी ओर मिला लिया था। औरगज़ेब अब उसके बिलकुल नजदीक आ पहुचा था, इसलिए उसके साथ लडनेके सिवाय दाराके लिए दूसरा कोई चारा न रहा। अजमेरसे चार मील दक्षिणमे दोराईकी घाटीमें औरगज़ेबको रोकनेका उसने निश्चय किया। उसके दोनो बाजू बिटली और गोकला पहाडियोसे सुरक्षित थे, और अजमेरका समृद्धिशाली शहर ठीक उसके पीछे था। अपनी सेनाके दक्षिणमें दोनो पहाडियोके बीचकी समतल भूमिमें उसने एक दीवाल बनवाई, और उसके सामने खाइयाँ और अनेक स्थानो पर छोटी-छोटी बुर्जें भी बनवाई।

दक्षिण दिशासे औरगज़ेबने इस मोर्चेबन्दीका सामना किया और १ मार्च १६५६की सध्यासे ही उसने शत्रुपर गोला-बारी शुरू कर दी। परन्तु शत्रुकी खाइया बडी ही दुगम थी और दाराके तोपखाने तथा बन्दूकचियोने अपने ऊचे और सुरक्षित स्थानसे औरगज़ेबके अरक्षित पैदलो और बन्दूकचियोपर मौत उगलना आरम्भ किया। १४ मार्चको औरगज़ेबने अपने सेनापतिको एकत्रित कर आक्रमणकी एक नई योजना तैयार की। उसने निश्चय किया कि उसकी सेनाका

एक बडा दल शत्रु सेनाके बाए पहलूपर शाहनवाजखाकी सेनापर जोरोंसे आक्रमण करे। उधर जम्मूके पहाडी राजा राजरूपके पहाडी सैनिकोंने गोकला पहाडीपर चढनेका एक अज्ञात मार्ग ढूँढ निकाला था, एव राजरूपको हुकम हुआ कि वह अपने सैनिकोंके साथ चुपचाप उस पहाडीकी चोटीपर चढकर वहाँ अधिकार जमा ले।

१४ मार्चकी सध्या-समय शाही फौजने शाहनवाजखाके मोर्चोंपर धावा कर दिया। औरगजेबका तोपखाना पुन फुर्तीके साथ गोला-बारी करने लगा, जिससे दाराकी सेनाके दूसरे भाग वहाँसामने होकर बाईं ओरके अपने साथियोंको शत्रुके आक्रमणका विरोध करनेमें सहायता न दे सकें। दाराकी सेनाने डटकर सामना किया और अपने मोर्चोंकी रक्षा करती रही, फिर भी अन्तमें शाही फौजने सारी शत्रु-सेनाको रणभूमिसे खदेड दिया और खाइयोंके किनारे तकके सारे मैदानपर अधिकार कर लिया।

इस समय तक पहाडीके पीछेसे धीरे-धीरे चढकर राजरूपके सैनिक गोकलाकी चोटीपर जा पहुचे, और वहाँ अपना झडा गाडकर उन्होंने जोरोंसे जयनाद किया। यह देखकर कि शत्रु उनके पीछे भी जा पहुचे, दाराकी सेनाका बायाँ पहलू पूरी तरह निराश होकर भाग खडा हुआ, किन्तु उनमेंसे कई फिर भी बराबर डटे रहे और वीरता पूर्वक लडते रहे। अन्तमें जब उन खाइयोंपर जोरोंसे हमला हुआ, तब दाराकी सेना नही टिक सकी, सैनिक तथा सेनापति, सब रणभूमि-से भाग खडे हुए और रात्रि के बढते हुए अन्धकारसे उन्हे भागनेमें पूरी-पूरी सहायता मिली।

गोकला पहाडीके शत्रुओंके हाथमें पड जानेसे दाराकी हालत बहुत ही खतरनाक हो गई, और अब अधिक टिक सकना दाराके लिए सभव नही रहा। एव केवल बारह साथियोंको लेकर अपने पुत्र सिपर शिकोहके साथ वह सिरपर पैर रखकर गुजरातकी ओर भागा। जसवन्तसिहकी आज्ञानुसार हजारो राजपूत युद्ध-क्षेत्रके पास एकत्रित हो गए थे, अब दाराकी सेनाकी सारी सामग्री और

सामान ढोनेवाले उसके बहुत-से जानवर उन्होंने लूट लिये ।

३ दाराका भागना एवं अन्तमें पकडा जाना

दोराईके युद्धके समय दाराने अपना सारा खजाना और हरम अजमेरके अनासागरके किनारे ही छोड दिया था । आवश्यकता पडनेपर वहांसे उन्हें ले जानेकी पूरी-पूरी तैयारी थी । एवं १४ मार्चकी रातको दाराके साथी उन्हें लेकर अजमेरसे चल दिए और १५ मार्चकी शाम तक मेडतामें दारासे जा मिले । परन्तु दाराका पीछा करनेके लिए औरंगजेबने जयसिंह और बहादुरखाके सेनापतित्वमें एक शक्तिशाली सेना पहिले ही भेज दी थी । इसलिए दाराको कहीं भी विश्राम करनेका कोई अवसर नहीं मिला । पहलेकी-सी ही शीघ्रतासे उसे वहासे भागना पडा । मेडता छोडते समय उसके साथ केवल २,००० सैनिक थे । गुजरातकी ओर भागते समय उन्हें बहुत अधिक कष्ट भोगना पडे । साथ ही साथ उनके कुछ घोडे और ऊँट गर्मी और बहुत अधिक थकावटके मारे मर गए ।

दारासे पहले ही हर जगह औरंगजेबके पत्र पहुच चुके थे । अहमदाबादसे लौटकर उसके दूतने दाराको सूचना दी कि यदि वह उस शहरमें घुसनेका प्रयत्न करेगा तो उसका विरोध किया जावेगा । यह सुनकर दाराकी रही-सही आशाएँ भी विलीन हो गईं । इस निराशापूर्ण हालतको देखकर दारा और उसके साथी हक्के-बक्के रह गए । अब क्या करे, कहाँ जावें, यही सोचते-सोचते घबडा उठे । इस प्रकार अन्तमें सिर्फ एक घोडा, एक बैल-गाडी, पाच ऊटोपर औरतोंको लिए तथा अन्य कुछ ऊटो पर सामान लादे, इने-गिने थोडे-से नौकरोंको साथ लेकर एशियाके सबसे सुसमृद्ध शक्तिशाली साम्राज्यका मनोनीत युवराज दीन-हीन वेशमें पुन उस उजाड रणको पारकर मईके प्रारम्भमें सिन्धकी दक्षिणी सीमापर जा पहुचा ।

यहा भी सिंधुके निचले हिस्सेमें आगे जाना उसके लिए संभव नहीं था । औरंगजेबने खलीलुल्लाखाको लाहौरसे दक्षिणमें भक्खर

भेज दिया था। सिन्ध सूबेके स्थानीय अधिकारी और जयसिंहकी सेनाके आगे बढे हुए दस्ते दाराको उत्तर, पूर्व और दक्षिण-पूर्वसे घेरे हुए आगे बढ रहे थे। दाराके लिए भाग निकलनेका सिर्फ एक ही रास्ता खुला था, एव वह उत्तर-पश्चिम को मुडा। उसने सिन्धु नदी पार की और कन्धारकी राह ईरान भाग जानेके इरादेसे वह सेहवान जा पहुँचा।

जयसिह अजमेरसे दाराके पीछे-पीछे बढता आ रहा था। बडी कठिनाइयाँ सहते हुए उसने छोटे-बडे रण तथा कच्छ द्वीपको पार किया। इसपर भी बडी दृढताके साथ वह चलता ही गया, और ११ जूनको सिविस्तानकी सीमापर सिन्धु तक जब वह पहुचा, तब उसे ज्ञात हुआ कि दारा भारतकी मुगल सीमा पार कर चुका था। अब सिन्धुके किनारे-किनारे चलता उत्तरकी राह हिन्दुस्तानकी ओर चल पडा।

दाराका कुटुम्ब ईरान जानेके बिलकुल ही विरुद्ध था। उसकी प्यारी बेगम नादिरा बानू इस समय बहुत बीमार थी। इसलिए दाराने अपना विचार बदल दिया और दादरके जमीदार, मलिक जीवासे मित्रताके नाते सहायता पानेकी आशासे वह उधर चल पडा। बोलन घाटीकी भारतीय सीमाके छोरसे नौ मील पूर्वमें स्थित दादरकी यह जमीदारी थी। कई वर्ष पहले मृत्युकी सजा-प्राप्त इस अफगानी सरदारके जीवन और स्वतन्त्रताके लिए दाराने बादशाहसे सफलता-पूर्वक प्रार्थना की थी। अब उसी कृतज्ञ जीवासे सहायता पानेकी आशा कर दारा दादर पहुचा। सम्भवत ६ जूनके लगभग सरदार उसे अपने घर ले गया और आदरपूर्वक वहाँ उसका पूरा प्रबन्ध किया।

दादर जाते समय मार्गकी तकलीफोंके कारण नादिरा बानूकी बीचमें ही मृत्यु हो गई थी। इस दु खसे दारा पागल हो उठा। उसकी लाशको अपने आध्यात्मिक गुरु मियाँ मीरके ही कब्रिस्तानमें गडवानेके उद्देश्यसे दाराने नादिरा बानूकी लाशको

ल हौर भिजवा दिया। उसकी रक्षाके लिए उसने बाकी बचे हुए हुए अपने ७० सैनिकोको भी अपने परम भक्त अधिकारी गुलमुहम्मदके साथ जाने या उसके साथ ईरान जानेकी दोनो बातोमेंसे एक चुन लेनेकी पूरी स्वतत्रता दी। इस प्रकार उसके सच्चे अनुचरोमेंसे अब एक भी दाराके पास न रहा।

कृतज्ञ अफगानी सरदारने दाराकी रक्षा करनेकी प्रतिज्ञा की थी, परन्तु अब लोभने उसे आ घेरा। उसने विश्वासघात करके ६ जूनको दारा, उसके छोटे लडके और उसकी दोनो पुत्रियोको कैद कर उन्हें बहादुरखाके सुपुर्द कर दिया।

४ दाराका अपमान और उसकी मृत्यु

जब ये कैदी दिल्ली पहुचे, तब उन्हें अपमानपूर्वक राजधानीकी सडकोपर घुमाया गया (२६ अगस्त)। एक मैली-कुचैली छोटी-सी हथिनीपर खुले हौदेमें दाराको बैठाया गया। उसके बगलमें उसका दूसरा पुत्र सिपर शिकोह था। शिसकी उम्र इस समय केवल १४ वर्षकी ही थी। इनके पीछे हाथमें नगी तलवार लिये उनके कैदखानेका वह भयकर अफसर गुलाम नफरबेग बैठा था। ससारके सबसे समृद्ध साम्राज्यका उत्तराधिकारी आज लम्बी यात्रामें फट गए मैले-कुचैले मोटे कपडे पहने, जिन्हें गरीबसे गरीब भी नही पहने, वैसी काली-कलूटी पगडी सिरपर लपेटे था। उसके गलेमे न तो हीरोके कण्ठे ही थे और न उसके शरीरपर कोई जवाहरात ही सुशोभित थे। उसके पैरोमें बेडियाँ थी, उसके हाथ अवश्य खुले थे। अगस्तकी चमचमाती धूपमें अपने विगत ऐश्वर्य और गौरवके स्थानोमें इसी वेशमें उसे घुमाया गया। इस अपमानकी मरणान्त पीडाके कारण उसने सिर भी नही उठाया और न किसी ओर उसने नजर ही डाली। तोडकर कुचली हुई शाखाके समान वह बैठा था।

जनताकी हर एक भावना करुणामें परिणत हो गई। उसे देखनेको एक बडी भीड एकत्रित हुई थी। बरनियर लिखता है

कि हर जगह दाराके दुर्भाग्यपर लोग रोते और कलपते दिखाई पड़ते थे।

उसी शामको औरंगज़ेबने दाराके भाग्य-निर्णयके लिए अपने मन्त्रियोंसे गुप्त परामर्श किया। बर्नियरके आश्रयदाता दानिशमन्द-खाने उसकी प्राण-रक्षाकी सिफारिश की। पर शायेस्ताखाँ, मुहम्मद अमीनखा, बहादुरखा और हरममें रोशनआराने धर्म और राज्यकी भलाईके लिए उसकी मौतकी माँग पेश की। बादशाहसे तनख्वाह पानेवाले दब्बू धर्म-गुरुओंने उसे इस्लामके विरुद्ध आचरण करनेके दोषमें मौतकी सजा पाने योग्य बताकर मृत्यु-दण्डके फरमानपर दस्तखत कर दिए।

३० तारीखको दरबारमें जाते समय मार्गमें विश्वासघातक मलिक जीवांके (जो अब एक हजारी का मनसबदार बनकर बख्तियार-खा कहलाता था) विरुद्ध जनताने बलवा कर दिया, जिससे दाराकी मौत और निकट आ गई। उसी रात्रिको नज़रबेग और अन्य गुलामोंने खवासपुरामें दाराके कैदखानेमें जाकर सिपर शिकोहको दाराके पाससे छीन कर दाराको मार डाला और दाराके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। औरंगज़ेबके हुक्मसे उसकी लाश हाथीपर रखकर शहरके सारे मार्गोंपर घुमाई गई और अन्तमें हुमायूके मकबरेके नीचे एक गढ़ेमें उसे गड़वा दी।

५ सुलेमान शिकोहका अन्त

सुलेमान शिकोहने अपने हारे हुए चाचा शुजाको मुंगेर तक खदेड़ा। इसी समय १६५८की मईके आरम्भमें उसके पिता दाराने उसे आगरा वापस बुला भेजा, जिससे उसने जल्दी-जल्दी शुजाके साथ सन्धिकी और आगरा लौट पड़ा। २ जूनको जब वह इलाहाबादसे १०५ मील पश्चिममें पहुँचा तब उसे सामूगढ़में अपने पिता के सर्व-नाशका समाचार मिला। उसके श्रेष्ठ सेनापति जयसिंह, दिलेरखा तथा अन्य शाही हाकिमोंने तत्काल ही उसका साथ छोड़ दिया। वे औरंगज़ेबसे मिल गए। ४ जूनको सुलेमान इलाहाबादको लौट

गया। वहाँसे उसने गगाके उत्तरी किनारे होते हुए पहाडोके पास नदियाँ पार करके बिना रुकावटकी आशकाके अपने पितासे पजावमें जा मिलनेका निश्चय किया।

सुलेमान तेजीसे चला, परन्तु हर दिशामें शक्तिशाली शत्रु-सेना उसका मार्ग रोके हुए थी, एव अन्तमें शरणके लिए सुरक्षित स्थानकी खोजमें वह श्रीनगरके पहाडोकी ओर भागा। गढवालमें श्रीनगरके राजा पृथ्वीसिहने इसी शर्तपर उसे आश्रय देना स्वीकार किया कि वह अपनी सारी सेना छोड दे और अपने कुटुम्बियो और केवल १७ नौकरोको ही साथ लावे। इस जगली परन्तु सुरक्षित आश्रममें सुलेमान एक साल तक शान्तिपूर्वक रहा।

किन्तु अपने सब भाइयो पर विजय पाकर अतमें औरगजेबने सुलेमानकी ओर ध्यान दिया। गढवालका राजा वृद्ध था। अपने शरणागत आश्रितको धोखा देकर ऐसा लज्जाजनक पाप-पूर्ण कार्य करनेको वह राजी न हुआ। परन्तु उसका पुत्र युवराज मेदिनीसिह अधिक व्यवहार-कुशल ससारी व्यक्ति था। अपने आश्रयदाताके इस निश्चयको सुनकर सुलेमानने बर्फीले पहाड पार कर लद्दाख पहुचनेका प्रयत्न किया। किन्तु उसका पीछा किया गया, तब वह घायल हुआ और पकड लिया गया। औरगजेबके अधिकारियोको उसे सौंप दिया गया, जो उसे २ जनवरी १६६१को दिल्ली ले आए।

५ जनवरीको सुलेमान कैदीके रूपमे दिल्लीके महलोके दीवान-खासमें अपने भयकर चाचाके सामने लाया गया। औरगजेबने बातचीतमें उसके प्रति ऊपरी दयालुता दिखाई और उसने जोरसे बोलते हुए दृढतापूर्वक वचन दिया कि उसे किसी भी हलतमें पोस्ता* नही पिलाया जावेगा।

---

* पोस्ता एक पेय है, जो अफीमके फूलोको तोडकर उन्हे पानीमे एक रात भिगाकर बनाया जाता है। उसे पीनेवाले अभागे दिन प्रतिदिन दुर्बल होते जाते हैं और क्रमश अपनी सारी शारीरिक व मानसिक शक्ति खोकर, अन्तमें सज्ञाहीन होकर मर जाते हैं।

कैदी सुलेमान ग्वालियर भेज दिया गया। औरंगजेबने अपनी दृढ प्रतिज्ञा तोड दी और अभागे सुलेमान शिकोहको अत्यधिक अफीम पिला-पिलाकर मई १६६२में मार डाला।

६ उत्तराधिकार-प्राप्तिके युद्धमें शुजाके विरुद्ध पहली चढाई, बहादुरपुरका युद्ध

बगालका सूबेदार, शाहजहाका दूसरा पुत्र शाहजादा मुहम्मद शुजा बहुत ही बुद्धिमान व्यक्ति था। उसका स्वभाव सुशील और वर्ताव नम्रतापूण तथा सहृदय था। पर उसने अपने प्रान्तके शासनकी आवश्यक देख-रेख नही की, जिससे वह बहुत ही विगड गया था, उसकी सेना क्रमश अयोग्य होती जा रही थी। उसके मातहतके सभी महकमोका काय सुस्त और ढीला-ढाला हो गया था। उसकी मानसिक शक्तियां भी यदा-कदा ही चेतन होकर अपनी चमक दिखाती थी। अब भी वह मिहनतके साथ काम कर सकता था, परन्तु अपनी धुनके अनुसार कभी-कभी और तब भी कुछ कालके लिए ही वह अपने आलस्यको छोड पाता था।

शाहजहांकी बीमारीकी अतिशयोक्तिपूर्ण खबरें शुजाके पास बगालकी तत्कालीन राजधानी राजमहलमें पहुँची। उसने उसी समय अपने आपको सम्राट घोषितकर अपना अभिषेक किया, तथा इस अवसरपर उसने अबुल फौज नासिरुद्दीन मुहम्मद तीसरा तैमूर दूसरा सिकन्दर शाह शुजा गाजीका नया खिताब धारण किया।

राजमहलसे रवाना होकर वह २६ जनवरी १६५८को बनारस पहुँचा दाराने अपने पुत्र सुलेमान शिकोहको शुजाका सामना करनेके लिए भेजा था। मिर्जा राजा जयसिंह और दिलेरखा रुहेला जैसे अनुभवी और योग्य सेनानायक सुलेमान शिकोहके साथ उसकी सहायताके लिए भेजे गए थे।

१४ फरवरीके दिन प्रात कालमें सुलेमानने बहादुरपुरमें शुजाके पडावपर एकाएक हमला किया। यह स्थान बनारससे ५ मील उत्तर-

पूर्वमे है। यह हमला इतना अचानक हुआ कि बगालके सुस्त सोते हुए सैनिक अपने नायको सहित सब-कुछ पीछे छोडकर भाग गए। शुजा भी बडी कठिनाईसे हाथीपर बैठकर शत्रुओके घेरेमे निकल सका। उसने भागकर अपनी नावोंमें शरण ली। इन नावोंपरसे होनेवाली गोला-बारीके कारण ही शत्रु-सेनाको नदी तटसे दूर ठहरना पडा।

उसकी भय-त्रस्त सेना थल मार्गसे पटनाकी ओर भागी। शुजाने मुगेरमें खाइयो और अपने तोपखानेसे सारा रास्ता रोक लिया। इस कारण सुलेमानको मुगेरमे १५ मील दक्षिण-पश्चिममें सूरजगढ नामक स्थानपर एकाएक जाना पडा। वह आगे बढ ही नही पा रहा था। परन्तु इसी समय धरमतकी पराजयके समाचार उसे मिले, जिससे विवश होकर उसे ही शीघ्रतापूर्वक सन्धि करनी पडी। मईको उसने शुजाको बगाल, पूर्वी विहार और उडीसाका प्रदेश दे दिया और वह वापस आगराके लिए रवाना हुआ।

२१ जुलाईको दिल्लीमें राजदण्ड धारण करनेपर औरगजेबने शुजाको एक मैत्रीपूर्ण पत्र लिखा, जिसमें विहारका पूरा प्रान्त शुजाके अधिकारमें दे दिया था, तथा उसे और उपहार देनेका वचन भी औरगजेबने दिया।

दाराका पीछा करते हुए सुदूर पजाब पहुँचे औरगजेबकी गैर-हाजरीके समाचारोंने शुजाकी महत्त्वाकाक्षाको पुन जाग्रत कर दिया। इस कारण शुजा ३० दिसम्बरको इलाहाबादसे भी आगे तीन दिनकी यात्राकी दूरीपर स्थित खजवा नगर तक जा पहुँचा। यहाँ उसने सुलतान मुहम्मदको अपना मार्ग रोके हुए पाया। इसी समय (२० नवम्बर) औरगजेब तेजीसे चलकर दिल्लीकी ओर वापस आया था और २ जनवरी १६५९को औरगजेब शुजाके पडावसे ८ मील पश्चिममें कोडा नामक स्थानपर अपने पुत्रके साथ आ मिला। उसी दिन मीरजुमला भी दक्षिणसे वहीपर आ पहुचा।

७. खजवामें जसवन्तका विश्वासघात तथा औरंगजेबकी दृढ़ता

४ जनवरीको औरंगजेब अपनी सुसज्जित सेनाको ठीक क्रमसे जमाकर उसके साथ बढ़ता हुआ शत्रु-पड़ावसे एक ही मीलकी दूरी-पर सामने आ डटा । उसी रातको मीरजुमलाने दोनों सेनाओंके बीच पड़नेवाली एक छोटी पहाड़ीपर ४० तोपें चढ़ाईं जहांसे शत्रुओंके सारे पड़ावपर बड़ी ही आसानीसे गोला-बारी हो सकती थी।

५ जनवरीके दिन सूर्योदयसे कुछ ही घंटे पहले औरंगजेबकी सेनामें कुछ हो हल्ला मच गया। अन्धेरेकेकारण यह गड़बड़ी बहुत बढ़ गई । शाही सेनाकी दाहिनी टुकड़ीके नायक महाराज जसवन्त-सिंहने औरंगजेबसे बदला लेनेके लिए एक गहरा षड्यन्त्र रचा था । कहा जाता है कि उसने शुजाको लिखा था कि रात्रिके समाप्त होते-होते स्वयं शाही फौजपर रणभूमिके पीछेसे हमला कर देगा और शुजा भी उसी समय गड़बड़ीमें पड़ी हुई शाही फौजपर तेजीसे टूट पड़े, जिससे दोनों ओरसे घिरकर शाही सेना बीचमें ही नष्ट हो जावेगी। इसलिए आधी रातके कुछ समय बाद ही औरंगजेबको छोड़ अपने राजपूत सैनिकोंके साथ वापस जानेके लिए जसवंत अपने डेरेसे रवाना हुआ और अपनी राहमें पड़ने वाले शाहजादे मुहम्मद सुलतानके पड़ावपर हमला कर दिया । इन राजपूतोंके जो कुछ भी हाथ पड़ा उसे वे लूट ले गए । औरंगजेबके कई पड़ाववालोंको उन्होंने भी लूटा । तब राजपूतोंने आगराकी राह ली । परन्तु अंधेरेमें इस आक्रमणके कारण औरंगजेबके सामनेवाली फौजमें भी गड़बड़ी मच गई ।

परन्तु रात्रिके समय डेरा छोड़कर आक्रमण करनेका साहस शुजा को न हुआ । इस समय औरंगजेबने बड़े ही शान्त दिमागसे सारी परिस्थितिको सम्हाल लिया । जसवन्तके फौज सहित भागने और आक्रमण करनेकी खबर औरंगजेबको मिली, तब वह आधी रातकी नमाज पढ़कर ईश्वरोपासनामें लगा हुआ था । उसने अपनी प्रार्थना समाप्त की और अपने डेरेसे निकल तख्त-ए-रवां (पालकीनुमा

कुर्सी) पर चढकर उसने अपने हाकिमोको आवश्यक हुक्म दिए ।

इस प्रकार औरगज़ेव दृढतापूर्वक डटा रहा और उसने अपनी फौजमे किसी भी प्रकारकी गडवडी न मचने दी। भिन्न-भिन्न दस्तोके नायकोको उसने हुक्म दिया कि वे अपने-अपने स्थानपर साहसके साथ डटे रहे । घवराकर भागनेवाले लोगोको भी वापस इकट्ठा करनेकी ताकीद की। ५ जनवरीका प्रात काल होते-होते बहुत-से स्वामिभक्त सेनानायक और हाकिम फिरसे लौटकर औरग-जेवके झडेके नीचे चले आए । शुजाके २३,००० सैनिकोका सामना करनेके लिए अब भी उसके पास ५०,००० से अधिक सैनिक थे । एव औरगजेवने शुजाके साथ युद्ध करनेम देरी करना ठीक नही समझा ।

खजवा का युद्ध

शुजाको मालूम था कि शत्रुकी तिगुनी फौजके सामने वह परम्परा-गत युद्ध-प्रणालीके अनुसार नही लड सकेगा । इसलिए उसने सारी फौज तोपखानेके पीछे एक कतारमे खडी की। शुजाने शत्रुपर आक्रमण कर अपनी सेनाकी सख्यामे कमी को यो पूरी करनेका निश्चय किया ।

तोपो, गोलो और बन्दूकोकी भयकर गजनाके साथ ५ जनवरी १६५६ ई० के दिन प्रात काल ८ वजे युद्ध आरम्भ हुआ । दोनो पक्षकी सेनाए एक दूसरेसे भिड गईं और तीरोकी बौछार होने लगी । सैयद आलमने तीन मतवाले हाथियोको अपने सामने खदेडते हुए वादशाहके वाए पहलूपर हमला किया, इस आक्रमणका सामना न कर सकनेके कारण इस पहलूकी शाही सेना भाग खडी हुई । उसी समय औरगजेवके मरनेकी गलत खवर भी शाही सैनिकोमे फैल गई, जिससे बहुतसे शाही सैनिक भाग खडे हुए । इसके वाद शत्रुओकी सेनाने शाही सेनाके विचले भागपर हमला किया, तब वहाँ औरग-जेवकी रक्षाके लिए सिर्फ २,००० सैनिक ही रह गए थे । पर शाही सेनाके पिछले दो दस्तोने अब आगे बढकर शत्रुओकी राह रोक ली ।

वादशाह स्वय वाईं ओर मुडा और उसने सैयद आलमको आगे वढनेसे रोका और जिस राहसे वह आया था उसी रास्ते उसे खदेड दिया।

किन्तु तव भी वे तीन मदमस्त हाथी आगे वढते ही जा रहे थे। उनमेंसे एक तो औरगजेवके हाथीके पास आ पहुँचा। युद्धकी यह एक विकट घडी थी। पर अपने हाथीके पैरोको जजीरोसे जकडकर वादशाहने उसे वहाँसे हटने न दिया। इस कारण औरगजेवका हाथी भाग न सका और चट्टानकी तरह अटल वना ही खडा रहा। शत्रुके हाथीका महावत गोलीसे मार दिया गया और शाही महावत इस मस्त हाथीपर पीछेसे चढ वैठा, और उसे अपने वशमे कर लिया। तव वादशाह दाहिनी ओरकी सेनाकी मददके लिये मुडा, जिसे शाहजादे वुलन्द अख्तरके सेनापतित्वमें शत्रुओकी सेनाने वुरी तरह परेशान कर रखा था। शत्रुओके इस दलकी सख्या अधिक न थी, तथापि उसने ऐसे साहसके साथ आक्रमण किया कि शाही सेनाके पैर उखड गए थे, उसमें गडवडी मच गई और वह भागने लगी थी। इतनी वडी कठिनाइयो और विपत्तिकी घडीमें भी औरगजेव शान्तचित्त वना रहा और उसकी स्थिर वुद्धिने उसका साथ न छोडा। उसके किसी भी सैनिक चालका कोई भ्रमपूर्ण अर्थ न लगा ले, इसलिए अपने नौकरो-के द्वारा अपना वास्तविक उद्देश्य उसने अपने सेनानायकोको पहले सूचित कर दिया और उनसे निडरतापूवक लडनेके लिए कहा गया।

तव औरगजेव सेनाके मध्यकी ओर वढता हुआ अपनी पिछडती हुई दाहिनी टुकडीमें जा शामिल हुआ। उस दिनके युद्धकी यही निश्चयात्मक घडी थी। शाही फौजके दाहिने पक्षने अव लौटकर शत्रुपर आक्रमण किया और वडी ही वहादुरीसे लडते हुए भयकर मार-काटके साथ अपने शत्रुओको साफ कर दिया।

उसी समय जुल्फिकारखाँ और सुलतान मुहम्मदके नायकत्वमें शाही सेनाने आगे वढकर हमला किया, जिससे शत्रु-सेनाकी पहली कतार तितर-वितर होने लगी। तव सारी शाही सेना आगे वढी

और उसने शुजाकी सेनाके मध्य भागको चारों ओरसे घेर लिया। तोपोंके गोले शुजाके सिरपरसे होकर जा रहे थे, एव वह हाथी जैसी खतरनाक और प्रमुख सवारीको छोडकर घोडेपर जा बैठा।

शुजाके ऐसा करते ही युद्धका अन्त हो गया। उसके सैनिकोने अपने स्वामीको मरा हुआ समझा। एक ही क्षणमे बची-खुची बगाली सेना तितर-बितर होकर भाग खडी हुई। शुजाको भी अपने पुत्रो और सेनानायक सैयद आलम सहित रण-क्षेत्रसे भागना पडा। शाही सेनाने उसके सारे पडाव और सामानको लूट लिया।

६ शुजाका पीछा करना और बिहारमें युद्ध

खजवाके युद्धमें विजयी होनेके दूसरेदिन औरगजेबने शामको शुजाका पीछा करनेके लिए एक सेना भेजी। शुजा मुंगेरको भागा और वहा उसने १५ दिन तक शत्रुका सामना किया (६ फरवरीसे ६ मार्च) । इस प्रकार शुजा बगालके मार्गको रोके रहा।

मार्चके आरम्भमें मीरजुमला मुंगेर पहुँचा। उसने खडगपरके राजा बहरोज़की शाही फौजको मुगेरके किलेसे दक्षिण-पूर्वमे जो घाटिया और जगल है, उनमेंसे ले जाकर उसे शुजाकी फौजके पीछे पहुँचा दिया, तब तो शुजा मुंगेरसे ६ मार्चको भागकर साहिबगज पहुँचा। वहाँ एक दीवाल बनाकर वह उस सकडी घाटीका मार्ग रोके रहा (१० मार्च से २४ मार्च) । पर शाही सेनानायकोने वीरभूमि और चटनगरके जमीदारको अपनी ओर मिला लिया तथा उसकी सहायता और निर्देश पाकर शाही सेना २६ मार्चको सूरी जा पहुँची।

परन्तु इसी समय शाही सेनामे यह झूठी अफवाह फैली कि दारा अजमेरके पास विजयी होकर अब राजपूत राज्योसे अपना बदला ले रहा था, जिसके कारण मीरजुमलाके मातहत राजपूत सैनिकोंके दल अपने दूरस्थ घरोको वापिस लौटनेके लिए रवाना हो गए। उस समय तक पीछे हटता-हटता शुजा मालदा जिले तक

जा पहुँचा था (६ अप्रेल) । शाही फौजने १३ अप्रेलको राजमहल-पर अधिकार कर लिया । इस प्रकार गगासे पश्चिमका सारा प्रदेश शुजाके हाथसे निकल गया ।

अब दोनो पक्षोमें चलनेवाला यह युद्ध मगर और शेरके युद्धके समान विचित्र द्वन्द्व हो गया । शुजाके साथ अब केवल ५,००० सैनिक ही रह गए थे । थलपर शुजाकी शक्ति अब अत्यधिक कमजोर हो गई थी । उधर मीरजुमलाकी थल-सेना बहुत ही शक्तिशाली थी । उसके साथ ही शुजाके पास बडी-बडी तोपें थी जिन्हे विदेशी बन्दूकची चलाते थे । बगालका पूरा नव्वारा (जल-सेना) भी उसके ही अधिकारमें था, जिससे शुजाको एकसे दूसरी जगह जानेकी बडी सुविधा थी । यो उसकी थल-सेनाकी शक्ति कई गुनी बढ जाती थी । इसके विपरीत नावोके अभावमें मीरजुमलाकी थल-सेनाकी सारी शक्ति और उसके सारे प्रयास व्यर्थ हो जाते थे ।

शुजाने गौर किलेसे ४ मील पश्चिममें टाडा नामक स्थानको अपना प्रधान सैनिक-केन्द्र बनाया और गगाके पूर्वी तटके अनेक स्थानापर खाइयाँ खोदी । परन्तु मीरजुमलाने दूर-दूरसे नावें उपलब्ध की, तथा औरगज़ेबने भी पटनाके शासकके नायकत्व में एक और सेना उसकी मददके लिए भेजी । गगाके बाएँ किनारेपर आगे बढते हुए शुजाके दाहिनी ओरवाली फौजके पीछे तक पहुचकर शुजाकी सेनाका ध्यान दूसरी तरफ भी बँटाना इस सेनाका प्रधान उद्देश्य था ।

शाही फौज पूरे पश्चिमी तटपर फैली हुई थी । सुदूर उत्तरमें मुहम्मद मुराद बेग राजमहलमें था । शाहजादा स्वय अधिकाश सेनाको लिए जुल्फिकारखाँ और इस्लामखाके साथ दक्षिणमें १३ मीलकी दूरीपर दोगाची स्थानपर शुजाके सामने डटा हुआ था । लगभग ८ मील दक्षिणमें दूनापुरमें अली कुलीखाँ नियुक्त था । मीरजुमला ६ या ७ हजार सेना सहित मुगल सीमाके दक्षिणतम

किनारेपर, राजमहलसे २८ मील दक्षिणमे सूती नामक स्थानमें अधिकार जमाए बैठा हुआ था। दोगचीके पडावसे मीरजुमलाके आदेशानुसार शाही सेनाने शुजापर दो वार सफलतापूर्वक आक्रमण किए। परन्तु उसका तीसरा प्रयास असफल रहा, तथा उसमें शाही सेनाको वडी हानि उठानी वडी, क्योकि इस वार शुजा सजग हो चुका था और तव तक उसने अपनी रक्षाकी पूरी तैयारी कर ली थी। इस प्रकार ३ मई १६५६को इस आक्रमणमे व्यथ ही शाही सेनाके चार ऊचे पदाधिकारी और सैंकडो सैनिक काम आए। इसके सिवाय लगभग ५०० शाही सैनिकोका शत्रुओने कैदी भी वना लिया।

८ जूनको अधिक रात गए शाहजादा मुहम्मद सुलतान दोगाचीमें अपने डेरेसे चुपचाप भाग कर शुजासे जा मिला। वहुत दिनोसे मीरजुमलाके सलाहके अनुसार ही काम करते-करते वह घवरा उठा। उसकी इच्छा थी कि स्वतन्त्र होकर वह राज्य करे। शुजाने उसे अपनी पुत्री गुलरुख वानू व्याह देने और तव राजगद्दी प्राप्त करनेमें उसकी सहायता करनेका गुप्तरूपसे वचन दिया था। इस प्रकार उस मूख शाहजादेको शुजाने अपनी ओर मिला लिया। यह समाचार सुनकर मीरजुमलाने दृढतापूवक अपने सैनिको को सूतीमे शान्त रखा। शाहजादेके भागे जानेके दूसरे दिन सुवहमें वह दोगाचीमें शाहजादेके डेरेपर गया, और वहा उसने अमन और अनुशासन स्थापित किया। दूसरे नायकोने मीरजुमलाको अपना एकमात्र सेनानायक और अधिकारी मानकर उसकी आज्ञानुसार चलनेका वादा किया। इस प्रकार सारी फौज इस वडी आफतसे वच निकली। इस सेनाने केवल एक ही आदमी खोया और वह था स्वय शाहजादा।

उसके कुछ ही दिनो वाद बगालकी घनघोर वर्षाके कारण युद्ध स्थगित हो गया। मीरजुमलाने मासुमा-वाजारमें डेरा डाला और वाकी फौज जुल्फिकारखांकी अध्यक्षतामें राजमहलमें ठहरी रही। वर्षाके कारण राजमहलके आसपासका स्थान एक दलदलपूण तालाव,

वन गया था। शहरकी खाद्य-सामग्रीको भी शुजाने रोक दिया। इस तरह मुगल सेनाके पास खानेके लिए नाम-मात्रको भी अन्न नही रहा। ऐसी ही दशामे अपने वेडेको लेकर शुजाने अकस्मात् हमला किया और २२ अगस्तको उसने राजमहल शहर जीत लिया, तथा मुगलोके सारे सामान-असवावपर भी अधिकार कर लिया।

१० बगालमें युद्ध

मीरजुमला वेलघाटमे डेरा डाले हुए था। दिसम्वर १६५९ के आरम्भमें शुजा राजमहलसे उसके विरुद्ध वढा। शुजाने शाही फौजपर दो वार आक्रमण किए जिनसे विवश होकर मीरजुमलाको मुर्शिदावाद लौटना पडा। उसके साथ ही साथ शुजा भी नाशीपुर तक चला गया। परन्तु इसी समय विहारका शासक दाऊदखा एक दूसरी फौजके साथ टाडाकी ओर जा रहा था। यह खवर पाते ही शुजा २६ सितम्बरको नाशीपुर छोड सूती होता हुआ टाडाकी ओर वढा। मीरजुमलाने तुरन्त ही उसका पीछा कर ११ जनवरी १६६० को नाशीपुर फिरसे जीत लिया। इस प्रकार गगाके पश्चिमका पूरा प्रदेश शुजाके हाथसे निकल गया। अव मीरजुमला सामदा द्वीपके उत्तरमें राजमहल, अकवरपुर और मालदा होता हुआ एक लम्वा चक्कर काटकर एकाएक दक्षिणकी ओर पलटा और पूर्वकी ओरसे टाँडा जा पहुचनेका उसने आयोजन किया। पटनासे सहायतार्थ लाई गई १६० नावोके द्वारा उसने अपनी फौजको गगाके पार उतारा और राजमहलसे १० मील दूर दाऊदखासे जा मिला।

शत्रुओकी अपेक्षा अव शुजाकी सेना वहुतही कम रह गई थी। उसके भागनेके लिए फरवरी १६६०मे केवल दक्षिणका ही एकमात्र रास्ता रह गया था और वह भी था वहुत ही खतरनाक। इसी समय शाहज़ादे मुहम्मद सुलताननें भी शुजाका साथ छोड दिया और दोगाचीके मुगल डेरे आकर फिरसे वह शाही फौजमें आ मिला (८ फरवरी)। पर मुहम्मद सुलतानका वाकी रहा सारा जीवन जेलमें ही वीता।

६ मार्चको मीरजुमला मालदा पहुँचा और वहाँ वह एक माह तक शुजाके विरोधको पुरी तरह समाप्त कर देनेके लिए आखिरी हमलेकी तैयारी करता रहा। मालदासे कुछ मील दूर महमूदाबादके अपने डेरेसे ५ अप्रेलको वह निकला। दस मील दूर जाकर महानन्दा नदीके अख्यात घाटपर डटी हुई शत्रु-सेनाकी छोटी-सी टुकडीपर उसने अचानक ही हमला कर दिया। गडबडीमें शत्रु घाटकी उथली राह चूक गए, जिससे कोई १,००० से ज्यादा सैनिक नदीमें डूबकर मर गए।

परन्तु मीरजुमलाकी इस चालसे इस चढाईका अन्तिम परिणाम बहुत ही जल्द निकल गया। शुजाकी शक्तिका पूरी तरह अन्त हो गया। वह ६ अप्रेलकी सुबह टाँडाको भागा और अपनी बेगमोंको उसने हुक्म दिया कि वे बिना कपडे बदले ही उसके साथ भागनेको तैयार हो जावें। उसका खजाना और कुछ चुनी हुई सामग्री चार नावोंपर लादकर नदीकी राह आगे रवाना कर दी गई। शाम होते-होते वह खुद भी रवाना हो गया। उसके दो छोटे लडके (बुलन्द अख्तर और जैनुलूआबदीन), उसके प्रधान सेनानायक, कुछ सैनिक, सेवक और ख्वोजे, आदि कुल मिलाकर ३०० व्यक्ति यो ६० नावो पर बैठकर उसके साथ चले।

दूसरे दिन (७ अप्रेलको) मीरजुमलाने टाडापर अधिकार करके वहाँ शान्ति स्थापित की। उसने सारी सामग्री, जो कि लुटेरोंके पास थी या किसी भी तरह उनसे मिल सकी, एकत्रित कर उसे जब्त कर लिया। शुजाकी फौज भी ९ अप्रेलको उसके साथ आ मिली। दस दिनके बाद मीरजुमला टाडासे ढाकाके लिए रवाना हुआ।

११ शुजाका बगाल छोडना एव उसका अन्त

अपने सौभाग्य, सम्पति और यशका दिवाला निकालकर शुजा १२ अप्रेलको बगालकी दूसरी राजधानी ढाका पहुँचा। पर वहाँ उसको शरण न मिली। वहाँके सारे जमीदार उसके विरुद्ध उठ

खडे हुए, जिससे ६ मईको वह ढाका छोड जल-मार्गसे समुद्रकी ओर चला। ढाका छोडनेके दो दिन वाद उसके पास ५१ जहाज पहुँचे, जिन्हें अराकानके राजाके चटगांव-वाले सूवेदारने भेजा था। वगालका प्रान्त जीतनेकी उसकी आशाए उसने अव छोड दी, और कडा दिल करके जगली माघोके प्रदेशमें चले जानेका उसने निश्चय कर लिया।

यह समाचार सुनकर उसके कुटुम्वियो और अनुचरोमें कुहराम मच गया। परन्तु शुजा औरगजेवके हाथो पडकर दाराशिकोह और मुरादवख्शकी-सी अपनी दुर्गति कराना नही चाहता था। १२ मई १६६०को वह अपने पूर्वजोकी जन्मभूमि भारत तथा जिस वगालपर उसने २० वर्षसे अधिक शासन किया था, उन्हें हमेशाके लिए छोडकर चल दिया। अराकानकी इस जल-यात्रामें उसके कुटुम्वी और ४० से कम अन्य आदमी उसके साथ थे।

अपने नए निवास-स्थानमें भी शुजाको शान्ति न मिली। वहाके राजाको मारकर उसका राज्य छीन लेनेके लिए उसने षड्यन्त्र रचा। वह चाहता था कि उस के वाद एक बार वह आगे बढकर पुन वगालमें अपना भाग्य परख ले। अराकानके राजा को षड्यन्त्रकी खवर लग गई और उसने शाह शुजाको कत्ल करनेका आयोजन किया। तव तो शुजा कुछ आदमियोको साथ ले जगलमें भाग गया। माघ लोगोने उसका पीछा किया और अन्तमे उसके शरीरके टुकडे-टुकडे कर दिए (डच रिपोर्ट-फरवरी, १६६१)।

भाग ३

अध्याय ६

राज्य-कालका पूर्वार्द्ध; उसकी रूपरेखा

१ औरंगजेब के राज्य-कालके दोनो अर्द्धांशोमें विभिन्नताएँ, औरंगजेबकी व्यक्तिगत हलचलें

औरंगजेबका सारा शासन-काल स्वाभाविकरूपेण ही पच्चीस-पच्चीस वर्षोंके दो समान भागोमें बँट जाता है। पहले अर्धाशमे वह उत्तरी भारतमें था, और दूसरा उसने दक्षिणमें ही बिताया। पहले कालमें उत्तर भारतको ही ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त हुआ। यह बात सिर्फ इसलिए ही नही थी कि उस समय औरंगजेबका निवास उत्तरी भारतमें था, वल्कि इसलिए कि इसके समयके सारे सार्वजनिक और सैनिक कार्योंका सूत्रपात उत्तरी भारतमे ही हुआ था। इस प्रथम पूर्वार्द्धमें औरंगज़ेबने दक्षिणकी ओर अधिक ध्यान नही दिया। परन्तु शासन-कालके उत्तरार्द्धमे स्थिति बिलकुल ही बदल गई थी, क्योकि उस समय राज्यकी सारी शक्तियाँ दक्षिणमें ही जुटी हुई थी। बादशाह स्वय अपने कुटुम्बी, दरबारियो, बडे-बडे हाकिमो और सारी सेनाके साथ पूरे पच्चीस वर्ष तक दक्षिणमें ही डटा रहा। इन बरसोमें उत्तरी भारतका महत्त्व घट जाना स्वाभाविक ही था। इस अनिच्छापूर्ण देश-निकालेके दिनोमें दक्षिणमे पडे हुए सारे अधिकारी तथा सैनिक उत्तरी भारतमें अपने-अपने घरोको वापिस जानेके लिए

लालायित रहते थे। यह हालत यहाँ तक पहुँची थी कि घर जानेके लिए उत्सुक एक अफसरने दिल्लीमें केवल एक वर्षका अवकाश बितानेके लिए बादशाहको एक लाख रुपये भेंट करना स्वीकार किया। राजपूत सैनिकोंकी भी शिकायत थी कि जीवन-भर अपने घर और कुटुम्बसे इतनी दूर दक्षिणमें पड़े रहनेके कारण उनके वंश धीरे-धीरे नष्ट हो रहे थे। सम्राट् तथा सब सुयोग्य अफसरोंका सारा ध्यान उस एक ही ओर केन्द्रित होनेके कारण उत्तरी भारतका शासन स्वाभाविकतया ढीला होकर धीरे-धीरे बिगड़ता ही गया, साम्राज्यकी प्रजा दिन-प्रति दिन गरीब होती गई। समाजकी ऊपरी कक्षा वालोंके आचार-विचार भ्रष्ट हो रहे थे, और उनका नैतिक तथा मानसिक पतन होनेके कारण, उनकी अकर्मण्यता ऐसी बढ़ती जा रही थी कि समाजके लिए उनकी उपयोगिता नाम-मात्रको ही रह गई थी। यह परिस्थिति पूरे पच्चीस वर्ष तक बनी रही, जिस अरसेमें भारतीय समाजकी एक पूरी पीढ़ी निकल गई। अतएव अन्तमें साम्राज्यके कई एक भागोंमें उपद्रव उठ खड़े हुए और अराजकता फैल गई।

औरंगजेबके शासन-कालके पूर्वार्द्धकी सारी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ उत्तरी भारतके किसी एक ही स्थानमें केन्द्रित न हुई, किन्तु उनका स्थान बड़ी तेजीसे समय-समयपर बदलता ही रहा। मुगल साम्राज्यके शाही झण्डे भारतकी आखिरी पश्चिमी सीमापर काबुलसे लेकर उसकी अन्तिम पूर्वीसीमामे नामरूपकी पहाड़ियों तक फहरा उठे। उसी प्रकार अपनी उत्तरी सीमाके पहाड़ोंसे भी परे तिब्बतसे लेकर साम्राज्यकी दक्षिणी सीमाके पार बीजापुर तक शाही सेना जा पहुँची थी। बड़ी दूर-दूरके अनेकों विभिन्न जंगली इलाकोंमें विद्रोहकर अराजकता फैलानेवाले किसानों और राजाओंके विरुद्ध सेनाएँ भेजी गई। इसी कालमें हमे बादशाहकी असहिष्णुताका सच्चा नग्न स्वरूप दिखाई पड़ता है।

शासन-कालके दूसरे वर्षमें १३ मई १६५६ ई० को औरंगजेब

बडी धूमधामके साथ सिंहासनपर बैठा और अपनी विजयके उपलक्षमें बहुत बडा जलसा किया। इसके बाद अत्यधिक समय तक वह अपनी राजधानीमें ही रहा और वहींसे राज्यका शासन-प्रबन्ध तथा उसकी देख-भाल करता रहा। उसके सिंहासनारूढ होनेके अवसरपर विदेशी मुसलमानी राज्योकी ओरसे बधाई देनेके लिए आनेवाले एलचियोंका उसने उसी राजधानीमें पूरे ठाठ-बाटके साथ स्वागत किया। इन विदेशी मेहमानोंके लिए उसने साम्राज्यके वैभवका ऐसा प्रदर्शन किया कि उसे देख वर्साईकी महान् समृद्धिको देखनेवाली आँखे भी चौंधिया गईं। शासन-कालके ५वें वर्षमें वह दिल्ली छोड ८ दिसम्बर १६६२को काश्मीर यात्राको निकला और १८ फरवरीको वहाँसे वापिस लौट आया। फरवरी १६६६ में पिताकी मृत्युके कारण उसे आगरा जाना पडा। जब तक शाहजहाँ कैद रहा औरंगजेबका आगरेमें अपना दरबार नही लगाना स्वाभाविक ही था, उन दिनो वह प्राय दिल्लीमें ही रहा।

सन् १६७४ ई० में अफरीदियोंके भयानक विद्रोहके कारण पेशावरके पास रहकर सेनाका सचालन करनेके लिए वह हसन अब्दाल गया और २६ जून १६७४से २३ दिसम्बर १६७५ तक वह वहाँ रहा, इस यात्रासे वह २७ मार्च १६६६ को दिल्ली वापिस लौटा। सन् १६७९ ई० में महाराजा जसवन्तसिंहकी मृत्युपर वह उसके राज्यको मुगल साम्राज्यमें मिलानेके लोभसे अजमेर गया। अगले दो वर्ष उसने राजपूतानेमें ही बिताए। फिर अपने राज्य-कालके पच्चीसवें वर्ष मे वह दक्षिणकी ओर बढा। उसने अपने राज्यके अन्तिम पच्चीस वर्ष कठिन और फलहीन परिश्रममें वहाँ बिताए, उसके जीवनका अन्तभी उसी सुदूर दक्षिणमें ही हुआ।

औरंगजेबका पहला राज्यारोहण हिजरी सन् के अनुसार पहली जीकाद १०६८ हि० (२१ जुलाई १६५८) को हुआ था, किन्तु उसका दूसरा राज्याभिषेक २४ रमजान १०६९ हिजरी (५ जून १६५९) को हुआ। उसकी आज्ञा थी कि सरकारी कागज-पत्रोंके लिए

उसके राज्य-कालके वर्षका प्रारम्भ पहली रमजानसे गिना जाए।

किन्तु धार्मिक उपवास और ईश्वरोपासनाके इस मासमें भोज और आनन्दोत्सव मनानेमें कठिनाइयाँ होती थीं, एव चौथे वर्षमे वह रमजानकी समाप्तिके दूसरे दिन (कभी ईदसे ही और कभी एक दिन बाद) सिंहासनपर बैठकर राज्यारोहणका वार्षिक उत्सव मनाना आरम्भ करता था, और अगले दस दिन तक ये उत्सव होते रहते थे। राज्य-कालके २१वें वर्ष (१६७७ ई०) में राज्याभिषेककी तिथिपर उत्सव मनाने, सरदारोंसे भेंट लेने तथा अन्य किसी भी प्रकारके वैभवका प्रदर्शन करने की औरंगजेबने पूरी मनाही करदी।

२ औरंगजेबकी बीमारी, १६६२

राज्यारोहणके ५वें वर्षके आरम्भमें वह सख्त बीमार हो गया। बीमारीमें भी लगातार परिश्रम करने और धार्मिक कार्य-क्रमोंमें लगे रहनेके कारण उसकी बीमारी बढती ही गई। रमजानके उपवासो से (१० अप्रेलसे ९ मई १६६२) उसकी कमजोरी बढती गई। १२ मईको उसे बुखार हो गया। तब हकीमोंने उसका इतना खून निकाला कि वह मारे कमजोरीके यदा-कदा बेहोश हो जाता था। उसके चहरे पर मुर्दनी भी छा गई।

पाच दिन तक उसकी दशा ऐसी ही बनी रही। परन्तु-औरंगजेबमें आत्मबल बहुत था। उस दिन शामको तथा दूसरे दिन भी लकडीका सहारा लेकर उसने कुछ ही समयके लिए दरबारमें दर्शन दिए और शाही झण्डोकी सलामी ली। वह एक माह तक बीमार रहा, परन्तु तब जनताको कभी घबराने या भय करनेका कोई कारण नही रह गया। २४ जूनको उसके पूर्ण स्वस्थ होनेका उत्सव मनाया गया। डेढ माह तक उसकी इस बीमारीके समय भी चारो ओर शान्ति बनी रहना उसकी शासन-सत्ताकी सुदढता एव उसके निजी प्रभावका अनोखा प्रमाण था।

स्वस्थ होनेपर शारीरिक शक्ति प्राप्त करने तथा अपना स्वास्थ्य सुधारनेके लिए उसे काश्मीर जानेकी सलाह दी गई। मई १६६३

ई० के आरम्भमें वह लाहौरसे कश्मीरके लिए रवाना हुआ। श्रीनगरमें उसने ढाई माह आरामसे काटे। वह लौटकर २९ सितम्बर १६६३ को लाहौर और अगली १८ जनवरीको दिल्ली पहुँचा।

३ प्रान्तोमें विद्रोह

राज्य-कालके इन आरम्भिक २५ वर्षोमे मुगल साम्राज्यकी सीमासे लगे हुए कुछ छोटे-छोटे प्रदेशोको जीत लिया गया।

इन वरसोमे मुगल-साम्राज्यकी आन्तरिक शान्ति भगके प्रधानया तीन कारण हुए —

(१) राज्यारोहणके समय अन्य भाइयोके साथ उत्तराधिकार-प्राप्तिके लिए होने वाले अनिवार्य युद्ध।

(२) शासन-कालके १२वें वर्षमे हिन्दू-मन्दिर तोडनेकी नीति अगीकार करनेके फलस्वरुप हिन्दुओके विद्रोह।

(३) साम्राज्यके अधीन राजाओके विद्रोह। सुदूर जगलो या सम्राज्यके एकान्त प्रदेशोके हाकिम भी यदा-कदा सम्राट्की आज्ञाओका उल्लघन कर कभी-कभी विद्रोह कर बैठते थे।

यदा-कदा अपने आपको औरगजेबका मृत भाई या भतीजा घोषित करनेवालोने भी कई विद्रोह आरम्भ किए थे। परन्तु ये उपद्रव स्थानीय ही रहे।

बीकानेरका राव करण दाराकी आज्ञानुसार औरगजेबकी आज्ञा लिये बिना ही सन् १६५७ ई० मे उत्तरी भारतको लौट आया था। उसने नये बादशाह औरगजेबको समय-समयपर दिए जाने वाले उपहार तथा कर भेजना एव दरबारमें स्वय उपस्थित होना भी बन्द कर दिया। एव १६६० ई० में उसके विरुद्ध सेना भेजी गई, तब राव करणने हार मान ली और बादशाहकी सेवामें उपस्थित होकर क्षमा-प्रार्थना की। तब औरगजेबने उसे क्षमा कर दिया।

दूसरा महत्त्वपूर्ण विद्रोही पूर्वी बुन्देलखण्डमें महेवाका राजा चम्पतराय था। मई १६५८ में वह औरगजेबसे जा मिला था,

परन्तु जब शुजा राजवाकी ओर बढ रहा था तब वह शाही सेनासे भाग खडा हुआ और घर लौटकर उसने फिर लूटमार शुरू कर दी। उसे दबानेके लिए बादशाहने १० फरवरी १६५९को एक फौज भेजी। उस प्रदेशके सब लोग चम्पतारायके विरुद्ध हो गए थे। वह एकसे दूसरी जगह भागता फिरा और बादशाही फौज उसका लगातार पीछा करती ही रही। अन्तमे उसके ही झूठे मित्रोने उसके साथ विश्वासघात किया। बीमारीके कारण वह बहुत ही कमजोर हो गया था, एव शत्रुओसे अपना बचाव नही कर सकता था। इसलिए कैद किए जानेसे बचनेके लिए आधे अक्तूबर (सन् १६६१ ई०) के लगभग उसने आत्महत्या कर ली।

४ पालामऊ, आदि देशो की विजय

विहारकी दक्षिणी सीमापर पालामऊ जिला है। वह सारा प्रदेश जगली है एव वहाँ समतल भूमि नही है। घाटियोमें दूर-दूर बसे हुए छोटे-छोटे गावोकी आबादी बहुत ही कम है। १७वी व १८वी शताब्दीमें वहाँपर प्रधानतया द्रविड जातिके चेरे लोगोकी बस्ती थी। १६४३ ई० मे मुगलोने वहांके प्रताप चेरे नामक राजाको अपना मनसबदार बना लिया और उससे एक लाख रुपया सालाना कर वसूल करने लगे। परन्तु इतना अधिक कर देना उसके लिए सम्भव न था, एव वह उसे चुका न सका और बहुत-सा कर देना बाकी रह गया।

अप्रेल १६६१मे बादशाहकी आज्ञासे विहारके सूबेदार दाऊदखाँने पालामऊपर चढाई कर दी। दिसम्बरमे मुगल सेना पालामऊके पास जा पहुँची और शहरपर हमला किया। तब तो वहाका राजा रातोरात किलेसे निकलकर भाग गया। मुगलोने दूसरे दिन पालामऊपर कब्जा कर लिया। इस प्रकार पालामऊ विहारके सूबेमे मिला दिया गया।

१६६५ ई० मे काठियावाड-स्थित नवानगर राज्यमें उत्तरा

धिकारके लिए आपसी झगडा हुआ जिसमें मुगल सूबेदारको हस्तक्षेप करना पडा। जूनागढके फौजदारने झूठे हकदारको मारकर वास्तविक हकदारको गद्दीपर बैठाया। (फरवरी १६६३)।

५ अनाज-करका अन्त बादशाहके इस्लामी फरमान

राज्यारोहणके, दूसरे जलसेके बाद ही औरगजेबने दो आवश्यक हुक्म दिए। उत्तराधिकारके युद्धके कारण उत्तरी भारतकी खाद्य-स्थिति चिन्तनीय हो गई थी। अनाज, अकालके समयकी-सी बढी हुई कीमतोपर बिक रहा था। साम्राज्य-भरमें जगह-जगह पर आयात-कर लगनेसे यह कठिनाई और भी बढ गई थी। नदीके सब घाटो, पहाडोके बीजकी घाटिया तथा विभिन्न सूबाकी सरहदोपर मालका दसवाँ हिस्सा राहदारी अर्थात रास्ताकी देख-रेख एव उन्हे सुरक्षित रखनेके करके रूपमे लिया जाता था। आगरा, दिल्ली, लाहौर और बुरहानपुर, जैसे बडे-बडे शहरोमे बाहरसे लाई गई हर खाद्य वस्तुपर पण्डरी नामक कर लिया जाता था। औरगजेबने राहदारी और पण्डरी, दोनो कर मुगल साम्राज्यके खालसा इलाकामे बन्द कर दिए, एव जमीदारो और जागीरदारोको उसने अपने वहाँ भी ऐसा ही करनेकी सलाह दी। शाही हुक्मकी तामील की गई जिससे कम अनाजवाले स्थानामें आवश्यक अनाज बिना बाधाके जाने लगा। अन्नकी कीमत भी पुन काफी घट गई। औरगजेबने १६७३ मे बहुत कम अमदनीवाले असुविधा-जनक कई एक अन्य करोको भी बन्द कर दिया। (देखो मेरा ग्रन्थ 'मुगल एडमिनिस्ट्रेशन' अध्याय ५)। तमाकू पर चुगी-कर १६६६ ई० मे बन्द किया गया।

दाराशिकोहके विधर्मी कृत्यो और सिद्धान्तोके विरुद्ध अपने आपको इस्लामका कट्टर अनुयायी कहकर औरगजेबने गद्दीपर अधिकार किया था। दूसरी बार राज्याभिषेक (१६५९) होनेके कुछ समय बाद ही औरगजेबने मुगल साम्राज्यमे कट्टर इस्लामकी

पुनर्स्थापनाके लिए और लोगोंके जीवनको कुरान शरीफके नियमानुसार बनानेके लिए निम्नलिखित नये फरमान निकाले —

(१) अब तक मुगल बादशाहोंके सिक्कोंपर कलमाकी मुहर लगती थी, परन्तु अब औरंगजेबने इसे बन्द करवा दिया।

(२) ईरानके पुराने बादशाह तथा उनके बाद वहांके मुसलमान शासकोंके समान भारतके मुगल बादशाह भी अब तक प्रति वर्ष नौरोज का त्योहार मनाते थे। वह दिन उत्सव और आनन्दका दिन मानते थे। उस दिन सूर्य मेष राशिमें प्रवेश करता है, एवं ईरानके अग्नि-उपासक पारसियोंके नये वर्षका यह पहला दिन होता था। औरंगजेबने इस उत्सवको न मनानेका हुक्म दिया, और नौरोजके उत्सवके स्थानमें राज्याभिषेकके दिनका उत्सव मनानेका तरीका चलाया। औरंगजेबके समयमें यह दिन रमजान माहके बाद ही मनाया जाता था।

(३) पैगम्बरकी आज्ञाएं अमलमें लाई जाती रही है, यह देखने एवं सार्वजनिक सदाचारकी जांचके लिए एक मुहतसिब नियुक्त किया गया। कुरानमें जिन बातोंका विरोध किया गया है, उन्हें वह बन्द करता था, जैसे शराब पीना, भंग तथा अन्य नशीली चीजोंका व्यवहार, जुआ खेलना, व्यभिचार-कर्म, आदि। परन्तु अफीम और गांजेके व्यवहारकी रोक नहीं की गई थी। धर्म-विरोध विचारों व कार्योंके लिए और नमाज न पढने तथा उपवास तोडनेके जुर्मोंकी सजा देना भी उसीका काम था। इसके हाथके नीचे कुछ मनसबदार एवं अहदी भी नियुक्त थे, जो उसकी आज्ञाओंको अमलमें लाते थे।

(४) १३ मई १६५९को सब प्रान्तोंमे भंगकी पैदावार रोकनेके लिए हुक्म निकाला गया।

(५) सारी टूटी और पुरानी मसजिदों और खानकाहों की मरम्मत की गई और उनमें इमाम, मुअज्जिन और खतीब नियुक्त किए गए, जिन्हें नियमित रूपसे साम्राज्यके खजानेसे तनख्वाह मिलती थी।

औरगजेवकी धार्मिक कट्टरता अवस्थाके साथ वढती ही गई। अपने निजी विचारोके अनुसार अपनी प्रजाके जीवनको उदासीनता-पूर्ण गम्भीरता प्रदान करनेके लिए औरगजेवने जो-जो प्रयत्न किए उनका यहाँ सक्षेपमे उल्लेख किया जा सकता है।

(६) गद्दीपर वैठनेके बाद ग्यारहवें वर्षमे उसने शाही दरवारमे गवैयोको अपने सामने नाचने-गानेसे मना कर दिया। धीरे-धीरे दरवारमें गाने-वजानेकी पूरी मनादी कर दी गई।

कला-प्रेमियाने आम जनतामें औरगजेवकी खिल्ली उडाकर बदला निकाला। वह जव मसजिदको जा रहा था तब एक शुक्रवारके दिन कोई एक हजार गवैये एकत्रित हुए। उनके साथ सुरुचिपूर्वक सजे हुए लगभग बीस जनाजे थे। वे सव वहुत जोर-जोरसे दुखित होकर रोते-चिल्लाते जा रहे थे। औरगजेवने दूरसे ही उन्हें देखा और उनका रोना भी सुना। इस सबका कारण जाननेके लिए उसने अपने आदमी भेजे। गवैयोने जवावमे कहला भेजा कि अपनी आज्ञा द्वारा बादशाहने सगीत-विद्याको मार डाला है, इसलिए उसे अब कब्रमें गाडनेके लिए जा रहे हैं। बादशाहने उत्तर दिया कि उसे अच्छी तरह ही गहरा दफनाया जावे।

(७) चान्द्र वर्ष और सौर वर्षके अनुसार बादशाहकी इन दो जन्म तिथियोपर वह सोने और चाँदीसे तुलता था। अब इस प्रथाको वन्द कर दिया गया।

(८) आगरा किलेके हाथी-पुल दरवाजेपर जहाँगीरने १६६८ में पत्थरके दो हाथी रखवाए थे, वादशाहने उनको वहासे हटवा दिया।

(९) एक दूसरेको प्रणाम करनेकी अब तक प्रचलित हिन्दू तरीका काममे लानेकी अप्रेल १६७० ई० मे दरवारियोको मनादी करदी गई। उन्हे आज्ञा दी गई कि वे सलाम-अलै-कुम करे, जिसका अर्थ आपको शान्ति मिले' होता है।

(१०) अपने जन्म-दिवसके सारे उत्सवोको मनाना उसने मार्च १६७० ई० में वन्द कर दिया। शाही नगाडा अब तक सारे

दिन-बजा करता था, इसके बाद वह दिन-भरमें केवल तीन घण्टे ही बजने लगा। अपने राज्य-कालके इक्कीसवें वर्षमें (नवम्बर, १६७७ ई०) उसने राज्यारोहणके दिन हर साल मनाई जानेवाली खुशियाँ भी बन्द कर दी।

(११) बड़े-बड़े राजाओंको जब उनका राज्य सौंपा जाता था उस समय बादशाह स्वयं उनके तिलक या टीका करता था। यह एक हिन्दू प्रथा होनेके कारण मई १६७६में बन्द कर दी गई।

(१२) अकबरने यह प्रथा भी प्रचलित की थी कि बादशाह प्रति दिन प्रातःकाल महलके ऊपरके झरोखेमें बैठकर जनताको दर्शन देता और उनकी सलामी लेता था। अकबरके उत्तराधिकारियोंने भी यह प्रथा कायम रखी। परन्तु औरंगजेबने इसे भी बन्द कर दिया, क्योंकि यह प्रथा किसी भी कार्यसे पहले सुबहमें अपने इष्ट-देवकी मूर्तिके दर्शनकी हिन्दू-प्रथा की नकलमात्र थी।

(१३) कब्रोंवाले मकानोंकी छतें बनवाना, कब्रोंपर चूना पुतवाना और फकीरोंके मजारोंपर औरतोंका तीर्थ करने जाना, आदि बातें कुरानके विरुद्ध होनेके कारण उसने बन्द कर दी। किन्तु इस प्रकार लोगोंको एकबारगी सुधारनेका औरंगजेबका यह प्रयत्न असफल ही रहा। लोगोंकी इच्छाके विरुद्ध इन कड़े नियमोंको पहले एकदम जबरदस्ती लागू करके बाद उनमें आवश्यक सुधार किए बिना ही उन्हें ढीला कर देनेसे उसके शासनका बहुत ही उपहास हुआ। मनुची ने लिखा है—"जब औरंगजेब गद्दीपर बैठा तब शराब पीना, एक बहुत ही साधारण बात थी। एक दिन उसने गुस्सेमें भर कर कहा कि सारे हिंदुस्तानमें ऐसे दो ही आदमी थे जो शराब नहीं पीते थे, एक तो प्रधान काजी और दूसरा वह स्वयं। पहले इस विषयक बहुत कड़े नियम थे, बादमें धीरे-धीरे उन्हें शिथिल कर दिया गया, क्योंकि ऐसे बहुत कम लोग थे जो छिपकर न पीते रहे हों। उसके मंत्री भी स्वयं पिया करते थे और दूसरोंसे भी उनका यही अनुरोध होता था। संगीतको बन्द करनेवाली आज्ञाका भी यही हाल हुआ।

जुआ खेलनेके बडे-बडे मामलोंमें बादशाह स्वयं सज़ा देता था। मनुचीके कथनानुसार हर एक नर्तकी और वेश्याको आज्ञा दी गई थी कि वह या तो शादी कर ले या मुगल साम्राज्यकी सीमा छोड दे। पर स्वयं मनुचीने लिखा है कि इस नियमकी कभी पाबन्दी नहीं की गई। होलीके उत्सवमें गालियों, फूहड गानों और होली जलानेके लिए आवश्यक सामग्री लूटीजानेकी प्रथा थी, बादशाहने इस उत्सवको भी बन्द कर दिया, और इस बातकी पाबन्दी करवानेका पुलिसको हुक्म मिला। इसी प्रकार १६६६ ई० में बुरहानपुरमें दो अलग-अलग जुलूसवालोंमें आपसी झगडेके बाद मुहरमके जुलूसोंपर भी रोक लगा दी गई।

सन् १६६४ ई० में औरंगज़ेबने सती प्रथाको भी बन्द करनेका हुक्म दिया था। परन्तु इस नियमको हर जगह लागू करनेमें साम्राज्य असमर्थ ही रहा। छोटे-छोटे बच्चोंको गुलाम बनाकर बेचने और रहममें नौकरी केलिए उन्हें हिजडे बनानेकी भी सारे साम्राज्यमें सख्त मनाई की गई। (१६६८)।

६ दाराके प्रिय मल्लाओं और इस्लाम धर्म-विरोधियोंपर अत्याचार

कट्टर इस्लामके ऐसे नियमोंको जारी करनेके बाद औरंगजेबको अवसर मिला कि दाराके साथियों तथा उदार विचारोंवाले मुसलमान सन्तोंको वह सता सके। मियाँ मीरका शिष्य शाह मुहम्मद बदख्शी दाराका ऐसा ही साथी था, जो सरल सूफी कविता लिखता था। उसे बादशाहके सामने पेश करनेकी आज्ञा हुई, परन्तु दिल्ली आते हुए राहमें लाहौरमें ही वह मर गया। (१६६१)।

इस प्रकार औरंगजेबने जिन्हें सताया उनमें विशेष उल्लेखनीय है भारतका सबसे प्रसिद्ध सूफी-फकीर सरमद। उसका जन्म फारसके काशन नामक स्थानमें यहूदी माँ-बापके यहा हुआ था। वह हीब्रू भाषाका बहुत ही बडा पंडित था। उसने बादमें मुहम्मद सईदके

नामसे इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। हिन्दुस्तानमें एक व्यापारीकी तरह आनेके बाद यहाँ ही वह नग्न फकीर हो गया। दिल्लीमें दाराशिकोहके साथ उसकी भेट हुई। दाराने उसका बहुतआदर-सम्मान किया और शाहजहाँके साथ भी उसकी भेंट कराई गई। वह विश्व-देवता-वादी था। यद्यपि मुहम्मदके लिए उसके हृदयमे अत्यधिक श्रद्धा थी, फिर भी इस्लाम धर्मकी अनेक परम्पराओ और कई विचारोमे उसका विश्वास नही था।

सरमदके मामलेको सुनकर उसका विचार करनेके लिए इस्लाम धर्मके कट्टर विद्वानोका एक दल नियुक्त किया गया। उस दलने धर्म-विरोधके अपराधमें उसे मृत्यु-दण्ड दिया। परन्तु इस दण्डका असली कारण राजनैतिक ही था, सरमदने दाराको सिंहासन दिलवाने-का पूरा आश्वासन दिया था।

१६७२ ई० मे तीन बडे खलीफाओको गाली देनेके अपराधमें मुहम्मद ताहिर नामक एक शिया दीवानका सिर काट लिया गया। एक पुर्तगाली पादरी मुसलमान हो गया, उसके बाद वह फिर ईसाई हो गया। उसका यह आचरण धर्म-विरुद्ध माना गया एव सन् १६६७ ई० में धर्म-भ्रष्ट होनेके अपराधमें उसे औरगाबादमे मृत्यु-दड दिया गया। बोहरा जातिके धर्म-गुरु सैयद कुतुबुद्दीन अहमदाबाद-में रहते थे। बादशाहकी आज्ञानुसार उन्हे तथा उसके सात सौ अनुयायियोको मरवा डाला गया।

७ विदेशी मुसलमान राज्योके साथ औरंगजेबका सम्बन्ध

व्यापार द्वारा भारतसे सबधित अनेक मुसलमानी राज्योसे राजगद्दीपर बैठनेके उपलक्षमे औरगजेबको बधाई देनेके लिए आए हुए अनेको राजदूतोका उसने स्वागत किया।

अपने शानदार राज्याभिषेकके कुछ समय बाद ही नवम्बर १६५६में सैयद मीर इब्राहिमको ६ लाख ६० हजार रुपये देकर

मक्का-मदीना भेजा कि वहाँके सन्तो, मसजिदो और मजारोके नौकरो, फकीरो और सैय्यदोको यह रकम बाँट दी जावे ।

जब औरगजेब भारतपर एकछत्र शासन कर रहा था, तब सन् सन् १६६१ ई० मे ईरानके शाह् अब्बास द्वितीयने उसे बधाई देनेके लिए अपने तोपचियोंके नायक बुदाक बेगको अपना राजदूत बनाकर बडी ही शानशौकतके साथ उसे भारत भेजा ।

ईरानके राजदूतके आनेका समाचार सुनकर मुगल-दरबारमे एक हलचल-सी मच गई ? बादशाहसे लेकर एक साधारण सिपाही तकने समझ लिया कि अब उसकी तथा उसके देशकी परीक्षाका समय आया । आगन्तुकोकी उपस्थितिमे उनकी प्रतिष्ठा और मर्यादामे यदि कोई भी त्रुटि दिखाई दी तो सारे मुसलमानी राज्योमे हिन्दुस्तानकी हँसी होगी ।

२७ जुलाई १६६१ ई० के दिन इस राजदूतको वापस ईरान लौटनेकी आज्ञा मिली । नवम्वर १६६३ में शाह अब्बासके पत्रका उत्तर लेकर औरगज़ेबने अपना एक राजदूत ईरान भेजा । इस्फाहनके दरबारमें उसकी शाहसे भेट हुई पर उसके साथ बडी ही रुखाईका व्यवहार किया गया । उसकी हसी भी उडाई गई, जिसका उसके हृदयपर बडा प्रभाव पडा । उसके सामने ही फारसके बादशाहने भारतपर चढाई करनेकी कई वार धमकी दी । ईरानमें एक साल रहनेके बाद अन्तमें उसे वापिस लौटनेकी आज्ञा मिली । उसके साथ ही औरगज़ेबके नाम एक व्यगपूण पत्र भी भेजा गया । शाह अब्बासके प्रति अपने क्रोधको औरगज़ेबने इसी बेचारे राजदूतपर उतारा । ठीक काम न कर उसनेका उसपर अपराध लगाकर उसे पदच्युत भी कर दिया । बादशाहने उससे मिलना भी स्वीकार नही किया ।

शाह अब्बास १६६७ ई० में मर गया और तब ईरान द्वारा भारत-पर हमलेकी बात भी जहाँकी तहाँ रह गई । औरगज़ेबने अन्त तक सदैव ईरानकी सीमापर कडी निगाह रखी । बल्ख और बुखारा (१६६१ और १६६७ ई० में) काशगार (१६६० ई० मे),

उरगज (खीव), कुस्तुन-तुनियाँ (१६६० ई० में), और (१६६५ और १६७१ ई० मे) अबीसीनिया के राजदूत भी औरंगज़ेबके पास आए ।

सात वर्पसे भी कम समयमें (१६६१ से १६६७ ई०) औरंगजेबने २१से अधिक लाख रुपया राजदूतोको भेजने और उनका स्वागत करनेमे खर्च किया । इसके अतिरिक्त सन् १६६८ ई० में भारतकी शरण लेनेवाले काशगारके पिछले वादशाह अब्दुल्ला खाको भी हर साल ११ लाख रुपया प्रति वर्ष देता था । मक्काके प्रधान शरीफको भी हर साल सात लाख रुपया भेजा जाता था ।

८ आगराके किलमें शाहजहाँका कैदी-जीवन और औरंगज़ेबके साथ उसका संघर्ष

जिस दिन शाहजहाने अपने विजयी पुत्रके लिए आगरा किलेके दरवाजे खोले उसी दिन वह जन्म-भरके लिए कैद होगया । एक शाहशाहके लिए यह एक बहुत ही कटु अनुभव था । बडी कशमकशके वाद विवश होकर ही उसने यह परिस्थिति स्वीकार की थी । दारा और शुजाके नाम शाहजहाँके लिखे पत्रोको राहमे ही पकडवाकर आगराके किलेसे उन पत्रोको लेजानेका प्रयत्न करनेवाले उसके खोजा दूतोको औरंगजेबने कडी सजाएँ दी । परिणामस्वरूप औरंगजेबने उसपर और भी अधिक कडा पहरा लगा दिया । तब तो शाहजहाको उसके विरोधियोने चारो ओरसे घेर लिया था । उससे कोई भी मिल नही सकता था । उसकी कही हुई एक-एक बात तकको सरकारी जासूस औरंगजेब तक पहुँचा देते थे । लिखने का सामान भी इस भूतपूव वादशाहके पाससे हटा दिया गया ।

लोभ-लोलुपताके वश होकर औरंगज़ेवने मुगलोमे सबसे अधिक शानदार इस वादशाहको उसके पतनके वाद भी शन्तिसे न रहने दिया, उसके विपरीत उसकी प्रतिष्ठाको कम करनेका निरन्तर प्रयत्न किया जाता था । शाहजहाके नित्य-प्रति पहनने तथा आगरेके किलेमें

सुरक्षित रखे जानेवाले हीरा, मोती आदि जवाहिरातोको लेकर पिता-पुत्रमें काफी झगडा हुआ। शाहजहाँ यह कभी नही भूल सका कि ये उसकी निजी सम्पत्ति थे और न्यायकी दृष्टिसे औरगजेबका राज्य और साथही राज्यके खजाने तथा माल-मत्तेपर भी कोई अधिकार नही था। इसके जवाबमे औरगजेब कहता था कि शाही खजाना तथा माल जनताके हित-कल्याणके लिए हैं। यही कारण है कि उनपर कोई भी कर नही लगाया जाता है। बादशाह खुदाका चुना हुआ उसका रक्षक-मात्र है, जो उसकी इस अमानतको अपने अधिकारमें रखकर उसे लोगोके उपकारमें लगावे। इस प्रकार सिंहासनारूढ होनेपर अब आगरेकी सारी जायदाद उसकी हो चुकी थी।

आगरेसे भागते समय दारा भी अपनी स्त्रियो और लडकियोके २७ लाखके जवाहिरात आगरेके किलेमे छोड गया था। औरगजेबने उन्हें भी मांगा। शाहजहाँ बहुत समय तक विरोध करता रहा, परन्तु अन्तमे उसे औरगजेबकी बात स्वीकार करनी ही पडी। दाराके यहाँ गाने-नाचनेवाली स्त्रियाको भी औरगजेबने मागा। किलेपर अधिकार करते ही औरगजेबने (८ जून १६५८) वहाँके सारे शाही जेवर, कपडे, सामान और किलेके कमरोपर तक अपनी मुहर लगवा दी थी। सारे मालको बडी सख्तीके साथ जब्त कर उसे उसे पूरी सावधानीपूर्वक निगरानीमे रखनेकी उसने आज्ञा दी थी।

मुहम्मद सुलतानके चले जानेपर मुतमाद नामक हिजडा ही आगरेके किलेका प्रधान अधिकारी बन गया। उसने शाहजहाके साथ बडी सख्ती और बहुत ही दुर्व्यवहार किया और उसकी देख-भालमे भी काफी असावधानी दिखाई। उसके व्यवहारसे कभी-कभी यही झलकता था कि स्वय शाहजहा उस हिंजडेका एक दीन दास था।

कैदके पहले वर्षमे पिता-पुत्रमे बहुत ही कटुतापूर्ण पत्र-व्यवहार होता रहा। इस सारे वाद-विवादमें औरगजेब अपने आपको सदैव एक धर्म-भीरु न्यायशील शासक साबित करनेका प्रयत्न करता रहा।

वह यह भी कहता रहा कि जनताके हित तथा उनमें धार्मिक सुधार करनेके लिए ईश्वरने उसे अपना एक तुच्छ साधन-मात्र बनाया है। साथ ही उसने अपने पिताके शासनको अयोग्यतापूर्ण, असफल और अन्याययुक्त बताया। पुन उसने अपनी न्यायपरता तथा नम्रताका पूरा-पूरा दिखावा करते हुए अपने व्यवहारको ठीक तथा न्यायसगत साबित किया। अपने विद्रोही होने और एक सुपुत्र के उपयुक्त व्यवहार न करनेके दोष लगाए जानेपर उसने तत्सम्बन्धी अपनी सफाई यह कह कर दी कि— जब तक शासन-सत्ताकी बागडोर आपके हाथमें रही, मैंने कभी आपकी आज्ञा लिये बिना कोई काम नही किया, और न मैंने अपनी सीमाका उल्लघन ही किया। आपकी बीमारीमें दाराने राजकाज अपने हाथमे लेकर हिन्दू-धमके सामने इस्लामको मिटानेकी तैयारीकी। आपको एक ओर बिठाकर उसने सारी राजसत्ता अपने हथोमें ले ली। देशभरमें अराजकता फैली। मैं विद्रोही बनकर आगरा नही आया था, किन्तु मेरी इच्छा यही थी कि दाराकी राजसत्ताका अन्त कर, उसके इसलाम-विरोधी कार्यो और सब दूर फैलनेवाली मूर्ति-पूजाको सारे साम्राज्यसे दूर कर दूँ। मैंने परलोककी भावनासे प्ररित होकर ही राज्य-भार उठाया, क्योंकि इस्लामकी स्थापना और रक्षाके यह अत्यत आवश्यक था। राजसिहासन पर बैठनेमें मेरा अपना लिए स्वार्थ कुछ भी नही था।"

सम्राट्के कतव्य और उसकी महत्ताके बारेमे औरगजेबके विचार अवश्य ही बहुत ऊँचे और निस्पृहतापूण थे। "केवल अपने शारीरिक सुखो, ऐन्द्रिक विलास तथा बाह्याडम्बरोंमें ही लगे रहना बादशाहके लिए ठीक नही। उसका कत्तव्य है कि वह देशकी रक्षा और जनताकी भलाईमें ही अपना सारा समय बितावे।

कितनी बडी-बडी कठिनाइयोके होते हुए भी राज्य-सिहासन प्राप्त करनेमे उसे जो सफलता मिली, उसका विवरण करते हुए वह बडे गौरवके साथ कहा करता था कि उसकी यह सफलता भी स्पष्टतया साबित करती थी कि उसका पक्ष सच्चा था जिससे ईश्वरने भी उसका

ही साथ दिया । अतएव एक समझदार मानवकी तरह शाहजहाको भी इस ईश्वरेच्छित बातको मान लेना चहिए । औरगजेब तो उसका साधन-मात्र है, इसलिए औरगजेबकी विजयको ही ठीक मानकर उससे उसे प्रसन्न होना चाहिए ।

शाहजहा औरगजेबके इस सारे दभ-ढकोसलेका तिरस्कार कर कहता था कि एक सच्चे मुसलमान होनेका ढोग कर औरगजेब दूसरेके मालका लुटेरा बन बैठा था । इस आरोपका उत्तर देते समय औरगजेबने बहुतही उच्च आदर्शोका उल्लेख किया, "आपने लिखा कि दूसरोकी जायदादपर अधिकार करना इस्लाम धर्मके विरुद्ध है । एव आप स्वय जान लें कि शाही खजाना और जायदाद सारे साम्राज्यकी प्रजाके है, और प्रजाके हितार्थ ही उनको काममे लाना चाहिए । ये राज्य किसीकी भी वश-परम्परागत जायदाद नही है । राजा तो ईश्वर द्वारा नियुक्त प्रजाका रक्षक एव प्रजाके हितार्थ सगृहीत शाही खजानेकी धरोहरकीदेखरेख करनेवाला अधिकारी मात्र है ।"

अब शाहजहांने औरगजेबको चेतावनी दी कि उनकी बारी आनेपर उसके पुत्र भी औरगजेबके साथ ऐसा ही वर्ताव करेंगे, जो उसने शाहजहाके साथ किया था । इसके उत्तरमे औरगजेबने पूरे ऊपरी आत्मविश्वासके साथ लिखा—"ईश्वरकी इच्छाके विरुद्ध कुछ भी नही होता है । जिस दुर्भाग्यका आपने उल्लेख किया है वह मेरे पूर्वजोको भी सता चुका है । एव यदि यही ईश्वरकी इच्छा होगी मै किस प्रकार इससे बच सकूंगा ? अपनी नियतके अनुसारही प्रत्येक व्यक्तिको अपना-अपना फल मिलता है । मुझे इस बात का पक्का विश्वास है कि मेरी नियत पूरी तरह साफ है, अतएव मुझे यह भरोसा है कि अपने लडकोसे सिवाय सद्व्यवहारके मुझे कुछ नही मिलेगा ।

किन्तु अपनी डीग हाकनेवाले औरगजेबकी आशाओकी अपेक्षा उसके पिताकी भविष्यवाणी ही अधिक सत्य साबित हुई । अपने

पिताके प्रति किए गए इस दुर्व्यवहारका बदला उसीके चौथे पुत्र मुहम्मद अकबरने औरंगजेबसे लिया था। सन् १६६१ ई० में जब उस शाहजादेने विद्रोह किया तब उसने अपने पिताको एक बहुत ही व्यंगपूर्ण कटु पत्र लिखा। उसका वह पत्र पढकर शाहजहांको लिखे गए औरंगजेबके इन्ही पत्रोका स्मरण हो आता है। उस पत्रमें औरंगजेबकी राज्य-शासनकी विफलताका उल्लेख कर उसे सलाह दी गई कि उस बुढापेमें धार्मिक जीवन बिताकर वह अपने पिता और भाइयोकी हत्याके पापोका प्रायश्चित्त कर ले। उसे असफल शासक भी कहा गया। अन्तमे औरंगजेबसे पूछा गया था कि जब उसने स्वय अपने पिताका विरोध किया, तब इस समय वह कैसे अपने पुत्र अकबरको विद्रोही कह सकता था।

शाहजहाके साथ औरंगजेबका यह पत्र-व्यवहार बहुत ही कटु और असह्य हो गया। अन्तमें हार मानकर बूढे शाहजहांको अनिवार्य दुर्भाग्यके सामने सिर झुकाना ही पडा, और जैसे एक बालक रोते-रोते सो जाता है वैसे ही उसने भी कुछ दिन बाद ये सारी शिकायतें करना भी बद कर दी।

उसके दुखी हृदयपर एकके बाद दूसरा यो अनेक आघात हुए। दारा, मुराद और सुलेमान क्रमश मारे गए। शुजाको सकुटुम्ब माघोके देशमें जाना पडा और वहांके अज्ञात अत्याचार सहते-सहते उनका विनाश हुआ। पर इन सारे दुखोको सहनेपर भी उसका धीरज एव ईश्वरमे उसका भरोसा ज्योका त्यो ही बना रहा। अन्त तक उसने सहनशीलता और धैर्यका ही परिचय दिया।

धर्मसे उसे शान्ति मिली। कन्नौजका सैय्यद मुहम्मद अन्त तक उसके साथ बना रहा, और यही धर्मात्मा तब उसका एकमात्र गुरु, शिक्षक और दान करानेवाला था। इस भूतपूर्व सम्राट्का सारा समय अब ईश्वरोपासना, प्रार्थना और सारे आवश्यक दैनिक धार्मिक कर्म करने, कुरान पाठ करने और भूतकालीन महान् पुरुषोका इतिहास पढनेमे ही बीतता था।

पुण्यात्मा शाहज़ादी जहाँनाराकी प्रेमपूर्ण सेवासे भी शाहजहाँको शान्ति मिलती थी। उसकी इस अनुरागपूर्ण परिचर्याको पाकर शाजहाँ अपनी अन्य सतानके कटु व्यवहारको भूल-सा गया। यह शाहज़ादी मियाँ मीरकी शिष्या थी। वह आगराके किलेके हरममे साध्वीका-सा जीवन व्यतीत करती रही। पुत्री और माताके समान अपने बूढे निरीह पिताकी सेवा करना ही उसने अपना कर्त्तव्य समझा। इसके अतिरिक्त वह दारा और मुरादकी अनाथ सतानकी भी देख-भाल करती थी। इस प्रकार के आध्यात्मिक सहयोग तथा वातावरणमें शाहजहाँने परलोक यात्राकी तैयारी की। अब मृत्युका भय उसे नही सताता था, और अपने इस कष्टपूर्ण जीवनसे मृत्यु द्वारा मुक्ति पानेकी आशामे वह उसकी वाट जोहने लगा।

९ शाहजहाँकी अन्तिम बीमारी और मृत्यु

जनवरी १६६६मे ही जाकर मुक्तिकी उसकी यह इच्छा पूरी हुई। ७ जनवरीको उसे बुखारने आ घेरा। धीरे-धीरे उसकी हालत विगडती ही गई। इस समय वह ७४ वर्षका था। सिंहासन पर बैठनेसे पहले उसे अनेक वाधाओसे पूर्ण कठिन जीवन विताना पडा था। अब शीतकालकी इस बडी ठण्डमें उसकी शक्तियोने जवाव दे दिया।

सोमवार, २२ जनवरीको उसकी दशा और भी बुरी बताई गई। उसकी मृत्यु कब हो जायगी यह कोई कह नही सकता था। अपनी मृत्युको निकट जानकर शाहजहाँने उसकी सारी कृपाओके लिए परमात्माको धन्यवाद दिया और अपने को उसीके हवाले छोड दिया। अन्तमे उसने शान्तिपूर्वक अपनी अन्तिम क्रिया सम्बन्धी आवश्यक आदेश दिए, और तव भी जीवित अपनी दोनो पत्नियो—अकबरावादी महल, फतहपुरी महल—अपनी बडी बेटी जहाँनारा एव राजमहलकी अन्य स्त्रियोको वह सान्त्वना देता रहा। उसके चारो ओर सब लोग रो रहे थे। अब निराश्रित होनेवाली जहानाराको उसने अपनी

सौतेली वहन पुरहुनर वानू तथा अन्य महिलाओंके सुपुर्द कर दिया। अपना वसीयतनामा लिखकर अपने कुटुम्बियो और नौकरोको उसने अनेक इनाम दिए, और अन्तमे उसने कुरान पढनेकी आज्ञा दी। इन अन्तिम क्षणोमे उसका कमरा स्त्रियोंके रोदनसे भर गया। तथापि शाहजहांके होशहवास ठीक थे। वह अपनी प्यारी वेगम मुमताजकी यादगार, ताजमहलकी ओर टकटकी लगाकर देख रहा था। कलमा पढकर फिर उसने प्रार्थना की—"ऐ खुदा! इस लोकमे मेरी गति सुधार ले, और परलोकमे मुझे नरक-यातनासे वचा ले।"

कुछ ही क्षण वाद वह चिर-निद्रामें सो गया। तव सध्याके सवा सात वज रहे थे। इस समय वह मुसम्मन वुर्जमें लेटा हुआ था, जहासे सामने ताजमहल दिखाई दे रहा था, यही उसकी मृत्यु हुई। शाहजहहाँ चाहता था कि उसे ताजमहलमे ही दफनाया जावे कि मृत्युके वाद भी वह अपनी प्रेयसीसे दूर न रहे।

शाहजहांकी कैदके दिनोमें इसी वुर्जके नीचेकी सीढियोका दरवाजा ईंटसे चुनकर वन्द कर दिया गया था। अव ईंटोकी इस दीवारको तोडकर किलेके अफसरोने वह रास्ता खोला और उसी राह शाहजहाका जनाजा निकालकर जमुनाके किनारे लगी हुई नाव तक उसे ले गए। नाव द्वारा ही उस जनाजेको ताजमहल तक पहुँचाया और वहाँ उसकी प्रेयसी सम्राज्ञी मुमताज महलके रहे-सहे अवशेषोके पास ही शाहजहाकी लाशको भी दफना दिया।

जनताको शाहजहाँकी मृत्युका वडा ही खेद हुआ। लोगोने उसकी त्रुटियो और अपराधोको भुला दिया और अव उसकी अच्छी वातोंकी ही यादकर वे उनकी चर्चा करने लगे।

शाहजहांकी मृत्युसे कोई एक माह वाद औरगजेव आगरा पहुँचा और वहां जहाँनारासे मिला। जहाँनाराके प्रति उसने वहुत ही अनुग्रह दिखलाया और नम्रताके साथ वर्ताव किया। इन पिछले दिनोमें जहांनाराने शाहजहासे निरन्तर प्रार्थना की थी कि वह औरग-

जेबके अपराधोको क्षमा कर दे । कुछ समय तक तो शाहजहाँ टालता रहा, परन्तु अन्तमे जहाँनाराकी प्रार्थनाको स्वीकार कर उसने औरंगजेबके सारे अपराधोके क्षमा-पत्रपर हस्ताक्षर कर दिए थे ।

औरंगजेबने अपने पिताके साथ जो दुर्व्यवहार किया था, वह उसकी समकालीन जनताको बहुत ही अनुचित एव न्याय-विरुद्ध जान पडा । उस युगकी सामाजिक मर्यादाको इस प्रकार तोडनेके कारण जनताके हृदयोमे औरंगजेबके विरुद्ध बहुत ही तीव्र नैतिक रोष उठ खडा हुआ था ।

अध्याय ७

सीमाओंपर युद्ध; आसाम और अफ़ग़ानिस्तान

१ १६५८से पहले आसाम और कूचविहारके साथ मुगलोके सम्बन्ध

१६वी सदीके आरम्भमे एक भाग्यवान् मगोली सैनिक, विश्वसिहने (शासन-काल १५१५–१५४० ई०) कूचविहारमे एक राजवशकी स्थापना की जो अभी तक चला आ रहा है। विश्वसिहने हिन्दू धर्म और सस्कृतिको पूरी तरह अपना लिया और सफलतापूर्वक राज्य स्थापित कर वहाँ सैनिक सगठन किया। उसके छोटे भाईके पुत्रने कामरूप या कूचहाजो कहलानेवाले कूचके पूर्वी भागपर अधिकार किया और वहापर वह स्वय राजा बन बैठा। इस राजवशकी इन दो शाखाओके आपसी सघर्षके समय कूचविहारके राजाने बगालके सूबेदारसे सहायता मागी, तब तो मुगलोने कूचहाजोको जीतकर उसे मुगल साम्राज्यमें मिला लिया (१६१२ ई०)। इस प्रकार मुगल साम्राज्यकी सीमा पूर्वी और मध्य आसामके अहोम राजाओके राज्यसे जा मिली।

अहोम लोग उत्तरी ब्रह्माके पहाडी भागोमे बसनेवाली 'शान जाति' की ही एक शाखा थे। १३वी सदीमें पोग राजघरानेके

एक राजकुमारने ब्रह्मपुत्रके दक्षिणी-पूर्वी कोनापर अपना राज्य स्थापित किया और तब राहमें पड़नेवाली जातियोंको जीतता हुआ पश्चिमकी ओर बढ़ा। आसाममें बसनेपर अहोम जाति हिंदू सभ्यता और धर्मके प्रभावमें आकर धीरे-धीरे बदलने लगी। हिन्दू धर्मके पुजारी, महन्त तथा हिन्दू कारीगर लोग आसाममें जा पहुँचे। वैष्णव धर्म भी वहाँ खूब फला-फूला।

सन् १६१२ ई० में कूचहाजोको मुगल साम्राज्यमें मिला लेनेके बाद १७वीं शताब्दीके इन प्रारम्भिक वर्षोंमें मुगलोंकी अहोमोंके साथ बड़ी रस्साकशी होती रही। अन्तमें सन् १६३८ ई० में जाकर सन्धि हुई, जो अगले २० वर्ष तक बनी रही।

अहोमोंका कामरूप जीतना, १६५८ ई०

१६५७ ई० में जब शुजा बंगालकी अधिकांश सेना सहित सिंहासन-प्राप्तिके लिए चला तब कूचविहारके राजाने कामरूपको एक सेना भेजी। गोहाटीका फौजदार मीर लुत्फुल्ला शीराजी अहोमोंके आक्रमणसे डर नावमें बैठकर नदीकी राह ढाका भाग गया। कामरूपकी राजधानी गोहाटीपर बिना युद्ध किए ही आसामियोंका अधिकार हो गया। वहां उन्होंने सबकुछ लूट लिया।

यह सब १६५८ के आरम्भमें हुआ था। किन्तु जून १६६० में मीरजुमलाको विशेष तौरसे बंगालका सूबेदार बनाकर भेजा था कि वह बंगालके और खास तौरपर आसाम और माघ (अराकान) के विद्रोही ज़मींदारोंको दण्ड देकर उन्हें ठीक कर दे।

३ मीरजुमलाका कूचबिहार और आसाम जीतना

१ नवम्बर १६६१ ई० को ढाकासे कूच कर एक अज्ञात जंगली रास्तेसे मीरजुमला कूचविहारमें जा पहुँचा। १९ दिसम्बरको मुगलोंने राजधानीमें प्रवेश किया। राजा और प्रजा पहले ही डरकर वहांसे भाग गए थे। सारे राज्यपर मुगलोंका पूरा अधिकार हो गया।

४ जनवरी १६६२ ई० को वहाँसे रवाना होकर उसने आसामपर आक्रमण किया। घने जगल और अनेक नालोके कारण वह प्रति दिन ४–५ मीलसे अधिक नही चल सकते थे, फिर भी वे बडे परिश्रमके साथ आगे बढ रहे थे। मुसलमान सेना बढते-बढते ब्रह्मपुत्रा तक जा पहुँची। एकके बाद दूसरा किला वह जीतती गई। अन्तमें ३ मार्चकी रातको मीर जुमलाने शत्रुकी जल-सेनाको भी नष्ट कर दिया।

१७ मार्चको आक्रमणकारी गढगांव पहुँचे। वहाँका राजा जयध्वज राजधानी छोडकर भाग गया था। आसाम-विजयमें बहुत-सा माल मुगलोके हाथ लगा। अगली बरसात भर वहीं रहकर उस प्रदेशपर अपना आधिपत्य बनाए रखनेका मीरजुमलाने पूरा-पूरा प्रबंध किया। अपनी प्रधान सेनाको लेकर गढगावसे कोई ७ मील दक्षिण-पूर्वमें स्थित मथुरापुर गाँवमें ३१ मार्चको वह जा पहुँचा। इधर एक बडी सेनाके साथ मीर मुर्तजा अहोमोकी राजधानीपर अधिकार किए बैठा रहा। इसके सिवाय कई अन्य स्थानोपर मुगल सैनिकोके थाने स्थापित किए गए।

४ अहोमोके साथ मुगलोके निरन्तर युद्ध, वर्षामें मुगलोका घिर जाना

आरम्भसे ही मुगल मोर्चोपर कोई शान्ति न रह सकी। अहोमाने फिरसे रातमें छापा मारकर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। गढगाँवपर भी हमला हुआ पर वह असफल रहा। सारी बरसात (मईसे अक्तूबर) मुगल सेना आसाममें घिरी पडी रही।

आवश्यक घास-दानेके अभावमे सवारोके घोडे हज़ारोकी सख्यामें मरने लगे। बाहरसे किसी भी प्रकारकी मदद तो दूर रही खबर भी नही आ सकती थी।

इसलिए मीरजुमलाने अपने सारे बाहरी थाने उठा लिए। लखावसे पूर्वके सारे प्रदेशपर अहोम राजाने अधिकार कर लिया।

मुग़लोंके पास केवल गढगाँव और मथुरापुर ही रह गए ।

अहोमोंकी आक्रमण शक्ति अब दूनी हो गई । ८ जुलाईकी रातको गढगाँवपर उन्होंने ज़ोरोंसे हमला किया और एक बार तो उन्होंने उस किलेके आधे हिस्सेपर भी अधिकार कर लिया, किन्तु बादमें बड़ी मिहनत कर मुगलोंने उन्हें मार भगाया और सारे किलेको पुन अपने अधिकारमें लिया । इस प्रकार उस रात्रिकी वह कठिन घडी टल गई । इसके बादके सारे आक्रमण व्यर्थ ही रहे ।

अगस्तमें मथुरापुरके मुगल सैनिकोंमें बडे जोरसे बीमारी फैली । ज्वर और बाढके कारण सैकडों सैनिक प्रति दिन मरने लगे । सारा आसाम पीडित हो उठा । अन्तमें वहाँका जीवन असह्य होनेके कारण १७ अगस्तको मुगल सेना गढगाँव लौट आई । आवा-गमनकी असुविधाके कारण बहुत-से बीमार सिपाही पीछे ही छोड दिए गए । पराजित अहोम लोग फिरसे आक्रमण करने लगे । प्रत्येक रात्रिको किलेके बाहर लडाई होने लगी । बीमारी फिर भयकर हो उठी । मीरजुमला भी एक साधारण सैनिककी भाति रहता था । सितम्बरके तीसरे सप्ताह तक जाकर कही दशा कुछ सुधरी । वर्षा कम हुई और रास्ते फिरसे खुलने लगे ।

५ मुगलोंकी जल-सेनाके कार्य, मीरजुमलाका पुन आक्रमण करना

मुगल सेनाके सेनापति इब्नहुसनके मातहत लखावमें रहनेवाली जल-सेनाने इस आपत्तिपूर्ण दिनोंमें अपनी तथा सारी फौजकी रक्षा की । उसने ढाकाकी राह सदैव दिल्लीसे सम्बन्ध बना रखा । उसने गढगाँवका माग खुला रखनेमें पूरा-पूरा सहयोग दिया, तथा अक्तूबरके आखरी सप्ताहमें बहुत-सी रसद गढगाव भेजी । धरती सूख जानेके बाद तो मुगल सवारोंको रोकना असम्भव हो गया । जयध्वज और उसके सरदार दूसरी बार नामरूपकी पहाडियोंकी ओर भाग गए । मीरजुमलाने फिर आक्रमण किया और

सोलापुरी होता हुआ टीपमकी ओर वढा (१८ दिसम्बर)। टीपम तक पहुँचना ही उसका लक्ष्य था। २० नवम्बरको चक्कर आजानेसे वह वेहोश हो गया १० दिसम्बरको उसकी वीमारी वहुत ही वढ गई। सारेमुगल सेनाने अव नामरूपकी ओर वढनेसे इन्कार कर दिया। अपने सेनापतिको छोड घर लौट जानेका भी वे षड्यन्त्र करने लगे।

३ आसामके साथ सन्धि

दिलेरखांके जरिये अहोमके राजाके साथ सन्धि की गई, जिसकी शर्तें थी —

(१) जयध्वज अपनी लडकी और टीपमके राजपुत्रोको मुगल राजदरवारम भेजेगा।

(२) युद्ध-हानिकी पूर्तिके लिए अहोमका राजा तत्काल ही २०,००० तोला सोना, १,२०,००० तोला चाँदी और २० हाथी मुगल वादशाहकी भेट करेगा। इसके अतिरिक्त मीरजुमला और दिलेरखांको भी क्रमश १५ और २० हाथी दिए जावेंगे।

(३) वाकी रही युद्ध-हानिकी पूर्तिके लिए अगले वारह महीनोमें तीन लाख तोले चादी और ९० हाथी तीन किश्तोमें देगा।

(४) उसके वाद वह प्रति वर्ष २० हाथी टाँकेके रुपमें देगा।

(५) जव तक युद्ध-हानिको पूरी तरह नही चुकाया जावे तव तक वुरहा गुहैन, वर गुहैन, गढगौनिया फुकन और वरपत्र फुकनके पुत्र मीरजुमलाके पास शरीर-वधक रहेंगे।

(६) ब्रह्मपुत्राके उत्तरी तटपर भरालीके पश्चिमसे लेकर कलिंग नदीके दक्षिणतटपर पश्चिम तकका आसामका प्रदेश मुगल साम्राज्यमें मिला लिया जावेगा। इस प्रकार जगली हाथियोके प्रदेश, दुरग जिलेका आधेसे अधिक भाग मुगलोके अधिकारमें चला गया।

(७) मुगल साम्राज्य (विशेषकर कामरूप) से जिन्हें अहोम कैद कर ले गए थे, उन सव कैदियोको छोड दिया जावे। साथ ही

साथ अहोम राजा द्वारा कैद किए गए बदुली फुकनके बच्चे और स्त्री भी छोडे जावे ।

५ जनवरी १६६३को अहोमके राजाकी पुत्री, अन्य शरीर-बधक, सोना-चाँदी, और कुछ हाथी युद्ध-हानिकी पूर्तिके लिए मुगल पडाव पर पहुँचे । पाच दिन बाद मीरजुमला आसामसे वापस लौट पडा । हकीमोकी सलाहके अनुसार अतमे वह नावमें बैठ कर जल-मार्गसे ढाकाकी ओर चला । परन्तु ३१ मार्च १६६३को मार्गमें ही वह मर गया ।

७ मीरजुमलाके चरित्रकी महानता

सेनाकी चढाईकी दृष्टिसे मीरजुमलाका यह आसाम-आक्रमण पूरी तरह सफल हुआ । उसने राजाको अपमान-पूर्ण सन्धि करनेके लिए बाध्य कर दिया और अपना बहुत-सा युद्ध व्ययभी उससे वसूल कर लिया । सालाना नजरानेके साथ ही आसामका एक बडा प्रदेश पानेका वचन भी उसे मिल गया था । इस चढाईका राजनैतिक परिणाम स्थायी नही हुआ, जीते हुए जिलेपर मुगलोका कब्ज़ा कायम नही रह सका, और उसकी मृत्युके चार वर्ष बाद ही गौहाटी भी मुगलोके हाथोसे निकल गया, किन्तु इस सारी विफलताके लिए वह किसी भी तरह दोषी नही था ।

यद्यपि मीरजुमलाकी इस चढाईमें बहुत-से सैनिक काम आए, बीमार होकर वह स्वय मर गया, और कूचविहार और आसामके जीते हुए प्रदेश भी कुछ ही दिनो बाद अधिकारसे निकल गए, तथापि इस चढाईमें उसका उज्ज्वल चरित्र कसौटीपर कसा जाकर पूरी तरह जगमगा उठा । उस युगके किसी भी अन्य सेनानायकने उसकी-सी मनुष्यता और नीतिके साथ युद्ध-सचालन नही किया और न वैसी कठिनाइयोमें ही अपने सिपाहियो, नौकरो तथा हाकिमापर उसके समान किसीने अनुशासन रखा । इतनी कठिनाइयो और खतरेमें पडकर भी कोई दूसरा नेता उसके समान अपने लोगोका इतना

विश्वासपात्र और प्रेमपात्र नहीं हो सका था। बीस मन हीरे का मालिक और बंगाल जैसे धनवान प्रदेशका सूबेदार होते हुए भी सामान्य सैनिकके साथ ही युद्धकी सारी असुविधाओं और कठिनाइयोंको उसने भी उठाया था। कठिन परिश्रम कर तथा सारे सुख-भोगोंको छोड़कर ही उसने अपनी मृत्युको आमन्त्रित किया। लूटमार, औरतोंकी बेइज्जती और निरीह जनतापर अत्याचार करनेकी उसने सख्त मनादी कर दी थी। उसके आदेश बड़े कड़े होते थे। अपने आदेशोंका पालन करवानेमें वह सदैव सतर्क रहता था। पहले अपराधियोंको वह कड़ी सजा देता था, जिससे उसके बाद उस प्रकारके अपराध नहीं होते थे। अन्य लोगोंसे उसकी तुलना करनेपर ही हम उसकी योग्यताको ठीक तरह समझ पाते हैं। मीरजुमला जैसे चरित्रनायकको पाकर इतिहासकार तालीशकी लेखनी अपनी सुलभ अलंकारपूर्ण भाषामें मीरजुमलाकी प्रशंसा करनेके लिए बड़ी तेजीसे आगे बढ़ती है। किन्तु उस सेनानायककी यह प्रशंसा न तो कोरी चापलूसी ही है न अत्युचितपूर्ण काव्य-विवरण ही, वह तो पुरुषोंके एक जन्मजात नेताके प्रति उचित तथा अत्यावश्यक श्रद्धांजलि-मात्र है।

८ मुगलोंका कामरूप खोना, कामरूपके लिए लड़ाई
(१६६७–१६८१)

आसाममें मीरजुमलाके जीते हुए प्रदेशपर सन् १६६७ ई० तक मुगलोंका अधिपत्य बना रहा। अहोमोंका नया राजा चक्रध्वज कुछ समयसे युद्धकी तैयारियाँ कर रहा था। अगस्त, १६६७में उसने मुगलोंके विरुद्ध दो सेनाएं भेजी और नवम्बरके प्रारम्भमें उसने गौहाटीपर कब्जा कर लिया[1] इसी गौहाटीमें अब अहोमोंके हाकिमने अपना अड्डा जमाया। खोये हुए इस प्रदेशको फिरसे जीत लेनेके लिए मुगलोंने कोशिश की, लेकिन बहुत काल तक अव्यवस्थित लड़ाईके बाद भी मुगलोंको कोई सफलता नहीं मिली। सारी अहोम जाति अब मुगलोंके विरुद्ध विद्रोह करनेको उठ खड़ी हुई, और सुसज्जित

होकर अब जलमार्गोपर भी उन्होने अपना पूरा-पूरा आधिपत्य जमा लिया ।

तब तो आम्बेरके राजा रामसिंहको विशेषरूपसे आसाममे नियुक्त किया गया । वहाँ पहुचते ही रामसिंहने गौहाटीको जा घेरा, परन्तु गौहाटी को जीतनेके उसके सारे प्रयत्न असफल ही रहे । मार्च १६७१ ई० में वह रगमतीको वापस लौट आया और १६७६ तक उसने कुछ भी नही किया । १६७६ ई० मे उसे वापस दिल्ली लौट जानेकी इजाजत भी मिल गई ।

सन् १६७० ई० मे चक्रध्वजकी मृत्युके बाद आपसी झगडोके कारण अहोम राज्यकी शक्ति बहुत ही कम हो गई ।फरवरी १६७९ ई० मे अपने प्रतिद्वन्द्वी बुरहा गुहैनके भयसे वर फुकनने गौहाटी शहर मुगलोको सौप दिया । किन्तु १६८१ ई० मे गदाधरसिंह अहोमोकी गद्दीपर बैठा और उसने आसानीसे गौहाटीको जीत लिया । वहा उसे लूटमें बहुत-सा माल मिला । इस प्रकार अन्तमे कामरूप मुगलाके हाथसे निकल गया । अब वह बगाल सूबेमे नही रहा ।

सन् १६६२ ई० मे जब मीर जुमला गढगाँवमे घिरा हुआ था, कूचविहारको वहाके राजाने वापस जीत लिया और उसने वहासे मुगल फौजको खदेड दिया था । शायेस्ताखा इस समय बगालका सूबेदार था । मार्च १६६४ में वह राजमहल पहुचा, तब कूचके राजाने तत्काल उसकी अधीनता स्वीकार कर ली और हरजाना भी भी दे दिया । प्राणनारायण १६६६ ई० मे मर गया और उसके बाद लगभग आधी शताब्दी तक राज्यमे लगातार आपसी झगडे चलते रहे, जिससे वहाका सारा शासन शिथिल हो गया । मुगलोने कूचविहारके दक्षिणी और पूर्वी प्रदेशोको भी अपने अधिकारमे कर लिया । कूचके राजा को बाध्य होकर मुगलोकी इस विजयको स्वीकार कर लेना पडा तथा सन् १७११ ई० की सन्धि द्वारा ये प्रदेश मुगल साम्राज्यमे सम्मिलित कर लिए गए ।

९ चटगांवके समुद्री डाकू और बगाल में उनके उपद्रव

चटगावके जिलेको लेकर अनेको शताब्दियो तक बगालके मुसलमान शासको और अराकानके मगोल राजाओमें बहुत ही कशमकश होती रही थी। ईसाकी १७वी शताब्दीके प्रारम्भमें फेनी नदीको दोना राज्योकी सीमा मान लिया गया। परन्तु उसके बाद जहांगीरके ढीले-ढाले शासन तथा उसके उत्तराधिकारी शाहजहाके विद्रोहके कारण बगालमें मुगलाकी सत्ता घट गई। उधर अराकानियोके वेडेमे कई विदेशी नाविक आ मिले। ये पुर्तगाली फिरगी या उनकी अधगोरी सन्तान चटगांवमें बसकर वहाके राजाकी स्वामिभक्त प्रजा बन गए थे, और अराकानियोके जल-वेडेमे नाविक बनकर उनके भरती होनेसे १७वी शताब्दीके उत्तरार्द्धमें इस नाविक वेडेकी शक्ति बहुत बढ गईथी। पूर्वी बगालके सारे नदी-नालो तथा जल मार्गोपर माघोका ही पूरा-पूरा आधिपत्य हो गया।

अराकानके इन समुद्री डाकुओमें माघ और फिरगी दोनो ही शामिल थे। वे हमेशा जलमार्गसे आकर बगालमे लूटमार करते थे। बगाल दिनोदिन उजाड होता जा रहा था और उनसे अपनी रक्षा करनेकी शक्ति भी निरन्तर कम होती जा रही थी। फिरगी लुटेरे अपनी लूटके मालका आधा हिसा अराकानके राजाको देकर बाकी रहा आधा भाग खुद रख लेते थे। ये लोग 'हरमद' के नामसे ही प्रख्यात थे। यह 'हरमद' शब्द जहाजी बेडेके लिए पुर्तगाली शब्द 'आरमडा' का ही अपभ्रश था। इन लोगोके जहाजी वेडेमे युद्ध-सामग्रीसे भरे हुए तेज चलनेवाले कोई १०० जहाज थे।

पूर्वी बगालमे नदी किनारेके प्रदेश उजाड और निर्जन हो जानेसे साम्राज्यकी आमदनी भी बहुत घट गई। राज्य-मर्यादाको भी असहनीय धक्का पहुँचा। प्रान्तकी रक्षाके लिए चटगांवके इन सामुद्रिक लुटेरोको हराना अत्यावश्यक होगया।

मीरजुमलाके आरम्भ किए हुए कामको पूरा करनेके लिए शायेस्ताखाको आज्ञा दी गई। ऊपरी दृष्टिसे उसका यह काय

निराशाजनक और असम्भव-सा ही प्रतीत होता था। मुगल साम्राज्य-का एक जहाजी बेडा बगालमे रहता था। परन्तु शाहजादा शुजाके अव्यवस्थित शासन-कालमे अफसरोकी बेपरवाहीके कारण इस बेडेकी दशा बिगडती ही गई। बादमें मीरजुमलाने जब आसामपर चढ़ाईकी तब यह बेडा बिलकुल ही बरबाद हो गया था। मुगल साम्राज्यके लिए एक नया सुसज्जित जहाजी बेडा बनाना ही शायस्ताखाका पहला काम था। उसने इस कामकी ओर अब ध्यान दिया। उसकी महत्वा-काक्षा और उत्साहके कारण सारी कठिनाइया दूर हो गई। नये जहाज़ बनाए गए और केवल एक वर्षके ही थोडे-से समयमे एक नई सामुद्रिक सेना लडाईके लिए पूरी तरह सुसज्जित कर दी गई।

सन्दीप नामक टापू सग्रामगढ और चटगावके बीचोबीच स्थित है। नवम्बर १६६५ मे आक्रमण कर मुगलोने उसे जीत लिया, और वहाँ एक मुगल फौज तैनात कर दी गई। मुगलोकी मातहतीमे नौकरिया देनेका प्रलोभन देकर शायेस्ताखाने फिरगियोको भी अपनी ओर मिला लिया। अराकानी और फिरगियोमे बडा झगडा हुआ, जिसमे कई एक फिरगी मारे गए, एव चटगाँवमे रहनेवाले सारे फिरगी दिसम्बर १६६५मे अपना असबाब और कुटुम्बियोको लेकर मुगल प्रदेशोमे चले आए। उनके मुखियाओको बडी-बडी तनख्वाहे देकर मुगलाने उन्हे अपने जहाजी बेडेमे रख लिया। फिरगियोके इस प्रकार मुगलोके पक्षमें आ जाने से उपद्रव बद हो गए और बगालके लोगोकी जानमें जान आई।

१० मुगलोका चटगाँव जीतना

शायेस्ताखाँका लडका, बुजुर्ग उम्मेदखाँ एक बडी सेना लेकर २४ दिसम्बर १६६५ ई० को ढाकासे चल पडा। यह सेना समुद्रके किनारे-किनारे थल-मार्गसे अराकानकी ओर बढ रही थी, उधर शाही जहाजी बेडा लेकर इब्नहुसैन उसके साथ-साथ ही समुद्रमें एक-दूसरेकी सहायता करता हुआ चला जा रहा था। मुगल सेनाके एक

दलने फरहादखांके नायकत्वमें आगे वढकर १४ जनवरी १६६६ ई० को फेनी नदी पार की और वह अराकान प्रदेशमे जा पहुँचा ।

मुगल जहाजी वेडेका प्रधान सेनापति २३ जनवरीको कुमरियाकी खाडीमेंसे निकला और उसी दिन उसका सामना करनेके लिए दुश्मनो-का जहाजी वेडा कठालियाकी खाडीमे निकल कर आगे वढा । दोनो वेडोकी मुठभेड हो गई । मुगल बेडेके आगेके जहाजोपर फिरगी डटे हुए थे, उन्होने ऐसे जोरसे हमला किया कि उसीसे इस जहाजी युद्धका नतीजा स्पष्ट हो गया । गुर्राबोमें बैठे हुए माघ नावें छोडकर समुद्रमे कूद पडे और उन गुर्राबोपर मुगलोने अधिकार कर लिया । जालियावाले माघ भाग खडे हुए ।

किन्तु दुश्मनोके वडे-वडे जहाज हुरलाकी खाडीमें होते हुए अब खुले समुद्रमे आ गए ।

दूसरे दिन सुवह मुसलमानोको दूसरी वडी विजय मिली । वे गोलियोकी वर्षा करते हुए दुश्मनको खदेडते आगे वढ गए । अराकानी जहाजी वेडा आगे वढनेवाले मुगल बेडेपर गोलियाँ चलाता हुआ पीछे हटने लगा और कर्णफूली नदीकी ओर लौटा । तीसरे पहर कोई तीन वजे नदीके मुहानेमे घुसकर अराकानियोने चटगाँवसे एक कतारमें खडाकर युद्धकी तैयारी की । साथ ही उन्होने इसी नदीके सामनेवाले किनारेपर वासोकी तीन वाडे वनाए । किन्तु इब्नहुसैनने अपने वहुत-से जहाज पहिले ही नदीमें ऊपर भेज दिए थे, थल-मार्गमे भी हमलाकर उसने उन तीनो वाडोपर कब्जा कर लिया ।

अव तो मुगल इन सफलताओसे उत्साहित होकर दुश्मनोके जहाज़ोपर टूट पडे । एक घमासान लडाई छिड गई । चटगाँवके किलेपरसे भी मुगलो पर गोला-वारी होने लगी । किन्तु अन्तमें दुश्मनोको मुगलोने मार भगाया । दुश्मनोके वहुत-से नाविक तैरकर भागे और यो उन्होने अपनी जान वचाई । किन्तु वाकी सारे नाविक या तो मार डाले गए, अथवा उन्हें कैदी वना लिया गया । कोई

१३५ जहाज विजेताओंके हाथ लगे। २५ जनवरीको चटगाँवके किलेको मुगलोंने जा घेरा। दूसरे दिन २६ जनवरीको सुबहमें यह किला इब्नहुसैनके अधिकारमें आ गया।

इसी बीच २३ जनवरीको मुगलोंके जहाजी बेडेके आगे बढनेका समाचार पाते ही फरहादखांके मातहतकी मुगल फौज भी घने जंगलोंमें होकर चटगाँवकी ओर बढनेका भरसक प्रयत्न करने लगी। उसके आगे बढनेपर माघ लोगोंने भी राहमें पडनेवाले अपने सारे नाके छोड दिए। फरहादखाँ स्वयं तारीख २६को चटगाव पहुचा और दूसरे ही दिन इस विजयी सेनापतिने उस किलेमें प्रवेश किया। मुगलोंकी इस विजयका सबसे गौरवपूर्ण एवं सुखद परिणाम यह हुआ कि बंगालके जिन हजारों किसानोंको अराकानी समुद्री डाकू कैद कर ले गए थे और जिन्हें उन्होंने दास बना रखा था, वे अब स्वतन्त्र होकर अपने घरोंको वापस लौट आए। सूबेमें खेती और पैदावारीके बढ जानेसे बंगालको बहुत लाभ पहुँचा। चटगाँवमें मुगल थाना स्थापितकर वहाँ एक मुगल फौजदार नियुक्त किया गया, तथा उस शहरका नाम चटगावसे बदलकर इस्लामाबाद रखा गया।

११ अफगान, उनका चरित्र तथा मुगल साम्राज्यके साथ उनका सम्बन्ध

भारतसे काश्मीर और अफगानिस्तान जानेवाली घाटियो और उनके आसपासकी पहाडियोंमें सम्मिश्रित तुर्की और ईरानी जातियोंके अनेकों घराने रहते है, जो उत्तरमें पठान और दक्षिणमें बलूच कहलाती है। इस्लाम धर्ममें दीक्षित हो जानेपर भी अपने प्राचीन जातीय संगठन, बोली-चाली और लूटमार करनेके अपने चिरकालीन पेशेको उन्होंने अभी तक नही छोडा है।

मैदानमें रहनेवाली दूसरी जातियोंसे अधिक वीर और साहसी होते हुए भी अपने जातीय और कई बार निरे कुटुम्बी झगडोंके कारण ही उनमें कभी एकता नहीं हुई। यही कारण है कि उनके

सारे इतिहास मे कही भी हमे अधिक काल तक बने रहनेवाले उनके किसी बडे सुसगठित राज्यकी स्थापना करनेका वर्णन नही मिलता है, और न उन विभिन्न जातियोके किसी सुचालित सघकी स्थापनाका विवरणही उनमे पाते हैं।

वे कभी किसी प्रकार का कोई राष्ट्र-निर्माण नही कर सके, उनका सगठन जातीय सगठनसे अधिक नही हुआ, और उनके इस जातीय सगठनमें राजपूतोके समान ही कडे अनुशासनकी पूरी पूरी कमी होती है। अफरीदी या यूसुफजाई जातिवाले केवल अपने-अपने मुखियाओकी ही बात सुनते हैं, और वह भी केवल तभी जब या तो उससे उनका स्वार्थ सधता हो या अन्य किसी कारणवश ऐसा करनेको वे राजी हो गए हो। विभिन्न कुटुम्बोके निरन्तर बनने और टूटनेवाले इन दलोके अतिरिक्त किसी भी अफगान जातिकी सुरक्षा तथा उनकी ओरसे आक्रमण करनेके लिये किसी भी प्रकारकी कोई दूसरी सेना नही होती है। किसी भी जातिके मुखियाकी सत्ता केवल नाममात्र-की होती है, और जब तक उस जातिवाले स्वेच्छासे उसे मुखिया मानते हैं, तब तक ही उसकी कुछ चलती है। अफगान समाजमें सारी शक्ति विभिन्न परिवारोमे ही सीमित होती है, जातीय सगठन भी उनमे नही पाया जाता है।

ये जगली अफगान मेहनती, साहसी तथा साथ ही चालाक भी होते हैं, उनका एकमात्र वश-परम्परागत व्यवसाय होता है उन पहाडी मार्गोपर लूटमार करना। उनकी निरन्तर बढती हुई आबादीके लिए खेतीसे होने वाली थोडी-सी आमदनी किसी भी प्रकार पूरी नही पडती है। अपने पडोसवाले अधिक कमाऊ व्यक्तियो तथा पासकी ही राहपरसे होकर गुजरनेवाले धनी यात्रियो-को लूटकर एकबारगी तथा आसानीसे जो आमदनी हो जाती थी उसकी तुलनामें खेती-बाडीसे होने-वाले लाभ बहुत ही कम तथा बडी देरीसे प्राप्त होते थे। उन पहाडोमें बसनेवाली अफरीदी, शिनवारी, यूसुफजाई और खटक जातियोको भारतसे काबुल आने-

जानेवालोंसे कर वसूल करनेका अधिकार था, यह बात मुगलोंने भी स्वीकार कर ली थी। दीर्घकालीन अनुभवके बाद मुगलोंने देखा कि उस प्रदेशमें शान्ति बनाए रखनेके लिए सैनिक शक्ति द्वारा इन जातियोंको नियन्त्रणमें रखनेकी अपेक्षा उन्हें रुपये-पैसे देकर वशमें करना अधिक सरल था। राजनैतिक कारणोंसे बाध्य होकर यों द्रव्य दे-दिलानेपर भी कई बार उनसे आज्ञा पालन करवानेमें कठिनाई ही होती थी। यदा-कदा उनमेंसे कोई न कोई झूठ-मूठ ही अपने को राजकीय या किसी पवित्र घरानेका वंशज घोषित करके मुखिया बन जाता था। अपने ही खर्चसे नवयुवाओंके दलोंको खिलापिलाकर वह उन्हें संगठित करता और फिर अचानक विपक्षी कुनबोंके खेतोंपर आक्रमण कर बैठता या कभी शाही इलाकोंमें भी लूटमार करता था। जब तक यह लूटमारका तांता न टूटता तब तक उस दलका संगठन टूटने नहीं पाता था। किन्तु ज्योंही वे या तो बेकार होजाते या लूटमारकी सामग्रीके बटवारेको लेकर उनमें मतभेद हो जाता तभी ये आपसमें लड़ जाते थे और साथ ही वह दल भी बिखर जाता था*।

पूरी तरह अपनी सत्ता स्थापितकर अपनी प्रजाकी सुरक्षाके लिए शक्तिशाली मुगल बादशाह, जहां ये जातियाँ बसती हैं, उन घाटियोंमें अपनी बड़ी-बड़ी सेनाएँ भेजकर उन जातियोंके दलोंके संगठित विद्रोह दबाकर उनके घरोंको बरबाद करवा देता था। समतल मैदानोंपर सैनिक थानोंको स्थापितकर वहां अधिकार स्थायी बनानेका प्रयत्न किया जाता था। अफगानोंकी खेती उजाड़ दी जाती और अनेकों अफगानोंको तलवारके घाट उतारकर उनकी संख्या कम कर दी जाती थी। यदा-कदा कमजोर थानोंपर आक्रमणकर ये अफगान वहांके मुगल सैनिकोंको मार डालते थे। सरदीके मौसममें

*यूसुफज़ाई जातिके एक सन्तने अपनी जातिको एक साथ ही वरदान और अभिशाप देते हुए कहा था कि "तुम हमेशा स्वतंत्र रहो, और कभी संगठित न होओ" (एल्फस्टन, पृ० ३३८)।

ये थान उठा लिए जाते थे, और ज्योही वसन्त ऋतु शुरु होती अफगानाको दवानेका काम फिर प्रारम्भ हो जाता ।

कुछ ही वर्षोमें अफगानोकी यह आवादी फिर वढ जाती थी, जिससे मुगलो द्वारा मारे गए अफगानोकी सख्या पूरी हो जाती । तव पुन अफगानोके दलके दल पास-पडोसके प्रदेशो या व्यापारियोके कारवापर भूखे भेडियोकी नाई टूट पडते ।

फरवरी १६८६ ई० मे मुगल सेनाको पहली वार ऐसी हानि उठानी पडी । उस समय राजा वीरवल और उसके साथके कोई, ८,००० मुगल सैनिक स्वातकी घाटीमें मारे गए । अन्त मे विवश होकर वादशाहने इद जातियो द्वारा की जानेवाली लूटमारकी उपेक्षा कर उनके मुखियोके साथ सन्धि कर उन्हे प्रति वर्ष द्रव्य देनेका वादा किया । जहाँगीर और शाहजहाँके समयमे भी यही प्रवन्ध चलता गया ।

१२ यूसुफजाइयोका विद्रोह, १६६७ ई०

सन् १६७६ ई० में यूसुफजाइयोने आसपासके प्रदेशोपर अधिकार करनेका प्रयत्न किया । उनके महान् व्यक्तियोमे भागू नामक एक व्यक्ति था । उसने एक व्यक्तिको झूठ-मूठ ही पुराने राजघराने का वशज वताकर मुहम्मदशाहके नामसे गद्दीपर विठाया । भागूने उसका वज़ीर वनकर चढाईके लिए एक वडी फौजका सगठन किया । अटकके पास उसने सिन्धु नदी पार कर हज़ारा जिलेपर चढाई की । वहाके स्थानीय शासक शादमनको जीतकर उस प्रदेशके किसानोसे उसने लगान वसूल किया । यूसुफजाइयोके एक दूसरे दलने पश्चिमी पेशावरके शाही इलाको और अटक ज़िलेमे लूटमार करना आरम्भ कर दी ।

वादशाहने शाही इलाकोकी रक्षाके लिए पूरा-पूरा प्रवन्ध किया और हुक्म दिया कि शाही सेनाके तीन दल आक्रमण-कारियोके प्रदेशपर आक्रमण करें । १ अप्रेल १६६७को अटकके फौजदार कामिलखाने शत्रुओपर आक्रमण कर उन्हें नदी तक मार भगाया । इस प्रकार सिधु नदीके आसपासवाले शाही इलाकेमें शत्रु न रहे ।

अफगानिस्तानसे शाही सेनाके एक दलको लेकर शमशेरखांने मईमें सिन्धुको पार किया। यूसुफजाइयोके प्रदेशमें पहुँचकर उसने शाही सेनाके प्रधान सेनापतिका काम सभाल लिया। उसने उनसे अनेक लडाइयां लडी, तथा मईमें उसे पूरी विजय भी मिली। मदौर की तलाईवाले प्रदेशमें खेती कर वहाँ यूसुफजाई धान पैदा करते थे। शमशेरखांने इस प्रदेशपर अधिकार कर लिया और वहाँ यूसुफजाइयोंकी सारी खेती, मकान तथा अन्य जायदाद नष्ट कर दी। पजशिर नदीके तीरपर मसूर नामक स्थान तक उसने शत्रुओंको भगा दिया (२८ जून १६६७ ई०)। इसके कुछ ही समय बाद मुहम्मद आमीनखांको यहांकी शाही सेनाका प्रधान सेनापति नियुक्त किया गया, एव अगस्तके अन्तमें शमशेरखांके सारे अधिकार मुहम्मद आमीनखाने सम्हाल लिये। इस तरह अनेकानेक वार बुरी तरह हार खाने और इतनी हानि उठानेके बाद इस समय तो यूसुफजाई कुछ समयके लिए दव गए और इस पश्चिमोत्तर इलाकेमें १६७२ ई० तक उनका फिर कोई बडा बलवा नही हुआ।

१३ अफरीदी और खटकोका विद्रोह, १६७२ ई०, मुगल सेनापतियोपर विपत्तियां

१६७२ ई० मे जलालाबादके फौजदारके मूर्खतापूण व्यवहारसे खैबरकी इन जातियोंमें बडा ही असन्तोष फैला। अपने सेनापति अकमलखांके नेतृत्वमें अफरीदियोने विद्रोह कर दिया। अकमलखां एक जन्मजात सेनापति था। उसने अपने आपको शाह घोषित कर दिया और इस जातीय आन्दोलनमे सम्मिलित होनेके लिए उसने सब पठान जातियोको आमंत्रित किया। खैबरकी घाटीकी राह भी उसने बन्द कर दी।

१६७२ ई० की वसन्तमे अफगानिस्तान का सूबेदार मुहम्मद आमीनखां अपनी सेनाके साथ पेशावरसे काबुलके लिए रवाना हुआ उनके कुटुम्बी और उनका घरेलू सामान भी इस समय उनके साथ

था। जमरुदमें उसे पता लगा कि अफरीदियाने आगे माग रोक रखा था। फिर भी उसने अफगानाकी शक्तिकी अवनाकी और आख मीचकर वह अपने सर्वनाशकी ओर बढता ही गया। अली मसजिद पहुँचा और २१ अप्रेलके दिन उसने मोर्चा बनाकर खाइयाँ खुदवाई और वही पडाव डाला। जहाँसे इस पडावके लिए पानी लाते थे, रात्रिके समय अफरीदियोंने उसका रास्ता भी रोक दिया। दूसरे दिन अफगानाने पडावकी ओरसे उत्तरकर मुगल सेनापर आक्रमण किया, और सारी मुगल सेनाको मौतके घाट उतारकर उन्होंने मुगल पडावको लूट लिया।

मुहम्मद आमीनखाँ और उसके कुछ उच्च पदाधिकारी किसी तरह अपनी जान बचाकर वहासे भाग निकले और पेशावर जा पहुँचे। परन्तु इस बार वहाँ उन्होंने अपना सवस्व गँवाया। जुर्मानेके रूपमें एक बहुत बडी रकम देकर आमीनखाने अपनी मा, स्त्री और पुत्रीको छुडाया। इस असाधारण विजयसे अफरीदी नेताकी ख्याति फैल गई। अब उसके साधन भी बढ गए, और दूर-दूर प्रदेशोके लोग आ-आकर उसकी सेनामें भरती होने लगे।

अफगानोकी एक जाति खटकोकी भी है। इस जातिवालाकी सख्या बहुत है, एव वे बहुत युद्ध-प्रिय होते हैं। खटकोकी यूसुफजाइयोके साथ खानदानी दुश्मनी थी। खटकोका प्रधान नायक खुशालखाँ बडा कवि था। निडर बनकर शाही सत्ताका विरोध करनेके लिए वह वर्षोसे अपनी जातिको उत्तेजित कर रहा था। १६६७ ई० में यूसुफजाइयोपर आक्रमण करनेमे उसने मुगलाका साथ दिया था। परन्तु अब वह अकमलसे मिलकर अफगानाके इस आन्दोलनका प्राण-स्वरूप नेता बन गया। अपनी वीर-रसवाली कविताओंके साथही साथ अपने अदम्य साहस तथा अनोखे शूरतापूर्ण कार्योसे भी वह अपने साथी-सैनिकोको उत्तेजित कर रहा था।

यह विद्रोह अब सारे अफगानोका एक जातीय आन्दोलन बन गया था, जिससे पठानोके उस सारे देशपर उसका बहुत प्रभाव पडा।

के शासनका काम कोई डेढ़ वर्ष तक सम्हालता रहा। समस्त युद्ध-सामग्रीसे सुसज्जित दृढ सेनाश्रोंके जत्थे शत्रुओंके देशमें भेजे गए। जुलाई महीनेमें अगरखाको दक्षिणसे बुलाकर खैबर घाटीका रास्ता साफ करनेका काम उसे सौंपा।

घटना-स्थलपर औरगजेबके स्वय पहुँच जानेसे अब मुगलोंकी राजनैतिक चालो और शाही सेनाके सारे प्रयत्नोको सफलता मिलने लगी। बहुत ही थोडे समयमें मुगल सेनाने गौराई, गिलजाई, शीरानी और यूसुफजाई जातियोको बुरी तरह हराकर उन्हें उनके गाँवोसे भी निकाल बाहर किया। अगस्तके अन्तिम दिनोमें दरियाखाँ अफरीदीके साथियोने वादा किया कि यदि उनके पिछले अपराधोके लिए उन्हें माफ कर दिया जावेगा तो वे अफरीदी नेता अकमलका सिर काट ले आवेंगे।

इसी अरसेमें अगरखाँने खैबर घाटीके रास्तेको चालू कर देनेका प्रयत्न किया, परन्तु अली मसजिदके पास बडी देर तक युद्ध हुआ, अन्तमें हारकर उसे यह प्रयत्न छोड देना पडा। अब उसने नग्रहारपर अधिकार कर लिया और वहाँसे मार्ग खुला रखनेकी चेष्टा की। गिलजाइयोको उसने बारबार हराया और अन्तमें वे जगदलककी घाटीसे बाहर निकाल दिए गए।

१६७५ ई० के बसन्तमें जब फिदाईखा पेशावरको लौट रहा था, तब अफगानोने जगदलक घाटीमें उसपर आक्रमण किया। फिदाईखाँकी सेनाका हरोल हार गया। परन्तु फिदाईखाँ की धीरता और साहसके कारण ही उसकी सेनाका मध्य भाग बच सका। इस समय अगरखाँ गडमक में था, वह फुर्तीके साथ फिदाईखा की सहायताके लिए जा पहुँचा, और उसने आसपासके पहाडियोकी चोटियोपरसे शत्रुओंको मार भगाया।

जूनके आरम्भमें मुकर्रमखाँ एक बडी सेनाके साथ साथ अफगानोका पीछा कर रहा था, तब बजौर प्रदेशमें खपुशके पास अफगानोंने उसे बुरी तरह हराया।

शीघ्र ही बदला लेनेके उपाय किए गए। अफगानिस्तानमें स्थित सारे मुगल थानोमें सेना और युद्ध-सामग्री भेजकर उन्हें सुरक्षित तथा सुदृढ बनाया गया।

अगस्तके अन्तमे मुगल सेनाकी दो और हारोंके समाचार मिलें, जो बहुत ही साधारण और नगण्य थी। परन्तु पठान प्रदेशमे, युद्धकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण सारे स्थानोपर किले और थानोपर अपनी सेना रख मुगलोंने उस प्रदेशपर अपना आधिपत्य बनाए रखा। १६७५ ई० के अन्त तक स्थिति काफी सुधर गई थी एव तब बादशाह अब्दालसे दिल्लीको लौट गया।

१४ अफगानिस्तानपर अमीरखाका सुयोग्य शासन, १६७८--१६९८

खलीलुल्लाके पुन मीरखाने शाहबाजगढीके यूसुफजाइयो को दण्ड देकर तथा बिहारमें दो अफगान विद्रोहियोको दबाकर अपनी योग्यताका परिचय दिया था। १६७५ ई० में उसे अमीरखाकी पदवी मिली और १९ मार्च १६७७ ई० को वह काबुलका सूबेदार बनाकर वहाँ भेजा गया। उसने ८ जून १६७८ को अपना पद ग्रहण किया और मृत्यु-पर्यन्त २० साल तक बडी ही योग्यताके साथ वह अफगानिस्तानपर शासन करता रहा। वह अफगानोके हृदयपर शासन करने लगा तथा उसने उनके साथ सामाजिक सम्बन्ध भी स्थापित किए। वह अपने इन प्रयत्नोमें इतना सफल हुआ कि कबीलोके मुखिया अपनी शर्मीली और दूर रहने की आदतें छोडकर बिना किसी सदेह या हिचकके उससे मिलने-जुलने लगे। वे उसके घनिष्ट मित्र हो गए। अपने कौटुम्बिक मामलोको भी सुचारु रूपसे चलानेके लिए वे उसकी सलाह लेने लगे। उसके कुशल राज्य-प्रबन्धमे उन्होने शाही सत्ताको सताना छोड दिया और एक दूसरे का नाश करनेवाले पारस्परिक युद्धोमें ही अपना समय गँवाना भी उन्होने बन्द कर दिया। एक बार उसने अकलमके जत्थेको भी तोडनेके लिए उसके अनुचरो

को गुप्त रूपसे उकसाया कि वे जीती हुई जमीनका बटवारा करनेके लिए उससे कहे। इस प्रकार अकमल और उसके साथियोंमें विरोध उत्पन्न हो गया। अकमलने यह कहकर कि इतना छोटा प्रदेश इतने व्यक्तियोंमें कैसे बाटा जा सकता है, उस प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया। निराश पहाडी सैनिक उसका साथ छोड क्रुद्ध होते हुए अपने-अपने घरोको लौटने लगे। अन्तमें विवश होकर अकमलको उस जमीनका बँटवारा करना ही पडा। परन्तु उस बँटवारेमें उसने अपने सम्बंधियो और जाति-भाइयोंका ही अधिक ध्यान रखा, इसलिए उसके दूसरे साथी हताश हो गए और पडाव छोडकर चले गए। अमीरखाकी राज्य-व्यवस्था सम्बन्धी अधिकाश सफलता वास्तवमें उसकी ही पत्नी साहिबजीकी बुद्धिमत्तापूर्ण सलाह, चतुरता और कर्मशीलताके कारण हुई थी। अमीरखाकी यह पत्नी अली मर्दानकी पुत्री थी।

अन्तमें अफगानिस्तानमें बादशाह पूर्णतया सफल हुआ। उसने अफगानोको रुपया देने तथा एक जातिको दूसरीसे लडा देनेकी नीति अंगीकारकी थी। औरंगजेबके शब्दोंमे दो हड्डियोंको तोडनेके लिए ही वह उन्हें यो परस्पर टकराता था। अब मुगल साम्राज्यके शाही प्रदेशोपर सीमान्तकी ओरसे कोई आक्रमण नही होते थे। एक नियमित रकम पहाडियोको देकर खैबरका मार्ग खुला रखा जाता था। अमीरखाकी नीतिने अकमलके अनुयायियोमें फूट पैदा कर दी। अपने आपको शाह कहलानेवाला वह व्यक्ति जब मर गया तब अफरीदियोंने मुगल साम्राज्यसे सन्धि कर ली।

❀ कलिमात० (प० १६ ब) मे औरंगजेबने मृत अमीरखाकी शासन व्यवस्था सबन्धी तरीकोका वर्णन करते हुए बताया है कि वह एक न्यायी सूबेदार था और दूसरोंके साथ व्यवहार करनेमे वह चातुर्य तथा युक्तिसे किस प्रकार काम वह लेता था। खर्चके लिये स्वीकृत रकमसे बचत निकालकर किस प्रकार वह घाटियोके रास्तोको आवागमनके लिए

न झुकने वाला स्वतन्त्रता-प्रेमी दृढ-निश्चय खुशालखाँ खटक अनेक वर्ष बाद तक किसी भी प्रकार इस विद्रोहको चलाए गया। बगप, यूसुफजाई जातिवाले और उसका पुत्र अशराफ भी मुगलोकी ओरसे उसके ही विरुद्ध लड रहे थे। पर न तो आती हुई वृद्धावस्था और न अपने पक्षको निरन्तर बढनेवाली निराशापूर्ण विवशता ही उसके कट्टर और दृढ स्वभावको बदलनेमे समर्थ हुई। वह अकेला ही पठानोकी स्वतन्त्रताके झण्डेको ऊँचा उठाए रहा। अन्तमे उसके पुत्रने ही धोखा देकर उसे शत्रुओके हवाले कर दिया। अपने देशसे सैकडो कोसो दूर, शत्रुके किलेमें कैद वह वीर तब भी उत्साहपूर्ण स्वरोमें गरज उठता था—

'मै वह व्यक्ति हूँ, जिसने औरगजेबके हृदयको बुरी तरह आहत किया, और मेरे ही कारण मुगलोको खैबरका सौदा अत्यधिक मँहगा पडा।

इस अफगान-युद्धके कारण ही कुछ वर्षों बाद होनेवाले राजपूत-युद्धमें मुगलोको अफगानोसे कोई भी सहायता नही मिली। पश्चिमोत्तर सीमापर मुगलोको निरन्तर अपनी चुनी हुई सेनाए भेजनी पडती थी, जिससे दक्षिणमे शिवाजीके विरुद्ध जानेवाली सेनाएँ चाहिए वैसी अच्छी नही थी। मुगल सेनाओके इस प्रकार बँट जानेका मरहठोके नेताने पूरा-पूरा लाभ उठाया और एकके बाद दूसरी यो अनेको आश्चर्यजनक सफलताए प्राप्त की। दिसम्बर १६७६ ई०

खुले रखता था। किस प्रकार अनेको पहाडी अफगानोको शाही सेनाम जगह देकर वह उन्हे अपने लिए उपयोगी नौकर बना लेता था शाही खजानेसे, अपनी निजी जेबसे या अनियमित रूपसे वसूल किए हुए द्रव्य-मेसे बहुत सा रुपया उन्हे रिश्वतमे देता था। (पृ० ११ ब)। २५ अक्तूबर १६८१ ई० को अमीरखाका एक पत्र औरगजेबको मिला, जिसमे लिखा था—"मार्ग-रक्षाके लिए अफगानोको छ लाख रुपया देनेकी सरकारकी ओरसे मजूरी थी। मैने उसमेंसे सिर्फ डेढ लाख रुपया खर्च किया है, और बाकी रहे साढे चार लाख रुपयोंकी बचत हो गई।"

के बाद कोई पन्द्रह महीनोंके समयमें शिवाजी गोलकुण्डाके राज्यमें होकर कर्नाटक पहुँचा और वहांसे मैसूर और बीजापुर होता हुआ वापस रायगढ लौट आया। शिवाजीके जीवनका यह काल अत्यधिक सफलतापूर्ण रहा और उसकी इन सफलताओंमें कोई बाधा न होने देनेमें अफरीदियों तथा खटकोंका पूरा-पूरा हाथ रहा था।

अध्याय ८

औरंगजेबकी धार्मिक नीति और उसके प्रति हिन्दुओंकी प्रतिक्रिया

१ मुसलमानी राज्य,उसके सिद्धान्त और स्वरूप

इस्लाम धमके मूल तत्वोके अनुसार प्रत्येक मुसलमानी राज्य धर्मप्रधान होता है, जिसका सच्चा शासक और एकमात्र अधिकारी ईश्वर ही है और ससारी पार्थिव सुलतान खुदाके ही प्रतिनिधि-मात्र होते है, जिनका प्रधान कतव्य यही रहता है कि वे ईश्वरीय नियमो-का सबसे पालन करावें । पुन एकमात्र सच्चे धर्म इस्लामको चारो ओर फैलाना और उसका पालन करवाना ही प्रत्येक राजकीय शासनका प्रधान उद्देश्य होता है । इस प्रकारके राज्यमें इस्लाम धम में अवि-श्वास राज्य के विरुद्ध विद्रोह ही समझा जाता है, क्योकि विधर्मी व्यक्तियो राज्यके वास्तविक राजा ईश्वरकी सत्ताका अपमान करता है और उसके प्रतिद्वन्द्वी विरोधियो अर्थात् झूठे देवी-देवताओको पूजता है । इसलिए कट्टर इस्लामके अतिरिक्त अन्य किसी भी जाति या धर्मके प्रति कोई भी उदारता दिखाना इस धर्मके अनुसार पापसे कम नही समझा जाता है । बहु-देववाद अर्थात् एक परमेश्वरके साथ ही अनेक देवताओपर भी विश्वास रखना इस्लामके अनुसार एक घोर पाप समझा जाता है, अतएव इस्लामी धर्म-शास्त्रमें उसके सच्चे

अनुयायीको ईश्वरीय मार्गमें *जिहाद (कोशिश) ही उसका सबसे प्रधान एव महत्वपूर्ण कर्तव्य बताया गया है । काफिरोके देश (दार्-उल्-हर्ब) मे युद्ध करके इसको उस समय तक चलाए जाना चाहिए, जब तक कि वह इस्लामी राज्यके दायरे) दार्-उल्-इस्लाम (में पूर्णरूपसे शामिल नही हो जावे । धार्मिक एव राजनैतिक सिद्धान्तोके अनुसार ऐसी विजयके बाद उस देशके काफिरोकी सारी आबादी जीतनेवालोकी गुलाम बन जाती है ।

सम्पूर्ण जनसमाजको इस्लाम धर्ममे दीक्षितकर उसका धर्म परिवतन करना और हर प्रकारके धार्मिक मतभेदोको मिटा देना ही मुसलमानी राज्यका आदश है । किसी भी मुसलमानी समाजमें कोई काफिर रहने दिया जाता है तो केवल इसी कारण कि इस दोषको मिटाना तब सम्भव नही हो । ऐसी परिस्थिति केवल कुछ ही कालके लिए रह सकती है । ऐसे विधर्मीको राजनैतिक तथा सामाजिक अधिकारोसे वचित किया जाना चाहिए कि शीघ्र ही उस व्यक्तिको वह अनोखी आध्यात्मिक ज्योति प्राप्त हो जावे और उसका नाम भी सच्चे मुसलमान धर्मावलम्बियोमें लिखा जा सके* ।

---

* जिहाद फी-सबील् उल्लाह (कुरान, IX, २६) जिहादके लिए देखो—ह्यूज, प० २४३, २४८, ७१०, इसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, १,१०४१ । "और जब पवित्र माह समाप्त हो जावें, तब उन सारे व्यक्तियोको जो ईश्वरके साथ अन्य देवोका भी नाम जोडते हैं, जहा मिलें, मार डालो । पर यदि वे धर्म परिवर्तन करते हो तो उन्हे छोड दो और उन्हें अपना राह जाने दो ।" (कुरान, IX, ५,६) । 'उन विधर्मियोसे कहो कि यदि वे अपना अविश्वास छोड दे तो जो कुछ हो चुका है, उसके लिए उन्हें क्षमा कर दिया जावेगा । पर यदि वे पुन उसी विधर्मी मार्गको लौट पड़ें तो उनसे उस समय तक लडो, जब तक कि यह भेद भाव दूर होकर एक ईश्वरका ही मत सवत्र नही फैल जावे ।' (VIII, ३६ ४२) ।

* अरबसे बाहरके प्रदेशोंके मूर्तिपूजकोंके विषयमें शाफीका मत है कि उनका भी नाश कर दिया जाना चाहिए, परन्तु दूसरे विद्वान् लेखकोंके मतानुसार उन्हें गुलाम बना देना ही प [ ] ित होता है । ऐसा करनेमे मानो

२ इस्लामके अतिरिक्त अन्य धर्मावलम्बियोका राजनैतिक अधिकारोसे वचित किया जाना

अतएव कोई भी अन्य धर्मावलम्वी किसी मुसलमानी राज्यका नागरिक कदापि नही हो सकता है। वह उस राज्यके दलित समाजका एक सदस्य बन जाता है और उसकी राजनैतिक स्थिति निकृष्ट गुलामीसे कुछ ही अच्छी होती है। राज्यके साथ उसका एक प्रकारका ठेका (जिम्मा) हो जाता है। ईश्वर द्वारा दिए हुए जीवन और धनका भोग कर सकनेके लिए इस्लामी शासक उसे जो प्राणदान देते है उसके बदलेमे उसे कई एक राजनैतिक तथा सामाजिक अधिकारोका त्याग करना पडता है, एव इसी उपकारके लिए कर-रूपमे कुछ धन (जज़िया) देना भी उसके लिए अनिवार्य हो जाता है।

अपनी जमीनके लिए भी उसे कर (खिराज) देना पडता है। पहिले समयके मुसलमान यह कर नही देते थे। सेनाके खर्च के लिए भी उसपर एक और करका भार आता है। इस करके बदलेमे यदि वह स्वय सेनामे भरती होकर सेवा करना चाहे तो भी उसे सेनामें भरती नही किया जाता है। उस विधर्मीके लिए यह आवश्यक होता है कि अपने दरिद्री वेश और दीनतापूर्ण आचरणसे वह स्पष्टतया यह बतावे कि वह विजित समाजका ही एक व्यक्ति है। मुसलमानोके अतिरिक्त कोई भी विधर्मी (जिम्मी) किसी भी प्रकारका महीन कपडा नही पहन सकता है, और न वह घोडेपर ही चढ सकता है, और न वह शस्त्र ही धारण कर सकता है। विजयी जातिके प्रत्येक सदस्यके साथ सम्मानपूर्वक पूरी-पूरी दीनता दिखाते हुए ही उसे व्यवहार करना चाहिए।

उन्हें अवसर दिया जाता है कि इस समय ईश्वर उन्ह फिरसे एक बार सच्चे मार्गपर आनेकी प्रेरणा दे। किन्तु साथ ही साथ उन विधर्मियोका शरीर और माल मुसलमानी राज्यके अधीन हो जाता है। (ह्यूज, ७१०)। 'दार्-उल हर्ब' के लिए देखो, इन्साइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, १, ६१७।

* "जिम्मी' या रक्षित विधर्मियोके लिए देखो—ह्यूज ७१०-

इस्लामी कानूनकी पुस्तकोंमें दी हुई बातोंके आधारपर विद्वान् काजी मुघिसुद्दीन ने अलाउद्दीन खिजलीको बताया था कि—"इस प्रकारके दुर्व्यवहारोसे जिम्मीकी पूरी-पूरी तावेदारी, सच्चे इस्लाम धर्मके गौरवकी स्थापना और झूठे विधर्मियोका दमन स्पष्टरूपसे हो जाता है। उनको मार डालने, लूटने और कैद करनेकी भी आज्ञा पैगम्बरने हमे दी है। यहाँ हनीफा द्वारा प्रतिपादित धार्मिक व्यवस्था ही मानी जाती है। इम बडे इमामके अतिरिक्त अन्य किसी धार्मिक विद्वान्के ग्रन्थोमे हमें हिन्दुओसे जजिया कर वसूल करनेकी आज्ञा नही दी गई है। अन्य सारे मुसलमानी धर्मवेत्ताओंके अनुसार हिन्दुओ-के लिए एक ही नियम है– इस्लाम धम स्वीकार करना या मृत्यु ।"

जिम्मीको कानूनी अदालतमें गवाही देनेका अधिकार नही होता है। फौजदारी कानूनसे रक्षा पाने और विवाह सम्बन्धी कई मामलोमें भी उसे अनेकानेक असुविधाए भुगतनी पडती है। उसके जिम्माका

७३१, इन्साइक्लोपीडिका आफ इस्लाम, १ ६५८-१०५१, म्यूरकृत खलीफ़ेट, तीसरा सस्करण, १४९-१५८।' प्रत्येक स्वतन्त्र समझदार युवा जिम्मी पुरुष जजिया अन दे। अपनी अचल सम्पतिको या तो स्वय री रखे या उसे सारे मुसलमानोंके मामपर वक्फ करके भी अपने ही काममे लेता रहे। दोना ही हालतोमे अपनी ऐसी जायदाद तथा उसपर पैदा होनेवाली सारी फसलोंके लिए वह ऐसा 'खिराज' अथवा भूमि-कर देता है जो मुसलमान होनेपर भी उससे वसूल होता। मुसलमानोकी सेनाको बनाए रखने के लिए अन्य जा भी कर उसपर पडते है, उन्हें चुकाना उसका प्रधान कर्त्तव्य हाता है। वह मुसलमान नही है, यह बतानेके लिए उसे अपने रहन सहनमे आवश्यक भेद रखने पडते हैं, जैसे कि वह अच्छे कपडे न पहने, घोडेपर न चढे, शस्त्र धारण न करे और सारे मुसलमानोके प्रति वह विशेष आदर दिखावे। अदालतोमें गवाही देने, फौजदारी कानून द्वारा उसको रक्षा करने और विवाह जैसे महत्वपूर्ण मामलोंमें उसपर कानून द्वारा कई एक अनोग्यताएँ लादी गई है। अपने पूजापाठ तथा अन्य धार्मिक नियाओको लेकर कोई भी जिम्मी सार्वजनिक रूपसे न तो बातचीत हीकर सकता है और न उसका कोई प्रदशन हो। ये 'जिम्मी' किसी भी हालतमें मुसलमानी राज्यके नागरिक नही हैं।" (इन्साइक्लो०, १, पृ० ६५८ ६५६)।

करार करनेवाला होनेके कारण राज्य उसकी जान और मालकी रक्षाका भार लेता है, और उसे अपने धर्म-पालनकी भी थोडी-थोडी स्वतन्त्रता मिलती है। किन्तु न तो वह नए मन्दिर बना सकता है और न वह अपना पूजा-पाठ या ऐसे अन्य धार्मिक कार्य ही सार्वजनिक-रूपसे खुलेआम कर सकता है कि वे मुसलमानोके लिए क्रोधोत्पादक हो।

पहिलेके सारे अरब विजेताओने प्राय सर्वत्र और विशेषतया सिन्धमें इसी बुद्धिमानीपूर्ण लाभदायक नीतिको अपनाया था। उन्होने अन्य धर्मावलम्बी जनताके मन्दिरो, पूजा-घरो तथा उनके धार्मिक मामलोमें किसी भी प्रकारका हस्तक्षेप या छेडछाड नही की थी। आरम्भमें कभी स्वेच्छानुसार या नियमपूर्वक मूर्तिया नही तोडी जाती थी। धीरे-धीरे मुसलमानोकी सख्या बढती गई, साथ ही काफी समय तक जब वे निर्बाधरूपसे स्वच्छन्द शासन कर चुके तब उसके फलस्वरूप उनमे धार्मिक असहिष्णुताके अकुर फूटने लगे और धार्मिक अत्याचार करनेकी प्रवृत्ति बढने लगी। मारनेके अतिरिक्त अन्य सारे भीषणसे भीषण अत्याचर बिना किसी कारणके अन्य धर्मावलम्बियोपर इसलिए किए जाने लगे कि वे अपना धर्म छोड-कर इस्लामको ग्रहण कर लें। जजिया कर देने और रहन-सहन तथा वेश-भूषाकी रोक-टोकके साथ ही इन अन्य धर्मावलम्बियोको

---

* ईलियट, १, पृ० ४६६। "जिम्मी पुराने गिरजाघरोकी मरम्मत करवा सकते हैं, और उन्हे फिरसे बनवा भी सकते हैं, परन्तु नई जगहोमे नए पूजा घर नही बनवा सकते हैं।" इस्ला०, १, पृ० ९५९। "मुसलमानी राज्य मे नए पूजा घर बनवाना उनके लिए गैर कानूनी है, उन्हे वे भले ही अपने ही मकानो-मे बनवावें। किन्तु यदि ईसाइयोंके गिरजे और यहूदियोंकेदेवघर (Synagogue) गिर गए हो या बरबाद हो गए हो, तो उन्हें पुन बनवानेकी पूरी स्वतन्त्रता ईसाइयो और यहूदियोको प्राप्त है।" (ह्यूज, ७११)। "धार्मिक कानूनके अनुसार यह एक निश्चित एव सर्व-स्वीकृत बात है कि पुराने समय के बने हुए मन्दिरोको नही गिराया जावे, साथ ही नए मन्दिरोको बनानेकी आज्ञा भी नही दी जावे।" औरगजेबका बनारसवाला फरमान, ज० ए० सो० ब०, सन् १९११, पृ० ६८९।

कई दूसरी आशाएँ तथा डर भी दिखाए जाते थे। हिन्दू धर्म छोड़ देनेवालोंको धन अथवा सरकारी नौकरी दिए जानेका प्रलोभन दिया जाता था। हिन्दू धर्म और समाजके नेताओंपर दबाव डाला जाता था कि वे किसी भी प्रकारकी धार्मिक शिक्षा न देने पावें। हिन्दुओंके धार्मिक जुलूसों और सम्मेलनोंपर प्रतिबन्ध था कि उनमें किसी भी प्रकारका संगठन न हो सके तथा उनमें यों कहीं जातीय एकताकी भावना उत्पन्न न हो जावे। न तो कोई नया मन्दिर बनाया जा सकता था और न पुराने मन्दिरोंकी मरम्मत ही की जा सकती थी। एवं कुछ समय बाद सारे हिन्दू मन्दिर एकबारगी ही मिट जावेंगे, यह एक अवश्यम्भावी बात थी। परन्तु इसपर भी कई एक अधिक कट्टर इस्लामी भावनावाले मुसलमान समयसे पहलेही मन्दिरोंका सर्वनाश करनेके लिए उन्हें जबरदस्ती गिरा देते थे।

बादके इस युगमें, विशेषकर तुर्कोंके शासन-कालमें, प्राचीन अरबोंके समान इन अन्य धर्मोंके प्रति सहनशीलता दिखाना घोर पाप समझा जाता था। अपने राज्यसे बाहर प्रत्येक आक्रमण और युद्धमें हिन्दुओंकी हत्या करना और उनके मन्दिरोंका विनाश करना एक पुण्यदायक काय माना जाता था। इस प्रकार मुसलमानोंमें एक ऐसी विचारधारा उत्पन्न हो गई जिसके कारण वे स्वभावसे ही लूटमार और मानव-हत्याको पवित्रतम धार्मिक कार्योंमें गिनने लगे और इन्हें ईश्वरीय मार्गमें जिहाद समझने लगे। हिन्दकी हत्या (काफिर-कुशी) मुसलमानकी एक बड़ी विशेषता मानी जाती थी। अपनी वासनाओंको वशमें करना और अपनी इन्द्रियोंका दमन उसके लिए आवश्यक नहीं था। अपने ही समान जीवधारियोंकी एक विशेष जातिकी हत्या करना और उनका धन लूटना ही उसके लिए काफी था। केवल यही कार्य उसे आत्मिक उन्नति देकर स्वर्गके योग्य बनानेके लिए यथेष्ट माना गया।

*सन १९१० ई० में मिश्रके एक मुसलमानने बुत्रास पाशाको मार डाला। यह हत्या किसी व्यक्तिगत शत्रुताके कारण नहीं की गई थी, किन्तु उसका

जिस धर्मके अनुयायियोको यह शिक्षा दी जाती हो कि लूटमार और मानव-हत्या ही उनका प्रधान धार्मिक कर्तव्य है, वह धर्म किसी भी प्रकार मानव-उन्नति तथा ससारकी शान्तिके लिए हितकर नही हो सकता है।

३ कुरानके राजनैतिक आदर्शोका मुसलमानी जनता और उसके आश्रित अन्य धर्मोपर प्रभाव

इस्लाम अपने अनुयायियोंके सच्चे हितोंकी उन्नतिमे भी कभी सहायक नही हो सका। इस्लामकी इस राजनीतिके अनुसार इस धर्मपर विश्वास करनेवाले" सारे अनुयायी एक ऐसी सस्थाके अग समझे जाते थे जिसका एकमात्र आदर्श और कार्य युद्ध ही होता था। जब तक जीतनेके लिए नए-नए स्थान और लूटनेके लिए नित्य नए धनवान काफिर मिलते थे, तभी तक इस राज्यमे सब तरह खैरियत रहती थी। उस समय तक ही एक विशेष प्रकारकी चित्रकला, साहित्य, उद्योग-धन्धा और अन्य कलाओको भी आश्रय मिलता था। परन्तु जब मुसलमानी राज्य-विस्तारकी चरम सीमा तक फैलकर आसाम और चटगांवकी पहाडियोपर जा टकराया, तथा महाराष्ट्रकी शुष्क चट्टानोको राहसे हटानेका विफल प्रयास होने लगा, तब तो एकबारगी पतनसे उसे बचानेका कोई साधन ही न रह गया। राज्यका कोई भी स्थायी आर्थिक आधार नही था और शान्तिके समय अपने

एकमात्र यहा राजनतिक कारण था कि उक्त पाशा दिनशवाई ग्रामवासियोंको दण्ड देनेवाली अदालतका प्रमुख था। उक्त मुसलमानको इस हत्याके अभियोगमे मिस्रके प्रधान काजीके सामने पेश किया गया। गवाहोंके बयानसे यह पूरी तरह साबित भी हो गया था कि उक्त मुसलमानने हत्या की थी, तथापि इस मुकद्दमे का फसला देते हुए मिस्रके प्रधान काजीने कहा कि इस्लाम धर्मके अनुसार मुसलमानके लिए किसी विधर्मीकी हत्या करना कोई पाप अथवा जुर्म नही है। आजके सभ्य देशोंमे भी इस्लामके सिद्धान्तोकी अधिकारपूर्वक विवेचना करनेवाले सबसे बडे धर्माधिकारीका भी यह मत था।

अस्तित्वको बनाए रखनेमें वह असमर्थ ही रहा।

इन विजेताओंमें यह योग्यता बिलकुल ही न थी कि वे शान्ति युगके उद्योग-धन्धोंमें पूरी तरहसे लग जावें और तब भी निरन्तर चलनेवाले इस अनिवार्य जीवन-संग्राममें सफलता-पूर्वक टिक सकें। उनके लिए शान्तिका अर्थ होता था—'बेकारी, दुर्व्यसन, कुकर्म और घोर पतन।

इस्लामके निश्चित सिद्धान्तोंका अंतिम और एकमात्र परिणाम यही होता था कि मुसलमान धर्मावलम्बियोंको विशेष अधिकार-प्राप्त जातिका स्थान मिल जाता था। अतएव इस अधिकारी वर्गका भरण-पोषण राज्य द्वारा ही होता था, इस कारण शान्तिके समय उनका आलस्योन्मुख होना स्वाभाविक ही था। जीवन-क्षेत्रमें वे अपने पैरोंपर स्वयं खड़े होनेमें सर्वथा असमर्थ रहते थे। राज्यके सारे ऊँचे-ऊँचे ओहदोंपर नियुक्त किया जाना, मुसलमानोंका ही जन्मसिद्ध अधिकार माना जाता था। इसलिए विशेष योग्यता दिखाने या किसी भी प्रकारकी मिहनत करनेके लिए कोई प्रलोभन भी उनके लिए नहीं रह गया था। इस प्रकार मुसलमानी साम्राज्यमें एक स्थूल शरीरवाली आलसी जातिकी सृष्टि हुई। इसी जातिने धीरे धीरे साम्राज्यकी जड़ोंको निर्बल बना दिया और जब उस साम्राज्यकी समृद्धिका अन्त हुआ तो उससे इसी जातिको सबसे पहिले हानि पहुँची। धनकी प्राप्तिसे आलस्य और विलास-प्रियताका उद्भव हुआ, जो इस जातिको कुकर्मोंकी ओर ले गई, दुर्व्यसन और कुकर्मोंके फलस्वरूप वे दरिद्री हो गए, तथा इस प्रकार उनका सर्वनाश हुआ।

साथ ही साथ उनकी आश्रित प्रजाके साथ जो दुर्व्यवहार होते रहे थे, उनसे राज्यकी उन्नतिके लिए आवश्यक सारे साधनोंका पूर्ण विकास और उपयोग नहीं हो सका था। जब किसी जाति या जन समुदायको खुले-आम कानून द्वारा या हाकिमोंकी स्वेच्छाचारिताके अनुसार दबाया जाता है या उनपर अत्याचार किए जाते हैं, तब अपने अस्तित्वको बनाए रखनेके लिए केवल पशुओंका-सा जीवन व्यतीत

करके ही उन्हें सन्तोष कर लेना पडता है। ऐसे समय हिन्दुओसे यह आशा रखना कि भरसक प्रयत्न कर वे उत्पादनको पूरा-पूरा वढा देगे व्यर्थ ही था। अपने शासकोके यहाँ पानी भरना या लकडी चीरना ही उनके भाग्यमे बदा था। पैसा कमा-कमाकर राज्यको सौप देना ही उनका प्रधान कर्तव्य था। अपनी गाढी कमाईमेंसे जो कुछ भी बचाया जा सके उसे बचानेके लिए वे निकृष्ट कोटिकी चालाकी और चापलूसीको ही अपनानेमे हिचकिचाते न थे। इस प्रकारकी सामाजिक परिस्थितियोमें किसी भी मानवका शारीरिक और मानसिक विकास होना, तथा उनका उच्चतम योग्यता प्राप्त करना एक असम्भव बात थी। मानवीय आत्माका भी अपनी चरम सीमा तक विकास नही हो सकता था। मुसलमानी शासन-कालमें ज्ञान और चिंतनके क्षेत्रोमें हिन्दू कुछ भी नही कर पाए, एव उच्च जातीय हिन्दुओमे अवाच्छनीय कुत्सित नीच प्रवृत्तियाँ आ गई। ये दो बातें ही उनके शासनकी निन्दाके लिए पर्याप्त है। जो फल पका,उसे देखते हुए यह स्पष्ट है कि भारतमे मुसलमानी राजनैतिक वृक्ष सर्वथा निरथक ही साबित हुआ।

एक आधुनिक महापडित जर्मन तत्ववेत्ता का कथन है कि—इस्लाम धमके अनुसार ईश्वरके प्रति सम्पूर्ण आत्मसमर्पण और उसके सामने पूरी-पूरी दीनता स्वीकार करना आवश्यक होता है, परन्तु उनका यह ईश्वर विशिष्ट गुणवाला एक युद्ध-देवता ही होता है। इस धर्मकी सारी रीति-परम्परामे कडे अनुशासनकी भावना पूरी तरह निहित है। इस्लाम धर्मके सैनिक आधार एव उसके फौजी स्वरूपमे ही प्रत्येक मुसलमानमें आवश्यक गुणोकी स्पष्ट विवेचना देख पडती है। उनकी अप्रगतिशीलता, उनका अक्खडपन, जमानेंके साथ बदलने और उसके उपयुक्त बन सकनेकी शक्तिका अभाव, आविष्कार-बुद्धि एव स्वाभाविक प्रेरणाका न होना, आदि मुसलमानोमें स्वाभाविकतया पाए जानेवाले दोषोका स्पष्टीकरण भी इसी विशेषतासे हो जाता है। सैनिकका कर्तव्य तो आज्ञापालन

तक ही सीमित रहता है । बाकी रही सारी बातें अल्लाहके ही भरोसे रहती है । (एच० कैसरलिंग) ।

जब राज्यके ऊँचे-ऊंचे पदोपर नियुक्तियाँ गुणोकी अपेक्षा जाति या धमके ही आधारपर की जाती है, तब गैरमुसलमानी जनताका बरबस यही विश्वास हो जाता है कि उस राज्यमें उनके लिए कोई स्थान या किसी भी प्रकारका सम्बन्ध नही है । विभिन्न धर्मावलम्बियो की सम्मिलित आबादीपर जब कभी ऐसी इस्लामी धर्म-प्रधान राजसत्ता स्थापित हो जाती है, तब अल्पजनसत्तात्मक राज्य (oligarchy) तथा विदेशी शासनके सारे दुर्गुण उस राज्यमें उत्पन्न हो जाते है।

भारतीय मुगल साम्राज्यमे तो समूची शासन-सत्ता बहुत ही थोडे लोगोके हाथमे केन्द्रित थी । शासन करनेवाले इन अल्पसख्यको तथा शासित बहुसख्याकोमें केवल एक ही बात, धममें विभिन्नता ही पाई जाती थी, जातीय गुणो, शारीरिक और मानसिक शक्तिया तथा अन्य सारी बातोमें उनमें कोई भी भेद नही था । इस शासक-समुदायके अतिरिक्त अन्य सभी इतर-धर्मावलम्बी स्वाभाविकतया यही सोचते थे कि समाज, देशकी सत्ता और सारे साधन शासकाको जनसमाजकी भलाईके लिए ही सौपे गये थे । किन्तु वे शासक इनका निरन्तर दुरुपयोग कर उन इतर-धर्मावलम्बियोको ही मिटानेके लिए भरसक प्रयत्न करनेवाले धर्मका प्रचार करनेमे रत रहते थ। ऐसा राज्य जनताकी श्रद्धा और प्रेमपर स्थित नही था । ऐसे राज्यको राष्ट्रीय कहलानेका कोई भी अधिकार नही था ।

४ मुसलमानी राज्य में धार्मिक सहनशीलता कुरान सम्मत कानूनके विरुद्ध एव अपवाद-स्वरूप थी

कट्टर इस्लाम धर्मके अनुसार जिस प्रकारके आदश राज्यकी कल्पना की गई थी, उसका स्वरूप ऊपर दिया गया है । इसमें सन्देह नही कि यदा-कदा साधारण सद्बुद्धिकी तर्कपर और राजनैतिकताकी धर्मपर विजय हो जाती थी । कई बार मानव स्वभावकी दुबलताए

कारण हर एक सम्राट् या हाकिमके लिए यह असम्भव हो जाता था कि वह इस भयकर असहिष्णुतापूर्ण नीतिका सर्वत्र एव सदैव सख्तीके साथ पालन करवा सके। इसी कारण मुसलमानी शासन-कालमे कई बार ऐसे भी समय आए जब हिन्दुओके साथ सहिष्णुताकी नीति वरती गई और उनके जान-मालकी पूरी-पूरी रक्षा की गई। यदा-यदा कई बुद्धिमान और उदार विचारवाले बादशाहोने हिदुओको प्रोत्साहन भी दिया, साहित्य और कलाकी उन्नति करनेके लिए उनको प्रेरित किया, धन और ऊचे पद दिए और यो उनका राज्य शक्तिशाली तथा समृद्धिपूर्ण होता गया।

परन्तु इस प्रकार अपने धर्मके प्रति अविश्वासपूर्ण यह सारी सहिष्णुता दिखाना अपवाद-स्वरूप यदा-कदा ही देखनेमे आता था। इस प्रकारकी सारी कार्यवाही मुसलमानी ससारकी दृष्टिसे इस्लामके सच्चे सिद्धान्तोके विरुद्ध एक निन्दनीय आचरण और शासकके प्रधान कर्तव्यकी अक्षम्य दुष्टतापूर्ण अवहेलना ही प्रतीत होती थी। मुसलमान शासककी सारी सत्ता मुसलमानी सेनाकी तलवारोपर ही निर्भर रहती थी। किसी भी उदार विचारोवाले सुलतानको ये मुसलमान सैनिक ऐसा धर्मद्रोही शासक समझते जो किसी भी तरह उनपर शासन करनेके योग्य नही था।

इसलिए गैर-मुसलमानोकी वृद्धि और उन्नति तथा उनका निरन्तर अस्तित्व बना रहना ही मुसलमानी राज्यके आधारभूत सिद्धान्तोकी दृष्टिसे सर्वथा असगत था। जब तक या तो ये सारे विरोधी नष्ट न हो जाएँ अथवा मुसलमानोके हाथसे ही सत्ता न निकल जावे तब तक ऐसा राजनैतिक समाज बहुत ही अस्थायी और अनिश्चिततापूर्ण बना रहता था। इस प्रकार उस राज्यमे शासक और शासितोके बीच एक परम्परागत प्राचीन पारस्परिक विरोधकी भावना निरन्तर बनी रहती थी। इस भावनाके कारण ही विभिन्न धर्मावलम्बियोके जन-समूहवाले मुसलमानी राज्यका सदैव अन्तमे विनाश हुआ है, और औरगजेबके शासन-कालमें यह अनिवार्य सत्य पूरी

तरह चरितार्थ होकर ही रहा।

औरगजेबकी धर्मान्धता और मन्दिरोका विध्वन्स

औरगज़ेबने बडी घूर्तताके साथ हिन्दू धमपर धीरे-धीरे आक्रमण किये। अपने राज्य-कालके पहिले ही वर्षमें वनारसके एक पुजारीको दिए गए अधिकार-पत्रमें उसने घोपित किया कि उसका धम नए मन्दिर बनानेकी आज्ञा नही देता, परन्तु वह साथ ही पुराने मन्दिरोको नष्ट करनेका भी आदेश नही देता है। सन् १६४४ ई० में जब वह गुजरातका सूबेदार था, तब उसने अहमदावादमें तत्काल ही बने हुए चिन्तामणिके हिन्दू मन्दिरमें गो-हत्या करवाकर उसे भ्रष्ट करवा दिया, और वादमें उस मन्दिरको मसजिदमें बदलवा दिया। उसी समय उसने गुजरातके और भी हिन्दू मन्दिरोको गिरवाया था। अपने शासन-कालके प्रारम्भमें ही औरगजेबने एक हुक्म निकाला था, जिसमे उसने कटकसे लेकर मेदिनीपुर तक उडीसाके प्रत्येक शहरके स्थानीय हाकिमको सारे मदिर गिरवा देनेकी आज्ञा दी थी। पिछले १० या १२ वर्षके भीतर बने मिट्टीके झोपडोमें स्थापित मन्दिरोको भी इस हुक्मके अन्तर्गत माना गया। उसने पुराने मन्दिरोंकी मरम्मत करवाना भी वन्द करवा दी।

फिर ९ अप्रेल १६६९को उसने एक आम हुक्म दिया कि काफिरो के सब शिक्षालय और मन्दिर* गिरा दिए जावें तथा उनकी धार्मिक प्रथाओको दवाया जावे। अब उसकी यह विनाशकारी कुदाल सोमनाथके दूसरे मन्दिर, बनारसमें विश्वनाथजीके मदिर और मथुरा में केशवरायजीके मन्दिरके समान बडे मन्दिरो पर भी पडी, जिन्हें सारे भारतकी समस्त हिन्दू जनता बडे ही आदर और श्रद्धाकी दृष्टिसे देखती थी।

---

*औरगजेबने जिन-जिन मन्दिराको तुडवाया उनकी सप्रमाण सूची मेरे वहत् ग्रन्थ 'औरगज़ेब'की तीसरी जिल्दकी परिशिष्टमे देखो।

मुसलमानोकी धर्मान्धतापूर्ण नीतिके फलस्वरूप मथुराकी पवित्र भूमिपर सदैव ही विशेष आघात होते रहे हैं। दिल्लीसे आगरा जानेवाले राजमार्गपर स्थित होनेके कारण मथुराकी ओर सदैव विशेष ध्यान आकर्षित होता रहा है। वहाँके हिन्दुओको दावनेके लिए औरगजेवने अब्दुन्नबी नामक एक कट्टर मुसलमानको मथुराका फौजदार नियुक्त किया।

कई वर्ष पहले दाराने उपहारस्वरूप मथुराके केशवरायके मन्दिरमे पत्थरका जगमोहक जगला लगवा दिया था। यह बात १४ अक्तूबर १६६६ ई० को औरगजेवको ज्ञात हुई। उसने तत्काल ही हुक्म दिया कि उस जगलेको वहासे हटा दिया जावे। अन्तमे जनवरी, १६७० ई० में उसने इस मन्दिरको बिलकुल ही विध्वस कर देनेकी आज्ञा दी और यह भी हुक्म दिया कि मथुरा शहरका नाम बदल कर इस्लामाबाद कर दिया जावे। साम्राज्यके सारे सूबो, परगनो, शहरो और महत्त्वपूर्ण स्थानोमे जनताके सदाचारकी देख-रेख करनेके लिए मुहतसिब नियुक्त किए गए, जिनका एक प्रधान कर्तव्य यह भी होता था कि वे हिन्दुओके तीर्थो और मन्दिरोका विध्वस कर उन्हे तहस-नहस कर दें। जून १६८०में आम्बेर राज्यके स्वामिभक्त राजाकी राजधानीके भी सारे मन्दिर तुडवा डाले गए।

गुजरातमे हिन्दुओको धर्मार्थ वजीफे के रूपमे जो भी जमीने दी गई थी, वे सब सन् १६७४ ई० में जब्त कर ली गई।

६ गैर-मुसलमानोपर जजिया कर

मुसलमानी राज्यमे रहनेकी इजाजतके लिए हर काफिरको जजिया नामक कर देना पडता था। जजिया का अर्थ होता है, बदलेमें दिया गया धन अथवा जीवन-यापन की सुविधाका मूल्य। यह कर पहिले-पहल मुहम्मदने ही लगाया था। उसने अपने धर्मानुयायियोको आदेश दिया था कि, जो लोग इस्लामके इस सच्चे मतको अगीकार नही करे, उनसे तब तक युद्ध करो जब तक कि वे

दीनतापूर्वक अपने ही हाथोंसे जज़िया नही चुका देवें । (कुरान, ६, २६) ।

स्त्रियो, १४ वर्षसे कम उमरके बच्चो और गुलामोंको इस करसे छूट दी गई थी । धनवान् होनेकी हालतमें ही अंधो, लगडो और पागलोको यह कर देना पडता था । गरीब होनेपर महन्त या सन्यासी भी यह कर देनेसे छूट जाते थे, परन्तु यदि वे एक धनवान् मठमें रहनेवालोमेंसे होते थे तो इन मठोके मठाधीशोको उन गरीब महन्तो या सन्यासियोकी भी ओरसे यह कर चुकाना पडता था । करकी रकम मनुष्य की वास्तविक आमदनीके अनुपातमें नही होती थी, फिर भी जायदादके मूल्याकनके आधारपर ही कर देनेवाले साधारणत तीन श्रेणियोमे विभाजित किए जाते थे । सबसे पहली श्रेणी में रुपये-पैसेका लेनदेन करनेवाले, कपडेके व्यापारी, जमीदार और वैद्य लोग होते थे, परन्तु दर्जी, रगरेज, कुम्हार, चमार आदि व्यवसायी लोगोकी गिनती गरीबोमें होती थी । उनसे यह कर उसी हालतमें लिया जाता था यदि जीवन बितानेके लिए आवश्यक रकमके बाद भी उनकी आमदनीमेंसे कुछ रुपया बाकी बचता हो । भिखारी और दिवालिये तो स्वाभाविकतया ही इस करसे बच जाते थे ।

तीन श्रेणियोके लिए कर की क्रमश १२, २४ और ४८ दरहम प्रति वर्षकी अलग-अलग दरे नियत की गई थी, रुपयोम इनका मूल्य क्रमश ३ , ६ और १३ रुपये होता था । आबादी की गरीब जनतापर ही जज़ियाका सबसे अधिक भार पडता था । अकबरने इसे बन्द करके अपनी अधिकाश प्रजापरसे एक राजनैतिक असमानता एव अधोगतिके इस द्वेषपूर्ण कलकको हटा दिया था (१५६४ ई०), परन्तु औरगजेबने अकबरकी इस उदार नीतिको उलट दिया ।

शाही हुक्मसे २ अप्रेल १६७६ ई० को साम्राज्यके सब भागोमें जज़िया कर फिरसे लगा दिया गया । यह कर गैरमुसलमानोस ही वसूल होता था । दिल्ली और वहीके आस-पासके प्रदेशके हिन्दुओ ने एकत्रित होकर इस करको हटा लेनेके लिए औरगजेबसे बडी ही

करुणाजनक प्रार्थना की। परन्तु बादशाहने यह सब सुनी-अनसुनी कर दी। इसी समय शिवाजीने तर्कयुक्त विचारपूर्ण सयत शब्दोमे एक पत्र लिखकर इस नए करकी इस अनीतिको दूर करनेके लिए औरगजेबसे प्रार्थना की। मानवमात्रके लिए ईश्वर एक ही है, और उस ईश्वरपर सच्चा विश्वास करनेवाले सारे धर्म ईश्वरके लिए समान ही है, उस महान् सत्यकी ओर ध्यान देनेके लिए भी शिवाजी ने अपने इस पत्रम विशेष आग्रह किया था। परन्तु शिवाजीके इस पत्रकी ओर औरगजेबने कोई ध्यान नही दिया।*

इस करसे बहुत बडी रकम वसूल होती थी, केवल गुजरात प्रान्तमें ही जजिया करमे कोई पाच लाख रुपये प्रति वर्ष आते थे। हिन्दुओके लिए जजिया करका अर्थ यही होता था कि प्रत्येक हिन्दू नागरिकको राज्यको दिए जानेवाले करोके अपने भागमे एक-तिहाई हिस्सा और भी दे देना पडता था। इस करके भारसे बचनेका एकमात्र उपाय इस्लाम धर्म अगीकार कर मुसलमान बनना ही था। समकालीन इतिहासकार मनुचीने लिखा है—"ऐसे अनेको हिन्दू जो यह कर नही दे सकते थे, इस करको वसूल करनेवालो द्वारा किए जानेवाले अपमानोसे छुटकारा पानेके लिए मुसलमान हो गए। और यह सब देखकर औरगजेब आनन्दित होता है।"

७ हिन्दुओके दमन के उपाय

बेचनेके लिए आनेवाली वस्तुओपर महसूल लगानेके लिए १० अप्रेल १६६५ ई० को एक नियम जारी किया गया। इसके अनुसार मुसलमान सौदागरोकी वस्तुओके मूल्यपर २ प्रतिशत और हिन्दुओसे उसका ५ प्रतिशत चुगीकर लिया जाता था।

९ मई १६६७को बादशाहने मुसलमान सौदागरोपरसे चुगी-कर बिलकुल उठा दिया, परन्तु हिन्दू सौदागरोसे पुराने नियमके अनुसार

*इस पत्र के लिए देखो मेरे ग्रथ 'औरगजेब', खड ३, परिशिष्ट ६, अथवा 'शिवाजी', चौथा सस्करण, अध्याय १३।

ही कर लिया जाता रहा। इससे राज्यकी वास्तवमें अत्यधिक हानिकी संभावना और भी बढ़ गई, क्योंकि अब हिन्दू सौदागर मुसलमानोंको प्रलोभन देकर अपने मालको उनका कहकर निकलवा देनेकी चालाकी करनेको प्रेरित होने लगे।

काफिरोंपर आर्थिक दवाव डालनेकी नीति का एक और साधन यह था कि धर्म परिवर्तन करनेवालोंको पुरस्कार मिलते थे। मुसलमान हो जाने की शर्तपर हिन्दुओंको ऊंचे पद दिए जाने, दंडसे छुटकारा पाने अथवा विवादग्रस्त जायदादपर उनका अधिकार माना जानेका प्रलोभन भी दिया जाता था।

१६७१ ई० में एक हुक्म इस आशयका निकाला कि राज्यके कर वसूल करनेवाले सब मुसलमान ही हों। सब शासकों और ताल्लुकेदारोंको भी आज्ञा दी गई कि वे अपने हिन्दू पेशकारों और दीवानोंको निकालकर उनके स्थानपर मुसलमानोंको नियुक्त करें परन्तु प्रान्तीय अधिकारियोंके हिन्दू पेशकारोंको हटा देने से कई स्थानोंमें शासनका चलाना भी असम्भव प्रतीत हुआ। फिर भी कुछ स्थानोंमें जिलेके कर वसूल करनेके लिए हिन्दुओं की जगह मुसलमान करोडी नियुक्त हो गए। आगे चलकर अनिवार्य आवश्यकतासे विवश होकर बादशाहको माल-मन्त्री और तनख्वाह-नवीसके महकमोंमें आधे पेशकार हिन्दू और आधे मुसलमान रखनेकी अनुमति देनी पड़ी। औरंगजेबके शासन-कालमें कानूनगो बननेके लिए मुसलमान बनना एक लोकप्रसिद्ध कहावत हो गई थी। आज भी पंजाब के अनेक कुटुम्बोंके पास वे आज्ञा-पत्र सुरक्षित हैं जिनमें उस पदपर नियुक्ति की इस शर्तका बिना किसी हिचकिचाहटके स्पष्ट शब्दोंमें उल्लेख किया गया है।

बादशाहकी आज्ञा होनेपर धर्म परिवर्तन करनेवाले कुछ व्यक्तियोंको हाथीपर बिठाकर गाजे-बाजे और झण्डोंके साथ बड़े-बड़े शहरोंकी गलियोंमें उनका जुलूस भी निकाला जाता था। कई दूसरे लोगोंको चार आना प्रति दिनके हिसाबसे दैनिक तनख्वाहें भी मिलती थीं।

मार्च १६६५ ई० मे शाही हुक्म द्वारा राजपूतोके सिवाय दूसरे सारे हिन्दुओको हाथी, घोडे और पालकीपर चढनेकी मुमानियत कर दी गई। वे अब शस्त्र भी धारण नही कर सकते थे।

प्रति वर्ष साल भरमें कुछ निश्चित दिनोपर भारतके विभिन्न तीर्थ-स्थानोपर हिन्दुओके बडे-बडे धार्मिक मेले भरते हैं। वहाँ दूर-दूर प्रदेशोसे हजारो स्त्री-पुरुष, बूढे और बालक एकत्रित होते हैं। ऐसे अवसरपर उन मेलोमे व्यापारी दूकाने लगाते हैं और देश-प्रदेशकी वस्तुए प्रदर्शित की जाती हैं। गाँवोकी स्त्रियाँ ऐसे अवसरोपर दूर-दूर रहनेवाली अपनी सखिया और सगी-सम्बन्धियोसे मिलती और इस उत्सवका आनन्द उठाती है। सन् १६६८ ई० में औरगजेबने शाही हुक्म निकाला कि साम्राज्य भरमे कही भी ऐसे मेले न पडे।

हिन्दुओके होली और दीवाली त्योहार मनानेके बारेमे भी हुक्म हुआ कि वे बाजारसे बाहर और वह भी बहुत ही नियन्त्रित रूपमें मनाए जावे।

८ मथुरा जिलेके हिन्दुओंका दमन किसानोंका विद्रोह

हिन्दू धर्मपर जब इस तरह खुले तौरसे आक्रमण होने लगे तब यह स्वाभाविक ही था कि इस तरह दबाए गए हिन्दुओमें तीव्र असन्तोष उत्पन्न हो। बादशाहकी हत्या करनेके लिए भी उसपर अनेकानेक आक्रमण किए गए, किन्तु ये आक्रमण ऐसी मूर्खतापूर्ण रीतिसे किए गए कि वे असफल ही रहे।

१६६९ ई० के आरम्भमें मथुरा जिलेमें हिन्दू जनताका एक भीषण विद्रोह उठ खडा हुआ। अब्दुन्नबीखाँ अगस्त, १६६० ई० से मई १६६९ ई० तक मथुराका फौजदार रहा था। बडे ही उत्साहके साथ उसने अपने सम्राट्की मूर्ति पूजाका अन्त करदेने की नीतिका पालन किया था।

अपने इस पदपर नियुक्त होनेके कुछ समय बाद ही उसने

हिन्दू मन्दिरके भग्नावशेषोपर मथुरा शहरके बीचो-बीच एक जुमा मसजिद बनवाई (१६६१–६२ ई०) तत्पश्चात् १६६६ ई० में उसने केशवरायके मन्दिरको दारा द्वारा उपहारमें दिया हुआ नक्काशीदार पत्थरका जगला वहासे हटवा दिया । १६६९ ई० में तिलपटके जमीदार गोकलाके नेतृत्वमें जाट किसानोने जब विद्रोह किया, तब उनपर आक्रमण करनेके लिए अब्दुन्नबी बशरा ग्रामकी ओर चला । परन्तु १० मईके लगभग इस युद्धमें वह गोलीसे मारा गया । गोकलाने सादाबादका परगना लूट लिया । धीरे-धीरे यह विद्रोह मथुराके पडोसी आगरा जिलेमे भी फैल गया ।

इसपर विद्रोह दबानेके लिए औरंगजेबने ऊँचे हाकिमोकी मातहतीमें एक बडी सेना भेजी । १६६९ ई० के पूरे वर्ष भर मथुरा जिलेमें अशान्ति और उपद्रवकी धूम बनी रही । १६७० ई० के जनवरीके आरम्भमें तिलपटसे २० मील दूर स्थानपर भयकर लडाई हुई, जिसमे बहुत मारकाटके बाद हसनअलीखाने गोकलाको पराजित किया । तब शाही सेनाने तिलपटको जा घेरा और तीन दिन तक घेरा लगाए रहनेके बाद अन्तमे हमलाकर उसे जीत लिया । अपने कुटुम्ब सहित गोकला कैद कर लिया गया ।

हसनअलीके इन प्रयत्नो तथा उसकी सफलताओसे मनोवाञ्छित परिणाम निकला । पूरे जिलेमें शान्ति स्थापित तो हो गई परन्तु यह सब कुछ समयके लिए ही रहा । १६८६ ई० में पुन राजारामके नेतृत्वमें दूसरा जाट-विद्रोह आरम्भ हुआ, जिसका वणन आगे यथास्थान दिया जावेगा ।

६ सतनामी सम्प्रदाय उनका विद्रोह, १६७२ ई०

वास्तवमे सतनामी साधू ही थे । उन्हे रायदासियोकी ही एक शाखा समझना चाहिये । सिरके सारे बाल और भौंहो तकको मुडवा देने के कारण उन्हें लोग मुडिया अथवा घुटे हुए सिरवाले कहते थे । १७वी शताब्दीमें उनका प्रधान केन्द्र दिल्लीसे ७५

मील दक्षिण-पश्चिममें नारनौलमें था। ईमानदारी, भाईचारा और इन्सानियतके लिए खफीखाने उनके चरित्रकी बडी प्रशसा की है। वह लिखता है कि इनमेसे अधिकाश या तो खेती करते थे या थोडी वहुत पूजी लगाकर व्यापार करते थे। इन्होने कभी बेइमानी या अन्य किसी गैर-कानूनी तरीकेसे पैसा कमानेका प्रयत्न नही किया।

सरकारी फौजके साथ इन लोगोकी पहली मुठभेड एक बहुत ही साधारण सासारिक मामलेमे हो गई थी। एक दिन नारनौलके पास एक सतनामी किसानकी एक सैनिक पियादेसे कुछ गरमागरम बहस हो गई। वह सैनिक किसी खेतकी रखवाली कर रहा था। उसने एक मोटे डडेसे उस सतनामीका सिरफोड दिया। सतनामीके एक जत्थेने उस आक्रमणकारीको खूब पीटा, जिससे वह सिपाही मृतप्राय हो गया।"

अब यह साधारण-सा झगडा बहुत ही बढ गया, और शीघ्र ही वह युद्धमें परिणत हो गया, जिसमे हिन्दुओकी मुक्तिके लिए स्वय औरगजेबपर भी आक्रमण हुआ। भविष्यवाणी करनेवाली एक बूढी औरतने घोषित किया कि उसके झण्डेके नीचे आकर लडनेवाले सारे सतनामियोपर उसके तत्र-मत्र के बलसे शत्रुओके हथियारोका कोई भी असर नही होगा और वे अजेय बन जावेगे। यह समाचार दावानलकी लपेटोकी तरह चारो ओर फैल गया। लगभग ५,००० सतनामी शस्त्र ले-लेकर विद्रोहके लिए उठ खडे हुए। अपनी प्रारम्भिक विजयोसे विद्रोहियोका आत्मविश्वास बढ चला, और उस बुढियाके तत्र-मत्रकी अद्भुत शक्तिवाली बातपर लोगोका और भी दृढ विश्वास हो गया। उन्होने नारनौलके फौजदारको बुरी तरह मार भगाया और उस शहरपर कब्जा कर लिया। विजयी विद्रोहियोने नारनौलको लूट लिया और वहाकी मसजिदोको गिरा दिया। उन्होने इस जिलेमे अपना शासन भी कायम किया। किसानोसे अब वे कर वसूल करने लगे।

अब औरगजेब क्योकर चुप बैठता? १५ मार्चको उसने रदन्दाजके मातहत एक बडी फौज रवाना की। सतनामियोके जादू-

टोनेके प्रभावको जीतनेके लिए बादशाहने स्वय अपने हाथसे प्रार्थनाए और जादूके अक लिखे । बादशाह स्वय बहुत बडा सन्त समझा जाता था और 'आलमगीर जिन्दा पीर' के नामसे प्रसिद्ध था । एव शत्रुओको दिखानेके लिए ये अक और प्रार्थनाए झण्डोपर सी दी गई । शाही सेनाका यह हमला बडा ही भयकर हुआ । बहुत घमासान और कठिन युद्धके बाद बहुत ही थोडे सतनामी बचकर भाग सके । प्रान्तके उस भागसे काफिरोको इस प्रकार साफ कर दिया गया ।

१०. सिक्ख धर्मकी गति-विधि उसके नेताके उद्देश्यो और नीति-स्वभावमें परिवर्तन

ईसाकी पन्द्रहवी शताब्दीके अन्तिम वर्षो में पजाबमें बाबा नानक नामक एक हिन्दू सुधारक का उदय हुआ, जिसके प्रति जनताकी श्रद्धा बहुत बढी । उन्होने धर्म और जातिकी विभिन्नताओंकी उपेक्षाकर प्रत्येक धर्मके प्रधान तत्त्वो और उनमें निहित सत्यकी एकतापर ही जोर दिया, तथा उसीके आधारपर मानव समाजको भ्रातृत्वके सुदृढ बन्धनमे सगठित करनेका प्रयत्न किया ।

गुरु नानकका जन्म लाहौरसे ३५ मील दक्षिण-पश्चिममें तलवण्डी नामक स्थानमे सन् १४६९ ई० मे हुआ था । यह स्थान अब ननकाना साहब नामसे सुप्रसिद्ध है और सिक्खोका एक बडा तीर्थ समझा जाता है । नानक जातिके खत्री अथवा हिन्दू बनिया थे । उनके मतका सार यही था कि एक चेतन सत्यमय ईश्वरमें पूरा विश्वास कर उसकी प्राप्तिके लिए तद् अनुरूप जीवन तथा आवश्यक चरित्र-निर्माण करना चाहिए । वे सन् १५३८ ई० तक जीवित रहे और धीरे धीरे उनके साथ सच्चे श्रद्धालु भक्तोका एक बडा दल एकत्रित हो गया । उनके ये ही अनुयायी आगे चलकर एक सुस्पष्ट विभिन्न सम्प्रदायके रूपमें सगठित हो गए ।

ईसाकी १६वी शताब्दीमें गुरु नानक से लेकर गुरु अर्जुन तक सिक्खोके पाँच गुरु हुए । उन सबका जीवन बहुत सरल और तपस्विया

का-सा था, एव उनके प्रति तत्कालीन मुगल बादशाहोके हृदयोमें अपार श्रद्धा थी। इस्लाम धर्म तथा मुगल साम्राज्यके साथ उनका कोई भी विरोध या झगडा नही था। जहाँगीरके शासन-कालमे पहली बार सिक्खोने मुगल राज्यका विरोध किया। इस झगडेका कारण किसी भी प्रकार धार्मिक नही था। परन्तु एक सासारिक मामलेपरसे ही प्रारम्भ होनेवाले इस झगडेका सिक्खोपर दूसरा ही प्रभाव पडा, उसीके फलस्वरूप गुरुओका दृष्टिकोण ही बदल गया, और उनके जीवन और आचरणमे क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गए।

पाचवें गुरु अर्जुन के (१५८१–१६०६ ई०) समयमे सिक्ख धर्म स्वीकार करनेवालोकी सख्या बहुत बढ गई थी। इसके साथ ही गुरुओके वैभव और सम्पत्तिमें भी वृद्धि होती गई। गुरुओके लिए स्थायी आमदनीका साधन भी कायम कर दिया गया। काबुलसे लेकर ढाका तक जहाँ भी सिक्ख रहते थे, उनसे वहा ही गुरुओका कर तथा गुरुके प्रति भक्तोकी भेंटको एकत्र करनेके लिए विशिष्ट प्रतिनिधियोके दल प्रत्येक शहरमें नियुक्त किए गए। अब गुरुको सिक्ख लोग सासारिक राजाके समान मानने लगे। गुरुओका भी दरबार लगने लगा और दरबारियो तथा मत्रियोका समूह अब उन्हे घेरे रहता था। ये मत्री 'मसन्द' कहलाते थे, यह मसन्द शब्द दिल्ली के पठान सुलतानोके अमीरोको दिए जानेवाले खिताब 'मसनद-इ-आला' का ही हिन्दी अपभ्रंश है। जहाँगीर के विरुद्ध अपना झण्डा खडा करनेवाले खुसरोकी विजयके लिए गुरु अर्जुनने आशीर्वाद दिया था। एव जब खुसरो हार गया तब जहाँगीरने साम्राज्यके शास्त्र-सम्मत शासकोके विरुद्ध इस राजद्रोहके अपराधमें गुरु अर्जुनपर दो लाख रुपया जुर्माना किया। गुरु जुर्माना देनेसे इन्कार कर गया और कैद तथा अन्य सारी अत्याचारी पीडाए बडी ही धीरतापूर्वक सहता रहा। लाहौरकी कडी धूप और गरमीसे तपतपाती रेतीपर बैठ रहनेके लिए उसे बाध्य किया गया, जिससे अन्तमें वह जून १६०६ ई० मे मर गया।

उसके पुत्र हरगोविन्द के समयसे (१६०६ से १६४५) सिक्ख सम्प्रदायके इतिहासमे एक नया ही युग आरम्भ हुआ। हरगोविन्दने अपने ५२ शरीर-रक्षक सैनिकोकी सख्याको बढाते-बढाते उन्हें एक छोटी सेनाके समान बना लिया। गद्दीपर बैठनेके कुछ समय बाद ही जब अमृतसरके पास बादशाह शाहजहा बाजोसे शिकार खेल रहा था, तब गुरु भी शिकार खेलता-खेलता उसी स्थान आ पहुचा। एक पक्षीको लेकर उसके सिक्खो और शिकार-खानेके शाही नौकरोमें झगडा हो गया। अन्तमें सिक्खोने कई शाही नौकरोको मार डाला और बाकी हारकर भाग खडे हुए। इसलिए विद्रोही के विरुद्ध एक सेना भेजी गई, परन्तु सिक्खोने अमृतसरके पास सग्राना नामक स्थानमे इस सेनाको बुरी तरह हराया (१६२८ ई०), उधर सिक्खोकी कोई विशेष हानि नही हुई। लाहौरके पास ही शाही सत्ताका ऐसा खुले-आम अपमान बादशाहके लिए असहनीय हो उठा। यद्यपि आरम्भमें गुरुको कुछ सफलता अवश्य मिली, किन्तु अन्तमें अमृतसरवाला गुरुका घर और उसका सारा सामान छीन लिया गया, और गुरुको बाध्य होकर मुगल सेनाकी पहुँचसे परे कश्मीरकी पहाडियोमे स्थित कीरतपुरमें शरण लेनी पडी। वही सन् १६४५ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

सन् १६६४ ई० में गुरु हरकिशनकी मृत्युपर सिक्खोमें अराजकता फैल गई, और वे लोभ तथा लूटकी भावनासे प्रेरित होने लगे। कुछ समयके बाद हरगोविन्दके सबसे छोटे पुत्र तेगबहादुरको सिक्खोपर अपना आधिपत्य स्थापित करनेमें पर्याप्त सफलता मिली और अधिकाश सिक्खोने उसे अपना गुरु मान लिया।

जब वह आनन्दपुरमें ठहरा हुआ था, तब वहां उसने देखा कि उसके सिक्ख सम्प्रदायको व्यर्थ ही सख्तीके साथ दबाया जा रहा था एव सिक्खोके पवित्र तीर्थ-स्थानोको खुले-आम भ्रष्ट किया जा रहा था। अब वह चुप नही रह सका। उसको पकडकर दिल्ली ले गए और वहां इस्लाम धर्म स्वीकार करनेके लिए उसे बाध्य करने लगे,

किन्तु वह किसी भी प्रकार राजी नही हुआ। अनेको प्रकारकी यातनाएँ भी दी गईं, परन्तु वे भी व्यर्थ ही हुईं, और अन्तमे बादशाहके हुक्मसे सन् १६७६ ई०मे उसका सिर काट डाला गया।

अब अन्तमे इस्लाम और सिक्खोमे खुले-आम युद्ध ठन गया। शीघ्र ही सिक्खोमे एक ऐसा नेता उठ खडा हुआ, जिसने उनका सगठन करके सिक्खोको इस्लाम धर्म और मुगल साम्राज्यसे टक्कर ले सकने योग्य उनका एक बहुत ही कट्टर शत्रु बना दिया। सिक्खोका यह दसवाँ एव अन्तिम गुरु गोविन्दसिंह (१६७६से १७०८ ई०) तेगवहादुरका एकमात्र पुत्र था। जन्मसे पहिले ही उसके विषयमे भविष्यवाणी की गई थी कि वह एक ऐसा मनुष्य होगा, जिसमे गीदडको शेर और चिडियाको बाज बना देनेकी क्षमता होगी।

यहाँ एक क्षण ठहर कर हम उन कारणोकी विवेचना करेगे, जिनसे गुरु गोविन्दकी ऐसी अनोखी सफलता सम्भव हो सकी। गुरुकी सत्ता क्रमश बढते-बढते दैवी सत्तामे बदल गई, गुरु गोविन्दकी सफलताका यही पहला कारण था। एकमात्र सर्वश्रेष्ठ व्यक्तिमे आशका रहित विश्वास से ही सारे सिक्ख फौजके सैनिकोके समान एक सुदृढ सम्बन्ध सूत्रमे बँध गए। वे अब अपने आपको ऊँचा और अन्य लोगोसे श्रेष्ठ समझने लगे। गुरु गोविन्दकी आज्ञा होते ही सारे आन्तरिक जाति भेद मिटा दिए गए, जिससे सिक्खोमे पारस्परिक एकताकी भावना और सुदृढ हो गई। खान-पानके जो बन्धन और विचार हिन्दू समाजमे अत्यधिक प्रचलित थे, वे पहले ही तोडे जा चुके थे। सारे सिक्ख समाजकी अब एक ही जाति हो गई और वे सब अब एक ही धर्मके उपासक हो गए।

११. गुरु गोविन्द, उसका चरित्र और आदर्श

गोविन्दने अपने अनुचरोको क्रमश शिक्षित किया और उनके लिए एक अलग ही विशिष्ट पहनावा नियुक्त किया। नए सस्कारोसे अभिसिंचित कर उसने उन्हे नए आदर्शके लिए प्रतिज्ञाबद्ध किया। तब वही खुलेआम इस्लामका विरोध करनेकी नीति प्रारम्भ की गई। मुसलमानोके अत्याचारोके विरुद्ध विद्रोह करनेके लिए उसने हिन्दुओको भी उत्तेजित किया। किसी भी मुसलमान सन्तके मकबरेको प्रणाम करनेवाले अपने अपराधी अनुयायीके लिए उसने रु० १२५के जुरमानेकी सजा नियत की। उसके

उद्देश्य स्पष्टतया सासारिक ही थे। "हे माँ! मैं यही सोच रहा हूँ कि किस प्रकार खालसाको एक साम्राज्य दे सकूँ।" वह स्वय बडे ही राजसी ठाठ से रहता था।

गोविन्दने अपना अधिकाश जीवन उत्तरी पजाबके पहाडोमे ही बिताया। वह गढवालमे जम्मूसे श्रीनगर तक पहाडी राजाओंसे निरन्तर लडता भिडता रहा। उसके अनुयायियोंकी मारकाट तथा स्वय उसकी महत्त्वाकाक्षासे उठनेवाली आशकाओंसे वे भी घबरा उठे थे। गुरु गोविन्द को दबानेमे पहाडी राजाओंसे सहयोग करनेके लिए सरहिन्दसे बडी-बडी शाही सेनाएँ भेजी गई। पर वे हमेशाके समान असफल ही रही। पजाब के दोआबोंसे निरन्तर लोग आ-आकर उसके मतको स्वीकार करते थे, जिससे उसकी सेना बढती गई, यहाँ तक कि कई मुसलमान भी गुरुसे आ मिले। आनन्दपुर पाँच बार घेरा गया। अन्तिम घेरेके बाद गुरुने यह किला छोड दिया। मुसलमानोंने उनका पीछा किया। वह अनेक दुघट नाओंसे बाल-बाल बचता ही रहा और शिकारके पशुके समान अपनी सुरक्षाके लिए उसे बारम्बार अपना निवास-स्थान बदलना पडता था। उनके चार पुत्र मारे गए। तब गुरु गोविन्द अपने इने-गिने विश्वसनीय रक्षकोंको साथ लेकर दक्षिण-यात्राको चल पडा। सन् १७०७ ई० मे नये बादशाह पहले बहादुरशाहने उसे राजपूताने और दक्षिणकी यात्रामे अपने साथ चलनेके लिए उतारू किया। १७०७ ई० के अगस्त माहमे कुछ पैदल और दो तीन सौ घुड-सवारोंके साथ गुरु हैदराबादसे १५० मील उत्तर-पश्चिममे गोदावरी तटपर स्थित नान्देर पहुँचा। वहाँ एक वर्षसे कुछ अधिक दिन रहनेके बाद एक दिन एक अफगानने छुरा भोक दिया, जिससे तब वही उसकी मृत्यु हो गई (१७०८ ई०)। उसके साथ ही गुरुओंकी इस वश-परम्पराका अन्त हो गया।

इस प्रकार औरगजेबके शासन-कालमे मुगल सत्ताने गुरुओंकी शक्तिको तोडनेमे पूरी सफलता प्राप्त की, जिससे अब सिक्खोका कोई नेता नही रह गया और उनकी कोई सगठित केन्द्रीय सस्था भी न रही। उसके बाद भी सिक्ख लोग जन-शान्ति भग करते रहे, परन्तु अब वे अलग-अलग जत्थोमे बँट गए थे। अब वे एक प्रधान मुखियाके आधिपत्यमे रहकर एक सगठित सेनाके रूपमे नही लड सके। उनका कोई निश्चित राजनैतिक उद्देश्य भी अब नही रहा। वे घूमने-फिरनेवाले डाकुओंके समूहोंके समान

। तो उसको दबाने
उद्देश्य था।
एव अस्तव्यस्त हो
ई भी शायद नहीं
स्त मराठ मुगल
ऽ गई थी।
न्तकी दो विधवा
मारवाड राज्यको
होनेवाला न था।
। पिछले सौ वर्षोंसे
। पुन हिन्दुओंपर
द्वेषको स्पष्टरूपेण

समय नागोरका
गाड भेजा। परन्तु
का हुक्म मिला।
ाहायता करना ही

ाया

दो पुत्रोंको जन्म
माहोके बाद मर
बैठनेके लिए बच
अजीतके अधि-
ई, परन्तु उसने
ठ राजघरानेके
गया कि वयस्क
तथा तब उसे
लिखता है कि
ी देनेका

अध्याय ९

राजपूतानेमे युद्ध ; अकबरका विद्रोह

१ औरंगजेबका मारवाडपर अधिकार करना, १६७९ ई०

मारवाड एक मरुभूमि है, परन्तु मुगलकालमे उसका सैनिक महत्त्व एक विशेष कारणसे था। मुगल राजधानीसे समृद्ध उद्योग-धन्धेवाले शहर अहमदाबाद और खम्भातके काम-धन्धेवाले बन्दरगाहको जानेवाला सबसे सीधा व नजदीक व्यापारिक-मार्ग मारवाडकी सीमामेसे होकर गुजरता था। यदि ऐसा प्रदेश मुगल साम्राज्यमे मिलाया जा सके तो उदयपुरके अभिमानी, गौरवपूर्ण राणाको उस बाजूसे पूरी तरह घेर लिया जावेगा और राजपूतानेके ठीक बीचोबीचमे ऐसे लम्बे प्रदेशकी स्थापना हो जावेगी, जिसपर मुसलमानोका एकाधिपत्य होगा। उस समयकी उत्तरी भारतकी सारी हिन्दू रियासतोमे मारवाड ही सबसे अग्रगण्य और महत्त्वपूर्ण था। इस समय वहाँ जसवन्तसिंह राज्य कर रहा था। बलपूर्वक हिन्दुओका धर्म परिवर्तन करवानेकी औरंगजेबकी नीतिके लिए यह बहुत ही आवश्यक था कि जसवन्तका यह राज्य बिलकुल ही शक्तिहीन एव साधारण आश्रित राज्यमात्र बन जावे, अथवा वह साम्राज्यका एक सामान्य सूबा ही रह जाए।

१० दिसम्बर, १६७८ ई०को जमरूदमे[1] ही जसवन्तसिंहकी मृत्यु हुई। जसवन्तकी मृत्युका हाल सुनते ही औरंगजेबने मारवाड राज्यका एकदम मुगल शासनमे ले लिया। ९ जनवरी १६७९को स्वयं बादशाह अजमेरके

[1] जसवन्तसिंह कभी अफगानिस्तानका प्रधान शासक या काबुल शहरका सूबेदार नही बना। वह तो जमरूदका थानेदार मात्र ही था।

लिए रवाना हुआ। यदि वहाँ कोई विरोध उठ खडा हो तो उसको दबाने के लिए जोधपुरके पास पहुँच जाना ही उसका एकमात्र उद्देश्य था।

जसवन्तकी मृत्युसे राठौड जाति बडी ही व्याकुल एव अस्तव्यस्त हो गई, तथा वहा सवत्र गडबडी मच गई। राज्यपर कोई भी शासक नही रह गया था, एव राज्यमे वढी-चढी आती हुई सुसचालित सशक्त मुगल सेनाका सामना करनेकी शक्ति मारवाड राज्यमे नही रह गई थी।

२६ फरवरीको औरगजेवने सुना कि लाहौरमे जसवन्तकी दो विधवा रानियोने दो पुत्रोको जन्म दिया था। फिर भी वादशाह मारवाड राज्यको मुगल साम्राज्यमे सम्मिलित कर लेनेकी नीतिसे विरत होनेवाला न था। अजमेरसे लौटकर दो अप्रेलको बादशाह दिल्ली पहुँचा। पिछले सौ वर्षोसे जो बन्द था, वह जजिया कर उस दिन औरगजेवने पुन हिन्दुओपर लगा दिया, और यो हिन्दुओके प्रति अपने विरोध एव द्वेषको स्पष्टरूपेण घोषित किया।

जसवन्तके भाईका पौत्र, इन्द्रसिह राठौड, इस समय नागौरका शासक था, २६ मईको उसे जोधपुरका राजा बनाकर मेवाड भेजा। परन्तु मुगल अधिकारी और सेनानायकोको जोधपुरमे ही रहनेका हुक्म मिला। अपने इस राज्यपर अधिकार करनेमे नये राजाकी सहायता करना ही सभवत उनका प्रधान कतव्य था।

२. दुर्गादासने अजीतसिहको कैसे बचाया

लाहौर पहुँचनेपर जसवन्तकी दो विधवा रानियोने दो पुत्रोको जन्म दिया (फरवरी १६७९)। उनमेसे एक तो कुछ ही सप्ताहोके बाद मर गया, किन्तु दूसरा, अजीतसिंह, जोधपुरकी गद्दी पर बैठनेके लिए बच रहा। जूनके अन्तमे महाराजाका कुटुम्ब दिल्ली पहुँचा। अजीतके अधिकारोकी स्वीकृतिके लिए पुन औरगजेवसे प्राथना की गई, परन्तु उसने यही हुक्म दिया कि बालक अजीतका लालन-पालन मुगल राजघरानेके ज़नानखानेमे ही किया जावे, और यह आश्वासन भी दिया गया कि वयस्क होनेपर उसे भी मुगल सरदारोकी कोटिमे गिना जावेगा तथा तब उसे राजाकी पदवी दी जाएगी। एक तत्कालीन इतिहासकार लिखता है कि अजीतके मुसलमान बन जानेपर उसे तत्काल ही जोधपुरकी गद्दी देनेका प्रलोभन भी दिया गया था।

औरगजेबका यह प्रस्ताव सुनकर सारे स्वामिभक्त राठौडोंके हृदयोमे
तीव्र व्याकुलता भर गई। अपने स्वर्गीय स्वामीके इस नवजात उत्तराधिकारी
को बचानेके लिए प्रत्येक राजपूतने पाण रहते कट्टरतापूवक लडते रहनेकी
कठोर प्रतिज्ञा की। जसवन्तके प्रधान मन्त्री द्रुणेराके सरदार आसकरणका
पुत्र दुर्गादास ही इन वीर राजपूतोका प्रधान नेता एव उनका एकमात्र
प्रेरक था। राठौड वीरोमे मर्वश्रेष्ठ इम वाके राजपूत दुर्गादासको मुगलोका
सारा द्रव्य और उनका कल्पनातीत ऐश्वर्य नही लुभा सके, और न
मुगलोकी सैनिक शक्ति तथा साम्राज्यकी सत्ता ही उसके दृढ प्रतिज्ञ और
धीर हृदयको डगमगा सकी। सारे राठौडोमे इसी एक व्यक्तिमे राजपूत योद्धा
ओके अदम्य उत्साह तथा उनकी प्रचण्ड निरपेक्षणीय वीरताके साथ ही
साथ मुगलोके राजमन्त्रियोकी-सी नीति-कुशलता, चतुराई एव सगठन करन
की अद्वितीय शक्तिका भी अतुलनीय एव अनोखा सम्मिश्रण पाया जाता था।

जसवन्तकी रानी और अजीतको पकडकर उन्हे दिल्लीमे ही नूरगढके
किलेमे कैद कर देनेके लिए बादशाहने १५ जुलाईको दिल्लीके फौजदार
और अपने निजी सैनिकोंके नायकको एक बडी शक्तिशाली सेनाके साथ
भेजा। जहाँ वे ठहरे हुए थे, उस हवेलीकी एक ओरसे जोधपुरके भाटी
सरदार रघुनाथने अपने सौ राजनिष्ठ सैनिकोके साथ मुगलोंके इस सैनिक
दलपर ज़ोरोंके साथ आक्रमण किया। इस भयकर आक्रमणसे ही शाही
फौज घबडा उठी और उनकी इस क्षणिक अस्त-व्यस्ततासे लाभ उठाकर
दुर्गादास दोनो रानियो, जो इस समय मर्दाना वेशमे थी, और अजीतको
लेकर उम हवेलीसे निकल गया। वहाँसे वह सीधा मारवाडकी ओर चल
पडा। डेढ घण्टेतक रघुनाथने दिल्लीकी गलियोमे खूनकी नदिया वहा दी
और अन्तमे वह भी वही काम आया। मुसलमानी सेनाने अब दुर्गादास,
आदिका पीछा किया। तब तो रणछोडदास जोधाने शत्रुओका रास्ता
रोका। उमके पाम थोडी-सी सेना थी। ऐमा तीन बार हुआ। शाम तक
मुसलमानोंने पीछा करना छोड दिया। २३ जुलाईके दिन अजीतसिहको
कुशलतापूर्वक मारवाड पहुँचा दिया। स्वामिभक्त राठौड अजीतसिहका
साथ देनेको तैयार होकर सगठित होने लगे। उधर औरगजेबने किसी
ग्वालेके बच्चेको हरममे लाकर उसे वास्तविक अजीतसिहके नामसे प्रख्यात
किया और दुर्गादास द्वारा पोषित राजकुमारको झूठा बताया जाने लगा।
दो माह पहिले नियुक्त मारवाडके नए राजा इन्द्रसिहको शासन करनेके
लिए अयोग्य घोषित कर इसी समय गद्दीसे उतार दिया।

२५ सितम्बरको बादशाह अजमेर पहुंचा, और वही उसने अपना अड्डा जमाया। उसके पुत्र मुहम्मद अकबरके सेनापतित्वसे लडती हुई शाही सेना आगे बढने लगी। मुगल सेनाके हरोलका नायक अजमेरका फौजदार तहाव्वरखाँ था। राजसिंहके नेतृत्वमे मेडतिया राठौडोने पुष्कर झीलके पास शाही सेनाका रास्ता रोक दिया। वहाँ तीन दिन तक लगातार घमासान युद्ध हुआ, जिसमे मारवाडकी रक्षा करनेके लिए उद्यत साहसी राठौड वीर एक-एक कर कट मरे। उसके बाद राजपूत पहाडियो और मर स्थलमे छिपने योग्य स्थानोमे रहकर छापा मारने और यो शत्रुओका विरोध करने लगे। अक्टूवर माहके अन्तमे बादशाहने मारवाडको कई जिलोमे बाँट दिया और हर एक जिलेमे एक मुगल फौजदार नियुक्त किया। यो सारे प्रदेशपर शीघ्र ही मुगल सेनाका अधिकार हो गया।

३ उदयपुरके महाराणाके साथ मुगलोका युद्ध

मारवाडका मुगल राज्यमे यो मिलना मेवाडके सरलतापूर्वक जीते जानेकी एक भूमिका मात्र थी। जजिया करको फिरसे लगानेपर महाराणाके पास शाही हुक्म गया कि मेवाडके सारे राज्य भरमे उसे लागू किया जावे। अब यदि सीसोदिया राजपूत राठौडोका साथ नही देते तो ये दोनो राजपूत जातियाँ एक एक कर क्रमश दबा दी जाती और तब सारा राजस्थान असहाय होकर क्रूर और अन्यायी मुगल शासकोके अधिकारमे आ जाता। अजीतसिंहकी माता मेवाडकी बहिन-बेटी नही थी, तथापि जोधपुरके राजघरानेके साथ मेवाडका जो पुरातन कौटुम्बिक सबध था, उसे किस तरह भुलाया जा सकता था? पुन एक वीर योद्धाकी दृष्टिमे ही क्यो न हो, एक अनाथ बालकके अधिकारोकी रक्षाके लिए उससे की गई उस असहाय सकटापन्न राजमाताकी प्राथनाको महाराणा राजसिंह किसी भी हालतमे नही ठुकरा सकता था।

राजसिंह अब युद्धकी तैयारी करने लगा। किन्तु अपनी स्वभावगत तत्परताके साथ औरगजेबने ही युद्ध छेडा और मेवाडपर आक्रमण कर दिया। अपनी सेना लेकर हसनअली पुरसे आगे बढा, राणाके प्रदेशोमे लूटपाट करता हुआ वह प्रधान मुगल सेनाके लिए राह साफ करता जा रहा था। राणा इस आक्रमणके लिए पहिलेसे ही तैयार था। राणा और उसकी प्रजा तलहटीके मैदानाको छोडकर पहाडोमे जा पहुँचे। जब मुगल सेना

उदयपुर पहुँचो, तव उस शहरको निजन पाया। मुगलोने उदयपुरपर अधिकार क लिया और वहाके वडे मन्दिरके साथ ही साथ उदयसागर तालाबकी पालपरके तीन मन्दिरोको भी नष्ट भ्रष्ट कर दिया।

राजपूत सेनाकी खोजमे हसनअली उदयपुरसे उत्तरपश्चिमी पहाडाम जा घुसा। वहाँ उसने २२ जनवरीके दिन महाराणाको हराया। चित्तोड पर पहिलेसे ही मुगलोका अधिकार हो चुका था। फरवरी मासके अन्तम जब औरगजेव वहां पहुँचा, तव वहांके कोई ६३ मन्दिर तोड-फोड डाले गए। २३ माचको बादशाह अजमेरको लौट पडा। मेवाडपर आक्रमण करनेके लिए चित्तोड ही मुगलोका प्रधान सैनिक केन्द्र था, एव शाहजाद अकबरकी अधीनतामे एक शक्तिशाली सेना चित्तोडमे डटी रही, जिससे उस सारे जिलेपर मुगलोका आधिपत्य बना रहा। सारा राजस्थान मुगलोके विरुद्ध तीव्र रोप और कट्टर शत्रुताकी भावनासे उवल रहा था।

उदयपुरसे लेकर पश्चिममे कुम्भलगढ तक और राजसमन्द झीलसे लेकर दक्षिणम सलूम्वर तक फैले हुए मेवाडके ये दुगम पहाड एक विस्तृत अजेय किलेके समान प्रमाणित होने लगे, जिसके तीन ही द्वार थे, पूरवम देवारीकी घाटी, उत्तरमे राजसमन्द झील और पश्चिममे देसूरीकी घाटी। इन्ही तीन रास्तोसे राजपूतोकी सेनाके शक्तिशाली दल निकल निकलकर मुगलोकी दूर-दूर फैली हुई चौकियोको नष्ट कर देते थे।

औरगजेबने शाहजादे अकबरको चित्तोडमे रखा था, परन्तु उसके पास इतनी बडी सेना न थी कि जिससे वह लम्बे चौडे प्रदेशको सफलता पूवक रक्षा कर सकता। ज्योही औरगजेव अजमेरकी ओर लौटा, मेवाडम पुन राजपूत उठ खडे हुए और उनकी ये हलचलें दिनो दिन वढती ही गईं। अब तो मुगलोकी सारी चौकिया खतरेमे पड गई और उस सारे प्रदेशमे मुगल राजपूतोका शक्तिसे भयभीत हो उठे।

मई मास आधा भी वीता न था कि चित्तोडके पास ही अकवरके पडावपर रातके समय राजपूतोने एकाएक हमला कर दिया। महाराणा भी ससैन्य पहाडोसे निकला और उसने सारे वदनौर जिलेमे चक्कर लगाया। महाराणाके इस आक्रमणकी अकवरको आशका तक न थी, एव इस हमलेसे शाही सेनाको वहुत हानि हुई। एक वडी राजपूत सेना साथ लेकर उसका पुत्र भीमसिह सारे देशको रौंदने लगा और मुगल सेनापर यत्रतत्र लगातार आक्रमण भी करता रहा। अकवरको स्वीकार करना

पडा कि "राजपूतोके भयके मारे हमारी सेना स्तब्ध और निश्चेष्ट हो गई है"।

उसकी इन विफलताओंसे क्रुद्ध होकर औरंगजेबने अकबरको वहासे बदलकर मारवाड भेज दिया और उसके स्थानपर २६ जूनको शाहजादा आजम चित्तोडकी इस सेनाका नायक नियुक्त किया गया।

अब यह तय हुआ कि शाही सेना तीनो ओरसे मेवाडकी इन पहाडियोमे प्रवेश करे। पूवमे देवारीकी राह उदयपुर होता हुआ शाहजादा आजम घुसे। उत्तरमे राजसमन्द झीलकी राहसे शाहजादा मुअज्जम ससैन्य चढाई करे औरपश्चिमम देसूरीकी घाटीकी राहसे शाहजादा अकबर धीरे-धीरे आगे बढे। इन तीनोमसे पहले दोनो शाहजादे अपना उद्देश्य पूरा करनेमे असफल ही रहे।

४. मारवाडकी ओरसे शाहजादे अकबरकी चढाई

चित्तोडसे बदल दिए जानेपर अकबरने मारवाड जाकर १८ जुलाई १६८० ई० को सोजतमे पडाव किया। किन्तु मेवाडकी तरह मारवाडमे भी उसको कोई विशेष सफलता नही मिली। अकबरको आज्ञा हुई थी कि वह नाडौलपर अधिकार कर ले। तब पूवकी ओरसे मेवाडपर चढाई कर देसूरी घाटीपर अधिकार करता हुआ तहाव्वरखाँ कुम्भलगढके प्रदेशपर आक्रमण करे। कुम्भलगढके इसी प्रदेशमे मारवाडसे निकले हुए राठौड धारण लिए हुए थे। किन्तु मौतके साथ खिलवाड करनेवाले राजपूतोका तहाव्वरखाके सैनिकोके दिलोमे ऐसा डर समाया हुआ था कि आगे बढनेकी उन्हे हिम्मत ही नही हो रही थी। किन्तु सितम्बर, १६८० ई० के बाद तो हमे तहाव्वरखाँकी गतिविधिमे सन्देहजनक शिथिलता देख पडती है।

औरंगजेब अब अधीर हो उठा। किसी भी कारण अधिक देरी करने देना उसके लिए असह्य हो गया, एव विवश होकर अकबरको आगे बढना ही पडा। नाडौलसे चलकर २९ नवम्बरको उसने देसूरीमे पडाव किया, और यहीसे सेना सचालन करने लगा। झीलवाडा घाटीपर अधिकार करनेके लिए अकबरने तहाव्वरखाको भेजा। २२ नवम्बरको मुगल सेना झीलवाडा तक बढ गई और यहीसे तहाव्वरखा निश्शक होकर आसपासके प्रदेशोमे लूटमार भी करने लगा।

महाराणाका एकमात्र आश्रयस्थान, कुम्भलगढ़, यहाँसे केवल ८ मील दूर दक्षिणमें रह गया था। परन्तु अगले पाँच सप्ताहोंमें तहाव्वरखाँ पुनः अकर्मण्य बैठा रहा, जिससे उसके प्रति संदेह उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है।

५ शाहजादे अकबरका स्वयंको सम्राट् घोषित करना; १६८१ ई०

औरंगजेबके चौथे पुत्र सुलतान मुहम्मद अकबरकी आयु इस समय केवल २३ सालकी हो थी। निरन्तर हार खानेपर वह बारम्बार झिड़का जाता था, जिसकी तीव्र वेदनासे वह बहुत ही व्याकुल हो उठा था। ऐसे ही समय राजपूतोंने उसे प्रलोभन दिया कि वह उनसे जा मिले और उनकी सहायता द्वारा औरंगजेबके अधिकारसे साम्राज्य छीनकर वह स्वयं सम्राट् बन बैठे। अकबर इस प्रलोभनमें फँस गया और राजपूतोंके आमन्त्रणको अस्वीकार नहीं कर सका।

तहाव्वरखाँके जरिये ही राजपूतोंके साथ यह सारी राज्यद्रोहात्मक बातचीत हुई थी। महाराणा राजसिंह और राठौड़ोंके नेता दुर्गादासने उसे सुझाया कि यदि वह अपने राजघरानेको नष्ट होनेसे बचाना चाहता था तो उसे चाहिए कि वह मुगल राज्यसिंहासनपर अधिकार कर अपने पूर्वजोंकी सहिष्णुतापूर्ण नीतिको पुनः बरतने लगे।

औरंगजेबके विरुद्ध अजमेरकी ओर ससैन्य बढ़नेकी पूरी-पूरी तैयारियाँ हो चुकी थी, परन्तु दुर्भाग्यवश इसी समय २२ अक्टूबर १६८० ई० को महाराणा राजसिंहकी मृत्यु हो गई। मेवाड़ राजदरबारमें एक माह तक शोक मनाया गया, एवं उसका उत्तराधिकारी जयसिंह उस समयमें कुछ भी नहीं कर सका। उसके बाद समझौतेकी यह गुप्त वार्ता फिर चल पड़ी और जल्दी ही सारी बातें तय हो गईं। औरंगजेबके विरुद्ध लड़ाइयाँ लड़नेके लिए महाराणाने शाहजादेके साथ अपनी आधी सेना भेजना स्वीकार किया। मुगल राजसिंहासन प्राप्त करनेके लिए युद्धार्थ अजमेरकी ओर चढ़ाईके वास्ते २ जनवरी १६८१ ई० को रवाना होनेका निश्चय किया गया।

औरंगजेबके हृदयमें कहीं कोई सन्देह न उठ खड़ा हो जावे, इस आशंकाको दूर करनेके लिए २ जनवरीसे दो दिन पहिले ही अकबरने अपने पिताके नाम एक झूठा बनावटी पत्र लिखा। किन्तु शीघ्र ही अकबरने पितृभक्तिका यह सारा ढकोसला दूर कर दिया और खुले-आम पिताका

विरोध करनेको उठ खडा हुआ। अकबरके साथ रहनेवाले चार मुल्ला-मौलवियोने एक फतवा दिया और उसपर अपनी मोहरें लगाई। उस फतवे द्वारा उन्होने घोपित किया कि औरगजेबका आचरण इस्लाम धर्मके विरुद्ध होनेके कारण औरगज़ेबको राज्यसिंहासनपर बने रहनेका कोई भी अधिकार नही रह गया था। तब १ जनवरी १६८१ ई० को अकबरने स्वयको सम्राट घोषित किया। अकबरके साथके अधिकाश शाही अफसर न तो शाहजादेका विरोध ही कर सकते थे और न वे वहासे भाग ही सकते थे। अतएव अकबरके पक्षमे होकर उसका ही साथ देनेका ढोग करने लगे।

उधर अजमेरमे बादशाहकी परिस्थति बहुत ही सकटपूण हो गई। शाही सेनाके जो दो प्रधान दल अभी तक उसके ही पक्षमे थे वे तब अजमेरसे बहुत ही दूर थे। औरगज़ेबके पासके साथियोमे प्रधानतया उसके व्यक्तिगत नौकर तथा कठिन युद्धके अनुपयुक्त सैनिक ही थे।

हर एकका यही खयाल था कि अपनी सेनाको लेकर अकबर बडी तेजीके साथ अजमेरकी ओर बढेगा, अतएव औरगजेबके साथकी छोटी-सी सेनाकी हारके बाद अकबरका सिंहासनारूढ होना निश्चित-सा ही जान पड रहा था। किन्तु सिफ १२० मीलकी दूरीको पार करनेमें अकबरने पूरे १५ दिन (२से १५ जनवरी) लगा दिए, और प्रत्येक घण्टेकी देरीके साथ औरगजेबका पक्ष सुदृढ होता गया।

इसी समय इधर-उधर फैले हुए शाही सेनाके दलोको अपने पास बुला लानेके लिए औरगज़ेबने चारो ओर दूत दौडा दिए थे। समय रहते बादशाहके साथ जा मिलनेके लिए सारे स्वामिभक्त शाही सेनानायक बडी तेजीसे अजमेरकी ओर बढ रहे थे। इस प्रकार कुछ ही दिनोमे औरगजेब-का यह आपत्तिपूर्ण समय निकल गया और १४ जनवरीको बादशाह ससैन्य अकबरका सामना करनेके लिए खुले मैदानमे आ डटा। अब तो अकबरके सैनिक दलमे निराशा छा गई और बहुतसे सैनिक उसके पक्षको छोडकर खिसकने लगे। केवल ३०,००० राजपूतोने ही अकबरका साथ दिया।

१५ जनवरीको वह निर्णायक घडी आ उपस्थित हुई। औरगजेब आगे बढा और दोराईपर अकबरकी प्रतीक्षा करने लगा। जाडेकी उस कडी ठण्डमे बिना कही ठहरे ही तेजीके साथ बढता हुआ शाहज़ादा मुअज्जम भी उसी शामको ससैन्य औरगजेबसे आ मिला, जिससे बादशाहके पक्षको सैनिक शक्ति दूनी हो गई। उधर अकबरने भी अपने पितामे कोई तीन

मीलकी दूरीपर आकर पड़ाव डाला। अगले दिन युद्ध करनेका उसने निश्चय किया था।

६ तहाव्वरख़ाँकी हत्या : अकबरकी निष्फलता

परन्तु औरंगज़ेबने बिना युद्ध किए अपनी धूर्ततापूर्ण नीतिसे ही उसी रात अकबरपर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली। औरंगज़ेबने इनायतसे उसके दामाद तहाव्वरख़ाके नाम एक पत्र लिखवाया, जिसमें अकबरके उस प्रधान सहायकको सलाह दी गई थी कि वह बादशाहके पास लौट आवे और अपने पिछले अपराधोंके लिए माफी माँग ले। उसे वचन दिया गया था कि बादशाह उसे अवश्य ही क्षमा कर देंगे, किन्तु यदि वह न आया तो उसकी बीवी और बच्चोंके साथ दुर्व्यवहार करनेकी भी उसे धमकी दी गई थी।

यह पत्र पाकर तहाव्वरख़ाँ चक्करमें पड गया। आधी रातसे कुछ ही पहिले वह चुपकेसे शाही पड़ावमें जा पहुँचा और बादशाहसे मिलनेकी आज्ञा चाही। परन्तु उससे कहा गया कि वह सशस्त्र बादशाहके पास नहीं जा सकेगा। निशस्त्र होकर एक कैदीके समान ही वहाँ जानेको वह राजी न हुआ। झगडा बढ गया और बहुत शोरगुल होने पर अनेकों शाही नौकर वहाँ इकट्ठे हो गए और उन्होंने अपनी गदाओंसे उसपर बहुत प्रहार किए, तथा अन्तमें उसका सिर काट डाला।

उधर औरंगज़ेब भी अकबरके नाम एक झूठा पत्र लिखा। उसमें इसलिए अकबरकी प्रशंसा की गई थी कि वह सारे राजपूत योद्धाओंको अपने जालमें फँसाकर बादशाहके इतने पास ले आनेमें सफल हुआ था। अब ज्योंही सामनेसे औरंगज़ेब और पीछेसे अकबर उनपर आक्रमण करेंगे तब उनको पूर्णतया नष्ट करनेमें उन्हें पूरी सफलता प्राप्त हो सकेगी। औरंगज़ेबकी चालके अनुसार वह पत्र दुर्गादासके ही हाथ लगा। उसने यह पत्र पढ़ा और इस पत्रके बारेमें खुलासा करनेके लिए वह अकबरके तम्बूमें पहुँचा। इस समय अकबर सोया हुआ था और उसे जगाना सम्भव नहीं था। तब तो दुर्गादासने तहाव्वरख़ाँको बुलानेके लिए एक आदमी भेजा, किन्तु तहाव्वरख़ाँ इससे कुछ ही घण्टे पहले शाही पड़ावको ओर चला गया था। इन सारी बातोंको देखकर वह पकडा हुआ पत्र दुर्गादास को सत्य-सा ही प्रतीत होने लगा। सूर्योदयसे तीन घण्टे पहले राजपूत अपने घोड़ोंपर जा डटे और अकबरके माल-असबाबमें जो कुछ उनके हाथ

पडा उसे उन्होंने लूटा और तब वे मारवाडकी ओर चल खडे हुए। उधर जो शाही सैनिक तथा अन्य स्वामिभक्त सेनानायक अकबरके डेरेमें कैद पडे थे, वे सब अब भागकर औरंगजेबके पडावमें जा पहुँचे।

प्रात कालमें जब अकबर जगा, तब उसने देखा कि उसे छोडकर सब चल दिए थे, एव वह अकेला ही रह गया था। अपनी औरतोको घोडोपर चढाकर यथाशक्ति अपना खजाना ऊँटोपर लादकर वह अपनी प्यारी जान बचा राजपूतोके ही पीछे-पीछे भाग चला।

अकबरका बाकी रहा माल-असबाब और पीछे रहे उसके कुटुम्बियोको बादशाहके पडावमें लाया गया। अकबरके साथ शाहजादी जेबुन्निसाका जो पत्र-व्यवहार हो रहा था, वह भी पकडा गया, जिसके लिए उसे सलीमगढ के किलेमें कैद कर दिया गया।

शाहजादे मुअज्जमकी अधीनतामें एक सुसज्जित सेना अकबरका पीछा करनेके लिए मारवाडकी ओर भेजी गई। औरंगजेब द्वारा फैलाए हुए इस जालका ठीक-ठीक पता जब दुर्गादासको लगा, तब तो उसने लौटकर अकबरको अपने सरक्षणमें ले लिया। अपने इन रक्षकोके साथ-साथ अकबर भी सारे मारवाडमें घूमता फिरा। अन्तमें दुर्गादासने साहसपूर्वक वादा किया कि वह अकबरको सकुशल मराठा राजाके पास पहुँचा देगा। तब तक भारतमें मराठे ही सफलतापूर्वक मुगल सेनाओका विरोध और उनकी उपेक्षा कर सके थे। राहमें पडनेवाली मुगल चौकियोका बडी ही चतुरता-से टालते हुए, इस राठौड वीरने अपना पीछा करनेवालोको भी अपने वास्तविक उद्देश्यका ठीक ठीक पता न लगने दिया। ९ मईको अकबरपुर-के घाटेपर उसने नर्मदाको पार किया, और १५ मईको वह बुरहानपुरसे कुछ ही दूरीपर ताप्ती नदीके तटपर जा पहुँचा, किन्तु यहा भी मुगल सैनिक नदीके घाटेपर पहरा दे रहे थे, एव इस राहको छोडकर वह खान-देश और बगलानेमें होता हुआ पश्चिमको चला, और अन्तमें १ जूनको वह अकबरके साथ सकुशल शम्भूजीके पास जा पहुँचा।

७ महाराणाके साथ सन्धि

मारवाडपर मुगल आधिपत्य स्थापित करनेके लिए फैलाया हुआ औरंगजेबका जाल जब पूरी तरह बिछ चुका था, और जब वह खीचा ही जानेवाला था, तब ही अकबरका यह विद्रोह उठ खडा हुआ, जिससे मारवाडमें युद्ध-सम्बन्धी औरंगजेबकी सारी योजनाओमें पूरी पूरी गडबड़

हो गई। उस सबके फलस्वरूप अब मारवाड राज्यपर पहिलेका-सा सैनिक दबाव नहीं रहा। सभवत इसी समय सुअवसर पाकर महाराणा जयसिंह के वीर भाई भीमसिंह और अयमत्री दयालदासने गुजरात तथा मारवाड़के शाही इलाकों पर आक्रमण कर वहाँ बहुत लूट-पाट की थी।

वास्तविक युद्धकी दृष्टिसे तो इस राजपूत-युद्धमे दोनो पक्ष बराबर ही रहे, किसी भी एककी हार या जीत न हुई। परन्तु आर्थिक दृष्टिसे यह युद्ध महाराणाकी प्रजाके लिए ही अहितकर तथा हानिकारक साबित हुआ। मैदानोमे खडे हुए उनके खेतके खेत शत्रुओंने नष्ट कर दिए। मेवाड निवासी हारको टाल सकते थे, परन्तु धान्यकी इस कमीको दूर करना उनके लिए सम्भव नही था। अतएव अब दोनों ही पक्षवाले सन्धिके लिए उत्सुक हो उठे। महाराणा जयसिंह स्वय १४ जून १६८१ ई०को शाहजादे मुअज्जमसे मिला और मुगलोंके साथ उसने सन्धि कर ली, जिसकी खास खास शर्तें ये थी –

(१) मेवाड राज्यसे वसूल की जानेवाली जजिया करकी रकमके बदले म महाराणाने माण्डल, पुर और बदनौरके परगने मुगल साम्राज्यको दे दिए।

(२) मुगलोने मेवाड राज्यको छोड देनेका वादा किया। मेवाड राज्य जयसिंहको वापिस दे दिया गया, उसे 'राणा'की उपाधि देकर औरगजेबने पच-हजारीका मनसबदार बना दिया।

इस प्रकार अन्तमे मेवाड राज्यको अपनी शान्ति एव स्वतन्त्रता पुन प्राप्त हुई। किन्तु मारवाडके भाग्यमे तो यह भी लिखा न था। अगले तीस वर्षो तक मारवाडमे निरन्तर युद्ध चलता ही रहा, जिससे वह सारा प्रदेश उजड गया। अशान्ति, अकाल तथा बीमारीने एक साथ ही उस प्रदेशको निर्जन भी बना दिया। उधर अकबरके शम्भूजीके साथ जा मिलनेसे मुगल साम्राज्यके लिए एक बिल्कुल ही नया तथा अनुपेक्षणीय खतरा उठ खडा हुआ। अब अपनी सारी सेनाएँ दक्षिणमे ही केन्द्रित करना औरगजेबके लिए अत्यावश्यक हो गया। औरगजेबको भी स्वय दक्षिण जाना पडा। अतएव मारवाड पर मुगलोका अधिकार ढीला पडने लगा और इसी तरह राठौडोकी मुक्ति हुई। आनेवाले युगोमे भी दक्षिणी युद्ध क्षेत्रकी सैनिक परिस्थितिमे होनेवाले परिवर्तनोका प्रभाव मारवाड़पर मुगलोंके आधिपत्यकी दृढता एव ढिलाईमे सुस्पष्टरूपेण देख पडता था।

दुर्गादासके समान सुयोग्य मार्ग प्रदर्शककी देख रेखमे धीरे-धीरे राठौडो की युद्ध प्रणाली बदलने लगी। आगे चलकर मराठोने भी जिस प्रणाली को अपनाया था, बहुत-कुछ उसीको अपनाकर अब राठौड वीर शाही फौजोको सब ओरसे सता सताकर उन्हे थका देने लगे। उस उजाड मरु भूमिमे शाही सेनानायक असहाय होकर राठौडोको चौथ देनेको तैयार हो जाते थे कि कमसे कम इस तरह तो उन्हे शान्ति प्राप्त हो। यो कोई तीस वर्ष तक यह युद्ध निरन्तर चलता ही गया। अगस्त १७०९ ई० में जब विजयी अजीतसिहने अन्तिम बार पुन जोधपुरमे प्रवेश किया, और जब दिल्लीके मुगल सम्राट्ने भी उसे जोधपुरका शासक स्वीकार कर लिया, तब ही जाकर कही इस युद्धका अन्त हुआ।

•

भाग ४

अध्याय १०

मराठोका उत्थान

१. १७वीं शताब्दीके दक्षिणके इतिहासकी प्रधान विशेपता

ईसाकी सोलहवी शताब्दीके पहले चतुर्थांशके अन्तमे जब महान् बहमनी राजवशका अन्त हो गया, तब बहमनी राज्यको आपसमे बाँटनेवाले आदिलशाह और निजामशाह ही उस बहमनी राजवशके सुयोग्य उत्तराधिकारी बने। गुलबर्गके सुलतानो द्वारा प्रारम्भ की गई इस्लामी राज्य और सभ्यताकी परम्पराओका अहमदनगर और बीजापुरके केन्द्रोमे पूर्णरूपेण पालन होने लगा। सत्रहवी सदीके पहले चतुर्थांशमे निजामशाहोका नाम सदैवके लिए मिट गया। अब तक दक्षिणके इन मुसलमानी राज्योका नेतृत्व अहमदनगर राज्य करता रहा था, अब उस नेतृत्वके भारको सभालनेके लिए बीजापुर तेजीसे आगे बढा।

किन्तु सत्रहवी शताब्दीके प्रारम्भसे ही इस दक्षिणी रणक्षेत्रमे एक नई सत्ताने पदार्पण किया था। मुगल बादशाहोको अब दक्षिण-विजयके लिए अवसर मिला। यही एक तथ्य १७वी सदीके दक्षिण भारतीय इतिहासकी प्रधान विशेपता है। १६३६ ई० मे बँटवारेकी सन्धिके अनुसार *मुगल-साम्राज्यकी दक्षिणी सीमा स्पष्टरूपसे निर्धारित की जा चुकी थी। अगले २० वर्षोमे बीजापुर अपनी उन्नतिकी चरम सीमापर पहुँच गया।* तब उसका राज्य भारतीय प्रायद्वीपके दोनो समुद्री तटो तक फैल गया था। उसकी राजधानी कला, साहित्य, धर्म और विज्ञानकी उन्नतिका प्रधान केन्द्र बन गई थी। पर उस राज्यके दरिद्री और परिश्रमी योद्धा-सस्थापक सुलतानोके इन उत्तराधिकारी शासकोको युद्धभूमि और घोडेकी सवारीकी अपेक्षा दरबार और अन्त पुर अधिक प्रिय थे। जब तक स्वय

शासक वीर नेता नही होता तव तक उस राज्यके विभिन्न सूबोंके सैनिक सूबेदार कभी उसकी आज्ञा नही सुनते हैं। इसलिए अन्तिम क्षमताशाली आदिलशाही सुल्तानकी मृत्युके बाद (नवम्बर, १६५६) दक्षिणकी बची हुई मुसलमानी रियासतोका अनिवार्यरूपसे शान्ति व शीघ्रतापूर्वक मुग़ल साम्राज्यम मिल जाना एक बहुत ही स्वाभाविक बात थी। किन्तु इसी समय दक्षिणी भारतकी राजनीतिमे एक नये तत्त्वके आनेसे वहाँकी सारी राजनैतिक परिस्थिति ही पूर्णतया बदल गई।

मराठोकी सत्ताका प्रादुर्भाव ही यह नई और बिलकुल ही अनपेक्षित विशेषता थी। औरंगजेबके राज्याभिषेकसे कोई डेढ सौ वर्ष तक दक्षिणी भारतके इतिहासम और ईसाकी १८वी सदीके अन्तिम ५० वर्षों तक उत्तरी भारतके इतिहासमे भी मराठोका प्रभुत्व बना रहा। ये मराठे अनादि कालसे दक्षिणी भारतम रहते आए थे, परन्तु १३वी सदीके बाद अपनी ही जन्मभूमिमे स्थित अनको रियासतोमे बिखरे हुए विदेशी शासकोकी प्रजा बनकर उन्हे जीवन बिताना पड रहा था। उन्हे न तो कोई अपने स्वाधिकार ही प्राप्त थे और न उनका अपना कोई राजनैतिक सगठन ही था। इन बिखरे हुए मराठोंको सुसगठित कर उन्हे एक जातिमें परिणत करना तथा उन्होको लेकर मुगल साम्राज्यपर आघात कर उसे टुकडे-टुकडे करनेके लिए एक प्रतिभाशाली नेताकी आवश्यकता थी। औरंगजेबके समकालीन प्रतिद्वन्द्वी शिवाजीके रूपमे ही मराठोंने अपने उस विलक्षण नेताको पाया।

ईसाकी १६वी सदीके अन्तमें जिस दिन सम्राट् अकबरने विन्ध्याचलसे आगेके दक्षिणी प्रदेशको जीतनेकी नीति प्रारम्भ की, तबसे लेकर कोई ९४ वर्ष बाद जब अन्तिम कुतुबशाही सुलतानसे जीती हुई उसकी राजधानी गोलकुण्डामें औरंगजेबने विजयीके रूपमे प्रवेश किया, तब तकके इस कालमें बीजापुर और गोलकुण्डाके सुल्तान कभी एक क्षणको लिए भी यह भूल न सके कि उनके राज्योको जीतकर उनका अस्तित्व मिटाने तथा उन्हे मुग़ल साम्राज्यमे मिलानेके लिए मुगल सम्राट् निरन्तर प्रयत्न कर रहे थे। ऐसे भयकर आपत्ति-कालमे अपनी रक्षाके लिए पहिले शिवाजीकी अनोखी प्रतिभा और बादमे शम्भूजीकी साहसपूर्ण वीरताम ही उन्हे अपना एकमात्र सहारा दिखाई पडा। मराठोके विरोधमे मुग़ल-साम्राज्यका बीजापुर या गोलकुण्डाके साथ मित्रता कर सगठन करना मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे एक असम्भव बात थी।

सक्षेपमे दक्षिणी भारतकी विभिन्न शक्तियोका सगठन इस प्रकार था। मुगलोके आगे बढनेकी आशकासे गोलकुण्डाका सुलतान तो एकबारगी शिवाजीसे जा मिला, किन्तु बीजापुरने अविश्वासके कारण बडी ही हिच-किचाहटके साथ यदा-कदा ही शिवाजीको मित्रता स्वीकार की। जब बीजापुरपर मुगलोके निरन्तर आक्रमण होने लगे और आदिलशाहकी स्थिति बहुत ही निराशापूण हो गई तब ही कही बीजापुरके शासकका शिवाजीके साथ मेल हो पाया। किन्तु तत्काल ही यह आशका होने लगी कि कपट-जालसे उसके किलो और प्रदेशोको हडप कर शिवाजी स्वय समृद्ध हो रहा है, एव बीजापुरके शासको की यह मित्रता भी शीघ्र ही समाप्त हो गई। दक्षिणकी इन तीन शक्तियोमसे इस कालके लिए तो हम कुतुबशाहको भुला सकते हैं, क्योकि इस समय उसने कभी मुगलोका विरोध नही किया। १६६६ ई०के बाद जब आदिलशाह द्वितीय शराबके नशेमे चूर रहने लगा, तब बीजापुरका निराशापूण पतन आरम्भ हो गया। वजीरी प्राप्त करने और राजधानी तथा विलासी सुलतानपर अधिकार करनेके लिए विरोधी सरदार आपसमे लडने लगे। सन् १६७२ ई०मे नाबालिग सुलतान सिकन्दरके गद्दीपर बैठते ही बीजापुरकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई। उस समयके बाद बीजापुरका इतिहास वास्तवमे सुल-तानके अभिभावकोका ही इतिहास रह जाता है। शासनमे बहुत ही गडबडी मच गई। इस अवसरसे लाभ उठाकर स्वतन्त्र शक्तिके रूपमे शिवाजीका उत्थान सम्भव हो सका।

दिल्लीके मुगल शासक शान्तिमय व्यवहार बनाए रखने या सन्धिकी शर्तोपर ईमानदारीसे चलनेके लिए तैयार हैं, इन बातोपर विश्वास करने के लिए शिवाजी एक क्षणके लिए भी तैयार नही थे। इसी कारण दक्षिण मे मुगल प्रदेशोपर अधिकार करनेका शिवाजीने कोई भी मौका नही छोडा। बीजापुरके साथ उसका सम्बन्ध कुछ दूसरे ही प्रकारका था। वह बीजापुरकी हानि करके ही अपना राज्य बढा सकता था या उसकी उन्नति कर पाता था। किन्तु १६६२ ई०के लगभग आदिलशाही मन्त्रियोके साथ उसका समझौता हो गया, उसके बाद शिवाजीने बीजापुरवालो को सताना छोड दिया।

७. दक्षिणमे मुगलोकी निर्बलताके कारण

मुगल साम्राज्यकी राजगद्दीका दावेदार बनकर जनवरी, १६५८ ई०

मे औरगजेब दक्षिणसे रवाना हुआ, और अपने जीवनके अन्तिम पच्चीस वर्ष निरन्तर युद्धमे ही वहाँ बिता देनेके लिए औरगजेब मार्च १६८२में वापस दक्षिण लौटा। इन बीचके इन चौबीस वर्षोंमे दक्षिणी सूबोंपर पाँच सूबेदारोंने शासन किया।

इन चौबीस वर्षोंमे दक्षिण भारतमे मुगल सेनाओंको यदा-कदा ही सफलता मिली और तब भी वे कभी निर्णयात्मक विजय नही प्राप्त कर सकी। इस असफलताके कारण कुछ तो व्यक्तिगत थे और कुछ राजनैतिक। शाहआलम एक शर्मीला और अनुत्साही शाहज़ादा था। स्वभाव से ही वह पडोसियोंके साथ शान्ति बनाए रखनेको उत्सुक रहता था तथा अन्त पुरके विलास और शिकारका प्रेमी था। इसके अतिरिक्त उसका प्रधान सेनानायक दिलेरखाँ बिना किसी प्रकारके सकोचके खुले-आम शाहज़ादेकी आज्ञाओंकी अवहेलना करता था जिससे गृह-युद्धसे पीडित किसी भी प्रदेशके समान ही दक्षिणमे मुगल सेनाकी निर्बलता सुस्पष्ट हो जाती थी। शाहआलम और दिलेरखाँ हमेशा परस्पर-विरोधी उद्देश्योंपर चलते थे, जिससे दक्षिणमे मुगलोंकी विफलता निश्चित-सी हो जाती थी।

दूसरे शाही सेनानायक और अधिकारी शिवाजीके साथ इस लगातार युद्धसे बिलकुल ऊब गए थे। जो हिन्दू अधिकारी इस समय मुग़लोंकी सेवा कर रहे थे उन्होने भी हिन्दू धर्मके इस दक्षिणी समर्थकके साथ गुप्त रूपसे भाईचारा स्थापित कर लिया और उनके मुसलमान सेनापति भी शान्तिमय जीवन व्यतीत करनेके लिए उसे रिश्वत देनेको प्रसन्नतापूर्वक तैयार थे। इसके अतिरिक्त बीजापुर और मराठोंको हरानेके लिए दक्षिणके किसी भी मुगल सूबेदारको साम्राज्यकी ओरसे अत्यावश्यक सैन्य और धनका आधा भाग भी प्राप्त नही हुआ।

शाहज़ादे अकबरके विद्रोह और बादमे उसके शम्भूजीकी शरणमे जा पहुँचनेसे दिल्लीके तख्तके विरुद्ध एक और नया सकट उत्पन्न हो गया था। उसका सामना करनेके लिए औरगजेबको स्वय दक्षिण जाना पडा। इस प्रकार उस ओरकी शाही नीतिमें एकाएक ही पूरा परिवर्तन हो गया। शम्भूजीकी शक्तिको नष्टकर साथ ही अकबरको भी बिलकुल अशक्त तथा निस्सहाय बना देना अब औरगजेबका प्रधान कार्य हो गया।

३. महाराष्ट्र प्रदेश और वहाँके निवासी

मराठोंकी जन्मभूमि तीन सुस्पष्ट भौगोलिक भागोंमें बँटी हुई है।

पश्चिमी घाट और हिन्द महासागरके बीच एक लम्बी परन्तु सँकडी जमीन का हिस्सा बहुत दूर तक चला गया है। इसकी चौडाई कही कम और कही ज्यादा है। बम्बई और गोआके बीचके इस हिस्सेको कोकण कहते हैं। गोआके दक्षिणमे कन्नड प्रदेश शुरू हो जाता है। इस कारण प्रदेशमे हमेशा निश्चित रूपसे बहुत गहरी बरसात होती है। प्रति वर्ष यहाँ सौसे दो सौ इच तक वर्षा होती है। यहाकी मुख्य उपज चावल है। आम, केले और नारियलके बाग यहाँ बहुतायतासे पाए जाते हैं। घाट पार करनेके बाद पूर्वकी ओर लगभग २० मील चौडा धरतीका एक लम्बा टुकडा पडता है। इसे मावल कहते हैं। यहाकी धरती बहुत ही ऊँची-नीची है। दूर तक चली जानेवाली गहरी टेढी-मेढी घाटियोम यत्र-तत्र समतल भूमि पाई जाती है। इससे भी आगे पूर्वकी ओर बढनेपर पश्चिमी घाटकी पहाडियोकी ऊँचाई कम होने लगती है और नदियोके कछार चौडे और समतल होने लगते है। यहीसे 'देश' नामक प्रदेश प्रारम्भ होता है। दक्षिणके मध्यमे स्थित दूर-दूर तक फैला हुआ यह एक लम्बा चौडा उपजाऊ मैदान है जहाकी मिट्टी काली होती है।

जहाँ अपने सीधे-सादे स्वरूप द्वारा प्रकृति स्वय सादगीकी शिक्षा देती हो, उस देशमे किसी प्रकारकी विलासिताका पाया जाना, ब्राह्मणोको छोडकर अन्य उच्च वर्णवालोको विद्याध्ययनके लिए आवश्यक अवकाश मिलना, तथा कलात्मक विकासकी बात तो दूर रही किन्तु वहाँ शिष्ट समाजमे चतुरतापूर्ण व्यवहारका भी पनपना सर्वथा असम्भव है। साथ ही ऐसे प्रदेशके इन अभावोकी पूर्ति वहाकी जलवायु तथा धरतीसे उत्पन्न होनेवाले अनेको आवश्यक गुणोमे होती है। वहाके निवासियोम आत्म-विश्वास, साहस, अध्यवसाय, कठोर सादगी, सीधापन और सामाजिक समताके साथ ही मानवोचित गर्व भी पूर्णरूपेण पाया जाता है। कार्य-शीलता, आत्मनिर्भरता, आत्मसम्मान और समता प्रेम, आदि गुण उनके चरित्रकी आधारभूत विशेषताओके रूपमे मिलते हैं।

ईसाकी १६वी शताब्दीके मराठोमे दूसरी धनवान् और अधिक सभ्य जातियोकी अपेक्षा सामाजिक भेदभाव बहुत ही कम था। समता की ऐसी ही भावनाएँ धार्मिक प्रवृत्तियो द्वारा भी प्रेरित होती थी। पन्द्रहवी और सोलहवी सदियोके लोकप्रिय सतोने जन्मकी श्रेष्ठताकी अपेक्षा चरित्रकी पवित्रताको अधिक महत्त्व दिया था। उनके विचारानुसार ईश्वरके सामने सारे सच्चे भक्त एक ही समान थे।

प्रारम्भिक मराठा समाजकी सादगी और एकता उनकी भाषा और साहित्यमें भी प्रतिबिम्बित होती थी। उनका भाषा-साहित्य अविकसित और अल्प होते हुए भी अत्यधिक लोकप्रिय था। इस प्रकार शिवाजी द्वारा राजनैतिक एकता स्थापित होनेसे पहले ही, १७वीं शताब्दीके महाराष्ट्रमें समान भाषा, समान धर्म और समान जीवनसे परिपुष्ट एक जातिका निर्माण हो चुका था।

शिवाजीकी सेनामें प्रधानतया मराठा और कुनबी जातिके ही सैनिक थे। ये जातियाँ स्वभावसे ही सीधी, निष्कपट, स्वच्छन्द, वीर और परिश्रमी होती हैं। ईसाकी १४वीं शताब्दीमें जब मुसलमानोंने दक्षिणी भारतको जीत लिया और उसीके फलस्वरूप जब महाराष्ट्रके अन्तिम हिन्दू राज्यका भी अन्त हो गया, तब इस देशके निवासियोंमेंसे योद्धा जातियोंके छोटे दल अपने विभिन्न नायकोंके नेतृत्वमें संगठित हो गए, और जब-जब देशके नए मुसलमान शासकोंको आवश्यकता पड़ी तब-तब उन्होंने द्रव्य देकर इन्हीं सेनानायकोंको उनके सैनिक साथियोंके साथ अपनी सहायतार्थ बुलाया। इस तरह अपने पड़ोसी मुसलमान राज्योंकी सहायता करके कई मराठा घरानोंने धन और शक्ति प्राप्त की और वीर साहसी योद्धा होनेका यश भी कमाया।

४. शाहजी भोंसले; उनका जीवन-चरित्र

इसी प्रकारका भोंसले नामक एक खानदान आरम्भमें पूना जिलेके अन्तर्गत पाटस नामक तालुकामें रहता था, और वहींके दो गावोंकी पटेली भी करता था। वे खेती करते थे। अपने सीधे सच्चे चरित्र तथा धार्मिक उदारताके कारण आसपासके प्रदेशमें उन्हें बहुत ही सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे। उन्हें अपने खेतोंमें कुछ गड़ा हुआ धन भी प्राप्त हुआ, जिससे वे आवश्यक शस्त्र और घोड़े, आदि खरीद सकें। १६वीं सदीके अन्त तक वे निजामशाही राज्यके विदेश-निवासियोंकी सेनाके नायक बन गए। मालोजीके ज्येष्ठ पुत्र शाहजी भोंसलेको भी ऐसे ही नायकका पद मिला था। उनका जन्म १५९४ ई० में हुआ था। बाल्यकालमें ही उनका विवाह अहमदनगर राज्यके एक बड़े हिन्दू सरदार, सिन्दखेड़के प्रतिष्ठित सामन्त लखूजी यादवरावकी पुत्री जीजाबाईके साथ हुआ था। निजामशाहके वजीर मलिक अम्बरके शासन-कालमें शाहजी सम्भवतः पहिले-पहल अपने कुटुम्बकी ही छोटी-सी सेनाके नायकके रूपमें नौकर हुए थे। मई १६२६में

मलिक अम्बरकी मृत्युके बाद बडी तेजीके साथ इस राज्यका पतन होने लगा। दरबारमे आए दिन हत्याएँ होने लगी। ऐसे सकटकालमे शाहजीने पहिले तो निजामशाही सरकारका साथ दिया और फिर वे मुगलोसे जा मिले। कुछ समय बाद मुगलोको छोडकर बीजापुरसे लडे और बादमे वे बीजापुरकी ओर गए। अन्तमे १६३३मे सह्याद्रि श्रेणीके एक पहाडी किलेम उन्होने नाम-मात्रके निजामशाहके एक शाहजादेको गद्दीपर बिठाकर उसका राज्याभिषेक किया। पूना और चाकणसे लेकर बालाघाट तकके सारे प्रदेश तथा जुन्नर, अहमदनगर, सगमनेर, त्र्यम्बक और नासिक, आदि स्थानोके आसपासका सारा निजामशाही इलाका छीन लिया। इस सुलतानके नामसे तीन वष (१६३३-३६) तक उन्होने इस राज्य-भारको सम्हाला। जुन्नर शहर इस राज्यकी राजधानी बना। अन्तमे १६३६मे शाहजीके विरुद्ध एक बडी मुगल सेना भेजी गई, जिसने शाहजीको बुरी तरह हराया और उन्हे विवश होकर अपने आठ किले मुगलोको दे देना पडे। अब वे महाराष्ट्र छोडकर बीजापुर चले गए और फिरसे उन्होने वहाँ नौकरी कर ली।

५ शिवाजीका बाल्यकाल, उनकी शिक्षा तथा चरित्र

शाहजी और जीजाबाईके दूसरे पुत्र शिवाजीका जन्म जुन्नर शहरके पास ही शिवनेरके पहाडी किलेम सन् १६२७ ई०मे हुआ था। १६३७के अन्तमें शाहजी पुन बीजापुर राज्यकी नौकरी करने लगे और उसके कुछ ही समय बाद अपने इस नये स्वामीके लिए नये प्रदेश जीतने और स्वय अपने लिए नई जागीर प्राप्त करनेके उद्देश्यसे पहिले वे तुङ्गभद्रा और मैसूरके पठारकी ओर भेजे गए और वहासे वे मद्रासके समुद्री तटकी ओर भी गए। शाहजीकी प्रिय पत्नी तुकाबाई और उसी पत्नीका पुत्र व्यकोजी भी इस चढाईके समय शाहजीके साथ थे। जीजाबाई और शिवाजीको शाहजीने पूना भेज दिया था, जहा उनकी जायदादके कमचारी दादाजी कोण्डदेव उनकी भी देख-रेख करते थे।

अपने पतिकी इस उपेक्षाके कारण जीजाबाईकी मानसिक प्रवृत्तियाँ अन्तमुखी हो गई और उनकी स्वाभाविक धार्मिक भावनाएँ अधिक सुदृढ बन गई। इस प्रवृत्ति तथा भावनाको शिवाजीने अपनी जननीसे ही पाया था। शिवाजीका बाल्यकाल एकाकी ही बीता, उनके साथ खेलनेको कोई बालक-साथी भी नही था, उनके कोई दूसरा भाई-बहन न था और न

पिताका सहवास ही उन्हे प्राप्त हो सका। अपने जीवनके इस एकाकीपनके कारण ही माँ-बेटे अधिक निकट आ गए। शिवाजीका मातृ-प्रेम बढता ही गया, यहाँ तक कि वे अन्तमे अपनी माताको देवीके समान पूजने लगे थे। अपने बाल्य-कालसे ही शिवाजीने अपने पैरोपर खडा होना सीखा था। दूसरे किसीकी सहायताके विना ही अपने विचारोको कार्यरूपमे परिणत करना वह जानते थे। अपने किसी उच्च अधिकारीके विशेष निर्देशके विना अपनी प्रेरणासे ही आगे बढना उन्हे आता था। इस प्रकारकी जो शिक्षा उन्हे मिली थी वह वास्तवम प्रधानतया व्यावहारिक थी। घुड सवारी तथा युद्ध, आदि अनेकानेक वीरोचित कार्योंमे वे पूर्ण दक्ष हो गए। उन्होने कहानियाँ और गीत सुन-सुनकर ही हिन्दू धर्मके महान् पुराणोका ज्ञान प्राप्त कर लिया और उन्हीसे शिवाजीने राजनैतिक और आचरण सम्बन्धी सारे उपदेश भी ग्रहण किए। शिवाजीको धार्मिक उपदेश और कीर्तन सुननेका भी बडा चाव था। जहाँ कही भी वे जाते थे, वहाँ हिन्दू और मुसलमान सन्तोका सत्सग करते थे।

मावल अथवा पूना ज़िलेका यह पश्चिमी भाग सह्याद्रि पहाड-श्रेणीके तलेके घने जगलोंके किनारे-किनारे दूर तक चला गया है। यहाँपर मावले किसान रहते हैं, जो बहुत ही स्वस्थ परिश्रमी और साहसी होते हैं। शिवाजीने अपने प्रारम्भिक साथियो, सच्चे अनुयायियो और वीर सैनिको को इन्हीमेसे चुना था। अपनी ही उम्रवाले मावले नायकोंके साथ-साथ युवा शिवाजी भी सह्याद्रिकी चोटियो और नदी किनारेके जगलोमे घूमते फिरते थे। यो ही उन्हे परिश्रमपूर्ण एकाकी कठोर जीवनका अभ्यास हो गया था। धार्मिक आचरणके साथ ही साथ चरित्रकी दृढता भी शिवाजीने प्रारम्भसे ही प्राप्त कर ली थी। उन्हे स्वतन्त्र जीवनसे प्रेम हो गया था एव मुसलमानोंके आश्रयमे रहकर विलासी जीवन बितानेके विचार मात्रसे ही उन्हे घृणा हो गई थी। १६४७ ई०मे दादाजी कोण्डदेवका देहान्त हो गया, जिससे बीस वर्षकी अवस्थामे ही शिवाजीको पूर्ण स्वतन्त्रता मिल गई।

६. शिवाजीकी प्रारम्भिक विजयें

सन् १६४६ ई०से बीजापुर राज्यके इतिहासमे एक महान् आपत्ति-काल प्रारम्भ होता है। बीजापुरका सुलतान मुहम्मद आदिलशाह सख्त बीमार हो गया और अपने जीवनके अगले दस वर्ष उसने वैसी ही रोगी

की दशामें बिस्तरमें पड़े-पड़े बिताए। इन दस वर्षोंमें वह राज-काजकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं दे सका। इस अपूर्व अवसरसे शिवाजीने पूरा लाभ उठाया। उन्होंने चालाकीसे तोरणा किलेको वहांके किलेदारके हाथसे छीन लिया। इस किलेमें बीजापुर राज्यके खजानेके कोई दो लाख हूण शिवाजीके हाथ लगे। तोरणासे कोई पाँच मील दूर पूर्वमें पहाड़ियोंकी इसी श्रेणीकी एक चोटीपर शिवाजीने राजगढ़ नामक एक नया किला बनवाया। बादमें उन्होंने बीजापुरके एक प्रतिनिधिके हाथसे कोण्डानाका किला भी ले लिया। दादाजीकी मृत्युके बाद शिवाजीने शाहजीकी पश्चिमी जागीरके सभी भागोंको अपने अधिकारमें करना आरम्भ किया। एक ही सत्ताके अधिकारमें सारे राज्यको सुसगठित करना उनका उद्देश्य था।

२५ जुलाई १६४८ ई०को बीजापुरी सेनानायक मुस्तफाखाने शाहजी-को कैदकर उनकी सारी जायदाद तथा उनकी सारी सेनाको जब्त कर लिया। इस समय मुस्तफाखा दक्षिण अर्काटके जिलेमें जिंजी नामक किले-का घेरा डाले हुए था।

पावोंमें बेड़िया डालकर शाहजीको बीजापुर लाया गया और एक अमीरकी देख-रेखमें नजरबन्द ही रहे। अन्तमें बीजापुरी सरदार अहमद-खाने बीचमें पड़कर समझौता करवाया और जब शाहजीने बगलोर, कोण्डाना और कन्दर्पीके तीन किले बीजापुर सुलतानको भेंट करनेका वादा किया, तब १६ मई १६४९को वे कैदसे छूट पाए।

सतारा जिलेके उत्तर-पश्चिमी कोनेके बिलकुल छोरपर जावली नामक गाँव है जो उस समय एक काफी बड़े राज्यका केन्द्र था। लगभग सारा जिला ही इस राज्यके अधीन था। इस राज्यका स्वामी मोरे नामक एक मराठा घराना था, जिनका खान्दानी खिताब 'चन्द्रराव' था। इस राज्यकी सेनामें मावलोंके समान ही परिश्रमी पहाड़ी जातिके कोई १२,००० पैदल सिपाही थे।

अपनी भौगोलिक स्थितिके कारण जावलीका यह राज्य दक्षिण और दक्षिण-पश्चिमी दिशासे शिवाजीकी महत्त्वाकाक्षाके मार्गमें एक बड़ी बाधा बना हुआ था। इसलिए शिवाजीने अपने ताबेदार रघुनाथ बल्लाल कोरडेको चन्द्ररावकी हत्या करनेके लिए भेजा। चन्द्ररावके साथ कोई राजनैतिक सन्धि करनेके बहाने उससे मिलकर रघुनाथने चन्द्ररावकी हत्या कर दी। ज्योंही चन्द्ररावके मारे जानेकी सूचना शिवाजीको मिली उन्होंने

सेना सहित जावलीपर आक्रमण कर दिया (१५, जनवरी १६५६)। उनके साथ किसी भी सेनानायकके न होते हुए भी जावलीकी सेना घण्टे तक आत्मरक्षाके लिए लडती रही, परन्तु अन्तमे शिवाजीकी ही जीत हुई। जावलीका पूरा राज्य अब शिवाजीके अधिकारमे आ गया। जावली से दो मील पश्चिममे शिवाजीने प्रतापगढ नामक एक नया किला बनवाया और वहा अपनी इष्टदेवी भवानीकी स्थापना की। रायगढका किला तब भी मोरे कुटुम्बके अधिकारमे था, एव अप्रेल १६३६मे शिवाजीने यह किला भी जीत लिया। रायगढका यही किला आगे चलकर शिवाजीके राज्यकी राजधानी बना।

७. मुगलोंके साथ शिवाजीका प्रथम युद्ध; १६५७ ई०

४ नवम्बर १६५६को मुहम्मद आदिलशाहकी मृत्यु हुई और उसके साथ ही औरगजेब बीजापुरपर आक्रमण करनेके लिए बडे जोरोंसे तैयारी करने लगा। जितने भी आदिलशाही सरदारो या अन्य अफसरोको फुसला कर वह अपने पक्षमे मिला सका उन्हे उसने मिलाया। यह सारी हालत देखकर शिवाजीने भी अपनी नीति बदली और बीजापुर राज्यकी सहायता करना उन्हे अधिक उचित एव आवश्यक जान पडा। बीजापुरकी ओरसे औरगजेबका ध्यान बटानेके लिए वे अब मुगलोंके दक्षिणी सूबेके दक्षिण पश्चिमी कोनेपर आक्रमण करने लगे।

तीन हजार घुडसवारोको लेकर मानाजी भोसलेने भीमा नदीको पार कर मुगल राज्यके चमारगुण्डा तालुकाके गावोको लूटा। उसी समय काशी नामक दूसरा सेनानायक भी भीमा पार कर रायसीन तालुकाके गावोको लूट रहा था। अप्रैल १६५७ समाप्त होते-होते ये दोनो ही मुगल साम्राज्यके दक्षिणी सूबेके प्रधान नगर अहमदनगरकी चारदीवारी तक लूटमार कर वहाँ भी उत्पात मचाने और सर्वत्र आतक फैलाने लगे। अहमदनगर किलेके नीचे ही बसे पेठ (नगर) को लूटनेका मराठोंने प्रयत्न किया था, किन्तु वहाँ नियुक्त मुगल सैनिकोंके ठीक समय पर जा पहुँचनेसे वे सफल नही हो सके। उसी समय शिवाजी उत्तरमे जुन्नर तालुकाको लूटनेमे व्यस्त थे। ३० अप्रैलकी अँधेरी रातमे वे रस्सोंकी सीढियो द्वारा जुन्नर शहरकी चारदीवारीको चुपकेसे फाँदकर अन्दर जा पहुँचे और वहाके पहरेदारोको मारकर तीन लाख हूण, दो सौ घोडे और

बहुतसे बहुमूल्य कपडे व जेवर ले गए। इन उपद्रवोका हाल सुनकर औरगजेबने सहायतार्थ और भी सेना अहमदनगर ज़िलेमे भेजी। तीन हज़ार घुडसवार लेकर वहा जानेका नसीरीखाँ और इरजखांको हुक्म दिया गया। परन्तु इससे पहिले ही अहमदनगरके किलेसे रवाना होकर मुल्फत-खाँ चमारगुण्डा पहुँचा और २८ अप्रैलके दिन मानाजीको हराकर वहासे मार भगाया।

किन्तु जब उधर उत्तरी पूना प्रदेशमे मुगलोका दबाव बहुत अधिक बढ गया, तब शिवाजी अहमदनगर जिलेकी ओर खिसक गए और वहाँ लूटमार आरम्भ कर दी। मईके अन्त तक नसीरीखाँ भी किसी प्रकार घटना-स्थलपर पहुँच गया। राहमे कही भी ठहरे बिना ही उसने शिवाजी-की सेनापर एकाएक आक्रमण कर उसे घेर-सा लिया। कई मराठे मारे गए, अनेको घायल हुए और बाकी रहे भाग खडे हुए (४ जून)। मराठो-के इन आक्रमणोके जवाबमे शिवाजीके प्रदेशपर सब तरफसे चढाई कर वहाँके गावोको उजाडने, लोगोको निर्दयतापूर्वक मार डालने और उन्हे पूर्णतया लूटनेके लिए औरगजेबने अपने अधिकारियोको विशेषरूपमे आदेश दिया।

सन् १६५७ ई०के पिछले महीनेमे कई एक महत्त्वपूर्ण बातें हुईं। मुगल सिंहासनके लिए गृहयुद्धकी संभावनाएँ सुस्पष्ट हो गईं और शाहजादा औरगजेब दिल्लीके लिए चल पडा। उधर मुगलोके साथ हुए पिछले युद्ध मे बीजापुरकी सेनाकी विफलताके कारणोको लेकर वहाके सरदारोमे आपसी झगडे उठ खडे हुए थे, जिनके फलस्वरूप बीजापुरके वजीर खान मुहम्मदकी हत्या हुई। अतएव अब अपनी महत्त्वाकाक्षाओको पूरी करनेमे शिवाजीकी राहमे कोई भी बाधाएँ नही रह गई थी। पश्चिमी घाटके पहाडोको पार कर वे कोकणमे जा धमके। समुद्री तटका यह उत्तरी भाग, जो आजकल थाणा जिला कहलाता है, तब कल्याण जिलेके अन्तर्गत पडता था। वहाका शासन नवायत (नए आए हुओकी) जातिके मुल्ला अहमद नामक एक अरबके हाथमे था, जिसकी गिनती बीजापुरके प्रमुख सरदारोमे होती थी। कल्याण और भिवण्डीके समृद्ध शहरोके चारो ओर शहरपनाह न थी एव शिवाजीने बिना किसी कठिनाईके उनपर अधिकार कर लिया (२४ अक्तूबर १६५७)। वहाँ अत्यधिक धन और बहुतसी व्यापारिक सामग्री शिवाजीके हाथ पडी। ८ जनवरी १६५८को माहुलीके किलेको भी शिवाजीने जीत लिया। वहासे दक्षिणमे कोलाब जिलेपर

सेना सहित जावलीपर आक्रमण कर दिया (१५, जनवरी १५५६)। उनके साथ किसी भी सेनानायकके न होते हुए भी जावलीकी सेना छ घण्टे तक आत्मरक्षाके लिए लडती रही, परन्तु अन्तमे शिवाजीकी ही जीत हुई। जावलीका पूरा राज्य अब शिवाजीके अधिकारमे आ गया। जावलीसे दो मील पश्चिममे शिवाजीने प्रतापगढ नामक एक नया किला बनवाया और वहाँ अपनी इष्टदेवी भवानीकी स्थापना की। रायगढका किला तब भी मोरे कुटुम्बके अधिकारमे था, एव अप्रैल १६३६मे शिवाजीने यह किला भी जीत लिया। रायगढका यही किला आगे चलकर शिवाजीके राज्यकी राजधानी बना।

७. मुगलोंके साथ शिवाजीका प्रथम युद्ध, १६५७ ई०

४ नवम्बर १६५६को मुहम्मद आदिलशाहकी मृत्यु हुई और उसके साथ ही औरगजेब बीजापुरपर आक्रमण करनेके लिए बडे जोरोंसे तैयारी करने लगा। जितने भी आदिलशाही सरदारो या अन्य अफसरोको फुसला कर वह अपने पक्षमे मिला सका उन्हे उसने मिलाया। यह सारी हालत देखकर शिवाजीने भी अपनी नीति बदली और बीजापुर राज्यकी सहायता करना उन्हे अधिक उचित एव आवश्यक जान पडा। बीजापुरकी ओरसे औरगजेबका ध्यान बटानेके लिए वे अब मुगलोके दक्षिणी सूबेके दक्षिण-पश्चिमी कोनेपर आक्रमण करने लगे।

तीन हज़ार घुडसवारोको लेकर मानाजी भोसलेने भीमा नदीको पार कर मुगल राज्यके चमारगुण्डा तालुकाके गावोको लूटा। उसी समय काशी नामक दूसरा सेनानायक भी भीमा पार कर रायसीन तालुकाके गावोको लूट रहा था। अप्रैल १६५७ समाप्त होते-होते ये दोनो ही मुगल साम्राज्यके दक्षिणी सूबेके प्रधान नगर अहमदनगरकी चारदीवारी तक लूटमार कर वहा भी उत्पात मचाने और सवत्र आतक फैलाने लगे। अहमदनगर किलेके नीचे ही बसे पेठ (नगर) को लूटनेका मराठोंने प्रयत्न किया था, किन्तु वहाँ नियुक्त मुगल सैनिकोंके ठीक समय पर जा पहुँचनेसे वे सफल नही हो सके। उसी समय शिवाजी उत्तरमे जुन्नर तालुकाको लूटनेमे व्यस्त थे। ३० अप्रैलको अँधेरी रातमे वे रस्सोकी सीढिया द्वारा जुन्नर शहरकी चारदीवारीको चुपकेसे फांदकर अन्दर जा पहुँचे और वहाके पहरेदारोको मारकर तीन लाख हूण, दो सौ घोडे और

हुतसे बहुमूल्य कपडे व जेवर ले गए। इन उपद्रवोका हाल सुनकर
ौरगज़ेबने सहायतार्थ और भी सेना अहमदनगर जिलेमे भेजी। तीन
ज़ार घुडसवार लेकर वहा जानेका नसीरीख़ा और इरजख़ाँको हुक्म दिया
या। परन्तु इससे पहिले ही अहमदनगरके किलेसे रवाना होकर मुल्तफ़त-
ाँ चमारगुण्डा पहुँचा और २८ अप्रैलके दिन मानाजीको हराकर वहाँसे
र भगाया।

किन्तु जब उधर उत्तरी पूना प्रदेशमे मुगलोका दबाव बहुत अधिक
ढ गया, तब शिवाजी अहमदनगर ज़िलेकी ओर खिसक गए और वहा
ूटमार आरम्भ कर दी। मईके अन्त तक नसीरीख़ाँ भी किसी प्रकार
टना-स्थलपर पहुँच गया। राहमे कही भी ठहरे बिना ही उसने शिवाजी-
ी सेनापर एकाएक आक्रमण कर उसे घेर-सा लिया। कई मराठे मारे
ए, अनेको घायल हुए और बाकी रहे भाग खडे हुए (४ जून)। मराठो-
इन आक्रमणोके जवाबमे शिवाजीके प्रदेशपर सब तरफसे चढाई कर
हाँके गावोको उजाडने, लोगोको निर्दयतापूर्वक मार डालने और उन्हे
र्णतया लूटनेके लिए औरंगज़ेबने अपने अधिकारियोको विशेषरूपसे
ादेश दिया।

सन् १६५७ ई०के पिछले महीनेमे कई एक महत्त्वपूर्ण बातें हुईं।
ुगल सिंहासनके लिए गृहयुद्धकी सभावनाएँ सुस्पष्ट हो गई और शाहज़ादा
ौरंगजेब दिल्लीके लिए चल पडा। उधर मुगलोके साथ हुए पिछले युद्ध
बीजापुरकी सेनाकी विफलताके कारणोको लेकर वहाके सरदारोमे
ापसी झगडे उठ खडे हुए थे, जिनके फलस्वरूप बीजापुरके वजीर ख़ान
ुहम्मदकी हत्या हुई। अतएव अब अपनी महत्त्वाकाक्षाओको पूरी करनेमे
शिवाजीकी राहमे कोई भी बाधाएँ नही रह गई थी। पश्चिमी घाटके
हाडोको पार कर वे कोकडमे जा धमके। समुद्री तटका यह उत्तरी भाग,
ो आजकल थाणा ज़िला कहलाता है, तब कल्याण जिलेके अन्तर्गत
डता था। वहाका शासन नवायत (नए आए हुओकी) जातिके मुल्ला
हमद नामक एक अरबके हाथमे था, जिसकी गिनती बीजापुरके प्रमुख
रदारोमे होती थी। कल्याण और भिवण्डीके समृद्ध शहराके चारो ओर
हरपनाह न थी एव शिवाजीने बिना किसी कठिनाईके उनपर अधिकार
कर लिया (२४ अक्तूबर १६५७)। वहा अत्यधिक धन और बहुतसी
व्यापारिक सामग्री शिवाजीके हाथ पडी। ८ जनवरी १६५८को माहुलीके
किलेको भी शिवाजीने जीत लिया। वहासे दक्षिणमे कोलाब ज़िलेपर

अधिकार करते समय शिवाजीको वहाँके स्थानीय छोटे-छोटे सरदारोंसे भी सहायता मिली। ये लोग मुसलमानोंके आधिपत्यका अन्त कर देना चाहते थे, अतएव अपने जिलेमें आनेके लिए उन्होंने शिवाजीको आग्रहपूर्वक लिख भेजा। शिवाजीने भी तुरन्त ही कल्याण और भिवण्डीको अपनी जल सेना तथा जहाजोंके ठहरनेका प्रमुख केन्द्र बना दिया।

८ शिवाजीका बीजापुरके अफजलखाँ को मारना, १६५९ई०

अपने सीमा-प्रदेशपर मुगल-आक्रमणकी निरन्तर बनी रहनेवाली आशंकाके तब कुछ समयके लिए दूर हो जानेपर सन् १६५९ ई०में बीजापुर के शासक अपने विभिन्न सरदारोंको दबानेके लिए प्रयत्नशील हुए। अफजलखाँ उपाधिसे भूषित अब्दुल्ला भटारी नामक व्यक्तिको शिवाजीके विरुद्ध भेजी जानेवाली सेनाका नेतृत्व सौंपा गया। अफजलखाँ की गणना बीजापुरके प्रथम श्रेणीके सरदारोंमें होती थी। उसने कर्नाटकके युद्धमें तथा मुगलोंकी पिछली चढ़ाईके समय बड़ी वीरता और युद्ध-कौशल दिखाए थे। किन्तु इस बार अफजलखाँके साथ केवल १०,००० घुड़सवार ही भेजे जा सके। उधर सर्वसाधारणमें प्रचलित विवरणके अनुसार शिवाजीके मावले पैदलोंकी संख्या ६०,०००के लगभग बतायी जाती थी। इसलिए शिवाजीके साथ मित्रताका ढोंग रचकर आदिलशाहसे उसके पूर्वापराध क्षमा करवानेका झांसा दे शिवाजीको पकड़ने अथवा मार डालनेकी सलाह बीजापुरकी राजमाताने अफजलखाँको दी थी।[1] वाई पहुँचकर अफजलखाँने अपने कर्मचारी कृष्णाजी भास्करके द्वारा शिवाजीको एक बहुत ही लम्बा देनेवाला संदेश भेजा। उसने लिखा कि—"बहुत वर्षों तक तुम्हारे पिताके साथ मेरी घनिष्ठ मैत्री रही है, अतएव तुम मेरे लिए

---

१ राजापुरसे रेविंग्टनने कम्पनीको १० दिसम्बर १६५९के दिन लिखा था —"इस वर्ष राजमाताने १०,००० घुड़सवार और पैदल लेकर अब्दुल्लाखाँ को शिवाजीके विरुद्ध भेजा। वह जानती थी कि इतनी थोड़ी सेनाको लेकर ही शिवाजीका सामना करना संभव नहीं था, अतएव शिवाजीके प्रति मित्रताका ढोंग रचनेकी उसने सलाह दी थी, और वैसा ही उसने किया। और उधरसे (शिवाजीने) भी उसके प्रति कपट प्रेम दिखाया, शिवाजीको इस भेदका पता लग गया था या केवल सन्देहके कारण ही ऐसा किया, यह निश्चितरूपेण ज्ञात नहीं हो सका है।" (फैक्टरी रेकर्ड्ज, राजापुर)।

यदापि अपरिचित नही हो। तुम आकर मुझसे मिलो। मैं अपना पूर्ण प्रभाव डालकर तुम्हारे अधिकारमे अब तक आए हुए सारे किलो और कोंकणके सारे प्रदेशपर तुम्हारा पूर्णाधिपत्य आदिलशाह द्वारा स्वीकृत करवा दूँगा।"

शिवाजीने अफज़लके दूत कृष्णाजी भास्करका यथायोग्य सम्मान किया। रात्रिमे उससे गुप्त रूपसे मिलकर शिवाजीने शपथें दे हिन्दू और विशेषतया पुरोहित ब्राह्मण होनेके नाते खानके सच्चे उद्देश्यका पूरा पूरा भेद खोल देनेके लिए उससे प्रार्थना की। जब अफज़लखाँ सीराके किलेको घेरे हुए था, तब उसने वहाके राजा कस्तूरी रगाका नाहक वध किया था, जो शरण मागनेके लिए उसके पास पडाव पर आया था। यह एक बहुत ही सुज्ञात घटना थी। कृष्णाजीने इतना ही सकेत किया कि खानके मनमे कुछ कपटपूर्ण षड्यन्त्रकी भावना अवश्य है। शिवाजीने कृष्णाजी को वापस लौटा दिया, और उसके साथ ही अपने कर्मचारी पन्ताजी गोपी-नाथको भी अफज़लखाँके पडावपर भेजा। पन्ताजीने वहा जाकर अफज़ल के कर्मचारियोको बहुत-सा द्रव्य घूँसमे देकर इस बातका पता लगा ही लिया कि भेंटके समय ही शिवाजीको कैद कर लेनेका अफजलने पूरा-पूरा प्रबध कर लिया था, क्योकि वह जानता था कि शिवाजी जैसे अत्यधिक चालाक व्यक्तिको आमने-सामनेके खुले युद्धमे पकड सकना कदापि सभव नही था।

प्रतापगढ किलेके नीचे एक छोटी-सी पहाडीकी चोटीपर, जहासे कयना नदीकी घाटी साफ देख पडती थी, वहा भेंट होनेका निश्चय हुआ और तदर्थ वहाँ एक बहुमूल्य सुशोभित शामियाना भी लगाया गया। प्रमुख व्यक्ति, उसका ब्राह्मण दूत और उसके दो सशस्त्र शरीर-रक्षक यो कुल मिलाकर चार-चार व्यक्ति दोनो पक्षोके उस डेरेमे उपस्थित थे। हारकर आनेवाले विद्रोहीकी तरह शिवाजी ऊपरसे बिलकुल ही शस्त्र-विहीन दिखाई पड रहे थे। उधर अफजलखाँकी कमरमे एक तलवार बँधी हुई थी। परन्तु दो अगुठियो द्वारा अगुलियोमे फँसा हुआ एक तेज बघनखा शिवाजीके बाएँ हाथमे छिपा हुआ था, और दाहिने हाथकी बाहके नीचे एक पतला किन्तु तेज बिछुआ छिपा हुआ था।

साथी सब नीचे ही खडे रहे। शिवाजी ऊँचे मचपर चढे और उन्होंने झुककर अफजलको प्रणाम किया। खान गद्दीसे उठा और कुछ कदम आगे

बढकर शिवाजीको गले लगानेके लिए उसने अपने दोनो हाथ फैलाए। दुबला पतला और ठिगना मराठा अपने शत्रुके कन्धों तक ही पहुँच पाता था। एकाएक अफजलने अपने बाहुपाशको जकड दिया और अपने बाएँ हाथसे शिवाजीकी गर्दनको दृढतापूर्वक पकडकर दाहिने हाथसे उसने लम्बी और सीधी धारवाली अपनी कटार खीची और शिवाजीके बगलमे मारी। परन्तु शिवाजीके अंगरखेके नीचे छिपे हुए कवचके कारण अफजलका यह आघात विफल हुआ। दबती हुई गर्दनके दर्दसे पहले तो शिवाजी कराह उठे, परन्तु दूसरे ही क्षण वह सम्हलकर अचानक आई हुई इस आपत्तिसे बचनेके लिए तत्पर हुए। खानकी कमरके पीछेसे अपना बाया हाथ डालकर शिवाजीने एक ही वारमे लोहेके उस तेज बघनखेसे अफजलके पेटको फाड डाला, जिससे अँतडिया बाहर निकल पडी, और तब शिवाजीने अपने दाहिने हाथमे अफजलकी बगलमे वह बिछुआ भी भोक दिया। घायल खानके ढीले बाहुपाशसे शिवाजीने अपने आपको छुडा लिया, और उस मचसे नीचे कूदकर शिवाजी अपने साथियोकी ओर बाहर दौडे।

खान चिल्ला उठा, "धोखा! दगाबाजी! मार डाला! बचाओ! बचाओ!!!" दोनो पक्षके सेवक दौड पडे। सिद्धहस्त तलवार चलाने वाले सैय्यद बन्दाने, जो अफजलके साथ आया था, शिवाजीका सामना किया और अपनी लम्बी व सीधी तलवारके एक ही वारसे उसने शिवाजीकी पगडी काट डाली, और पगडीके नीचेके फौलादी टोपपर भी एक गहरा निशान बन गया। तब जीवमहलाने सैयदका दाहिना हाथ काट दिया और अन्तमे उसे मार डाला। शम्भूजी कावजीने अफजलका सिर उतारकर विजयके गर्वके साथ उसे शिवाजीके सामने पेश किया।

इस विपत्तिसे छुटकारा पाकर शिवाजीने अपने दोनो साथियो सहित प्रतापगढकी चोटीका रास्ता लिया और वहा पहुँचकर तोप छोडी। नीचेकी घाटियामे छिपी हुई मराठा सेना इसी सकेतकी बाट जोह रही थी। मोरो त्रिम्बक और नेताजी पालकरकी सेनाएँ तथा हजारो मावले एकाएक चारो ओरसे बीजापुरी पडावपर टूट पडे। अफजलके कर्मचारी और सैनिक सभी अपने सेनानायककी इस मृत्युका समाचार सुनकर बहुत ही भयभीत हो रहे थे। इस अजाने प्रदेशमे, जहाकी हर एक झाडीमे जीवित शत्रु भरे हुए प्रतीत होते थे, वे इस आकस्मिक आक्रमणमे और भी अधिक घबडा उठे। बीजापुरी सेनाका पूर्ण सहार हुआ,

वहुत भयकर हत्याकाण्ड हुआ, और पराजित सेनाका वहुत धन शिवाजी-के हाथ लगा।

१० नवम्बर १६५९ को अफजलके वध और उसकी सेनाके सहार द्वारा प्राप्त विजयसे उन्मत्त मराठे अब दक्षिणी कोकण और कोल्हापुरके जिलोमे जा घुसे, पन्हालाके किलेपर उन्होने अधिकार कर लिया, एक और बीजापुरी सेनाको हराया और दिसम्बर १६५९से लेकर फरवरी १६६० तक वडी दूर दूरके प्रदेशोको उन्होने जीता।

९. शिवाजीका पन्हालाके किलेमे घिर जाना

सन् १६६० ई०के आरम्भमे आदिलशाह द्वितीयने अपने हवशी गुलाम सिद्धि जौहरको, जो अब सलावतखा कहलाता था, एक सेना सहित शिवाजीको दवानेके लिए भेजा। सिद्दी जौहर द्वारा खदेडे जानेपर शिवाजीने पन्हालामे आश्रय लिया (२ मार्च १६६०), तब तो १५,००० सैनिकोको लेकर सिद्दी जौहरने पन्हालाको जा घेरा। परन्तु शिवाजीने लालच देकर जौहरको अपनी ओर मिला लिया और तब वह घेरा केवल दिखानेके लिए ही चलता रहा। किन्तु मृत अफजलके पुत्र फजलखाने तब भी पूरी शक्तिके साथ मराठोपर आक्रमण किया। पासकी एक पहाडीपर अधिकार करके उसने पन्हालाकी रक्षा कर सकना सर्वथा असम्भव बना दिया। तब तो १३ जुलाईकी अँधेरी रातमे अपनी आधी सेनाको साथ लेकर शिवाजी किलेसे खिसक गए और बीजापुरी सेनाके पीछा करनेपर भी वे सफलतापूर्वक बचकर विशालगढ जा पहुँचे, जो वहासे कोई २७ मील पश्चिममे है। परन्तु शिवाजीकी इस सफलताका श्रेय बाजी प्रभु और उसके सैनिकोको था, जिन्होने गजपुरकी घाटीमे शिवाजीका पीछा करनेवालोका डटकर सामना किया और लडते हुए एक एक कर प्राय वे सारे ही मारे गए। पन्हालामे पीछे रहे सैनिकोने आत्मसमर्पण कर २२ सितम्बरको वह किला जौहरको सौंप दिया।

१० शायेस्ताखाँका पूना और चाकणपर अधिकार करना

दक्षिणी मुगल सूबोका नया सूबेदार शायेस्ताखा सन् १६६० ई०के प्रारम्भमे शिवाजीपर चढाई करनेका आयोजन करने लगा। उसने इस बातका प्रबन्ध किया कि जब वह स्वय उत्तरकी ओरसे शिवाजीपर आक्र-

मण करे उसी समय बीजापुर भी दक्षिणकी ओर मराठोके प्रदेशपर हमला करे। एक बडी सेनाके साथ २५ फरवरीको अहमदनगरसे रवाना होकर ९ मईके दिन शायेस्ताखाँने पूना नगरमे प्रवेश किया।

१९ जूनको पूनासे चलकर शायेस्ताखाँ २१ जूनको वहासे १८ मील उत्तरमे चाकणके पास पहुँचा, सैनिक दृष्टिसे उस किलेका बाहरी निरीक्षण किया और तब उस किलेकी दीवालोकी ओर खाइयाँ खुदवाने लगा। १५ अगस्तको चाकणके किलेपर मुगलोका अधिकार हो गया। किन्तु यह शाही विजय बहुत ही मँहगी पडी, कोई ३६८ सैनिक मारे गए और ६०० घायल हुए। चाकणको जीतकर अगस्त १६६० ई०के अन्तमे शायेस्ताखा पूना लौट आया। बरसात शुरू हो जानेसे अब वह अधिक कुछ नही कर सका और सारी वर्षा ऋतु उसे पूनामे ही बितानी पडी।

अगले वर्ष १६६१के आरम्भमे शायेस्ताखाका ध्यान उत्तर कोकणके कल्याण जिलेकी ओर गया, जहाँ पिछले अप्रेलसे ही इस्माइलके नेतृत्वमे कोई ३,००० सैनिकोकी एक छोटी-सी मुगल सेना धीरे-धीरे आगे बढ रही थी। कल्याण, आदि वहाके मुख्य नगर और किले तब भी मराठोके ही अधिकारमे थे, तथापि इस मुगल सेनाने उस प्रदेशके कुछ भागको जीत अवश्य लिया था। कारतलबखाके नेतृत्वमे एक बडी मुगल सेनाने पूनासे चलकर जनवरी १६६१ ई०मे कोकणमे प्रवेश किया। जब यह सेना पेनसे कोई १५ मील पूर्वमे उमरखिण्ड पहुँची, तब बिना रुके बडी ही तेजीके साथ चलकर शिवाजी भी एकाएक वहा जा धमके और इस मुगल सेनाके आगे बढने या पीछे लौटनेके दोनो ही रास्ते बन्द कर दिए। कारतलबखाकी सेनाका अब रुक जाना पडा और सारी सेनाका प्याससे मर जाना भी अवश्यम्भावी देख पडने लगा। तब तो निराश और विवश होकर कारतलबने पडावका सारा मालअसबाब वही छोड दिया और अपने छुटकारेके लिए शिवाजीको और भी बहुतसा द्रव्य देकर वह ३ फरवरी १६६१को अपनी सारी सेनाके साथ वहासे सकुशल निकल आया। यों इस बार तो शिवाजीने कल्याणके जिलेको शत्रुओके हाथसे मुक्त किया, परन्तु मई १६६१मे मुगलोने पुन कल्याण मराठोसे छीन लिया और तब अगले नौ वर्ष तक उसपर मुगलोका ही अधिकार रहा। इन दो वर्षोकी चढाइयोका अन्तिम परिणाम यह हुआ कि उत्तरी कोकणका ऊपरी भाग मुगलोके हाथोंसे नही निकल सका, उधर दक्षिणी कोकण शिवाजीके ही अधीन रहा। मार्च १६६३मे मुगलोने शिवाजीके घुडसवारोके नायक

नेताजीका दूर तक दृढताके साथ पीछा किया। नेताजी भाग निकला, किन्तु उसके ३०० घुडसवार मारे गए और वह स्वय भी घायल हुआ।

११. शायेस्ताखाँपर शिवाजीका रात्रि-आक्रमण

शायेस्ताखा पूनामे शिवाजीके बाल्यकालके साधारण-से निवास स्थान लालमहलमे रहता था। उसके साथ ही उसका हरम भी था। उस महलके चारो ओर उसके अगरक्षको और नौकरोंके रहनेके लिए स्थान, नौबत-खाना, दफ्तर, आदि थे, और उससे आगे दक्षिणकी ओर सिंहगढ जाने-वाली सडककी दूसरी तरफ शायेस्ताखाँके प्रमुख अफसर महाराजा जसवन्तसिंह और उसके १०,००० सैनिकोका पडाव था। ऐसे स्थानमे शायस्ताखाँपर अचानक ही आकस्मिक घात कर सकनेके लिए अत्यधिक चपलता और चतुराईके साथ ही अद्वितीय वीरता और अनुपम साहसकी भी पूरी-पूरी आवश्यकता थी। शिवाजीने नेताजी पालकर और पेशवा मोरोपन्तके अधीन एक-एक हजार मावले पैदल सैनिका और घुडसवारोकी दो सहायक टुकडिया तैयार कर, उन्हे विस्तृत मुगल पडावकी बाहरी सीमाके दोनो ओर एक-एक मीलकी दूरीपर जा डटनेका आदेश दिया। रविवार, ५ अप्रेल १६६३ ई० को रात पड जानेके बाद चुने हुए ४०० सैनिकोंके साथ शिवाजीने स्वय पूना नगरमे प्रवेश किया, और वहाके मुगल पहरेदारोंके पूछताछ करनेपर स्वयको शाही मुगल सेनाके दक्षिणी सैनिक बताया और यह भी कहा कि उनको दी गई चौकियाको सभालनेके लिए वे जा रहे थे। उस मुगल पडावके किसी अँधेरे कोनेमे कुछ घटो तक सुस्ता लेनेके बाद कोई आधी रातके समय शिवाजीका यह दल शायेस्ताखाके महलके पास पहुँचा। शिवाजीने अपना बाल्यकाल और यौवन इसी महलमे बिताए थे एव वे उस महलके कोने कोनेसे पूर्णतया परिचित थे, उसी प्रकार पूना नगरकी गली-गली और वहाके गुप्त और खुले हुए सारे रास्तोको वे अच्छी तरह जानते थे।

उस दिन मुसलमानोके उपवासवाले रमजान महीनेकी छठी तारीख थी। दिन भरके उपवासके बाद रातको भरपेट खाकर शायस्ताखांके सारे नौकर चाकर गहरी नीद सो रहे थे। आग जलाकर सूर्योदयसे पहले ही रमजान माहमे आवश्यक प्रात कालके खानेकी तैयारी करनेके लिए कुछ रसोइये तब उठ गए थे, उन्हे मराठोने चुपचाप मार डाला। इस बाहरी रसोईघर और भीतर अन्त पुरके बीचकी दीवारमे किसी समय

एक दरवाजा था, जो अन्त पुरकी आडको पूरा करनेके लिए तब ईंट और मिट्टीसे बन्द कर दिया गया था। ईंटें निकालकर मराठोंने फिरसे उस द्वारको खोल दिया। अपने विश्वस्त सेनापति चिमणाजी बापूजीको लेकर उसी द्वारसे पहिले शिवाजी अन्त पुरमे घुसे, और तब पीछे-पीछे उनके २०० सैनिक भी वहाँ जा पहुँचे। जब शिवाजी खानके शयनागारम जा पहुँचे, तब औरतोने भयभीत होकर शायेस्ताखाँको जगाया। किन्तु उसके शस्त्र सम्हाल सकनेके पहले ही शिवाजी उसपर टूट पडे और शिवाजीकी आघातसे उसका अँगूठा भी कट गया। बहुत करके इसी समय किसी बुद्धिमान् स्त्रीने उस कमरेके सारे ही दीपक बुझा दिए। अँधेरेमे दो मराठे पानीके हौजमे जा गिरे। इसी गडबडीमे दो दासियोंने शायेस्ताखाको एक सुरक्षित स्थानमे पहुँचा दिया। कुछ समय तक मराठे उस अन्धकारम ही बराबर मारकाट करते रहे।

शिवाजीके साथके बाकी रहे २०० सैनिकोने, जिन्हे अन्त पुरके बाहर ही छोड दिया गया था, उस महलके मुख्य पहरेदारोपर हमला कर दिया, और "क्या इस तरह पहरा दिया जाता है" कह कहकर वहाँ सोते तथा जागते हुए सभी पहरेदारोको मार डाला। तब वे नौबतखानेमे जा पहुँचे और शायेस्ताखाँका नाम लेकर उन्हे नौबत बजानेकी आज्ञा दी। नौबत और नगाडोकी उस तुमुल ध्वनिमे अन्त पुरका करुणक्रन्दन और पहरेदारो की चीख चिल्लाहट डूब गई और मराठोकी रणहुँकारोने वहाकी घबडाहट एव गडबडीको और भी बढा दिया।

दूसरोकी राह न देखकर शायेस्ताखाका पुत्र अबुलफतेह अकेला ही सबसे पहले पिताकी रक्षाके लिए दौडा, किन्तु दो तीन मराठोको मारनेके बाद ही वह वीर युवक स्वय मारा गया।

अपने शत्रुओको पूर्णतया सजग और सशस्त्र होते देखकर शिवाजीने वहा अधिक देरी करना उचित न समझा। वे शीघ्र ही अन्त पुरसे निकले, अपने सारे सैनिकोको एकत्रित किया और सीधे रास्तेसे वे पडावके बाहर हो गए। उनका न किसीने पीछा किया और न उनको कोई हानि ही पहुँचाई। इस आकस्मिक आक्रमणमे कुल छ मराठे मरे और ४० घायल हुए। उधर मराठोने शायेस्ताखाके एक पुत्र, एक सेनापति, चालीस नौकर और उसकी छ पत्नियो या दासियोको मार डाला था, तथा दूसरे दो पुत्रो, आठ अन्य स्त्रियो और स्वय शायेस्ताखाको भी उन्होने घायल

किया था। जसवन्तसिंहके जान-बूझकर असावधानी करनेके कारण ही शिवाजीको अपने इस महत्वपूर्ण कार्यमें ऐसी अनपेक्षित सफलता प्राप्त हो सकी, ऐसा दक्षिणकी जनताका दृढ विश्वास हो गया था।

अपने उस चतुराईपूर्ण साहसके फलस्वरूप उस मराठा वीरकी ख्याति तथा प्रतिष्ठा अधिक बढ़ गई। कई तो उसे शैतानका अवतार ही मानने लगे। उससे बच सकनेके लिए कोई भी स्थान सुरक्षित नहीं समझा जाता था और शिवाजीके लिए कोई भी कार्य कर लेना किसी प्रकारका असम्भव नहीं माना जाता था। बादशाहने इस हारका समाचार सुना और अपने सूबेदारकी अयोग्यता और बेपरवाहीको इस दुर्घटनाका एकमात्र कारण बताया। दण्ड देनेपर ही तब अधिकारियोंकी नियुक्ति बंगालमें की जाती थी, एवं शायेस्ताखांके प्रति अपनी अप्रसन्नता प्रदर्शित करनेके लिए दक्षिण से बदल कर १ दिसम्बर १६६३ ई०को उसे बंगालका सूबेदार बना दिया। दक्षिणके नये सूबेदार शाहजादा मुअज्जमके वहां पहुँच जानेपर जनवरी १६६४का दूसरा सप्ताह बीतते-बीतते शायेस्ताखां दक्षिणसे बंगालके लिए रवाना हो गया।

१२ शिवाजीका सूरतको पहली बार लूटना

जिस समय औरंगाबादमें सूबेदारोंकी यह अदला-बदली हो रही थी, उसी समय शिवाजीने तब ही की गई इस आश्चर्यजनक आकस्मिक घातसे भी अधिक साहसका एक और काम कर डाला। ६ जनवरी १६६४से लेकर पूरे चार दिन तक शिवाजीने मुगल साम्राज्यके सबसे धनपूर्ण समृद्धिशाली बन्दरगाह सूरत नगरको जी भरकर लूटा। उस नगरकी सुरक्षाके लिए तब उसके चारों ओर कोई शहरपनाह न थी। वहाँ अपार सम्पत्ति एकत्रित थी। केवल शाही चुँगीसे ही वहाँ साम्राज्यको प्रति वर्ष कोई बारह लाख रुपयेकी आमदनी हो जाती थी।

मंगलवार, ५ जनवरी १६६४को प्रातःकाल ही जब यह समाचार सूरत नगरमें फैल गया कि शिवाजी ससैन्य वहांसे २८ मील दूर दक्षिणमें गण्डावी तक आ पहुँचे हैं और नगर लूटनेकी इरादेसे वह सूरतकी ओर बढ़ रहे हैं, तब वहाँ बड़ी घबराहट फैल गई। एकाएक सब लोगोंपर आतंक छा गया और अपने स्त्री-बच्चोंको लेकर वे वहांसे भागने लगे, अधिकतर तो अपनी जान बचानेके लिए नदीके दूसरी पार चले गए।

किलेदारको रिश्वत देकर धनवान् व्यक्तियोने किलेकी शरण ली। नगरका शासन वहाके किलेदारसे भिन्न इनायतखाँ नामक एक दूसरे ही व्यक्तिके हाथमे था। नगरको ईश्वरके भरोसे ही छोडकर इनायतखाँ स्वम भी किलेमे जा छिपा।

बुधवार, ६ जनवरीकी सुवहके कोई ११ वजे शिवाजी सूरत पहुँचे और वहा पूर्वी ओरके बुरहानपुरी दरवाजेसे बाहर कोई दो फर्लांगकी दूरीपर स्थित एक बागमे शिवाजीने अपना डेरा खडा किया। मराठे घुडसवार तुरन्त ही उस अरक्षित और प्राय उजडे हुए नगरमें जा घुसे और घरोको लूट-लूट कर उनमे आग लगाने लगे। इस प्रकार बुधवारसे लेकर शनिवार तक लगातार लूटमार और विध्वस चलता रहा। प्रति दिन नये-नये स्थानोमे आग लगाई जाती थी और यो हजारो मकान जलकर खाक हो गए। शहरका लगभग दो तिहाई भाग नष्ट हो गया। डच फेक्टरीके पास ही उस समय ससारमें सबसे धनवान् समझे जानेवाले व्यापारी वहरजी बोहरेका विशाल महल खडा था। उसकी जायदाद ८० लाख रुपयोके लगभग की बताई जाती थी। शुक्रवारकी शाम तक मराठोंने वहरजीके उस महलको अपनी इच्छानुसार दिनरात लूटा, उसका नीचेका फर्श तक खोद डाला, और अन्तमे उसे आग भी लगा दी। उधर अग्रेज फेक्टरीके पास ही हाजी सैयद बेग नामक एक धनी व्यापारीका गगनचुम्बी मकान तथा बहुत बडे-बडे गोदाम थे। अपनी इस सारी सम्पत्तिको अरक्षित छोडकर यह हाजी भी भागकर किलेमे जा छिपा था। बुधवारकी शाम और रात भर तथा गुरुवारकी दोपहर तक मराठे वहाँके दरवाजो और तिजोरियोको तोड-तोडकर जितना भी धन उठाकर ले जा सके ले गए। किन्तु गुरुवारको तीसरे पहर अग्रेजोंने सडकोपर घूमनेवाले लूटेरोंपर आक्रमण किया जिससे वे सब वहाँसे भाग खडे हुए। तब दूसरे दिन अग्रेज व्यापारियोने सैय्यद वेगके मकानपर अपने ही पहरेदार नियुक्त किए और उसके बाद वहाँ अधिक हानि नही हो पाई। सूरतकी इस लूटमारसे लगभग एक करोड रुपया मराठोंके हाथ लगा।

सूरतका डरपोक शासक इनायतखाँ मगलवारकी रातको ही किलेमे जा छिपा था। अपने उस सुरक्षित आश्रयसे उसने एक निन्दनीय षड्यन्त्र रचा। गुरुवारको उसने अपने एक युवा अनुचरको शिवाजीके पास भेजा। सन्धिकी बातचीत करनेका तो एक बहाना-मात्र था, भेंटके समय शिवाजीकी हत्या करना ही उसका वास्तविक उद्देश्य था।

शिवाजीके सामने नगी तलवार लिये खडे हुए एक शरीर रक्षकने एक ही वारमे उस हत्यारेका हाथ काट डाला। पर उस आततायीने इतने वेगसे आक्रमण किया था कि वह रुक न सका और कटे हाथवाली रुधिरमे सनी बाँहसे शिवाजीपर आघात किया, जिससे दोनो ही लडखडाकर धरतीपर गिर पडे। रविवार १० जनवरीकी सुबहमे जब शिवाजीने सुना कि नगरकी सहायताके लिए एक मुगल सेना आ रही है, तब अपनी सेनाको लेकर दस बजते बजते एकाएक शिवाजी सूरतसे चल पडे।

सूरतके सारे व्यापारियोंमे एक वप तक चुँगी वसूल न किए जानेकी आज्ञा देकर बादशाहने वहाके लुटे हुए पीडित नगर निवासियोंके प्रति सहानुभूति प्रगट की। अंग्रेज और डच व्यापारियोने जो वीरता दिखाई थी, उसके पुरस्कारस्वरूप उनके मालपर वसूल किए जानेवाले सामान्य आयातकरमें भविष्यके लिए एक प्रतिशतकी कमी कर दी गई।

शायेस्ताखाके रवाना होनेके बाद और जयसिंहके पहुँचनेसे पहिले जो वर्ष (१६६४ ई०) बीता, उसमे मुगलोको कोई भी उल्लेखनीय सफलता न मिली। नया सूबेदार शाहजादा मुअज्जम औरगाबादम रहता था और शिकार और आमोदप्रमोदके सिवाय अन्य किसी बातकी उसे कुछ भी चिन्ता न थी।

१३. शिवाजीके विरुद्ध जयसिंहका भेजा जाना, पुरन्दर-विजय

शायेस्ताखाकी हार और सूरतकी इस लूटसे औरगजेब और उसके दरबारियोको बहुत ग्लानि हुई। अपने सारे हिन्दू और मुसलमान सेनापतियोमे सबसे अधिक सुयोग्य और दक्ष सेनानायक जयसिंह कछवाहा एव दिलेरखाको शिवाजीका दमन करनेके लिए भेजा।

मुगल शाही सेनाके साथ रहकर मध्य एशियामे स्थित बलखसे लेकर सुदूर दक्षिणमे बीजापुर तक तथा पश्चिममे कन्धारसे लेकर पूवमे मुगेर तक, साम्राज्यके हर एक भागमे जयसिंहने युद्ध किया था। शाहजहाके दीर्घकालीन शासनकालमे कदाचित् ही ऐसा कोई वप बीता था जब कि इस राजपूत राजाने किसी युद्ध या चढाईमे भाग न लिया हो और अपनी मशहूर सेवाओके पुरस्कारस्वरूप उसे कोई न कोई पदोन्नति न मिली हो। रणभूमिमे प्राप्त विजयोंसे भी कही अधिक सफलताएँ उसे राजनीतिक क्षेत्रमे मिल चुकी थी। जहा कही भी कोई कठिन या चतुराईपूण गूढ काम

करना होता था वहाँ बादशाह जयसिंहका ही मुँह ताकता था। युक्तिपूर्ण चातुरी और व्यवहार-कुशलताके साथ ही साथ अडिग धैर्य भी उसमें कूट-कूट कर भरा था। मुगल दरबारके समारोहोचित शिष्टाचारमें वह पूरी तरह पारगत था। राजस्थानी और उर्दू बोलियोके अतिरिक्त वह तुर्की और फारसी भाषाओका भी पूर्ण ज्ञाता था। इन्ही सब विशेषताओंके कारण ही दूजके चादसे अकित दिल्लीके शाही झण्डेके नीचे सगठित होनेवाली अफगान, तुर्क, राजपूत और हिन्दुस्तानी सैनिकोकी उस सम्मिश्रित मुगल सेनाका सेनापतित्व करनेके लिए वह सर्वथा उपयुक्त था। आवेशपूर्ण उदारता, सावधानी विहीन साहसिकता, अव्यावहारिकतामय सिधाई और नीति-रहित शौर्य ही राजपूतोके चरित्रकी प्रमुख विशेषताएँ मानी जाती हैं, परन्तु इन सबके विपरीत जयसिंहमे अनोखी दूरदर्शिता, राजनीतिक धूर्तता, बातचीतमें मिठास और शान्तिपूर्वक सब-कुछ सोच-समझ-कर ही अपनी नीति निश्चित करनेकी प्रवृत्ति बहुतायतसे पाई जाती थी।

जयसिंहने बडी ही चतुराईके साथ बीजापुरके सुलतानकी आशाओ और आशकाओंसे पूरा पूरा लाभ उठाया। यदि आदिलशाह मुगलोकी मदद कर यह सिद्ध कर देगा कि शिवाजीके साथ उसका कोई भी सम्बन्ध नही है तो आदिलशाहके प्रति औरगजेबकी अप्रसन्नताको दूर कर बीजापुरसे वसूल होनेवाली टाँकेकी रकममे भी वह कमी करवा सकेगा, इस बातकी जयसिंहने आदिलशाहको आशा दिलाई। शिवाजीके अन्य सारे शत्रुओको भी सगठित कर एक साथ ही सब ओरसे शिवाजीपर आक्रमणका आयोजन किया, जिससे कि शिवाजीका ध्यान और शक्ति इस प्रकार बँट जावे।

३१ मार्चको पुरन्दरसे ४ मील दूर एव पुरन्दर और सासवडके बीच जयसिंहने अपना स्थायी पडाव डाल दिया, और तब उसने पुरन्दरके किलेका घेरा डाला।

सासवडसे ६ मील दक्षिणमे पुरन्दरका अतिविशाल पहाड खडा है। उसकी सबसे ऊँची चोटी आसपासके समतल मैदानसे कोई २,५०० फुटसे भी अधिक ऊँची तथा कुल मिलाकर समुद्रकी सतहसे ४,५६४ फुट ऊँची है। वास्तवमें यह एक स्वाभाविक दुहरा किला है। इसके पूर्वमें लगी हुई पहाडीपर वज्रगढ नामक एक दूसरा ही स्वतन्त्र एव सुदृढ किला है।

पुरन्दरका मुख्य किला चारों ओरसे बहुत ही ऊँची करारी चट्टानोंवाली पहाड़ीपर बना हुआ है, उससे कोई ३०० फुट या अधिक नीचे एक और परकोटा है जो 'माची' कहलाता है। पुरन्दरके ऊपरी किलेकी 'खड़-कला' (अर्थात् गगन-चुम्बी) नामक उत्तर-पूर्वी बुर्जके तलेसे प्रारम्भ हो-कर 'भैरवखिण्ड' नामक एक ऊँची पहाड़ी पूर्वमें कोई एक मील तक सकड़ी पर्वत श्रेणीके रूपमें चलनेके बाद दूसरे सिरेपर समुद्रसे ३,६१८ फुट ऊँचे एक छोटेसे पठारका स्वरूप ग्रहण कर लेती है, यहीं रुद्रमाल किला बना हुआ है, जो अब वज्रगढ नामसे सुप्रसिद्ध है। पुरन्दरके नीचेवाले माची किलेके उत्तरी भागमें ही सैनिकोंके रहनेके स्थान, आदि हैं। वज्रगढका किला पुरन्दरकी इस माचीके बिलकुल ही ऊपर पड़ता है। एक अच्छे सेनानायककी भांति जयसिंहने भी पहिले-पहल, वज्रगढपर ही आक्रमण करनेका निश्चय किया।

लगातार गोलाबारी करके मुगलोंने वज्रगढकी सामनेकी बुर्जकी नीचेकी दीवालको तोड़ फोड़ डाला। १३ अप्रेलको आधी रातके समय दिलेरखांके सैनिकोंने उस बुर्जपर धावा कर मराठे शत्रुओंको किलेके पिछले भागमें खदेड़ दिया। दूसरे दिन (१४ अप्रेलको) विजयी मुगल उस पिछले भागके परकोटेकी ओर बढ़े, तब मुगलोंकी गोलाबारीसे त्रस्त होकर किलेके रक्षकोंने उसी दिन सन्ध्या-समय आत्मसमर्पण कर दिया।

पुरन्दर जीतनेके लिए वज्रगढको पहिले ही अधिकारमें कर लेना पूर्णतया अत्यावश्यक था। अब दिलेरखां पुरन्दर किलेको जीतनेके लिए प्रयत्नशील हुआ और मराठा प्रदेशमें लूटमारके लिए सैनिकोंके दल भेजने-का जयसिंह आयोजन करने लगा। जयसिंहकी अधीनतामें नियुक्त कुछ अधिकारी विश्वासघाती थे, जिनकी मौजूदगीसे कुछ लाभ होना तो दूर रहा हानि ही अधिक होती थी। दाऊदखां कुरेशी किलेकी खिड़कियोंका पहरा देनेके लिए नियुक्त किया गया था। किन्तु कुछ दिनों बाद पता लगा कि मराठोंके एक दलने उसी खिड़कीसे किलेमें प्रवेश किया था, और दाऊदखांने उनका नाम मात्रको भी विरोध नहीं किया था।

वज्रगढपर अधिकार हो जानेके बाद वज्रगढको पुरन्दरसे जोड़नेवाली उस पर्वत श्रेणीके सहारे-सहारे दिलेरखां पुरन्दरकी ओर बढ़ा और पुरन्दर-के निचले भाग माचीको जा घेरा। दिलेरखांकी खाइयां अब किलेके उत्तर-पूर्वी सिरेपर खड़कला बुर्जकी ओर आगे बढ़ने लगीं।

३० मईको दिन डूबनेसे कोई दो घण्टे पहिले दिलेरखाकी आज्ञा लिये बिना ही कुछ रुहेले सैनिकोने सफेद बुजपर हमला कर दिया। बडी घमासान लडाईके बाद बुरी तरह हारकर मराठे पीछे हटे और उन्होने काली बुजके पीछे आश्रय लिया। परन्तु दो दिन बाद उन्हे वहासे पीछे हटना पडा। इस प्रकार नीचे माची किलेके पाँच बुज और एक कठघरेपर मुगलोका अधिकार हो गया। अब पुरन्दर किलेका पतन भी सुस्पष्ट देख पडने लगा।

घेरेके आरम्भम ही ५,००० अफगानो और अन्य जातियोंके दूसरे कई सैनिकोको लेकर जब दिलेरखाँ पहाडीपर चढनेका प्रयत्न करने लगा, तब पुरन्दरके वीर किलेदार मुरारजी बाजी प्रभुने ७०० चुने हुए सैनिकोंके साथ दिलेरखाका सामना किया था। मुरार बाजी और उनके मावलोंने अनेक बहेलिये पैदलोके अतिरिक्त ५०० पठानोको भी मारा, और तब ६० निर्भीक वीरोका साथ ले मार-काट करता हुआ वह स्वय दिलेरखाँकी ओर बढता गया। मुरार बाजीके इस अपूव साहसको देखकर दिलेरखा मुग्ध हो गया और जीवन-दानके साथ ही उसे अपने अधीन एक उच्च पदपर नियुक्त करनेका वादा कर आत्मसमर्पण करनेके लिए उसे कहा। परन्तु अतिक्रुद्ध मुरारने इस प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया, और दिलेरखापर आक्रमण करनेके लिए वह बढा, तब तो उसपर बाण चलाकर दिलेरखाने उसे मार डाला। कुल मिलाकर कोई ३०० मावले मुरारके साथ उस दिन काम आए, और बाकी रहे वापस किलेको लौट गए।

२ जूनकी मुगल-विजयके बाद माची किलेका अधिकारसे निकल जाना अवश्यम्भावी देख पडने लगा, तब शिवाजीको विवश होकर अपना भावी काय-क्रम निश्चित करना पडा। मराठे अधिकारियोके सारे कुटुम्बी पुरन्दरमे ही आश्रय लिये बैठे थे। पुरन्दरपर मुगलोका अधिकार हो जाने के परिणामस्वरूप वे सब कैद हो जावेंगे और तब उनको अपमानित भी किया जावेगा। अतएव जयसिंहसे भेंटकर मुगलोके साथ सन्धि करनेका शिवाजीने निणय किया।

१४. पुरन्दरकी सन्धि, १६६७

११ जूनको प्रात कालमे ९ बजे पुरन्दरके नीचे अपने तम्बमे जब जयसिंह दरबार लगाए बैठा था, तब शिवाजी उसके पास पहुँचे। यथोचित सम्मानके साथ जयसिंहने उनका स्वागत किया।

स्थायी सन्धिकी शर्तोंको लेकर दोनो पक्षवालोमे उस दिन कोई आधी रात तक बातचीत चलती रही। "बहुत-कुछ वाद-विवादके बाद अन्तमे हम इस समझौते पर पहुँचे —(१) शिवाजीके किलोमे ४ लाख हूणकी वार्षिक आमदनीवाले २३ किले[1] मुगल साम्राज्यमे मिला दिए जावे। (२) राजगढके किलेको भी गिनते हुए एक लाख हूण की वार्षिक आमदनी-वाले कुल बारह किले इसी शर्तपर शिवाजीके अधिकारमे रहने दिए जावे कि वह मुगल साम्राज्यके प्रति राजभक्त बना रहे और साम्राज्यकी सेवा भी बराबर करता रहे।" अन्य राजाओ और सरदारोकी तरह उसे भी सम्राट्के शाही दरबारमे निरन्तर रहनेकी आवश्यकतासे मुक्त किए जानेके लिए शिवाजीने विशेपरूपसे प्रार्थना की। मुगल सम्राट्के दक्षिण आनेपर उसके दरबारमे उपस्थित होने एव दक्षिणके मुगल सूबेदारके साथ स्थायी रूपसे रखे जानेवाले उसके ५,००० सवारोके नेतृत्वके लिए अपने प्रति-निधिके रूपमे अपने पुत्रको भेजनेका शिवाजीने प्रस्ताव किया। इन ५,००० सवारोको तनख्वाह, आदिके चुकानेके लिए जागीर दी जानेका भी निश्चय हुआ।

इन सारे निश्चयोंके अतिरिक्त शिवाजीने अपनी विशेप शर्तके साथ मुगलोंसे एक और समझौता यह भी किया —"यदि कोंकणकी तराई मे ४ लाख हूणकी वार्षिक आयका प्रदेश मुगल सम्राट् मुझे दे दें, तथा शाही फरमान द्वारा मुझे यह पूरा आश्वासन दिया जावे कि मुगलो द्वारा अपेक्षित बीजापुर-विजयके बाद भी यह सारा प्रदेश मेरे ही अधिकारमे रहने दिया जावेगा, तो मै १३ वार्षिक किश्तोंमे ४० लाख हूण सम्राट्को भेंट करूँगा।" मराठा द्वारा समर्पित अन्य पाच किलोपर अधिकार करनेके लिए शिवाजीके आदमियोके साथ ही मुगल अधिकारी भी वहा भेजे गए।

---

१ पुरन्दरकी सन्धिके अनुसार निम्नलिखित मराठे किले मुगलोको सौंपे गए थे —

दक्षिणमे—(१) रुद्रमाल अथवा वज्रगढ, (२) पुरन्दर, (३) कोण्डाना, (४) रोहिडा, (५) लोहगढ, (६) ईसागढ, (७) तुग, (८) तिकोना, (९) कोण्डानाके पासवाला खडकला,

कोंकणमें—(१०) माहुली, (११) मुरजन, (१२) खरिदुग, (१३) भण्डर-दुग, (१४) तुलसीखुल, (१५) नरदुग, (१६) खाईगढ अथवा अकोला, (१७) मगगढ अर्थात् अतरा, (१८) काहेज, (१९) बसन्त, (२०) नग, (२१) करनाला, (२२) सोनगढ, (२३) मानगढ। *(आ० मा०, पृ० ९०५)*।

१५. आगरामें शिवाजीकी औरंगजेबसे भेंट, १६६६

बीजापुरकी चढाईका अन्त हो जानेके बाद शिवाजीको मुगल दरबार मे भेजनेका उत्तरदायित्व जयसिंहने लिया था। अतएव शिवाजीको बडे बडे पुरस्कारोको आशा देकर फुसलाया और आगरा जानेके लिए उसे तैयार करनेके हेतु हजारो साधनोमे काम लिया'। उत्तरी भारत जानेपर अपनी अनुपस्थितिमे अपने इस दक्षिणी राज्यके शासनका जो प्रबन्ध शिवाजीने किया उससे उनकी दूरदर्शिता और शासन-सगठनकी शक्तिका ठीक-ठीक पता लगता है। अपनी अनुपस्थितिमे अपने स्थानीय प्रतिनिधिको वहाके शासन सम्बन्धी पूरे-पूरे अधिकार दे दिए गए थे, जिसके फलस्वरूप उसे बारम्बार शिवाजीकी आज्ञा लेने या निर्देश प्राप्त करते रहनेकी आवश्यकता न पडे। अपनी माँ जीजाबाईको राज्यका अभिभावक बनाकर वहाँकी ऊपरी देख-रेखका काम उन्हे सौपा। तब ५ मार्च १६६६को शिवाजी अपने ज्येष्ठ पुत्र शम्भाजीको साथ लेकर उत्तरी भारतकी यात्रापर चल पडे। कुछ विश्वस्त सरदार और १,००० शरीर-रक्षक सैनिक भी उनके साथ थे। इन दिनो सम्राट् औरगजेबका शाही दरबार आगरामे ही भरता था, एव ११ मई १६६६को शिवाजी आगरा नगरसे केवल एक ही मजिल की दूरी तक जा पहुँचे।

१२ मईके दिन ही शिवाजीके शाही दरबारमे उपस्थित होनेका निश्चय हुआ था। चान्द्र तिथि गणनाके अनुसार औरगजेबकी ५०वी वर्ष गाठका उत्सव भी उसी दिन पडता था। अतएव उस उत्सवके उपलक्षमे आगरेका किला बहुत ही सजाया गया था। दस मराठा अधिकारियो और अपने पुत्र शम्भाजीके साथ शिवाजीको कुँअर रामसिह दीवान खासमे लिवा ले आया। मराठा राजाकी ओरसे बादशाहको १,००० सोनेकी मुहरे नजर की गई और न्यौछावरके लिए ५,००० रुपये भेट किए गए। लेकिन बादशाहने शिवाजीकी सलामके जवाबमे एक बात भी नही कही। तब मन्त्रीने शिवाजीको तख्तके सामने ले जाकर उन्हे पाच-हजारी मनसब-दाराकी कतारमे खडा कर दिया। दरबारका काम चलने लगा, मानो सब कोई शिवाजीकी बात ही भूल गए। यह हुआ शिवाजीका दूसरा अपमान।

कितना आदर और सत्कार पानेकी आशासे शिवाजी आगरा आए थे, और उन सब आशाओका यह अन्त एव परिणाम था। दरबारमे आनेसे

पहले ही उनके मनमे दु ख और सदेह होने लग गए थे। पहली बात तो यह थी कि आगरेमे बाहर आकर किसी-बडे-उमरावने उनका स्वागत नही किया। सिफ कुँअर रामसिंह (ढाई हजारी मनसबदार) और मुख-लिसखा (डेढ हजारी मनसबदार) मध्यम श्रेणीके ये दो उमराव कुछ ही दूर बढ कर शिवाजीको अपने साथ लिवा लाए थे। दरबारमे भी उन्हे पाँच-हजारी मनसबदारोम खडा किया गया।

उसके बाद सालगिरहके उत्सवके पान सब उमरावोको दिए गए, शिवाजीको भी पान मिला। तब इस जलसेकी खिलअतें और सिरोपाव सिफ शाहजादो, वजीर जाफरखा और महाराजा जसवन्तसिंहको (जोधपुर) दिए गए, शिवाजीको खिलअत नही मिली। उधर घण्टे भरमे दरबारमे खडे रहनेके कारण शिवाजी थक गए और अब इस तीसरे अपमानको वे बरदाश्त नही कर सके। वे शोकाकुल होकर गुस्सेसे लाल हो गए, उनकी आखें डबडबा आई। यह औरगजेबकी नजरसे छिपा न रहा, उसने रामसिंहसे कहा—"शिवाको पूछो कि उसकी तबियत कैसी है ?" कुँअर शिवाजीके पास आया, तब शिवाजी कहने लगा "तुमने देखा है, तुम्हारे बापने देखा है, तुम्हारे बादशाहने भी देखा है, कहो क्या मै ऐसा आदमी हूँ कि जान-बूझकर मुझे यो खडा रखा जावे ? मै तुम्हारा मनसब छोडता हूँ। यदि खडा ही रखना था तो ठीक स्थानपर खडा करते।" तब वहीसे एकाएक मुडकर बादशाहकी तरफ पीठ किए शिवाजी चल पडे। रामसिंह ने शिवाजीका हाथ पकडा पर वे हाथ भी छुडाकर चले और जाकर एक ओर बैठ गए। रामसिंहने वहा जाकर उन्हे फिर समझाया, परन्तु शिवाजी ने एक न सुनी, वह कहने लगा,—"मेरी मौत आई है, या तो तुम मुझे मारोगे या मैं आत्मघात कर लूँगा। मेरा सिर काटकर ले जाना चाहो तो तुम ले जाओ, मैं तो बादशाहकी सेवामे अब नही आता"। जब शिवाजी ने एक न मानी तो रामसिंहने आकर बादशाहकी सेवामे सब हाल अर्ज किया। तब बादशाहने मुल्तफितखां, आकिलखां और मुखलिसखाँको हुक्म दिया कि "तुम जाकर शिवाको दिलासा दो और सतुष्ट कर उसे ले आओ"। शिवाजीने जवाब दिया—'बादशाहने मुझे जान बूझकर जस-वन्तसिंहसे नीचे खडा किया है, इसलिए मैं सिरोपाव नही पहनता"। तब उन उमरावोने जाकर बादशाहसे यह बात अर्ज की। बादशाहने हुक्म दिया—"कुँअर! अभी तो तुम उसको अपने साथ ले जाओ और डेरेपर ले जाकर शान्त करो"। रामसिंह शिवाजीको लेकर डेरे आया और बहुत

कुछ समझाया, परन्तु उन्होने फिर भी एक न मानी। एक आध घडी अपने पास रखकर रामसिंहने उन्हे उनके डेरेपर भेज दिया।

उधर बादशाहकी सेवामे कितने ही उमराव ऐसे थे जो शिवाजीको चाहते न थे। उन्होने बादशाहसे अर्ज की—"शिवाजीने बेअदबी की और हुजूर उसे दर-गुजर करते हैं।" सैयद मुर्तजाखाने कहा—"वह तो हैवान है, सिरोपाव आज नही पहना तो कल पहनेगा। केवल मिर्जा राजाका ही खयाल है, इसकी तो कोई चिन्ता नही।"

सालगिरहके दरबारके बाद दो एक दिन तक सबको उम्मीद थी कि शिवाजी शान्त होकर फिर दरबारमे आवेगा, अपनी बेअदबीके लिए क्षमा मागेगा और खिलअत पहनकर देशको लौट जानेके लिए रुखसतके लिए अर्ज करेगा लेकिन शिवाजीने दरबारमे जानेसे बिलकुल इन्कार कर दिया, सिर्फ अपने पुत्र शम्भाजीको रामसिंहके साथ भेजा।

दूसरी तरफ बेगम साहिबा, जयसिंहके प्रतिद्वन्दी जसवन्तसिंह और दो एक उमरावोने बादशाहकी सेवामें अर्ज की कि "शिवाजी एक छोटा भूमिया, गँवार आदमी है। उसने खुले दरबारमे हुजूरके सामने इतनी गुस्ताखी की। आप क्यो सब बरदाश्त करते है? अगर उसको सजा नही दी जावेगी तो और भूमिया ऐसा ही बेअदबी करेंगे।" यह सब सुनते-सुनते अन्तमे बादशाहको भी यही ठीक जान पडा कि या तो शिवाजीको मरवा डाले या कैद कर दे। शिवाजीको मारनेका हुक्म देनेसे पहले बादशाहने जयसिंहको लिखवाकर यह पुछवाया कि आगरा भेजते समय क्या क्या शपथ-सौगन्दे खाकर उसने शिवाजीको तसल्ली दी थी।

मिर्जा राजा जयसिंह उस समय दक्षिणमे था, और उसका उत्तर आनेमे काफी समय लगेगा, यह खयाल कर औरगजेबने हुक्म दिया कि तब तकके लिए शिवाजीको आगरेके किलेके किलेदार राद अन्दाजखाको सौप दिया जावे। यह रामसिंहको मजूर नही था। उसने जाकर मन्त्री आमिनखासे कहा,—"मेरे पिताके कौलपर शिवाजी आगरा आए है। मै उनकी जानका जिम्मेदार हूँ। बादशाहको अर्ज कीजियेगा कि पहले हमको मार डाले, मेरे मरनेके बाद जो आप चाहे शिवाजीके साथ कर।" यह सब सुनकर औरगजेबने शिवाजीको रामसिंहके ही सिपुर्द कर दिया, और रामसिंहने मुचलका लिखकर बादशाहकी सेवामे पेश कर दिया कि यदि शिवाजी भाग जाय या आत्मघात कर डाले तो उसके लिए रामसिंह जवाबदार होगा। परन्तु इतनेसे भी बादशाहको सन्तोष न हुआ।

आगरा शहरके कोतवाल सिद्दी फौलादखांने शाही हुक्मसे शिवाजीके डेरेके चारो तरफ तोपें रखवाकर सरकारी फौजें बैठा दी। डेरेके अन्दर भी आम्बेरी सेनाके तीन-चार अफसरो और कछवाहो फौजोका पहरा लगता था। मराठा राजा सचमुच कैद हो गया, अब उसका घरसे निकलना भी बन्द हो गया।

पहले तो शिवाजीको उम्मीद थी कि वजीर जाफरखा और दूसरे बडे दरबारियोको रुपया देकर वह अपना कुसूर माफ करवा लेंग, और इसी कारण बादशाहसे सिफारिश करनेके लिए शिवाजीने उनकी मिनतें भी की। परन्तु अब तक शिवाजीका सूरत बन्दर लूटना और अपने मामा शायस्ताखांका शिवाजीके हाथो घायल होना औरगजेबने भूला न था, उसने किसी की भी कोई बात न सुनी।

शिवाजीने यह भी अर्ज करवाई कि "अगर बादशाह मुझको छोड देगे तो मैं देश पहुँचकर अपने अधिकारके सारे किले बादशाही अफसरोको सौंप दूँगा। मेरा दक्षिण जाना जरूरी है, क्योकि मेरे किलेदार सिर्फ मेरे खतको पढकर ही मेरा हुक्म न मानेंगे।" लेकिन औरगजेब ऐसी बातोसे भुलावेमे आनेवाला न था। बादशाही दरबारमे एक बार यह भी निश्चय हुआ कि शिवाजीको रामसिहकी अधीनतामे नियुक्तकर काबुल भेज दें, परन्तु बादमे यह निश्चय भी रद्द ही रहा।

अन्तमे हताश होकर शिवाजीने औरगजेबकी सेवामे एक अर्जी पेश की कि "यदि आज्ञा मिले तो फकीर होकर मैं किसी तीर्थमे अपना बाकी जीवन बिता दू"। औरगजेबने कुटिल हँसी हँसकर जवाब दिया—"बहुत अच्छा! फकीर होकर प्रयागके किलेमे रहो, तुम्हे वहा भेज देगे, यह बहुत बडा पुण्य तीर्थ है। वहा मेरा सूबेदार बहादुरखाँ तुमको बहुत हिफाजतसे रखेगा।"

शाही दरबारमे शिवाजीके पहुँचनेका यह परिणाम जयसिहके लिए सर्वथा अनपेक्षित ही था। आगरामे होनेवाली इन घटनाओका विवरण सुनकर जयसिह बडी ही दुविधामे पड गया। शाही दरबारमे अपने प्रतिनिधि, अपने ज्येष्ठ पुत्र कुँअर रामसिहको बारम्बार लिखकर उसे वह ताकीद करने लगा कि उन दोनो राजपूत पिता और पुत्र द्वारा शपथोके साथ शिवाजीको दिए गए आश्वासन कही झूठे न हो जावे, तथा इस बातका भी पूरा पूरा प्रयत्न किया जावे कि शिवाजीका जीवन किसी प्रकार सकटमे न पड जावे।

१६ शिवाजीका आगरासे निकल भागना

अपने छुटकारेके लिए शिवाजीने अब अपनी ही सूझ-बूझका सहारा लिया। जो अन्य मराठा सरदार और सैनिक उनके साथ दक्षिणसे आए थे, उन्हें वापस भेज देनेके लिए उसे आज्ञा मिल गई। अपने इन अनुयायियोंकी सुरक्षाकी चिन्ता से मुक्त होकर शिवाजी अपने उद्धारके लिए तरकीब ढूँढने लगे। बीमार होनेका ढोंग कर वे प्रतिदिन सन्ध्या-समय अपने निवास-स्थानसे ब्राह्मणों, सन्यासियों, भिक्षुकों और राजदरबारियोंके लिए बड़े-बड़े टोकरोंमें रखकर मिठाई भेजने लगे। दो कहारोंके कन्धोंपर रखे हुए एक मोटे बाँसके डंडेसे लटकाकर हर एक टोकरेको ले जाते थे। प्रारम्भमें तो वहाँके पहरेदार प्रत्येक टोकरेकी पूरी-पूरी देख भाल करते थे। परन्तु कुछ दिन बाद बिना किसी जाँच पड़तालके ही ये टोकरे वहाँसे निकलने लगे। अब तक शिवाजी इसी अवसरकी ताकमें था। १९ अगस्त १६६६के दिन तीसरे पहर शिवाजीने अपने पहरेदारोंको कहला भेजा कि सख्त बीमारीके कारण वे बिस्तरमें पड़े हुए थे, अतएव वे उनको न छेड़ें। तब शिवाजीका अनौरस भाई, हीराजी फर्जन्द, जो देखनेमें बहुत-कुछ शिवाजी जैसा ही था, सारे शरीरपर चादर ओढ़कर शिवाजीकी खाटपर लेट गया। उस चादरसे बाहर केवल उसका दाहिना हाथ निकला हुआ था, जिसपर हीराजीने शिवाजीका सोनेका कंगन पहन लिया था। उधर शिवाजी और उनका पुत्र दो टोकरोंमें दबकर बैठ गए। सन्ध्याके बाद इन टोकरोंको बिना किसी रोक-टोकके उन पहरेदारोंके सामनेसे ही निकालकर वहाँसे बाहर ले गए। उनके आगे और पीछेके टोकरोंमें सच मुच ही मिठाई भरी हुई थी, जिससे पहरेदारोंको यत्किंचित् भी कोई आशंका नहीं हुई।

शहरसे बाहर एक निर्जन स्थानमें जब वे टोकरे पहुँच गए, तब उनको ढोनेवालोंको वहाँसे विदा कर दिया। फिर शिवाजी और उनके पुत्र उन टोकरोंमेंसे बाहर निकले और दोनोंने आगरासे ६ मीलकी दूरीपर स्थित एक गाँवका रास्ता लिया, जहाँपर उनका विश्वासी न्यायाधीश नीराजी रावजी घोड़ों सहित उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। एक जंगलमें पहुँचकर उन्होंने जल्दी-जल्दी सलाह की और तब वह दल दो टुकड़ियोंमें बँट गया। शिवाजी, उनके पुत्र शम्भाजी तथा उनके तीन अधिकारियों, नीराजी रावजी, दत्ता त्रिम्बक एवं रघुमित्र नामक नीचवंशीय मराठेने

हिन्दू सन्यासियोका-सा वेश कर अपने सारे जदनपर राख मल ली, और वे सब तत्परताके साथ मथुराकी ओर चल पडे। बाकी रहे मराठोने अपन घरकी राह ली।

उधर आगरामे उस सारी रात भर और दूसरे दिन प्रात कालम भी कुछ समय तक हीराजी शिवाजीके बिस्तरपर लेटा रहा। सवेरे पहरेदारो ने खिडकीसे झाँका और यह देखकर उन्हें सन्तोष हुआ कि शिवाजीका सोनेका कगन पहने कैदी सो रहा था और नौकर बैठा उसके पाँव दबा रहा था। इसके कुछ देर बाद हीराजी और वह नौकर वहासे बाहर निकले और फाटकपर पहरेवालोको ताकीद करते गए—"शोर कम करो। शिवाजी के सिरमे दर्द है। हम दवा लेने जाते हैं।" कुछ समयके बाद पहरेवालोको सन्देह होने लगा। तब तक चार घडी दिन बीत चुका था, फिर भी सदैव-की भाति शिवाजीसे भेंट करनेके लिए उस दिन कोई भी नही आया। भीतरसे कोई आवाज नही आ रही थी, किसीके चलने-फिरनेकी आहट भी नही मिलती थी। वे मन कमरेमे घुसे और देखा कि चिडिया उड गई थी और पिंजडा सूना पडा था। उन्होने दौडकर कोतवाल फौलादखाँको भौचक कर देनेवाला यह आश्चर्यजनक समाचार सुनाया। फौलादखाने बादशाहको इसकी सूचना दी और अपनी निरपराधता प्रमाणित करनेके लिए जादू-टोने द्वारा ही शिवाजीका यो भाग सकना सम्भव बताया। परन्तु शिवाजीको भागे तब तक २४ घण्टेसे भी अधिक समय बीत चुका था, जिससे उनका पीछा करनेवालोसे बच निकलनेके लिए उन्हे पूरा अवसर मिल गया। बादशाहको सन्देह हुआ कि शिवाजीके भागनेके इस षड्यन्त्रमे रामसिहका भी हाथ होगा, अतएव उस राजपूत कुँवरका शाही दरबारमे आना बन्द कर दिया और उसका मनसब तथा मानसिक वेतन घटाकर उसे दण्ड दिया।

राहमे अनेको कष्ट झेलते हुए बडी ही तेजीसे चलकर १२ सितम्बर १६६६ को शिवाजी सकुशल राजगढ पहुँचे। यो आगरासे लौटनेपर शिवाजीने देखा कि दक्षिणी भारतकी सारी राजनैतिक परिस्थिति ही पूर्णतया बदल गई थी। मराठोके विरुद्ध पहिले प्राप्त की गई अपनी उन सफलताओको अब पुन दुहराना मुगल सूबेदार जयसिहके लिए कदापि सम्भव नही रह गया था। कुछ माह बाद जयसिहको बदलकर शाहजादा मुअज्जम दक्षिणका सूबेदार नियुक्त किया गया, एव मई १६६७मे दक्षिणकी सूबे दारीका यह शासन-भार मुअज्जमको सौंपकर जयसिह उत्तरी भारतको

लौट पडा। किन्तु वयोवृद्ध, जीवन भरके अनवरत परिश्रमसे जर्जरित, निराशामे डूबे हुए, घरेलू चिन्ताओसे व्यथित और बीजापुरकी पिछली लडाईमे विफल होनेके कारण अपने सम्राट् द्वारा तिरस्कृत मिर्ज़ा राजा जयसिंह २८ अगस्त १६६७को बुरहानपुरमे ही मर गया।

आलसी एव शक्तिहीन मुअज्जम तथा शिवाजीसे मित्रता रखनेवाले जसवन्तके हाथोमे दक्षिणका शासन-प्रबन्ध चले जानेके फलस्वरूप मई १६६७के बाद शिवाजीको मुगलोकी ओरसे कोई भी डर नही रह गया। उधर घमण्डी रुहेला सेनानायक दिलेरखा, मुअज्जमके दाहिने हाथ तथा विश्वस्त सलाहकार महाराजा जसवन्तसिंहका खुले-आम अपमान करने लगा। तब तो कुछ समय तक मुगलोके इस दक्षिणी पडावमे आपसी गृह-युद्ध छिड गया, जिससे शिवाजीके विरुद्ध कोई भी कार्यवाही नही की जा सकी।

अपनी ओरसे मुगलोके साथ युद्ध छेडनेको शिवाजी स्वय उत्सुक न थे। आगरासे घर लौटनेके बाद उन्होने तीन वर्ष शान्तिपूर्वक बिताए और विरोधके लिए मुगलोको पुन उत्तेजित कर सकनेवाली हर बातको वे टालते रहे। अपने शासन प्रबन्धको सुसगठित करनेके लिए किलोकी मरम्मत कर उनमे आवश्यक युद्ध-सामग्री एकत्रित करने तथा पश्चिमी तटपर बीजापुर राज्य और जजीराके सिद्दियोको पराजित कर अपनी शक्ति बढानेके लिए शिवाजीने कुछ समय तक मुगलोके साथ शान्ति बनाए रखना ही ठीक समझा। शिवाजीने जसवन्तसिंहसे प्रार्थना की कि वह बीचमे पडकर उनके तथा मुगल साम्राज्यमे सन्धि करवा दे। उसने जसवन्तसिंहको लिखा—"मेरे सरक्षक मिर्जा राजा मर चुके है। आपकी सिफारिशपर यदि मुझे क्षमा प्रदान कर दी जावेगी तो शम्भूको शाहजादे की सेवामे भेज दूँगा। वह शाही मनसबदार बनकर मेरे सैनिकोके साथ आपकी आज्ञानुसार शाही सेवा करता रहेगा।"

शाहज़ादे मुअज्जम और जसवन्तसिंहने शिवाजीके इस प्रस्तावको सहर्ष स्वीकार कर शिवाजीके लिए औरगजेबसे सिफारिश की, जिसपर औरगजेब ने भी अपनी अनुमति दे दी। सन् १६६८ ई०के प्रारम्भमे औरगज़ेबने शिवाजीको राजा कहना स्वीकार कर लिया, किन्तु मराठो द्वारा समर्पित किलोमेसे चाकणके सिवाय दूसरा कोई किला उसे वापस नही लौटाया। इस प्रकार की गई यह सन्धि अगले दो वर्षों तक बराबर कायम रही।

अध्याय ११

शिवाजी

(१६७०–१६८०)

१. शिवाजीका मुगलोंसे विरोध और उनका अपने क़िलोंको वापिस जीत लेना

मुगलोंके साथ हुई इस नई सन्धिकी शर्तोंके अनुसार शिवाजीने अगस्त १६६८में प्रतापराव और नीराजी रावजीकी अधीनतामे एक मराठा सेना औरगाबाद भेजी। शम्भूजीको पुन पचहजारी मनसब दे दिया गया। मनसबकी जागीरें उसे बरारमे दी गईं। १६६७से लेकर १६६९ तकके इन तीन वर्षोंमे शिवाजी मुगलोंके आश्रित राजा बनकर बिलकुल ही शान्त रहे। बीजापुरके साथ भी उनके सम्बन्ध बडे शान्तिपूर्ण रहे। वास्तवमे इन तीन वर्षों तक शिवाजी बहुत ही व्यस्त थे। इस कालमे उन्होने बडी ही बुद्धिमानीके साथ सारी व्यवस्था बनाकर अपने राज्यके शासन-सगठनकी नीव बहुत गहरी और सुदृढ बना दी।

किन्तु दोनो ही पक्षवालोंके लिए यह सन्धि एक अल्पकालीन अस्थायी युद्ध-विराम मात्र थी। औरगजेबका सदैव अपने पुत्रोंके प्रति सन्देह बना रहता था। शिवाजी और मुअज्जमकी इस मित्रताको भी उसने अपने राज्य सिंहासनके लिए एक भावी खतरेका प्रारम्भ ही समझा। अतएव उसने शिवाजीको पकडने या कमसे कम उसके लडके और सेनापतिको कैद कर उन्हे धरोहरके रूपमे अपने अधिकारमे रखनेका बहुत गुप्त रूपसे दूसरी बार षड्यन्त्र किया। सन् १६६६ ई०मे शाही दरबारमे जानेके लिए

शिवाजीको उधार दिए गए एक लाख रुपए वसूल करनेके लिए बरारमे दी गई शिवाजीकी नई जागीरका कुछ भाग कुर्क कर औरंगजेबने पूरी कजूसी दिखाई। अपनी जागीरकी इस जब्तीका समाचार मिलनेपर सन् १६६९ ई०के अन्तमे शिवाजी पुन बागी बनकर मुगलोसे लडनेको तत्पर हुए।

शिवाजीने पूरी शक्तिके साथ मुगल साम्राज्यपर अपने आक्रमण आरम्भ किए और उन्हे तत्काल सफलता भी मिली। दूर-दूर तक धावा करनेवाले उनके दल मुगल प्रदेशको लूटने लगे। पुरन्दरकी सन्धिके अनुसार औरंगजेबको समर्पित अपने अनेको किलोको उन्होने एक-एक कर वापिस ले लिया। ४ फरवरी १६७०को राजपूत किलेदार उदयभानको हराकर कोण्डाना किला छीन लेना उनकी सबसे अधिक महत्त्वकी सफलता थी। उस किलेसे पूर्णतया परिचित कुछ कोली माग-दशकोकी सहायतासे एक अधेरी रातमे तानाजी मालसुरे ३०० चुने हुए अपने मावले पैदलोके साथ कल्याण-दरवाजेके पासकी कम ढालवाली पहाडीकी ओरसे रस्सियोंके सहारे किलेकी दीवाल फाद गया। किलेकी सेना जी-जानसे लडी, परन्तु "हर हर महादेव"की रण-हुकार करते हुए मावलोने शत्रु सेनाम सवत्र प्रलय मचा दी। दोनो विरोधी सेनाओंके नेताओंने एक-दूसरेको ललकारा और दोनो ही अकेले द्वन्द्व-युद्ध करते हुए कट मरे। १,२०० राजपूत उस दिन काम आए। पहाडीपरसे नीचे उतरकर भाग निकलनेका विफल प्रयत्न करते हुए बहुतसे राजपूत मर गए। सिंहके समान वीर तानाजीकी स्मृतिमे शिवाजीने उस किलेका नाम 'सिंहगढ' रक्खा।

अप्रेल १६७०के अन्त तक शिवाजीने अहमदनगर, जुन्नर और परेण्डाके आसपासके ५१ गावोको भी लूट लिया था।

२ मुअज्जम और दिलेरमे विरोध

१६८०ई०के प्रारम्भिक छ महीनो तक दक्षिणके मुगल सूबेदार शाहआलम और उसके प्रमुख सेनापति दिलेरखाम पारस्परिक विरोध चलता रहा। दिलेरखाँको इस बातका पूरा-पूरा डर था कि यदि वह मुअज्जमकी सेवामे उपस्थित हुआ तो वह कैद कर लिया जावेगा या छलसे उसकी हत्या कर दी जावेगी। दिलेरकी इस अवज्ञाकारितासे क्रुद्ध होकर मुअज्जम तथा उसके प्रमुख सलाहकार जसवन्तसिहने दिलेरखाके विद्रोही हो जाने

की शिकायत औरंगजेबसे की। उधर दिलेरखांने पहिले ही औरंगजेबको मुअज्ज़मके विरुद्ध लिख भेजा था और यह भी सूचना दी थी कि मुअज्जम शिवाजीसे मिला हुआ था। मुअज्जमके अपनी मनमानी ही करने और शासन-कार्य सम्बन्धी शाही आज्ञाओंका पालन न करनेके कारण इन दिनों औरंगजेब अत्यधिक चिन्तित हो गया था। दक्षिणकी सवसाधारण जनताको इस वातका पूर्ण विश्वास हो गया था कि मराठोंकी सहायतासे मुअज्जम अपने पिताके राज्य सिंहासनपर अधिकार करनेका षड्यन्त्र कर रहा था, और इसी कारण वह अकर्मण्य बैठा मराठोंके विरुद्ध कोई भी कार्यवाही नहीं कर रहा था, जिससे शिवाजीका साहस बढ गया और प्रारम्भसे ही मुगल प्रदेशोंपर मराठोंके आक्रमण सफल होते जा रहे थे।

दक्षिणमें अपनी परिस्थिति सर्वथा असहनीय देखकर शाहआलमकी अनुमति प्राप्त किए बिना ही दिलेरखां शाही दरबारको लौट जानेके लिए बहुत ही व्यग्र हो गया। गुजरातका सूबेदार बहादुरखाँ दिलेरका समर्थक बन गया और अब दिलेरकी स्वामिभक्ति तथा उसकी पिछली सेवाओंकी भरसक प्रशंसासे भरा हुआ एक पत्र औरंगजेबको लिखा और साथ ही यह भी सिफारिश की कि उसकी ही अधीनतामें दिलेरको काठियावाड़का फौजदार नियुक्त किया जावे। बादशाहने बहादुरखांका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इधर अपने पिताका आदेश पाकर मुअज्जमने भी तुरन्त ही उसका पालन किया और सितम्बर १६७०के अन्त तक वह वापस औरंगाबादको लौट आया।

इन आपसी झगडोंके कारण मुगलोंकी सैनिक शक्ति बहुत ही कुंठित हो गई थी। इस सुवर्ण अवसरसे शिवाजीने पूरा-पूरा लाभ उठाया। मार्च १६७०में सूरतके अंग्रेज व्यापारियोंने लिखा—"पहिले शिवाजी चोरकी तरह चुप चाप जल्दी-जल्दी चलते थे परन्तु अब उनकी हालत बदल गई है। तीस हजार सैनिकोंकी एक बडी फौजको साथ लिये वे देशपर देश जीतते हुए आगे बढते जाते हैं, और शाहजादेके इतने नजदीक होते हुए भी वे उसकी कोई परवाह नहीं करते है।" ३ अक्तूबर १६७०को शिवाजीने दूसरी बार सूरत लूटा।

३. सूरतका दूसरी बार लूटा जाना

२ अक्तूबरको बारम्बार सूरत समाचार पहुँचने लगे कि १५,०० घुडसवारों और पैदलोंको लेकर शिवाजी सूरतसे २० मीलकी दूरीपर आ

पहुँचे हैं। शहरके सारे भारतीय व्यापारी और सरकारी कर्मचारी एक रात और एक दिन पहले ही वहांसे भाग चुके थे। ३ अक्तूबरको शिवाजीने नगरपर आक्रमण किया। औरंगजेबकी आज्ञासे इस समय तक नगरके चारों ओर नई शहरपनाह बन गई थी। कुछ समय तक सामना करनेके बाद शहरके रक्षक भी किलेकी ओर भाग गए। तब अंग्रेज डच और फरासीसी व्यापारियों की कोठियाँ, तुर्की और ईरानी व्यापारियोंकी बडी नई सराय, और अंग्रेजों तथा फरासीसियोंके मकानोंके बीचमें स्थित तातार सराय, जिसमें मक्काकी तीर्थ-यात्रासे कुछ ही दिन पहिले लौटा हुआ काशगरका सिंहासनच्युत बादशाह अब्दुल्लाखाँ रहता था, आदि कुछ स्थानोंको छोडकर मराठोंने सारे शहरपर अधिकार कर लिया। आक्रमणकारियोंको बहुमूल्य उपहार देकर फरासीसियोंने तो उन्हें अपने पक्षमें कर लिया। अंग्रेज व्यापारियोंको कोठी खुले मकानमें थी, फिर भी स्टेशनमास्टर और ५० नौ सैनिकोंने डटकर उसकी रक्षा की।

तातारोंने दिन भर बहादुरीसे मराठोंका सामना किया, परन्तु जब सफलतापूर्वक अधिक विरोध कर सकना असम्भव देख पडा तो अपने बादशाहको साथ लेकर रात्रिके समय वे किलेमें जा पहुँचे। उनके उस मकान और उनकी उस सारी बहुमूल्य सामग्रीको लुटेरोंसे बचानेवाला वहाँ कोई भी नहीं रह गया। उधर नई सरायमें तुर्कोंने सफलतापूर्वक अपनी रक्षा की, और आक्रमणकारियोंको बहुत कुछ हानि भी पहुँचाई। मराठोंने सुविधापूर्वक शहरके बडे-बडे मकान लूटे और लगभग आधे शहरको जलाकर राख कर दिया। ५ अक्तूबरको ही वे सूरतसे वापिस लौटे।

सरकारी जाँच द्वारा निश्चित रूपसे ज्ञात हुआ कि शिवाजी कुल मिलाकर कोई ६६ लाख रुपयेका माल सूरतसे लूट ले गए थे। परन्तु मराठों द्वारा लूटे गए मालके मूल्यके इस आँकसे ही सूरतकी वास्तविक हानिका पूरा पता नहीं लग सकता था। भारतके इस सबसे धनवान् बन्दरगाहका सारा व्यापार ही इस लूटके फलस्वरूप बहुत-कुछ चौपट हो गया। शिवाजीके वापस लौट जानेके कई वर्ष बाद तक मराठा सेनाके उस ओर कुछ ही पडावोंकी दूरी तक आ जानेकी सूचना पाकर या उनके आक्रमणकी सम्भावनाके झूठे समाचारोंके फैलने मात्रसे ही यदा-कदा सूरत नगर भयसे आतंकित हो उठता था। ऐसे अवसरपर हर बार व्यापारी जल्दी-जल्दी अपना सामान जहाजोंपर रख आते थे, नागरिक

गांवोमे भाग जाते थे और युरोपीय व्यापारी शीघ्रताके साथ सुवाली पहुँचकर वहाँ आश्रय लेते थे। यो मराठोके आक्रमण तथा लूटके आतक और त्रासके कारण सूरतसे सारा विदेशी व्यापार पूर्णतया लोप हो गया।

४. डिण्डोरीमे दाऊदखाँको हराकर (१७ अक्तूबर, १६७०) शिवाजीका बरारपर आक्रमण करना

सूरतको यो दूसरी बार लूटकर शिवाजी अब बगलाना पहुँचे और मुल्हेरके किलेकी तलहटी मे बसे हुए गावोको लूटा। मराठा आक्रमणकारियोका सामना करनेके लिए दाऊदखाको बुरहानपुर भेजा गया था, एव वह बगलानाने नासिक जानेवाले मार्गके पहाडी भागमे स्थित चाँदोर नामक नगरमें जा पहुँचा। १६ अक्तूबरके बादकी आधी रातके समय उसके गुप्तचरोंने दाऊदखांको खबर दी कि शिवाजी पहले ही उस घाटीमेसे गुज़रकर अपनी आधी सेनाके साथ शीघ्रतापूवक नासिककी ओर जा रहा था और बाकी रही आधी सेना घाटीकी राह रोककर पीछे रह जानेवालोको इकट्ठा कर रही थी। तब तो उस रातके समय ही दाऊदखांने एकदम ससैन्य प्रस्थान किया। इखलासखाँ मियाना मुगल सेनाके हरोलका नेतृत्व कर रहा था। सूर्योदयके समय शत्रु-सेना उसे देख पडी। अपनी सारी सेनाके आ पहुँचनेके लिए भी न ठहरकर उसने शत्रुओपर दुस्साहसपूण आक्रमण कर दिया। इखलासखाँ बहुत शीघ्र घायल होकर घोडेसे गिर पडा। कुछ समय बाद बहुतसे सैनिकोके साथ दाऊदखाँ भी वहाँ आ पहुँचा, जिससे मुगलोंके पक्षको बल प्राप्त हुआ। कई घण्टो तक वहाँ डटकर घमासान युद्ध होता रहा। 'दक्षिणी बारगियोके समान मुगल सेनाके चारो ओर मडरा-मडराकर' मराठे दूरसे ही लडते रहे। मुगल सेनाके बुन्देले पैदल सैनिकोने अपनी बन्दूकें और तोपें चला-चलाकर मराठोको अपने पास नही आने दिया। दोपहरमे युद्ध कुछ थम-सा गया। सध्याके समय मराठोने पुन हमला किया परन्तु मुगलोकी गोलाबारीसे विवश होकर उन्हें पीछे हटना पडा। हेमन्त ऋतुकी वह ठण्डी रात मुगलोने खुलेमे ही बिताई। अपने पडावके चारो ओर खाइयाँ खोदकर मुगल मृत सैनिकोको गाडने और घायलोकी सेवा शुश्रूषामे लगे रहे। मराठोने मुगलोका पुन सामना नही किया और वे कोकणको वापस लौट गए। एक सप्ताह बाद पेशवाने नासिक जिलेमे स्थित त्रिम्बक किलेको जीत लिया।

डिंडोरीके इस युद्धका परिणाम यह हुआ कि उसके बाद एक माह तक मुगलोसे कुछ भी करते धरते न बन पडा। नवम्बर माहमे दाऊदखाँ अहमदनगर चला गया। दिसम्बर माहके प्रारम्भमे स्वय शिवाजीके नेतृत्वमे एक मराठा सेनाने राहमे अहिवन्त तथा बगलानाके तीन और किलोको जीतनेके बाद खानदेशपर आक्रमण कर दिया। तेजीसे आगे बढ़कर शिवाजीने बुरहानपुरसे केवल दो मीलकी ही दूरीपर स्थित बहादुरपुरा गाँवको लूटा। और जब वहाँ उनके पहुँच जानेका खयाल तक किसीको नही हो सकता था, तब बरारमे पहुँचकर शिवाजीने कारजाके धन धान्यपूर्ण सुसमृद्ध नगरको बुरी तरह लूटा। महीन कपडा, सोना-चाँदी, आदि कुल मिलाकर कोई एक करोड रुपयेका माल वहाँ लूटमे मराठोके हाथ लगा, जिसे चार हजार बैलो और गधोपर लादकर वे ले गए।

जिस समय शिवाजी बरारमे इस प्रकार कारजाको लूट रहे थे, उसी समय मोरो त्रिम्बक पिंगलेकी अधीनतामे मराठोका एक दल पश्चिमी खानदेश और बगलानाको लूट रहा था। शिवाजीके बरारसे लौटनेपर मराठोका यह दूसरा दल भी साल्हेरके पास उनके साथ आ मिला। तब मराठोकी इस सम्मिलित सेनाने साल्हेरके किलेका घेरा डाला। दाऊदखा ससैन्य मुल्हेर तक जा पहुँचा था, परन्तु वहासे आगे वह नही बढ सका, क्योकि उस दिन तब तक रात पड गई थी और दाऊदखाकी सेना भी बहुत पिछड गई थी। उधर समयपर दाऊदखाके आवश्यक सहायता न दे सकनेके फलस्वरूप ५ जनवरी १६७१ ई० के दिन साल्हेर किलेपर शिवाजीका अधिकार हो गया।

५ मुगल सेनापतियोंकी चढ़ाइयाँ, १६७१-७२

मराठोके हाथो इन पराजयो और विफलताओका विवरण सुनकर औरंगजेबने पूर्णतया जान लिया कि दक्षिणकी परिस्थिति सचमुच ही बहुत गम्भीर हो गई थी। उसने महाबतखाको दक्षिणकी सारी मुगल सेनाओका सर्वोच्च सेनापति नियुक्त किया और जनवरी १६७१मे बहुत अधिक सैनिक, धन और धान्य तथा युद्ध सामग्री बगलाना भेजे।

जनवरी १६७१के अन्तमे महाबतखाँ चादोरके पास दाऊदखाके साथ सम्मिलित हो गया। दोनोने मिलकर शिवाजी द्वारा जीते हुए किले अहिवन्तका घेरा डाला। एक माहके बाद वहाँकी सेनाने आत्मसमपण कर

दिया। अहिवन्तकी रक्षाके लिए एक सेना छोडकर महावतखांने तीन माह नासिकमे विताए। फिर वर्षा ऋतुके (जूनसे सितम्बर) माह काटनेके लिए वह अहमदनगरमे २० मील पश्चिममे पारनेर नामक स्थानपर चला गया।

इस चढाईमे महावतखाको विशेष सफलता नही मिली और वह बहुत समय तक चुपचाप ही बैठा रहा, जिस कारण औरगजेब महावतखासे बहुत ही असन्तुष्ट हो गया और उसको यह भी सन्देह होने लगा कि कही महावतखांने शिवाजीके साथ कोई गुप्त समझौता तो नही कर लिया था। अतएव आगामी जाडेके दिनोमे औरगजेबने बहादुरखां और दिलेरखांको भी दक्षिण भेजा। वे गुजरातसे बगलाना आए और उन्होने साल्हेरके किलेका घेरा डाला, जो तब भी मराठोके ही अधिकारमे था। इखलासखा मियाना, राव अमरसिंह चन्द्रावत और अन्य सेनानायकोको यह घेरा चलाए रखनेके लिए वहा छोडकर वे अहमदनगरकी ओर बढे। दूर-दूर तक धावा करनेवाले सैनिकोके एक दलको लेकर दिलेरखांने दिसम्बर १६७१के अन्तमे पूनापर पुन अधिकार कर लिया और नौ बरससे अधिक आयुवाले वहांके सारे निवासियोको तलवारकी धार उतार दिया। परन्तु उधर प्रतापरावके नेतृत्वमे मराठोकी एक बडी सेनाने साल्हेरका घेरा डाले वहा पडी हुई मुगल सेनापर आक्रमण किया। मुगल सेनाने डट कर युद्ध किया। किन्तु अन्तमे मराठोने घेरेके उस सारे पडावपर पूर्णत अधिकार कर लिया। इसके कुछ समय बाद मोरो पन्तने मुल्हेर भी जीत लिया। जनवरी माहके अन्त तथा फरवरी १६७२का पहला हफ्ता बीतते-बीतते यह सब हो गया। इन सफलताओके फलस्वरूप शिवाजीकी प्रतिष्ठा बहुत बढ गई और उनकी शक्तिमे लोगोका अगाध विश्वास हो गया।

६. मराठोका कोली प्रदेशपर अधिकार कर सूरत नगरसे चौथ मागना, १६७२

५ जून १६७२को मोरो त्रिम्बक पिंगलेके नेतृत्वमे मराठोकी एक सेनाने कोली राजा विक्रमशाहकी राजधानी जव्हारपर अधिकार कर लिया, वहा १७ लाख रुपयोका माल मराठोके हाथ लगा। तब वहांसे उत्तरकी ओर आगे बढकर जुलाईके पहिले सप्ताहमे रामनगरके सिसोदिया राज्यको भी उन्होने अपने अधिकारमे कर लिया।

रामनगर और जव्हारपर उनका अधिकार हो जानेसे अब कल्याणसे सूरत जानेको मराठोंके लिए उत्तरी कोकणमे होता हुआ यह सीधा, सुरक्षित और सुगम्य रास्ता खुल गया था, जिससे सूरतके बन्दरगाहको दक्षिणकी ओरसे होनेवाले ऐसे आक्रमणोसे किसी भी प्रकार बचा सकना सर्वथा असम्भव हो गया। अब सूरत नगरमे मराठोंके सम्भावित आक्रमणका आतंक फैल जाना प्रतिदिनकी एक साधारण बात हो गई।

रामनगरके पासके पडावसे मोरो त्रिम्बक पिंगलेने एकके बाद दूसरा यो कुल तीन पत्र सूरतके अधिकारी तथा वहाके प्रमुख व्यापारियोको भेजे और उनसे सूरतकी चौथके चार लाख रुपयोकी माँग की तथा रुपये न देनेकी हालतमे सूरतपर चढाई करनेकी भी धमकी दी।

कोली प्रदेशके अपने इस पडावसे चलकर एक बडी सेनाके साथ मोरो त्रिम्बकने पश्चिमी घाटको सरलतासे पार किया और जुलाई १६७२का महीना आधा बीतते-बीतते वह नासिक जिलेमे जा पहुँचा और उस जिले के उत्तरी एव दक्षिणी परगनोके मुगल थानेदार जादवराव एव सिद्दी हलालको हराकर उस जिलेको लूटा। उनकी इस सफलताके लिए जब बहादुरखाने इन दोनो थानेदारोको खूब फटकारा तब क्रुद्ध होकर वे दोना मराठोसे जा मिले।

७ १६७३मे मराठोंकी हलचलें

अगले नवम्बरमे शिवाजीने अपने घुडसवारोको बरार और तेलगानेपर आकस्मिक धावा करनेके लिए भेजा। उनका पीछा कर उनको रोकनेके प्रयत्नमे मुगल सेनापति विफल हुआ, तथापि इस बार मुगलोने प्रशसनीय कार्यकारिता दिखाई, जिससे सन् १६७० ई०के प्रथम आक्रमणसे विपरीत खानदेश और बरारका यह मराठा आक्रमण पूरी तरह विफल हुआ।

सन् १६७३मे चमारगुण्डासे आठ मील दक्षिणमे भीमा नदीके उत्तरी तटपर स्थित पेडगावमे बहादुरखाने अपना पडाव डाला। अगले कई वर्षों तक बहादुरखाकी सेनाके वही बने रहनेसे धीरे-धीरे उस छावनीके आस पास एक किला बन गया और एक शहर भी बस गया। बादशाहकी आज्ञा लेकर बहादुरखाँने उसका नाम बहादुरगढ रख दिया।

पेडगाव एक बहुत ही सामरिक महत्त्ववाले स्थानपर बसा हुआ है। पूनाके पूर्वमे बडी दूर तक गए हुए लम्बे पहाडके बाद फैले हुए समतल

मैदानमे ही यह कस्बा बसा हुआ है। उत्तरी पूना जिलेमे मूला और भीमा नदीकी घाटियोकी रक्षा करनेके हेतु इस पवत श्रेणीके उत्तरमे, तथा उस जिलेके दक्षिणी भागोमे नीरा और बारामती नदियाकी घाटियोकी देख-भाल करनेके लिए उन पहाडियोके दक्षिणमे इच्छानुसार ससैन्य घूमनेके लिए यह स्थान बहुत ही सुविधापूर्ण था।

इसी वष शिवाजीने प्रयत्न किया था कि घूस देकर जुन्नरके किले शिवनेरको अपने अधिकारमे कर लें। परन्तु वहाँका मुगल क़िलेदार अब्दुल अजीजखाँ, जो जन्मसे ब्राह्मण था और बादमे धम परिवतन कर मुसलमान हो गया था, औरगजेबका बहुत ही स्वामिभक्त तथा सम्मा-ननीय अधिकारी था, उसने शिवाजीके इस प्रयत्नको विफल कर दिया।

२४ नवम्बर १६७२को अली आदिलशाहकी मृत्यु हो गई और तब उसका चार बरसकी आयुवाला बेटा गद्दीपर बैठा, जिससे कुछ ही महीनो-मे बीजापुरका शासन पूणतया अस्तव्यस्त और शक्तिहीन हो गया। शिवाजीके लिए यह सुवर्ण अवसर था। रिश्वत देकर उन्होने ६ माच १६७३को दूसरी बार पन्हालापर अधिकार कर लिया और ऐसे ही साधनो द्वारा २७ जुलाईके दिन उन्होने सताराके पहाडी किलेको भी ले लिया। मई माहमे प्रतापराव गूजरकी अधीनतामे उनके सैनिक बीजापुरी कनाडा-के भीतरी भागो तकमे जा घुसे तथा वहाँ हुबली और अन्य समृद्धिपूण नगरोको लूटा, किन्तु बीजापुरी सेनापति बहलोलखाने उनका दृढतासे सामना किया जिससे वे आगे न बढ सके।

दशहरेके दिन १० अक्तूबर १६७३को २५,००० वीर सैनिकोके साथ शिवाजी स्वय बीजापुरी प्रदेशमे जा पहुँचे। उन्होने अनेक शहराको लूटा। तब अधिक लूटके लिए वे कनाडा पहुँचे और दिसम्बरके पहले पखवाडे तक वे वहा व्यस्त रहे।

बीजापुरियोने पन्हाला प्रदेशपर आक्रमण किया, तब शिवाजीका और भी ध्यान बटानेके लिए जनवरी १६७४के अन्तमे एक मुगल सेनाने कोकणमे उतरनेका प्रयत्न किया परन्तु उधरके रास्तो तथा पहाडी घाटि-योकी तोड फोड कर और उस राहके विभिन्न दुगम स्थानोपर सैनिकोका कडा पहरा बिठाकर शिवाजीने मुगलोंके लिए वह रास्ता ही बन्द कर दिया था, जिससे उन्हे विफल मनोरथ ही लौटना पडा।

इसके कुछ ही दिनो बाद दक्षिणमे मुगलोकी शक्ति बहुत ही घट

गई। खैबरमे अफगानोका विद्रोह इतना प्रबल हो उठा था कि ७ अप्रैल १६७३के दिन औरगजेब स्वय हसन अबदालके लिए दिल्लीसे चल पडा। दक्षिणम शिवाजीके साथ मुगलोका युद्ध बन्द-सा पड गया। तब शिवाजीने बडी ही धूमधाम और समारोह तथा पूरी वैदिक विधिके साथ ६ जून १६७४को रायगढमे अपना राज्याभिषेक किया।

८ बहादुरखाँके पडावका लूटा जाना तथा बहादुरखाँके साथ शिवाजीकी बनावटी सधि-चर्चा; १६७४ ७५ ई०

राज्याभिषेकमे किए गए अमित व्ययके कारण शिवाजीका खजाना खाली हो गया था। उधर अपने सैनिकोको वेतन देनेके लिए शिवाजीको धनकी आवश्यकता हुई। आधी जुलाई १६७४के लगभग कोई २,००० मराठे घुडसवारोने पेडगांवके मुगल पडावपर आक्रमणका ढोग रचा और उनके चक्करमे पडकर उनका पीछा करता हुआ बहादुरखाँ पेडगावसे कोई ५० मीलकी दूरी तक निकल गया। उसी समय ७,००० सवारोके एक और दलको लेकर शिवाजी दूसरी राहसे पेडगाव पहुँचकर उस अरक्षित पडावपर टूट पडे और वहाँसे २०० अच्छे घोडे तथा एक करोड रुपयेका माल लूट ले गए। अक्तूबरके पिछले दिनोमे पश्चिमी घाट पार कर शिवाजी एक बडी सेनाके साथ दक्षिणी पठारपर जा पहुँचे, बहादुरखाके पडावके निकटसे गुजरकर उन्होने औरगाबादके पासके कई नगरो को लूटा और तब बगलाना तथा खानदेशमे जा धमके।

सन् १६७५ ई०के प्रारम्भमे शिवाजीने बहादुरखाके साथ सन्धि करने का ढोग रचा और मार्चसे लेकर कोई तीन माह तक मुगलोको सन्धिकी झूठी आशाओंके चक्करमे ही फँसाए रखा। किन्तु जुलाई माहमे गोआकी सीमापर फोण्डा किलेको हस्तगत करनेके बाद शिवाजीने अपने इस ढोगका अन्त कर मुगल दूतोको ताने सुनाकर बडी बेइज्जतीके साथ वहाँसे भगा दिया।

जनवरी १६७६म शिवाजी सख्त बीमार पड गए और अगले तीन माह तक वे सतारामे ही रोग शैय्यामे पडे रहे। उधर सन् १६७५के अन्तिम महीनोम बहलोलखा स्वय बीजापुर राज्यका अभिभावक बन बैठा था, जिसके फलस्वरूप वहाके दक्षिणी और अफगान दलोम पारस्परिक युद्ध शुरू हो गया था। शिवाजीके लिए यह एक अच्छा अवसर था, एव उस

लम्बी बीमारीसे स्वस्थ होते ही शिवाजी विना किसी प्रकारकी रोक-टोक या कुछ भी खतरेके बीजापुर राज्यमें दूर दूर तक धावे मारकर सर्वत्र लूट-मार करने लगे।

९ कर्नाटकपर चढाईकी तैयारीके लिए शिवाजीको राजनैतिक चालें

जनवरी १६७६म शिवाजीने अपने जीवनकी सबसे बडी चढाई, कर्नाटकपर आक्रमण, करनेके लिए प्रस्थान किया। पास-पडोसके सभी राज्योकी राजनैतिक परिस्थिति तब शिवाजीको इस योजनाके लिए बहुत ही अनुकूल थी। मुगल साम्राज्यका सज सुसज्जित वीर सेनाएँ तब भी अफगानी सीमापर विद्रोही पहाडी कबायलियोको दबानेमे लगी हुई थी। उधर दक्षिणके मुगल सूबेदारने खुले तौरपर बीजापुरके दक्षिणी दलका पक्ष लिया और ३१ मईको उसने बीजापुरपर चढाई कर युद्ध छेड दिया, जो एक बरसे भी अधिक समय तक चलता रहा। इधर कुछ समयसे बहादुरखाने शिवाजीके साथ मैत्रीपूर्ण समझौता करनेकी बातचीत छेडी थी, एव अपनी चतुराईपूर्ण कूटनीति द्वारा शिवाजीने अब बहादुरखांपर पूर्ण विजय प्राप्त की। बीजापुरपर चढाई करते समय मई १६७६मे बहादुरखां उत्सुक था कि अपने दाहिने बाजूपर स्थित शिवाजीके साथ मैत्री स्थापित कर ले। उधर शिवाजी भी चाहते थे कि मुगलोके साथ समझौता होकर वे तटस्थ बन जावें, जिससे कर्नाटककी चढाईके समय पीछेसे मुगलोके आक्रमणकी आशका भी मराठोको न रह जावे। अतएव शिवाजीने अनेको बहुमूल्य भेंटे लेकर अपने प्रधान न्यायाधीश नीराजी रावजीको बहादुरखांके पास भेजा, और कर्नाटकपर चढाईके समय महाराष्ट्रसे कोई एक वर्ष भरकी अपनी अनुपस्थितिके समय उसके तटस्थ बने रहनेका वचन बहादुरखासे ले लिया।

गोलकुण्डासे घनिष्ठ मित्रता स्थापित कर उस राज्यका पूर्ण सहयोग प्राप्त कर लिया गया। उस समय अबुलहसन कुतुबशाहका वजीर मादन्ना पण्डित ही गोलकुण्डाका सर्वेसर्वा था, और शिवाजीने उसके साथ एक सहायक सन्धि कर ली थी। गोलकुण्डा राज्यकी रक्षा करनेके बदलेमे एक लाख हूण प्रति वर्ष करके रूपमे शिवाजीको देनेका वायदा किया गया था। प्रह्लाद नीराजी नामक विचक्षण कूटनीतिज्ञको अपना राजदूत बनाकर शिवाजीने उसे हैदराबादमे नियुक्त किया। जीते हुए प्रदेशोका एक भाग गोलकुण्डा राज्यको भी देनेके वादेपर शिवाजीने इस चढाईके लिए आव-

श्यक द्रव्य तथा सहायतार्थ गोलकुण्डा राज्यकी सेनाके सेना भेजे जानेकी भी माँग की।

१० गोलकुण्डाके साथ शिवाजीकी संधि तथा कर्नाटक-विजय

जनवरी १६७७के शुरूमे शिवाजीने रायगढसे प्रस्थान किया। ५०,००० सशस्त्र सैनिको सहित नियमित गतिसे पूर्वकी ओर बढते हुए शिवाजी फरवरीके आरम्भमे हैदराबाद पहुँचे। कुतुबशाही राज्यमे प्रवेश करते ही उन्होने अपने सैनिकोको सख्त हिदायत कर दी कि वहाके किसी भी निवासीको न तो लूटा जावे और न उन्हे किसी भी प्रकारका कष्ट दिया जावे। इस आदेशको न माननेवालोको कडी सजाएँ देनेका भी प्रबन्ध किया गया।

अपने सुल्तानके इस महत्त्वपूर्ण मित्र और रक्षकका हार्दिक स्वागत करनेके लिए हैदराबाद नगरके निवासियोने अपने नगरको बडे ही उत्साह और उल्लासके साथ सजाया था। सुव्यवस्थित क्रमानुसार शहरके मार्गो मेसे गुजरकर मराठा सेना दाद महल्के सामने पहुँची और वहाँ रुक गई। अपने पाच अधिकारियो सहित शिवाजी ऊपर गए और वहाँ तीन घण्टे तक सुलतानसे मैत्रीपूर्ण बाते होती रहीं। शिवाजीके व्यक्तिगत आकर्षणसे सुलतान बहुत अधिक प्रभावित हुआ, तथा उनके चरित्र, अनुशासन एव सगठनसे पसन्न होकर अबुलहसनने अपने वजीरको आदेश दिया कि शिवाजीकी सारी मागे पूरी कर दी जावे। कुछ वाद-विवादके बाद दोनोमे आगामी चढाई सम्बन्धी एक गुप्त समझौता हो गया। सुलतानकी ओरसे शिवाजीको ३,००० हूण प्रतिदिन या साढे चार लाख रुपया प्रति माह सहायतार्थ दिए जाने एव कर्नाटक-विजयमे सहयोग देनेके लिए गोलकुण्डा राज्यकी ओरसे ५,००० सैनिकोके साथ वहाके 'सर-इ-लश्कर' मिर्जा मुहम्मदको शिवाजीके साथ भेजनेका निश्चय हुआ। इस सहायताके बदलेमे शिवाजीने वचन दिया कि कर्नाटकके जीते हुए वे सारे प्रदेश, जो पहले कभी उनके पिता शाहजीके अधिकारमे नही रहे थे, गोलकुण्डा राज्यको दे दिये जावेगे। विधिवत् शपथ-सौगन्दें लेकर मुगलोके आक्रमणके विरुद्ध आत्मरक्षणकी सन्धिको पुन सुदृढ किया गया। मुगलोके आक्रमणसे उसकी रक्षा करते रहनेके बदलेमे शिवाजीको प्रति वर्ष एक लाख हूणका कर देने और अपने दरबारमे मराठोंके राजदूतको रहने देनेका कुतुबशाहने वादा किया।

कर्नाटकके समतल मैदानमे बीजापुरकी ओरसे दो स्थानीय सूबेदार नियुक्त थे। एक तो था बीजापुरके पिछले मन्त्री खान मुहम्मदका पुत्र नसीर मुहम्मदखाँ, जो जिंजीमे रहता था। दूसरा था बहलोलखाँका शेरखाँ नामक एक आश्रित अफगान, जिसका प्रधान केन्द्र जिंजीसे दक्षिणमे किन्तु त्रिचनापल्ली जिलेके उत्तरी भागमे स्थित वलीकण्डपुरम् नामक स्थान था। उससे और आगे दक्षिणमे था तंजोरका राज्य, जिसे सन् १६७५ ई०मे शिवाजीके सौतेले भाई व्यंकोजीने जीतकर स्थापित किया था। तंजोरके इस हिन्दू राज्यके बाद मदुराका एक और हिन्दू राज्य पड़ता था। ये सारे विभिन्न राज्य आपसमे लड़कर एक दूसरेको हड़पनेके लिए तुले हुए थे।

एक माह तक हैदराबादमे ठहरनेके बाद शिवाजी वहाँसे दक्षिणकी ओर करनूल, श्रीशैलम, अनंतपुर, तिरुपति, कालाहस्ती होते हुए ७ मईको मद्राससे ७ मील पश्चिममे स्थित पेड्डापोलम् पहुँचे। नसीर मुहम्मदके साथ समझौता कर शिवाजीने जिंजीके किलेपर अधिकार कर लिया और तब वेल्लूरके किलेको जा घेरा। चौदह मास तक वीरतापूर्वक उसका बचाव करनेके बाद विवश हो पर्याप्त पुरस्कार पानेपर ही वेल्लूरके किलेदार अब्दुल्लाखाँने २१ अगस्त १६७८को आत्मसमर्पण किया।

एक बाढ़की तरह फैलकर आक्रमणकारी मराठा सेनाने कर्नाटकके सारे मैदानपर अधिकार कर लिया था। इने-गिने किलोंके अतिरिक्त कहीं भी किसीने उनका सामना नहीं किया। मराठोंके उस ओर बढ़नेकी सूचना मिलते ही वहाँके धनी नागरिक या तो जंगलोंमे जा छिपते थे या समुद्र तटपर बने हुए युरोपीयोंके किलोंमे आश्रय लेते थे। २६ जून १६७७को कडलोरसे कोई २३ मील पश्चिममे तिरवाडीमे शेरखाँ लोदीकी पराजय हुई और विवश होकर उसे अपने अधिकारका सारा प्रदेश शिवाजीको दे देना पड़ा। तब वहाँसे चलकर शिवाजी कोलेरुण नदीके उत्तरी तीरपर स्थित तिरमलवाडी नामक नगरमे पहुँचे और भेंट करनेके लिए व्यंकोजी-को वहाँ आमन्त्रित किया। शिवाजीने प्रयत्न किया कि उनकी मृत्युके समय जो भी प्रदेश शाहजीके अधिकारमे था उसका तीन चौथाई भाग वे व्यंकोजीसे छीन लें। परन्तु चतुराईसे व्यंकोजी २३ जुलाईको वहाँसे भाग-कर तंजोर लौट गए। तब शिवाजी महाराष्ट्रको लौट पड़े और राहमे पड़ने-वाले अनेकों तीर्थोंके दर्शन किए। सुव्यवस्थित ढंगसे लूट द्वारा एवं बल-पूर्वक धन छीनकर शिवाजीने कर्नाटकको बिलकुल ही नंगा-भूखा कर दिया।

१६७७–७८ ई० के इन दो वर्षोंमे शिवाजीने कर्नाटकमे ६० योजन लम्बा और ४० योजन चौडा प्रदेश जीता, जिसके अन्तगत कोई सौ किले पडते थे और जिसकी वार्षिक आय ३० लाख हूण थी।

नवम्बर १६७७के आरम्भमे ही शिवाजी मद्रासके मैदानको छोडकर मैसूरके पठारपर चढे और वहाँ उन्होंने उसके पूर्वी और मध्यके भागोको जीत लिया। मैसूर राज्यके बीचोबीच स्थित सेरा नामक स्थानसे वे महाराष्ट्रकी ओर लौटे तथा कोपल, गदग, वकापुर, बेलगाव जिलेमे स्थित बेलवाडी और तुरगल होते हुए अप्रेल १६७८के पहले सप्ताहमे वे अपने सुदृढ किले पन्हालाम आ पहुँचे।

११. मुगल साम्राज्य, बीजापुर राज्य और शिवाजी, १६७८-७९

अब शिवाजी और कुतुबशाहमे मनमुटाव हो गया। बडे ही धीरजके साथ पूरे सोच-समझके बाद मादन्ना पण्डितने जा राजनैतिक व्यवस्था की थी, उसके सारे ही सूत्र एकदम टूट गए। यह देखकर कि कर्नाटककी इस चढाईमे गोलकुण्डा राज्यकी सहायतासे भी शिवाजीने केवल अपना ही स्वार्थ सिद्ध किया, शिवाजीके प्रति कुतुबशाहका रोष निरन्तर बढता ही जा रहा था। अतएव अबुलहसनने बीचमे पडकर बीजापुर राज्यके नये अभिभावक सिद्दी मसूद और उसके प्रतिद्वन्द्वियोमे विशेषतया शर्जाखाके साथ मेल करवा दिया। वेतन न मिलनेपर विद्रोह करनेवाले उसके सैनिको शान्त करनेके लिए अपने पाससे आवश्यक द्रव्य देकर अबुलहसनने सिद्दी मसूदकी सहायता की। इस सबके बदलेमे अबुलहसनने सिद्दी मसूदसे वादा करवाया कि वह शिवाजीके विरुद्ध चढाई कर उसे कोकणसे बाहर बढने न देगा। परन्तु उसी समय बीजापुरपर आक्रमण कर दिलेरखाने अबुल हसनके इस सारे आयोजनको ही मटियामेट कर डाला।

उनका ज्येष्ठ पुत्र शम्भूजी, शिवाजीकी इस वृद्धावस्थामे अपने पिताके लिए एक अभिशाप बना। यह इक्कीस वर्षीय नवयुवा दुस्साहसी, स्वेच्छाचारी, अस्थिर-चित्त, अविवेकी और अत्यधिक व्यभिचारी था। एक विवाहित ब्राह्मण स्त्रीके साथ बलात्कार करनेपर उसे पन्हालाके किलेमे कैद कर दिया गया था। किन्तु अपनी पत्नी येशुबाई और अपने कुछ साथियोंके साथ पन्हालासे भागकर शम्भूजी दिलेरखाके साथ जा मिला (१३ दिसम्बर १६७८)। अपने इस महत्त्वपूर्ण मित्रके साथ दिलेरखा बहादुरगढसे ५०

मीरज दक्षिणमें अथनूज नामक स्थानपर कुछ समय तक ठहरकर बीजापुर-पर चढ़ाईकी तैयारी करता रहा।

इस आपत्तिके समय अपने समझौतेके अनुसार सिद्दी मसूदने शिवाजीसे सहायता माँगी। बीजापुरकी सहायताके लिए शिवाजीने भी ६-७ हजार घुड़सवार भेज दिए। किन्तु मसूद अपने इस मराठा मित्रका पूरा विश्वास कर ही नहीं सकता था। कुछ समय बाद शिवाजीने उधर अपना असली स्वरूप दिखाया और वे पुनः आदिलशाह राज्यके प्रदेशमें लूटमार कर उसे बरबाद करने लगे। तब तो मसूदने दिलेरखाँके साथ सन्धि कर ली। एक मुगल सेनाको बीजापुरमें आमन्त्रित किया गया और वहाँ उस सेनाका शाही स्वागत भी हुआ।

अब दिलेरखाँ जथसे २० मील उत्तर-पश्चिम और पण्ढरपुरसे ४५ मील दक्षिण-पश्चिममें स्थित भूपालगढ़के किलेकी ओर बढ़ा। मुगलोंसे युद्ध करते समय आसपासके प्रदेशमें रहनेवाली अपनी प्रजाके कुटुम्बोंके आश्रय-के लिए एवं अपनी सम्पत्ति तथा भण्डारको सुरक्षित रूपेण रखनेके लिए ही शिवाजीने यह किला बनवाया था। २ अप्रैल १६७९का प्रातःकालमें कोई ६ बजे इस किलेपर आक्रमण प्रारम्भ हुआ। दुपहर तक मुगल बड़े ही साहस और वीरताके साथ लड़ते रहे, तब कहीं उस किलेपर वे अधि-कार कर पाए। इस युद्धमें दोनों ही पक्षके बहुत अधिक सैनिक काम आए। इस किलेमें संग्रहीत बहुत-सा धान्य और प्रचुर सम्पत्ति मुगल विजेताओंके हाथ लगी। मुगलोंने बहुतसे लोगोंको कैद भी कर लिया। युद्धमें बच जानेवाले सात सौ दुर्ग रक्षक सैनिकोंका एक-एक हाथ काटकर उन्हें छोड़ दिया। बाकी रहे सब कैदी दास बनाकर बेच दिए गए होंगे।

१२. शिवाजीकी अन्तिम चढ़ाई

१८ अगस्त १६७९को दिलेरखाँने बीजापुरसे कोई ४० मील उत्तरमें धूलखेड़के पास भीमा नदीको पार किया और मसूदपर पुनः चढ़ाई की। बीजापुर राज्यके इस अभिभावकने विवश होकर शिवाजीसे सहायताकी भीख माँगी, और शिवाजीने बड़ी तत्परताके साथ सहायता देना स्वीकार कर लिया। उधर दिलेरखाँके पाससे भागकर शम्भूजी ४ दिसम्बर १६७९-को वापस पन्हाला लौट आया।

४ नवम्बर १६७९को शिवाजीने बीजापुरसे ५५ मील पश्चिममें स्थित

सेलगुर नामक स्थानसे प्रस्थान किया। इस समय उनके साथ १८,००० मराठे घुड़सवार थे, जो दो विभागोंमें बँटकर शिवाजी एवं आनन्दरावकी अधीनतामें समानान्तर दूरीपर उत्तरी दिशामें बढ़े और मुगलोंके अधीन दक्षिणी प्रदेशके जिलोंमें जा घुसे। राहमें पड़नेवाले प्रत्येक स्थानको लूटा और जला दिया, और यों बहुतसा द्रव्य तथा अमित माल उन्हें लूटमें मिला। यही महीना आधा बीतते-बीतते औरंगाबादसे ४० मील पूर्वमें जालना नामक एक बहुत आबादीवाले व्यापारी शहरपर अधिकारकर उसे लूटा। पहुँचे हुए फकीर सैयद जान मुहम्मदकी कुटिया यहींके उपनगरमें थी। अपना-अपना रुपया पैसा और बहुमूल्य रत्नोंको साथ लेकर जालनाके अधिकांश धनी निवासियोंने इसी कुटियामें शरण ली थी। मराठे आक्रमणकारियोंको शहरकी लूटमें बहुत ही कम माल मिला, तब अपने माल मतेके साथ धनिकोंके उस कुटीमें जा छिपनेकी बात सुनकर वे आक्रमण कारी वहाँ जा पहुँचे और वहाँ घुसे हुओंको लूटा तथा कईको घायल भी कर दिया। उस फकीरने उन आक्रमणकारियोंसे प्रार्थना की कि वे ऐसा न करें, उन्होंने उसकी एक न सुनी, उलटे उसे गालियाँ दी तथा बहुत कुछ धमकाया भी। तब उस तपस्वी सन्तने शिवाजीको शाप दिया। सर्वसाधारण जनताका दृढ विश्वास था कि उस फकीरकी वाणी निरर्थक नहीं हो सकी, एवं इस शापके कोई पाँच महीने बाद ही जब शिवाजीका देहान्त हो गया, तब उन्होंने शिवाजीकी मृत्युको इस शापकी परिणति माना।

पूरे चार दिनतक जालनाको अच्छी तरह लूटने और उसे नष्ट प्राय करनेके बाद जब मराठे लूटमें मिले अनगिनित सोना चाँदी, हीरे, कपडे, घोडे, हाथी और ऊँटों सहित लौट रहे थे तब रणमस्तखाँ नामक एक साहसी मुगल अधिकारीने मराठी सेनाके पिछले भागपर आक्रमण कर दिया। ५,००० मराठोंको अपने साथ लेकर शिधोजी निम्बालकरने रण मस्तखाँको तीन दिन तक रोका, किन्तु अन्तमें अपने अनेक साथियों सहित वह मारा गया। उसी समय केसरीसिंह और सरदारखाँके नेतृत्वमें औरंगाबादसे एक बडी सहायक मुगल सेना रणमस्तखाँकी सहायतार्थ चली आ रही थी। जब उस युद्ध क्षेत्रसे केवल छ मीलकी दूरीपर पहुँचकर इस नई सेनाने पडाव डाला, तब हिन्दू भाई होनेके नाते केसरीसिंहने शिवाजी को गुप्त सन्देश भेजा कि चारों ओरसे घेरकर मुगल सेना उनको पकड पावे उससे पहिले ही शिवाजी वहाँसे निकल भागें। अपने विश्वस्त गुप्त बहिरजी द्वारा दिखाए दुरूह अज्ञात रास्तोंपर तीन दिन और रात तक

व्यग्रतापूर्वक लगातार चलकर ही मराठा सेना वहाँसे किसी प्रकार बच निकली। किन्तु लूटका बहुतसा माल उन्हें वहीं छोड देना पडा। उनके ४,००० घुडसवार मारे गए और सेनापति हम्बीरराव घायल हुआ। इस दुर्भाग्यपूर्ण चढाईसे लौटकर कोई २२ नवम्बरके लगभग शिवाजी पट्टागढ पहुँचे, जहाँ उनकी थकी हुई त्रस्त सेनाने कुछ दिन विश्राम किया, और तब दिसम्बरके प्रारम्भमें वे रायगढको लौट गए। नवम्बरके अन्तिम सप्ताहमें एक मराठा सेनाने खानदेशपर आक्रमणकर धारनगांव, चोपरा और उनके आसपासके कई एक बडे-बडे नगरोंको लूटा तथा जला दिया।

अपने ज्येष्ठ पुत्रके दुश्चरित्रको देख-देखकर शिवाजी अपने राज्यके भविष्यके लिए बहुत ही चिन्तित हो उठे थे। शम्भूजी एवं बहुत ही क्रूर, अस्थिर-चित्तवाला, व्यभिचारी युवक था। उसमें सद्गुणों, देशभक्ति और धर्म-प्रेमका पूर्ण अभाव ही था। शिवाजीके अन्तिम दिन निराशापूर्ण चिन्तामें ही बीते। २३ मार्च १६८०के दिन शिवाजीको ज्वर हो आया और उन्हें रुधिरके दस्त होने लगे। बारह दिन तक यह बीमारी चलती रही और अन्तमें मराठा जातिको जाग्रतकर नवजीवन प्रदान करनेवाला वह नरपुंगव रविवार, ४ अप्रेल, १६८०के दिन दोपहरमें इस लोकसे चल बसा। उस दिन चैत्रकी पूर्णिमा थी, और अभी शिवाजीने अपने जीवनका ५३वाँ वर्ष भी पूरा नहीं किया था।

१३ शिवाजीका राज्य, उनकी सेना और आय

उत्तरमें सूरतके अन्तर्गत रामनगरसे (वर्तमान धरमपुर राज्यसे) लेकर दक्षिणमें बम्बई प्रान्तके कनाडा जिलेमें कारवार या गंगावती नदी तकके इस भूभागमें पुर्तगालियों द्वारा अधिकृत परगनोंको छोडते हुए बाकी सारा प्रदेश उनकी मृत्युके समय शिवाजीके ही राज्यमें था। उनके राज्यकी पूर्वी सीमा उत्तरमें बगलानाको सम्मिलित करती हुई दक्षिणमें नासिक और पूनाके परगनोंके बीच टेढी-मेढी होती दक्षिणकी ओर बढती थी और सताराका सारा परगना तथा कोल्हापुर परगनेका बहुतसा हिस्सा भी शिवाजीके राज्यमें ही पडता था। उन्हींसे लगा बेलगांवसे लेकर मद्रास प्रान्तके बेलारी परगनेके सामनेवाले तुङ्गभद्राके तटतक फैला हुआ कर्नाटक अथवा कन्नड देशका पश्चिमी भाग था, जिसे कुछ ही समय पहिले जीतकर शिवाजीने स्थायी रूपसे अपने राज्यमें मिला लिया था।

कोपलके पास तुङ्गभद्राके तटसे लेकर वेलोर और जिंजी तकके प्रदेशको, जिसके अन्तगत वतमान मैसूर राज्यका उत्तरी, मध्यका एव पूर्वी भाग, तथा मद्रास प्रान्तके वेलारी, चित्तूर और अर्काटके परगने पडते थे, शिवाजीने कुछ ही वप पहिले जीता था, तथा अव तक वहा शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित नही हो सकी थी, जिससे सन् १६८० ई०मे वहा मराठा सेना नियुक्त थी।

अपने राज्यके इन सुव्यवस्थित प्रदेशोके अतिरिक्त निरन्तर घटने बढनेवाली एक बहुत चौडी पट्टी ऐसे प्रदेशकी भी थी, जहाँ यद्यपि शिवाजीकी आज्ञाएँ मान्य होती थी, फिर भी उसपर उनका एकाधिपत्य नही था। जब-जब भी नियमित रूपसे प्रतिवर्ष मराठा सेनाएँ वहाँ पहुँच जाती थी, तब-तब वहासे निश्चित कर, जिसे मराठे भाषामे 'खण्डणी' कहते थे, वसूल हो जाता था। उस प्रदेशके निश्चित लगानका चौथाई भाग ही मराठे यो वहासे वसूल करते थे, एव मराठोको दिया जानेवाला यह कर साधारण बोलचालमे "चौथ" भी कहलाने लगा। चौथ दे देनेसे उस प्रदेशमे मराठे सैनिको या मराठे कर्मचारियोकी अवाछनीय उप स्थितिसे छुटकारा पानेके अतिरिक्त उस प्रदेशवासियोको और कोई लाभ नही होता था, उस प्रदेशमे उठनेवाले आन्तरिक उपद्रवोको दबाने, वाह्य आक्रमणोसे उसे बचाने या ऐसा और कोई भी उत्तरदायित्व शिवाजीपर नही आता था। शिवाजीके दरबारी सभासदकी गणनाके अनुसार उनकी आय कुल मिलाकर एक करोड हूणके लगभग होती थी, और यदि पूरी पूरी चौथ वसूल हो जाती तो उससे अस्सी लाख हूण और प्राप्त हो जाते थे।

अपने उपयोगकी सारी आवश्यक सामग्री जुटानेके लिए शिवाजी नियमित रूपसे प्रति वष अपनी सेना विदेशी राज्योमे भेजते थे। वर्षा ऋतुमे (जूनसे सितम्बर तक) सारी मराठा सेना अपने राज्यके ही सैनिक पडावोमे विश्राम करती थी। (अक्तूबर माहमे) ठीक दशहरेके दिन पडावोसे निकलकर इस सेनाको अपने राजा द्वारा बताए गए राज्य-पर कूच कर देना पडता था। अगले आठ महीनो तक दूसरे राज्योके प्रदेशोमे ही रहकर अपना भरण-पोषण करना तथा वहासे कर वसूल करना उसका प्रधान काय होता था। मराठा सेनाके साथ कोई भी स्त्री, नौकरानी या वेश्या नही जा सकती थी। यदि कोई सैनिक इस नियमका

उल्लंघन करता था तो सिर काटकर उसको मृत्यु दण्ड दिया जाता था। केवल मनुष्य ही कैद किए जा सकते थे, स्त्रियो या बालकोको कैद नही किया जाता था। ब्राह्मणोके साथ न तो कोई अत्याचार ही किया जा सकता था और न बन्ध मुक्ति द्रव्य वसूल करनेके लिए उन्हे शरीर-बन्धक ही किया जा सकता था। अपने घरको लौट आनेपर प्रत्येक सैनिकको अपनी लूटका माल राज्यको दे देना पड़ता था।

१४. शिवाजीका केन्द्रीय शासन

"अष्ट प्रधान" नामक आठ मन्त्रियोकी एक परिषद्‌की सलाह और सहायतासे ही शिवाजी शासन करते थे। ये आठ प्रधान थे —(१) मुख्य प्रधान अथवा पेशवा, जो प्रधान मन्त्री होता था, (२) मजमुआदार अर्थात् अमात्य, जो जमा खर्चका लेखा रखता था, (३) वाकयानवीस अथवा मन्त्री, जो राजाकी दिन भरकी गति-विधि तथा राजदरबारकी घटनाओका दैनिक ब्यौरा रखता था, (४) सुरनिस अथवा सचिव, जो पत्र-व्यवहारका काय सम्भालता था, (५) दबीर अथवा सुमन्त, जो विदेश मन्त्री होनेके साथ ही जासूसी विभागका भी प्रधान होता था, (६) सर-ए नौबत अर्थात् सेनापति, जो राज्यकी समस्त सेनाओका सचालक था, (७) पण्डितराव जो अकेला ही मुसलमानी राज्यके सद्र और मुहतसिब दोनो ही अधिकारियोका काम सम्भालता था, वह धार्मिक मामलो और जात-पातके झगडोको निबटाने, अधार्मिक और भ्रष्टाचारियोको दण्ड देने तथा राजकीय दान विभागसे विद्वान् ब्राह्मणोको दक्षिणा देनेका काम करता था, (८) न्यायाधीश, जो राज्यके सारे न्यायाधीशोका प्रधान होता था। किन्तु यह "अष्ट प्रधान" परिषद वास्तवमे राजाकी आज्ञानुसार काय करनेवाले सचिवोका ही दल था, आधुनिक 'केबिनेट' अर्थात् मन्त्री मण्डलोके साथ उसकी कोई भी समानता नही थी।

१५. शिवाजीका चरित्र तथा इतिहासमे उनका स्थान

जिन विभिन्न उपायो और साधनोके द्वारा शिवाजीने यह सफलता प्राप्त की, वे नैतिक दृष्टिसे भले ही मान्य नही हो, परन्तु शिवाजीकी यह सफलता एक ज्वलन्त वास्तविक सत्य थी। मुगल साम्राज्य तथा उसके

सारे साधन एक जागीरदारके इस बेटेको दबानेमे निष्फल हुए। यह देख कर कि उसके सारे ही बडे-बडे सुप्रसिद्ध सेनापति दक्षिणमे विफल हुए थे, औरगजेब स्वय भी निराश हो गया था और शिवाजीका दमन कर सकनेका कोई भी उपाय उसे सूझ नही रहा था।

उस युगमे जब कि हिन्दुओपर किए जानेवाले अत्याचारोका पुन आरम्भ हो रहा था, हिन्दू जनताको शिवाजी उनके धर्मकी लाज रखनेवाला तथा उनकी भावी नई आशाओका एकमात्र सितारा-सा देख पडा।

बहुत ही सुदृढ और ऊँची नैतिकता ही शिवाजीके व्यक्तिगत जीवन की प्रधान विशेषता थी। वे एक मातृभक्त पुत्र, स्नेहपूर्ण पिता और कर्तव्यपरायण पति थे। बाल्यकालसे ही वे अत्यधिक धार्मिक थे। स्वभाव एव अभ्यास दोनोसे ही वे जीवन-पर्यन्त सयमी, दुर्गुण-रहित और साधु-सन्तोके भक्त रहे। साधु सन्तोके मामलेमे हिन्दू और मुसलमान दोनो ही धर्मावलम्बियोके प्रति वे उदारतापूर्ण सहनशीलता दिखाते थे, जिससे उनकी धार्मिक उदारता सुस्पष्ट रूपेण प्रमाणित हो जाती है। स्त्रियोंके प्रति सम्मान और अपने सैनिक पडावोके लिए सदाचार सम्बन्धी कठोर नियम बनाना, उस युगकी एक आश्चर्यजनक विशेषता थी। खफीखाँ जैसे उनके कट्टर विरोधी आलोचका तकको विवश होकर उनके इस कार्यकी प्रशसा करनी पडी।

एक जन्मजात नेताका-सा व्यक्तिगत आकर्षण शिवाजीमे था और जिस किसीका भी उनके साथ परिचय हुआ, वह शिवाजीके प्रति मन्त्र मुग्ध-सा हो जाता था। देशके सारे ही सुयोग्य व्यक्ति आप-ही-आप उनके पास खिचे चले आते थे। शिवाजीके कर्मचारी तन, मन, धनसे अपने स्वामीकी सेवा करते थे, तथा शिवाजीकी चकाचौंधित करनेवाली विजयो और उनके मुखपर सदैव खेलनेवाली मनमोहक मुस्कराहटसे मुग्ध होने वाले उनके सैनिकोकी आँखोके वे तारा बन गए थे। मानव-चरित्रको परखनेकी उनकी अचूक राजोचित क्षमता ही उनकी अनोखी सफलताका प्रधान कारण थी। सेनापतियो, अधिकारियो, राजनीतिज्ञो, मन्त्रियो तथा कर्मचारियोंके चुनावमे उन्होने कभी भूल नही की। उनके सैनिक-सगठनकी कार्यकुशलता अनुकरणीय थी, प्रत्येक वस्तुके लिए पहिलेसे ही प्रबन्ध कर दिया जाता था और वह एक उपयुक्त निरीक्षककी देखरेखमे निश्चित स्थानपर सदैव तैयार रहती थी। उनका गुप्तचर विभाग बहुत ही कार्य

कुशल था, और जिधर भी चढाई करनेकी वे सोचते थे, उस प्रदेशकी छोटी-से-छोटी बातोका पूरा-पूरा पता उन्हे पहिलेसे ही मिल जाता था। बहुत दूरीपर होते हुए भी उनकी सेनाके विभिन्न दल उनकी इच्छाके अनुसार सम्मिलित या अलग हो जाते थे, और इसम कभी कोई चूक नही हुई। पीछा करनेवाले या विरोधी शत्रुओका उपयुक्त रीतिसे सामना किया जाता था, और वह सब होते हुए भी लूटका सारा माल-असबाब बिना किसी हानिके बहुत जल्दी ससुराल घर पहुँचा दिया जाता था। अपने सैनिकोकी जातीय प्रवृत्तियो तथा विशेषताओ, तद्देशीय भौगोलिक परिस्थिति, वहा तब कामम आनेवाले अस्त्र शस्त्रो तथा शत्रु पक्षकी आन्तरिक दशाका समझ-बूझकर उनके उपयुक्त युद्ध शैलीको वे सहज बुद्धिसे अपना लेते थे, जिससे उनकी जन्मजात सैनिक प्रतिभा सुस्पष्ट हो जाती है। तीव्र गतिसे चलनेवाले पैदलोकी सहायता पाकर दूर दूर तक धावा मारनेवाले चपल मराठा घुडसवार औरगजेबके शासन-कालम सवथा दुदमनीय हो गए थे।

राजनैतिक मौलिकता या दूरदर्शिताकी अपेक्षा शिवाजीका महत्त्व उनके चरित्र और उनकी व्यवहार-कुशलताम था। दूसराके चरित्रको समझनेकी अचूक सूक्ष्म दृष्टि, अनाखी प्रबन्ध-क्षमता, लाभदायक और व्यावहारिक बातोको स्वाभाविक सहज बुद्धिसे जान लेनेकी उनकी शक्ति, आदि ही उनके जीवनकी सफलताके मुख्य कारण थे। बिखरे हुए मराठो-को एकत्रित करके उन्ह एक सगठित जातिम परिणत कर देना उनके जीवनकी एक चिरस्थायी सफलता थी। स्वतन्त्रताकी जो प्रेरणा उन्होने अपने देशवासियोम फूँक दी थी, वह उनकी एक बहुमूल्य देन है। और यह सब करनेम उन्ह मुगल साम्राज्य, बीजापुर, पुर्तगालियोम भारतीय राज्य और जजीराके हबशियो जैसे चार शक्तिशाली राज्योके सक्रिय विरोधका सामना करना पडा था।

आधुनिक कालके किसी भी अन्य हिन्दूने सगठन कर सकनेकी ऐसी प्रतिभा नही दिखाई है। अपने उदाहरण द्वारा शिवाजीने यह सिद्ध कर दिया है कि हिन्दू जाति भी राष्ट्रिय नवनिर्माण कर सकती है, राज्यकी स्थापना करना जानती है, तथा शत्रुओको पराजित करना भी उसके लिए असम्भव नही, अपनी आत्मरक्षाका भी पूर्ण आयोजन कर सकती है, साहित्य कला, व्यापार और उद्योग धन्धोकी रक्षा ही नही कर सकती

है किन्तु उनको प्रोत्साहन देकर उनकी उन्नति करना भी उसे आता है, जल-सेनाका सगठन करनेके साथ ही महासिन्धुओंको पार कर सकनेवाले अपने ही जहाजो वेडे बनवाना और विदेशियोंके साथ होनेवाले जल-युद्धोंमे उनके साथ भी बराबरीकी टक्कर लेना उसके लिए कदापि कठिन नही। शिवाजीने आधुनिक हिन्दुओंको अपनी उन्नतिसे उच्चतम शिखरपर चढनेका महत्त्वपूर्ण पाठ पढाया।



अध्याय १२

बीजापुरका पतन और उसका अन्त

१. जयसिंहका बीजापुरपर आक्रमण, १६६५–१६६६

बीजापुरके सुल्तानसे औरंगजेबके क्रुद्ध हो जानेका एक विशेष कारण था। मुगलोंके उत्तराधिकार सम्बन्धी युद्धसे लाभ उठाकर आदिल-शाह अगस्त १६५७में की हुई सन्धिकी शर्तोंका उल्लंघन करने लगा था। शिवाजीके विरुद्ध चढाई करते समय जयसिंहको यह पता लगा कि बीजा-पुरके अधिकारी गुप्त रूपसे मराठा नायकके साथ मित्रता कर उसे धरती, धन तथा अन्य सारी वस्तुएँ देकर उसकी सहायता करने लगे थे। पुन शिवाजीके साथ चलनेवाले युद्धके सन् १६६५ ई०में समाप्त हो जानेके बाद जयसिंहकी अधीनतामें सगठित यह बहुत बडी सेना दक्षिणमें निरुद्योग हो गई थी। दक्षिणकी इस सुसज्जित सेनाको किसी-न-किसी लाभदायक उद्योगमें लगाए रखना अत्यावश्यक जान पडा, इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए बीजापुरपर आक्रमण करना ही सबसे उपयुक्त साधन देख पडा।

पुरन्दरकी सन्धि द्वारा मराठा नेता शिवाजीने वादा किया था कि बीजापुर नियोजित आक्रमणके समय शाही मनसबदार होनेके नाते उसके पुत्र शम्भूजीकी सेनाके दो हज़ार घुडसवार मुगलोंके सहायतार्थ पहुँचेंगे, और स्वय भी अपने सात हज़ार चुने हुए कुशल पैदल सैनिकोंको लेकर मुगलोंके साथ सम्मिलित हो जावेगा।

बीजापुरके आश्रित अन्य राज्योंके साथ जयसिंहने इसी प्रकारका षड्यन्त्र किया और उन्हें पत्र लिखकर दिल्लीके मुगल साम्राज्यकी अधीनतामें उन्हें मनसब देनेका प्रलोभन दिया था।

अन्तमे सारी तैयारियाँ पूरी हो जानेपर १९ नवम्बर १६६५को जयसिंह पुरन्दरके किलेके नीचेवाले अपने पडावसे रवाना हुआ। उसके साथ ४०,००० शाही सैनिक थे। इनके अतिरिक्त नेताजी पालकरके नेतृत्वमे २,००० मराठे घुडसवार और ७,००० पैदल सिपाही भी उसके साथ थे। इस चढाईके पहिले माहमे जयसिंहकी सेना बिना किसी रोक टोकके बराबर सफलतापूर्वक आगे बढती हो गई। बीजापुरकी राहमे पडनेवाले बीजापुरी किले पलटन, थथवाडा, खटाव और अन्तमे बीजापुरसे केवल ५२ मील उत्तरमे स्थित मंगलविडे भी क्रमशः एक-एककर या तो खाली कर दिए गए या मुगल सेनाके वहाँ पहुँचते ही उन्होने आत्मसमर्पण कर दिया। बीजापुरियोंके साथ मुगल सेनाकी पहली लडाई २५ दिसम्बर १६६५को हुई। शिवाजी और दिलेरखाके नायकत्वमे शाही सेनाके एक दलने शाही पडावसे दस मील आगे बढकर बीजापुरके यशस्वी सेनापति शर्जाखाँ और खवासखाँके अधीन १२,००० बीजापुरी सेना तथा उनके मराठे साथी, कल्याणीके जादवराव तथा शिवाजीके सौतेले भाई व्यकोजीके साथ उस दिन युद्ध किया। बीजापुरी सेना दिल्लीके तगडे घुडसवारोंके सीधे आक्रमणसे बचनेका ही प्रयत्न करती रही, और कज्जाकोंकी युद्ध-शैलीका अनुसरणकर उन्हे हानि पहुँचाने तथा विभिन्न चार दल बनाकर वे दौडते भागते उखडी हुई लडाई लडते रहे। बहुत देरकी कशमकशके बाद अपने अथक परिश्रम और दृढ साहससे दिलेरखाने शत्रुको विचलित कर दिया, तथा उसके निरन्तर आक्रमणोंका सामना न कर सकनेके कारण सध्या पडते-पडते बीजापुरी युद्धक्षेत्रसे हट गए। किन्तु ज्योंही विजयी मुगल सेना अपने पडावकी ओर लौटने लगी, बीजापुरी सेनाके दल पुनः एकाएक वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने मुगल सेनाके दोनो बाजुओं और पृष्ठ भागपर आक्रमणकर बहुत मारकाट की। उधर बिना रुके चलकर २८ दिसम्बरके दिन प्रातःकालमे शर्जाखाँ ६,००० घुडसवारोंके साथ मंगलविडेके किलेके पास जा पहुँचा था। जयसिंहकी आज्ञाका उल्लंघनकर शर्जाखाँसे सामना करनेके लिए मंगलविडेका मुगल किलेदार सरफराजखाँ किलेसे बाहर निकला और हारा हुआ वापस आया; तब तो बाकी रही मुगल सेनाने भागकर किलेमे आश्रय लिया।

दो दिन ठहरनेके बाद जयसिंह पुनः आगे बढने लगा तथा २८ दिन लगभग क्रमशः युद्ध हुआ। मराठोंकी तरह इस बार भी दक्षिणी घुडसवारोंने मुगलोंको घेर लेनेका प्रयत्न किया और अलग-अलग दस्ते बनाकर व

शाही सेनाके पास मडरा मडराकर अपने पासकी मुगल सेनाम जब यत्किं-चित् भी कमज़ोरी या गडबडी देख पडती तब वहाँ आक्रमण कर देत थे। अन्तम मुगलोने शत्रुपर सीधा आक्रमण किया, तब दक्षिणी युद्धक्षेत्रसे भाग निकले, पूरे छ मील तक मुगलोने उनका पीछा किया किन्तु भागते हुए दक्षिणी वहाँ भी मुगलोका विरोध करते ही जाते थे। दूसरे दिन २९ दिसम्बरको जयसिंह बीजापुरके कोई १२ मील पास तक जा पहुँचा। इस बार इससे आगे बढना जयसिंहके भाग्यम बदा न था। क्योकि इन दिनाम अली आदिलशाह द्वितीयने सारी आवश्यक युद्ध तैयारी कर ली थी और अब आक्रमण कर उसकी राजधानी बीजापुर तथा उसके उपनगरोपर अधिकार कर लेना सर्वथा असम्भव हो गया था।

विभिन्न दलाकी आपसी फूटके कारण पूर्णतया अशक्त एव सर्वथा अरक्षित बीजापुरपर एकाएक आक्रमण कर वहाँ अधिकार कर सकनेके इस अभूतपूर्व अवसरसे पूर्ण लाभ उठानेको उत्सुक जयसिंह तंजीस बढता हुआ मगलविढे तक जा पहुँचा। परन्तु तब भी बडी-बडी तोपा और घेरा डालनेके लिए अत्यावश्यक अन्य युद्ध-सामग्रीको उसने परेण्डाके क़िलेसे नही मगवाया था, जिससे अब उसकी परिस्थिति बहुत ही सकटापन्न हो गई थी। आदिलशाहकी सहायताके लिए गोलकुण्डासे एक बडी सेना आ रही थी, और इधर आक्रमणकारी मुगल सेनाके भूखो मरनेकी नौबत आ गई थी।

२ जयसिंहका बाध्य होकर बीजापुरसे वापस लौटना, १६६६

अतएव ५ जनवरी १६६६को मुगल सेनापतिने पीछे लौटना आरम्भ किया। बीजापुरी तब भी उसके पीछे लगे रहे। २७ जनवरीको वह परेण्डासे १६ मील दक्षिणम सीना नदीपर स्थित सुलतानपुर नामक स्थान-पर पहुँचा।

जनवरीके इस माहमे मुगलाको चार बडी दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओका सामना करना पडा। सबसे पहले १२ जनवरीके लगभग जब फतेहजंगका भाई सिकन्दर नामक एक साहसी अफगान नायक जयसिंहकी सेनाके लिये खाद्य तथा युद्ध-सामग्री ले जा रहा था, तब शर्जाखाके नेतृत्वम एक बडी बीजापुरी सेनाने परेण्डाके किलेसे कोई आठ मील दक्षिणमे एकाएक उस-पर आक्रमणकर वह सारी बहुमूल्य सामग्री लूट ली।

उधर शिवाजीके प्रस्तावको स्वीकार कर उन्हे एक बडी सेनाके परिचममे पन्हालाके किलेपर आक्रमण करनेके लिए भेजा गया परन्तु १६ जनवरीके दिन पन्हालापर किए गए धावेमे शिवाजीके एक हजार सैनिक काम आए और फिर भी उनका यह प्रयत्न पूर्ण निष्फल ही रहा। २० जनवरीके दिन एक और दुस्समाचार वहाँ पहुँ बहुत करके अपनी बहुमूल्य सेवाओ तथा वीरतापूर्ण विजयोका समु पुरस्कार और सम्मान न मिलनेके कारण ही शिवाजीका प्रधान अ कारी नेताजी अपने स्वामीसे बहुत ही असन्तुष्ट हो गया था। अब बी पुरियोसे चार लाख हूण रिश्वत लेकर वह उनसे जा मिला और मु प्रदेशपर आक्रमण करनेवाले दलोका नेतृत्व करने लगा। कई एक प्रलो पूर्ण पत्र लिखकर तथा नेताजीकी भारी बडी-बडी माँग स्वीकार कर मार्च १६६६को जयसिहने उसे पुन अपने पक्षमे मिला लिया। आदि शाहके सहायनार्थ गोलकुण्डाके सुलतानने १२,००० घुडसवार ४०,००० सैनिक भेजे थे, जो मुगलोके लिए चौथी दुर्भाग्यपूर्ण घटना थ

बीजापुर नगरके उपान्तसे लौटते समय घास दाना एकत्रित क वाले मुगल सैनिकोकी दैनिक मुठभेडोके अतिरिक्त ११ तथा २२ जनव दिन जयसिहको बीजापुरियोके साथ डटकर दो लडाइयाँ भी लडनी प अतएव २० फरवरीको सुलतानपुरवाल अपने पडावसे चलकर जय सीधा पूर्वमे अशान्तिपूर्ण प्रदेशकी ओर बढा।

इस चढाईका अब तीसरा दौर प्रारम्भ हुआ, जो अगले जून मा परेण्डामे १८ मील उत्तर-पूर्वमे भूम नामक स्थानपर जयसिहके आनेके बाद ही समाप्त हुआ। जयसिहने मगलविडे और पलटनके भी खाली कर दिए। इस चढाईके प्रारम्भमे मुगलो द्वारा जीते हुए बी पुरी किलोमसे अब एक भी मुगलोके अधिकारमे नही रह गया था।

३१ मार्चको जयसिह उत्तरकी ओर लौटनेके लिए वापस चल प और २६ नवम्बरको ही वह सीधा औरगाबाद पहुँचा। युद्ध करते-क दोनो ही पक्ष थक गए थे। अब शान्ति स्थापनाके लिए उत्सुक थे, सन्धिके लिए बातचीत प्रारम्भ हुई। जब मुगल सेना अपनी राज्य-सी के अन्दर जा पहुँची तब बीजापुरी भी अपने राज्यको लौट गए।

३. जयसिहकी विफलता और मृत्यु

सैनिक दृष्टिसे बीजापुरपर जयसिहकी यह चढाई सर्वथा विफल

रही। मुगल सेनाकी इस हार तथा बीजापुरके इस आक्रमणमें होनेवाली धन-हानिके कारण औरंगजेब जयसिंहसे वहुत अप्रसन्न हो गया। अक्टूबर १६६६में इस अभागे सेनापतिको औरंगाबाद लौटनेका हुक्म मिला, तथा अगले २३ मार्च १६६७को वह दिल्ली वापिस बुला लिया गया। शाहज़ादे मुअज्जमको दक्षिणका सूबेदार वनाया गया और उसकी सहायताके लिए जसवन्तसिंह नियुक्त हुआ। अनेकों लड़ाइयोंमें भाग लेनेवाले इस वीर राजपूतने औरंगाबादमें अपने उत्तराधिकारीको शासन अधिकार सौंप दिया (मई, १६६७), और तब अपमानसे क्षुब्ध और निराशामें भरे हुए जयसिंहने उत्तरी भारतकी राह ली। बीजापुरके युद्धमें जयसिंहने एक करोड़के लगभग अपना निजी द्रव्य व्यय किया, जिसमेंसे एक पैसा भी उसके स्वामीने उसे वापिस नहीं चुकाया था। निरादर और नैराश्यने उसका दिल तोड़ दिया था। वृद्धावस्था तथा रोगसे जीर्ण जयसिंह २८ अगस्त १६६७को बुरहानपुरमें मर गया।

इस चढ़ाईके समय जयसिंहको कभी अपना पूर्ण युद्धकौशल काममें लेनेका पूरा पूरा अवसर नहीं मिला था। इतने बड़े धनी राज्यको जीतनेके लिए उसकी सेना बहुत ही थोड़ी और सर्वथा अनुपयुक्त थी। उसके पास सग्रहीत युद्ध तथा खाद्य-सामग्री केवल एक-दो माहके लिए ही पर्याप्त थी। घेरा चलानेके लिए अत्यावश्यक एक भी तोप उसके पास न थी।

४. बीजापुर राज्यपर शासन करनेवाले सामन्त-सरदार

घरेलू सैनिक विद्रोह बीजापुर राज्यके प्रधान अभिशाप थे। राजकीय सत्ताके निर्बल हो जानेपर सारा राज्य अनेकों सैनिक-जागीरोंमें बँट गया था। राज्यका शासन सैनिक आधिपत्य मात्र था। राज्यके सारे ही महत्त्वपूर्ण विश्वसनीय पदों तथा अधिकारपूर्ण कार्योंको कुछ इने गिने धन लोलुप सेनापतियोंने ही आपसमें बाँट लिया था और राज्यकी सारी सत्ता इन्हीं कुछ व्यक्तियोंके हाथमें केन्द्रित थी। राज्यपर आधिपत्य करनेवाले वे सैनिक सामन्त चार विभिन्न जातियोंके थे। सर्वप्रथम तो अफगान थे, जिनकी जागीरें पश्चिममें कोपलसे लेकर बंकापुर तक फैली हुई थीं। दूसरे हबशी थे, जो पूर्वमें कर्नूल परगने और रायचूर दोआबके एक भाग-वाले प्रदेशपर शासन करते थे। तीसरे महदवी सम्प्रदायके सैयद नेता थे, और चौथे कोंकणके नवायत वर्गके अरब मुल्लाओंका भी वहां विशेष

महत्व था। उस राज्यके हिन्दू पदाधिकारी तथा वहाके आश्रित हिन्दू राजा दोनोकी गणना पददलित जातियोमे होती थी। राज्यपर आधिपत्य करनेवाले सारे ही राजकीय अधिकारी विदेशी थे, जो वापस अपने देश जानेका विचार तक छोड कर यहा ही बस गए और अब वश-परम्परागत सामन्त सरदार बन बैठे थे। प्रत्येक दलवाले अपनी ही जातिमे शादी-विवाह करते थे, जिससे वे कभी यहाँकी स्थानीय आबादीमे सम्मिलित नही हो सके। विदेशी शासक अधिकारियोका यह दल कभी राज्य-शासन का एक अविभाज्य भाग नही बन सका। उनका एकमात्र उद्देश्य निजी स्वार्थ-लाभ ही था, और जहा तक उनका वेतन और पेंशन उन्हे बराबर मिलते रहते थे, इस बातकी चिन्ता उन्ह कभी नही सताती थी कि नाम मात्रके लिए भी वे जिस प्रदेश और राज्यके अग थे, उसपर कौन व्यक्ति शासन कर रहा था। यह देश उनका अपना न था, एव उनमे देश भक्ति-की भावनाका पूर्ण अभाव ही था। वे सचमुचमे राजनैतिक खानाबदोश और हृदयसे अनाथ ही थे, वे बेघरबारके ऐसे व्यक्ति थे जो भारतमे रहकर भी यहाके न थे। ऐसे अधिकारियोकी राजभक्तिके आधारपर स्थित राज्य बालूकी नीवपर बने हुए घरके समान था। विदेशियोकी विजयसे केवल जनताके शासकोमे बदला-बदली होती थी, जनताके जीवनपर उसका कुछ भी प्रभाव नही पडता था।

५. आदिलशाही सुलतानोका पतन तथा राज्याभिभावक पदके लिए कशमकश

मुहम्मद आदिलशाहके शासन-कालमे बीजापुर राज्यका विस्तार अपनी चरम सीमापर पहुँच गया था। अरब सागरसे लेकर बगालकी खाडी तक सारे भारतीय प्रायद्वीपमे वह फैला हुआ था। अपने अधीन जमींदारो और राजाओंसे वसूल होनेवाले टाकेके सवा पाँच करोड रुपयोंके अतिरिक्त बीजापुर राज्यकी अपनी वार्षिक आय भी ७ करोड ८४ लाख रुपये थी। बीजापुरकी सेनामे ८०,००० घुडसवार और २,५०,००० पैदल सैनिकोंके साथ ही ५३० युद्ध कुशल हाथी भी थे।

२४ नवम्बर १६७२को अली आदिलशाह द्वितीयकी मृत्युके साथ ही बीजापुर राज्यका सारा गौरव भी विलीन हो गया। अब उसके चार वर्षीय पुत्र सिकन्दरको सिहासनपर बैठाया गया और बीजापुरमे स्वार्थी

राज्याभिभावकोंका शासन प्रारम्भ हुआ, जिससे अन्तमें उस सल्तनतका सर्वनाश हुआ।

सन् १६७२से लेकर सन् १६८६में इस राजघरानेका अन्त होने तकका बीजापुरका इतिहास वास्तवमें वहाँके वजीरोंकी कार्यवाहियोंका ही विवरण है। विभिन्न विरोधी सरदारोंमें निरन्तर होनेवाले आन्तरिक गृह-युद्ध, प्रादेशिक अधिकारियों द्वारा अपनी स्वाधीनताकी घोषणाएँ, राजधानी तकमें राज्यके केन्द्रीय शासनका लुप्तप्राय हो जाना, यदा कदा होनेवाले मुगलोंके अनिर्णायक आक्रमण तथा मराठोंके साथ गुप्त रूपेण सन्धि होते हुए भी ऊपरी दिखावेमें उनके साथ शत्रुता बनाए रखना ही इन चौदह वर्षोंकी प्रधान विशेषताएँ थी।

२४ नवम्बर १६७२को अली आदिलशाह द्वितीय मर गया। तब दक्षिणी मुसलमानोंके दलके हबशी नेता खवासखाँने तुरन्त ही राजसत्ता अपने हाथोंमें लेकर आदिलशाह वंशके अन्तिम सुलतान बालक सिकन्दरको राज्य सिंहासनपर बैठाया। दूसरे सरदारोंके साथ किए गए वादोंको भगकर निश्चित बिल उन्हें सौंपनेसे नये प्रधान मन्त्रीने इन्कार कर दिया। तब तो सुयोग्य अनुभवी भूतपूर्व वजीर अब्दुल मुहम्मद खिन्न होकर राजदरबारसे चल दिया। "सुलतानकी बाल्यावस्था तथा राज्याभिभावककी अयोग्यताके कारण राज्य-तन्त्रका पतन होने लगा और राज्यमें सर्वत्र उपद्रव उठ खडे हुए।"

बीजापुरी सेनामें आधेसे अधिक सैनिक अफगान थे। उनका नेता अब्दुल करीम था, जो अब बहलोलखाँ द्वितीय कहलाता था, उसकी जागीर बंकापुरमें थी। ये अफगान अपने चढे हुए वेतनके लिए सरनीके साथ माँग करते थे, और खुलकर राज्य सत्ताका विरोध भी करते थे, एवं इन अफगानोंको दबाने या उनका समूल उच्छेदन करनेके लिए खवासखाँको बाध्य होकर गुप्त रूपमें मुगल सूबेदारकी सहायता माँगनी पडी। अतएव भीमाके तट तक आगे बढकर १९ अक्तूबर १६७५को मुगल सूबेदार बहादुरखाँने खवासखाँसे भेंट की और बीजापुरके अफगान दलको दबाने और शिवाजीके साथ युद्ध करने सम्बन्धी आवश्यक शर्तें तय कीं।

६ राज्याभिभावक बहलोलखाँ, १६७५-१६७७

बीजापुरी सेनाका प्रधान सेनापति बहलोलखाँ "प्राय सवासखाकी

आज्ञाका उल्लंघन कर उसका विरोध भी करता था।" अब मुगलोंकी सहायताका निश्चय हो जानेपर खवासखाँने उसके खिलाफ षड्यन्त्र रचा। किन्तु इस कपटपूर्ण आयोजनका आभास पाते ही बहलोल स्वयं खवासखाँके विरुद्ध प्रयत्नशील हुआ। अपने यहाँ भोजनके लिए आमन्त्रित कर ११ नवम्बरके दिन बहलोलने खवासखाँको बहुत शराब पिलाई और उसे कैद कर बंकापुर भेज दिया। तब वह स्वयं बीजापुरके किलेमें पहुँचा और बिना युद्ध किए ही वजीर बन बैठा। सारे राज्यमें भयंकर उपद्रव उठ खड़े हुए और दक्षिणी दलवाले बहलोलके विरोधमें तत्पर हुए।

बहलोलखाँका शासन केवल एक ही व्यक्तिकी शक्ति और योग्यतापर निर्भर था। वह व्यक्ति था, उसका प्रधान सलाहकार खिज्रखाँ पानी। १२ जनवरी १६७६को एक दक्षिणीने इस व्यक्तिको मार डाला। तब बहलोलने भी तुरन्त ही १८ जनवरीको असहाय कैदी खवासखाँको मरवा डाला और फिर मीनाज तथा अन्य दक्षिणी दलके नेताओंको दण्ड देनेके लिए बीजापुरसे चल पड़ा। २१ मार्चको कोवाके पास सर्जाखाँके आदमियों और बहलोलकी सेनामें एक घमासान लड़ाई हुई, जिसमें अफगान जीत गए। बहादुरखाँ दक्षिणियोंका साथ दे रहा था, और बीजापुरके अफगान शासकोंका विरोध करता था, एवं सर्जाखाँने शोलापुर जाकर बहादुरखाँकी शरण ली। शोलापुरसे दक्षिणकी ओर चलकर ३१ मार्चको बहादुरखाँने हलसंगीके पास भीमा नदी पार की। उसके घुड़सवारोंने बीजापुर शहरके आसपासके उपनगरों तकको लूटना शुरू कर दिया। अलियाबाद और बीजापुरसे ३ मील उत्तर-पूर्वमें इंदी नामक बीचवाले मैदानमें १३ जूनको बहलोल युद्ध करनेके लिए आगे बढ़ा। दक्षिणियोंके हमलेका सारा आघात मुगलोंकी सेनाके दाहिने पक्षपर लड़नेवाले मालवाके सूबेदार इस्लामखाँ और उसके तुर्कोंपर पड़ा। शत्रुओंके दो आक्रमणोंको तो उन्होंने सफलतापूर्वक पीछे हटा दिया, किन्तु बारूदके विस्फोटसे भड़ककर जब इस्लामखाँका हाथी उसे लेकर शत्रु सेनामें जा पहुँचा तब वह तथा उसका बेटा काम आए। भीमाके दूसरे पारपर स्थित मुगलोंके पड़ावको अफगानोंने लूटा और उसके रक्षकोंको तलवारकी धार उतारा। उधर भीमा नदीमें बाढ़ आ जानेसे बहादुरखाँ वहाँ आवश्यक सहायता भी न भेज सका।

रिश्वत देकर बहादुरखाँने बड़ी ही आसानीसे १४ मई १६७७को नलदुर्ग तथा ७ जुलाईको कुलबर्गापर अधिकार कर लिया। किन्तु अपने सहायक सेनापति दिलेरखाँके साथ नीति विषयक मतभेद हो जानेके कारण

अब वहाँ बहादुरखाँकी स्थिति बहुत ही सकटापन्न हो गई थी। १६७६ जूनमें दिलेरखाँ वहा पहुँचा। अफगान होनेके कारण वह बहलोलखाँका अन्तरग मित्र और बीजापुरके अफगान दलका प्रमुख सरक्षक बन गया। दिलेरखाँ और बहलोलखाँने बादशाहको पत्र लिखे, जिनमें उन्होंने दक्षिणके तीनों राज्योंके साथ गुप्त रूपसे समझौता कर शाही उद्योगोंमें सचमुच बाधक होनेका आरोप बहादुरखाँपर लगाया।

७. दिलेरखाँ और बहलोलकी गोलकुण्डापर चढ़ाई, १६७७

औरगजेबने बहादुरखाँको वापिस बुला लिया। तब वह दिसम्बर १६७७के आरम्भमें दक्षिणी भारत छोडकर लौट गया। अक्टूबर १६७८ तक दिलेरखा ही दक्षिणका स्थानापन्न सूबेदार बना रहा। दक्षिणी भारतमें मुगलोकी प्रगतिपर सामूहिक दृष्टि डालकर औरगजेबके शासनके आरम्भिक २० वर्षोंके विवरणका सक्षेपमें यों उल्लेख किया जा सकता है। बीजापुर राज्यके उत्तर-पूर्व भागके कल्याणी और बीदर जिलोंको उसने १६५७ ई०में जीता, नवम्बर १६६०में घूस देकर उस राज्यके सबसे उत्तरवाले प्रदेशके परेण्डा किले तथा जिलका अधिकारमें किया, जुलाई १६६८की सन्धि द्वारा शोलापुर प्राप्त किया, और अब नलदुग तथा कुलवर्गाको भी मुगल साम्राज्यमें मिला लिया गया। इस प्रकार पूर्वमें भीमा और मजीरा नदियोंसे घिरे हुए प्रदेशसे लेकर पूर्वमें कुलवर्गा और बीदरको जोडने वाली काल्पनिक देशान्तर रेखा (७७° पूर्व) तकका सारा विस्तृत भूमि-खण्ड मुगलोंके हाथमें आ गया था। मुगल साम्राज्यकी दक्षिणी सीमा हलसगीके सामने भीमाके उत्तरी किनारे तक पहुँच गई थी। यहाँसे बीजापुर नगरपर सुविधापूर्वक आक्रमण हो सकता था। मुगल साम्राज्यकी दक्षिण-पूर्वी सीमा गोलकुण्डा राज्यके पश्चिमी छोरके किले मालखेड तक जा पहुँचती थी।

बीजापुरके इस प्रदेशमें अपनी विजय परिपूर्ण करनेके बाद मुगल गोलकुण्डासे निवटनेके लिए तत्पर हुए। अगस्त माहमें मुगलोंने कुतुब शाहको धमकी दी कि यदि शिवाजी और शेख मिन्हाजको तत्काल ही पकडकर उनके हवाले नहीं करेगा तो वे गोलकुण्डापर आक्रमण कर देंगे। मुगलोका साथ देनेका वादा कर शेख मिन्हाजने मुगल सूबेदारसे बहुत-सा धन ऐंठ लिया था, फिर भी वह अन्तमें गोलकुण्डाके पक्षमें हो गया था।

सितम्बरमे दिलेरखाँ और वहलोलने गोलकुण्डापर चढाई की। अन्तिम मुगल थाने कुलवगासे चलकर वहासे २४ मील पूर्वमे गोलकुण्डाके प्रथम सीमान्त दुर्ग मालखेडकी ओर वे बढे। उसे उन्होंने एक ही दिनमे जीत लिया। किन्तु कुतुबशाही राजधानीसे ८० मील दूर मालखेडके पास ही शत्रुओकी एक बडी भारी सेनाने मुगलोके आक्रमणकी इस बाढको रोक दिया। दो माह तक लगातार युद्धके बाद भी उसका कोई निर्णायक परिणाम नही निकला। कुतुबशाही सेना बीजापुरियो और मुगलोके प्रदेशोमे दूर तक जा घुसी और आक्रमणकारियोको खाद्य-सामग्री पहुँचानेवाले सारे दलोका रास्ता ही रोक दिया गया। उधर वहलोलखाँ एक एक घातक बीमारीसे ग्रस्त हो चल वसा और भूखा मरनेसे अपने आपको वचानेके लिए उसके अनुयायी यहाँ-वहाँ विखर गए। तव दिलेरखाँ कुलवर्गाकी ओर लौट पडा। वहाँ राहमे उसे वहुत वडी हानि उठानी पडी। उसे चारो ओरसे घेरकर शत्रु नित्य प्रति उसपर आक्रमण करने लगे।

कुलवर्गामे मसूद दिलेरखासे मिला और मुगलोके साथ उसने सन्धि कर ली। यह तय हुआ कि मसूद बीजापुरका वजीर वनकर औरगजेबकी आज्ञाओका पालन तथा शिवाजीके विरुद्ध सदैव मुगलोकी सहायता करता रहेगा। पुन आदिलशाहकी वहन शहरवानू वेगमका (जो पादशाह बीबीके नामसे विख्यात थी) विवाह औरगजेवके किसी शाहजादेसे किए जानेका भी निश्चय हुआ। इसके वाद दिलेरखाँ उत्तरकी ओर लौट गया।

८. मसूदका राज्याभिभावक वनना, अफगानोका विद्रोह तथा बीजापुरके प्रान्तोंमे विप्लव

वहलोलखाँ २३ दिसम्बर १६७७को मर गया। गोलकुण्डाकी सेनाके साथ अगली फरवरीमे मसूद बीजापुर पहुँचा और वहाका राज्याभिभावक वन वैठा। किन्तु खजाना बिल्कुल खाली था, एव वह अफगान सैनिकोको चढा हुआ वेतन नही चुका सका, जिससे क्रुद्ध होकर वे अफगान उपद्रव करने लगे। उन्होंने वहलोलखाके अनाथ वच्चो, विधवाओ और अन्य सम्बन्धियोंके घरोपर अधिकार कर लिया तथा अपना वाकी रहा रुपया चुका देनेके लिए उन्हे बाध्य करनेको उनका खुले-आम अपमान किया। धनवान माने जानेवाले सभी नागरिकोको पकडकर अफगानोने उन्हे तरह-तरहकी यन्त्रणाएँ दी। राज्यके विभिन्न प्रान्तोमे भी नये राज्या

भिभावककी आज्ञाओका पालन ठीक तरहसे नही होता था। अतएव जब मुगल भी उससे रुष्ट हो गए तब उसका दुर्भाग्य चरम सीमाको पहुँच गया। वर्षा समाप्त होनेपर अक्तूबर १६७८मे पेडगावसे रवाना होकर दिलेरखाँ अकलूजमे जा डटा।

उसी समय सन्धिकी शर्तोके अनुसार शिवाजीने बीजापुरकी रक्षा तथा मसूदकी सहायतार्थ अपने ६,००० लोह-कवचधारियोंकी सेना भेजी। किन्तु शिवाजी और मसूदमे किसी भी प्रकार हार्दिक मित्रता होना एक असम्भव बात थी। कपटसे बीजापुरपर अधिकार करनेका शिवाजीने प्रयत्न किया। प्रतिदिन दोनोमे वैमनस्य बढता ही गया। अन्तमे खुले रूपमे उनमे झगडा हो गया। शिवाजी फिरसे बीजापुर राज्यको लूटने लगे। मराठोकी सेना शहरकी ओर बढी और उन्होने दौलतपुरके उपनगर खवासपुर खुसरुपुर और जुहरापुरके आसपासके प्रदेशोंको लूटा। अपने खुले शत्रुओं-की अपेक्षा मसूदको अपने इन कपटी मित्रोंसे अधिक भय मालूम हुआ, एव उसने दिलेरखाँका आश्रय चाहा और बीजापुरमे मुगल सेनाका सहर्ष स्वागत किया।

उधर दिलेरखाने शिवाजीके सुदृढ किले भूपालगढको २ अप्रैल १६७९के दिन जीतकर उमे पूरी तरह नष्ट भ्रष्ट कर डाला तथा उस किले-की सहायताके लिए आनेवाली १६,००० मराठा सेनाको भयकर मारकाट-के बाद हराकर वहासे भगा दिया। दिलेरखाकी इन सफलताओके फलस्वरूप बीजापुरपर आक्रमण करनेवाले शत्रुओका ध्यान उधरसे हट गया। परन्तु अन्तमे मसूदकी दुरगी चालसे दिलेरखाँका धैर्य छूट गया। धूलखेडके पास भीमा नदीको पार कर दिलेरखा बीजापुरसे केवल ३५ मील उत्तरमे स्थित हलसगी तक जा पहुँचा। आदिलशाही सत्ता पूर्ण-रूपेण विलीन हो चुकी थी, और मसूद तथा शर्जाखाके आपसी झगडेके फलस्वरूप सारे प्रदेश और राजधानीम भयकर अराजकता फैली हुई थी। अब बीजापुरके परस्पर विरोधी विभिन्न दलोम समझौता करानेके लिए मुगल सूबेदार ही एकमात्र मध्यस्थ बन गया।

औरगजेबका आदेश था कि सुलतानकी बहन शहरबानू उर्फ पादशाह-बीबीको शाही हरममे भेज दिया जावे। इस शाहजादीके प्रति बीजापुरके राजघराने तथा वहाकी जनताको भी समान रूपसे अत्यधिक स्नेह था। अतएव अपना शेष जीवन एक धर्मान्ध सुन्नीके महलोमे बितानेके लिए जब १ जुलाई १६७९को वह शाहजादी अपनी जन्मभूमिकी राजधानीसे

रवाना हुई, तब बीजापुरके राजदरबारी तथा वहाँकी जनताने रोते-रोते अपने ही उसे विदा दी।

९. दिलेरखाँकी बीजापुरपर चढ़ाई और शिवाजीका आदिलशाहकी सहायता करना; १६७९

उस शाहजादीके इस बलिदानसे भी उस अस्तप्राय राजघरानेको कोई लाभ न हुआ। मुगलोंकी तृष्णा किसी भी प्रकार शान्त होनेवाली न थी। अब दिलेरखाने यह माँग पेश की कि मसूद राज्याभिभावकका अपना पद छोड़कर अपनी जागीरको लौट जाए और बीजापुरका शासन मुगलों द्वारा नियुक्त अधिकारी द्वारा होता रहे। मसूदने इस प्रस्तावको अस्वीकार कर अपनी बुद्धिमानीका परिचय दिया। अपने आदेशोंकी यों खुले तौरपर पूर्ण अवहेलना होते देखकर दिलेरखाँने बीजापुरके साथ युद्ध घोषित कर दिया। मसूदने शिवाजीके पास अब एक दूत भेजा और इस कठिनाईके समयमें आदिलशाहकी रक्षाके लिए सहायता भेजनेकी प्रार्थना की। शिवाजीने तत्काल ही मसूदकी प्रार्थनाको स्वीकार कर लिया, तथा १०,००० मराठे घुड़सवार मसूदकी सहायतार्थ भेजे और २,००० बैलोंपर लादकर खाद्य-सामग्री भी बीजापुर पहुँचाई।

सितम्बर १६७९में मुगलोंने बीजापुरसे ५२ मील उत्तरमें स्थित भगलविडे किला जीत लिया, तथा भीमा नदी और उस किलेके बीचके सारे प्रदेशपर भी अधिकार कर लिया। तब उन्होंने सलोतगी, काशीगाँव और अलमलापर आक्रमण किए और अकलूजका भी घेरा डाला। किन्तु वहाँ कहीं भी उन्हें कोई सफलता न मिली। ७ अक्तूबरको दिलेरखाँ राजधानीसे ६ मील उत्तर-पूर्वमें बरतगी नामक स्थानपर पहुँचा। किन्तु शाहजादे शाहआलमका विरोध उसके लिए नई बाधाएँ उत्पन्न कर रहा था। बीजापुर-विजयमें देरी होनेके कारण औरंगजेब उसकी भर्त्सना करने लगा था, और उसके निजी सलाहकार और साथी भी आपसमें झगड़ रहे थे, एवं दिलेरखाको सर्वत्र विफलताका ही पूर्ण अंधकार दिखाई पड़ने लगा। १०,००० वीर सैनिकोंके साथ शिवाजी स्वयं पन्हाला और बीजापुरके बीचमें सेल्गुर नामक स्थान तक आ पहुँचे थे। उधर आनन्दराव भी उतनी ही और सेना लेकर ३१ अक्तूबर १६७९को शिवाजीसे आ मिला था, जिससे शिवाजीकी सेना दुगुनी हो गई। ४ नवम्बरको शिवाजीने

अपनी सेनाको दो भागोमे बाँट दिया। अपने साथ ८,५०० वीर सैनिकोको लेकर वह स्वय मूसला और बलमला होता हुआ उत्तर पूर्वकी ओर चला। आनन्दरायके अधीन १०,००० सैनिकोकी दूसरी टुकडी सगुलाकी राह उत्तर-पश्चिम दिशामे चलकर मुगल प्रदेशमे जा घुसी।

अब मराठा सेना कुल मिलाकर कोई ३०,००० घुडसवारोंसे भी अधिककी हो गई थी। चारो ओर लुटेरोका जाल सा छा गया था। भीमा नदीसे लेकर उत्तरमे नर्मदा नदी तकके सारे मुगल प्रदेशपर शिवाजीने हरएक दिशासे आक्रमण कर दिया और वहा सवत्र लूटने, जलाने तथा मारकाट करने लगा।

१०. बीजापुरके आसपासके प्रदेशोंको नष्ट-भ्रष्ट कर दिलेरका राजधानीपर आक्रमण करना

बादशाहके उलहनोंसे उत्तेजित होकर दिलेरखाँ पुन युद्धके लिए तत्पर हुआ। घेरा डालकर या एकाएक प्रबल आक्रमण द्वारा बीजापुर नगरको जीतनेकी दिलेरखांको कोई भी आशा नहा रह गई थी। पुन घेरा डालनेके लिए खाइयाँ खोदनेपर पीछेसे शिवाजीके आक्रमणका डर भी बना हुआ था। एव मीरज-पन्हाला प्रदेशपर चढाई करनेके उद्देश्यसे वह १४ नवम्बरको बीजापुर नगरके पाससे लौटकर पश्चिमकी ओर चल पडा। अब सबसे पहिले पागलाकी-सी भयकर क्रूरताके साथ वह बीजापुर राज्यके प्रदेशमे सवनाश करने लगा। वहाँके हिन्दू और मुसलमान सभी कैद किए जाकर गुलाम बना बेचे जाने लगे। अपने बच्चो सहित कुओंमे कूद-कूद कर स्त्रियोंने आत्महत्या की। तब दिलेरने दोण और कृष्णा नदीकी उपजाऊ हरी-भरी घाटियोपर धावा किया, और बीजापुरके धान्य-भण्डार कहे जानेवाले इस प्रदेशके जो भी उपवन, खेत और गाँव राहमे पडे उन्हे बरबाद कर दिया।

बीजापुरके किलेके सामने दिलेरखाका अब आगे डटे रहना अत्यधिक कठिन हो गया। उसकी सेनाने भी उसकी आज्ञा मानना अस्वीकार कर दिया था। इसलिए बीजापुरके किलेके सामने निरर्थक ही पूरे ५६ दिन बितानेके बाद २९ जनवरी १६८०के दिन बेगम हौजके पाससे अपना पडाव उठाकर दिलेरखाँ वापिस लौट चला। तब कुछ दिन तक पागल कुत्तेकी तरह यत्र-तत्र घूमता हुआ राक्षसी क्रूरतापूर्ण हत्याएँ और लूट-

मार करने लगा। तदनन्तर दिलेरने बेरड प्रदेशपर आक्रमण किया। सागर ही उस प्रदेशकी राजधानी था, और तब वहाँ पाम नायक शासन करता था। २० फरवरीको दिलेर गोगी पहुँचा, किन्तु जब दिलेरखाने गोगीसे ८ मील दक्षिणमे सागरपर धावा करनेका प्रयत्न किया, तब उसने बुरी तरह मुँहकी खाई।

चपल बेरडोंके पीछेसे आक्रमण कर देनेपर शाही घुडसवार त्रस्त हो वहाँसे भाग खडे हुए और बडी ही दीनताके साथ दया-याचना करने लगे। उस दिन मुगल पक्षके कोई १,७०० सैनिक काम आए। मुगल सैनिकोका सारा साहस विनष्ट हो गया और शत्रुके पुन सामना करनेपर प्रत्येक सैनिकको ५,००० रुपये पारितोषिक देनेका प्रलोभन भी उन्हे युद्धके लिए तत्पर नही कर सका।

११ दिलेरखाँको पदच्युतकर वापस बुला लेना, १६८०

अब औरगजेब बहुत ही क्रुद्ध हो उठा, एव उसने दिलेरखाँ और शाहआलम दोनोको ही दक्षिणसे वापिस बुला लिया। बहादुरखांको, जो अब खान-इ जहा कहलाता था, उसने दूसरी बार दक्षिणका सूबेदार नियुक्त किया। मई १६८०मे खान-इ-जहाके औरगाबाद पहुँचनेपर शाह-आलमने दक्षिणी सूबेकी सूबेदारी उसे सौंप दी।

१२ बीजापुरके प्रति औरगजेबकी नीति, १६८० से १६८४ ई० तक

दिलेरखाकी विफलता और फरवरी १६८०मे उसके वापम लौट जानेके चार वप बाद तक मुगल बीजापुरके विरुद्ध कोई भी निर्णायक कायवाही नही कर सके, क्योकि वे तब शम्भूजीके माहस और वीरतापूण अनपेक्षित कार्योंके कारण बहुत ही चिन्तित और व्यग्र थे। १३ जुलाई १६८१को औरगजेबने बीजापुरके मुख्य सेनापति शर्जाखाको एक मैत्रीपूण पत्र लिखा। शम्भूजी द्वारा अधिकृत बीजापुर प्रदेशको वापिस लेनेके लिए शम्भूजीके विरुद्ध मुगलोकी सहायता करनेके हेतु उसने शर्जाखासे विशेष आग्रह किया। शाहजादे आजमसे विवाहित बीजापुरी शाहजादी शहरबानूने भी १८ जुलाईके दिन शर्जाखाके नाम इसी आशयका एक व्यक्तिगत

पत्र लिखा। परन्तु सहयोगके लिए की गई औरंगजेबकी इस प्रार्थनाका किसी भी आदिलशाही अधिकारीने कोई उत्तर नहीं दिया। बीजापुरियो-की ओरसे मराठोंको मिलनेवाली मददके सुस्पष्ट प्रमाण औरंगजेबको वारम्वार मिलते गए इसलिए औरंगजेबने बीजापुरियोंके विरुद्ध भी युद्ध छेडकर अपने राज्यकी रक्षाके लिए ही अपने सारे साधनोंको एकत्रित करनेके लिए उन्हें बाध्य करनेका निश्चय किया, जिससे कि शम्भूजीपर अधिक दबाव पड सके। बीजापुर राज्यमें जा घुसनेके लिए अप्रेल १६८२ में शाहजादे आज़मकी अधीनतामें एक बडी सेना वहाँ भेजी गई। आज़म-ने सीमान्त प्रदेशको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और बीजापुरसे १४० मील उत्तर-में स्थित धरूरके किलेपर अधिकार कर लिया।

अब बीजापुरकी दशा अत्यन्त निराशापूर्ण हो गई थी। आदिलशाहके पतित राज-दरबारमें पूरे पाँच साल तक वज़ीरी करके अब सिद्दी मसूद वहाँसे बिलकुल ऊब उठा था। अतएव २१ नवम्बर १६८१को वह राज दरबार छोडकर चल दिया, और अपने किले अडोनीमें पहुँचकर उसने अपने वज़ीर पदसे त्याग-पत्र दे दिया। तब १९ मार्च १६८४को आका खुसरू बीजापुरका वज़ीर बनाया गया, किन्तु ६ माहके भीतर ही ११ अक्तूबरके दिन वह मर गया। इस समय राज्यकी रक्षाके लिए बहुत जोरोंसे आयोजन किए गए। ३ मार्च १६८४को यह कार्य सिकन्दरने अपने अत्यन्त साहसी सेनापति सैयद मख़दूम उर्फ शर्ज़ाखाँको सौंपा। उसके आश्रित शासक वाकीनखेडाके पास नायकको लिखा गया था कि अपने बेरड सैनिकोंमें जो भी अच्छे निशानेबाज हों उन्हें साथ लेकर वह स्वयं बीजापुर आवे।

३० मार्चके दिन आदिलशाहके पास औरंगजेबका एक पत्र पहुँचा, जिसमें उसने आदिलशाहको अपनी अधीनता स्वीकार करने, मुगलोंकी शाही सेनाको तत्काल रसद पहुँचाने, बिना रोक-टोकके अपने राज्यमेंसे होकर मुगल सेनाको निकलने देने, मराठोंके साथ चलनेवाले युद्धमें मुगलोंकी सहायतार्थ ५–६,००० घुडसवारोंको भेजने, तथा शम्भूजीको सहायता या आश्रय न देनेकी माँग की थी। सिकन्दरने इस पत्रका बहुत ही करारा उत्तर दिया। तब तक मुगलों द्वारा जीते गए बीजापुर राज्यके सारे प्रदेश तथा बीजापुरसे वसूल किए हुए टाँकेकी सारी रकम लौटानेके लिए उसने औरंगजेबको लिखा। उसने यह भी माँग की कि बीजापुर राज्यमें स्थापित सारी मुगल चौकियाँ उठा ली जावें, तथा अपने ही

राज्यमे होकर मुगल शम्भूजीपर चढाई करें। शिवाजी या शम्भूजी द्वारा छीनी गई बीजापुर राज्यकी सारी धरती जब तब मराठासे जीतकर आदिलशाहको वापिस लौटा न दी जावे तब तक मुगल शम्भूजीके साथ सन्धि न करें इसकी भी उसने विशेष ताकीद की। अब दोनों ही पक्ष-वाले युद्धकी तैयारियां कर रहे थे। १ अप्रेल १६८५को मुगलोंने पहली खाइयाँ खोदी और यो बीजापुरका घेरा प्रारम्भ हुआ।

१३. बीजापुरके घेरेका प्रारम्भ

बीजापुर शहरकी दीवारें लगभग अढाई वर्गमील जमीन घेरे हुए हैं। शहरपनाहका यह घेरा अण्डाकार है। ४० से ५० फुट चौडी खाई पार करनेके बाद हमे मजबूत विशाल-काय दीवारें मिलती हैं, जिनकी ऊँचाई ३० फुटसे बढकर कही-कही तो ५० फुट की है। उनकी औसत चौडाई लगभग २० फुटकी है। इस शहरपनाहको सुदृढ बनाने और उसकी सुरक्षाका ठीक प्रबन्ध करनेके लिए दरवाजोंके पासकी दस बुर्जोंके अतिरिक्त अन्य दूसरी ९६ बुर्जे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पश्चिमकी शर्जी बुजकी ओर कुछ भी ध्यान न देकर औरगजेबने दक्षिणवाली लण्डा-कसब बुर्जपर ही अपनी सब तोपोकी जोरोंसे गोलाबारी की थी, जिससे उस बुजके पास शहरपनाह टूट गई। इस लण्डा-कसब बुज और फिरगी बुजके बीचमे मगली दरवाजा है। बीजापुर नगरपर अधिकार हो जानेके बाद विजयी औरगजेबने इसी दरवाजेमे होकर उस नगरमे प्रवेश किया था, एव तदनन्तर उसका नाम बदलकर फतेह दरवाजा रख दिया गया।

शहरके बीचमे किला आक नामक एक और भीतरी दुर्ग है, जिसके भी चारो ओर किलेबन्दी की हुई है तथा जिसका घेरा कोई एक मील लम्बा है। आदिलशाहोंके सारे राजमहल तथा सरकारी दफ्तर इसी भीतरी गढके अन्दर बने हुए थे।

१ अप्रेल १६८५को मुगलोने बीजापुरका घेरा डाला। एक बडे तालाव-को अपने पीछे रखकर शहरके उत्तर-पश्चिममे शाहपुरकी तरफ शहर-पनाहसे कोई आधे मीलकी दूरीपर रुहेल्लाखा और कासिमखाँने अपनी अपनी खाँइया खोदी। उधर पश्चिममें जुहरापुर या रसूलपुर उपनगरके पास खान इ-जहाँने अपनी सेनाके आगे बढनेका प्रयत्न किया। १४ जूनको शाहज़ादा आज़म एक बडी सेनाके साथ वहा पहुँचा, और नगरसे दक्षिणमे

बेगम हौजमें पडाव डालकर उस घेरेके संचालनका नेतृत्व उसने अपने हाथमें ले लिया।

घेरा डालकर किला लेनेमें मुगलोंकी अयोग्यता, ढिलाई तथा अव्य-वस्था लोक-प्रसिद्ध थी। साथ ही बीजापुर नगरके आस-पासकी धरती बहुत ही पथरीली और कठोर है। एक-दो फुट खोदनेपर ही ठोस चट्टानें निकल आती हैं, अतएव मुगल बडी मिहनत तथा कठिनाईसे बहुत ही धीरे-धीरे आगे बढ पाते थे।

इस संकटके समय उसके साथी और सहायक आदिलशाहके पास एकत्रित होने लगे। १० जूनको सिद्दी मसूदकी सेना आई। तब १४ अगस्तको गोलकुण्डाका सैनिक-दल आया, और अन्तमें १० दिसम्बरको हम्बीररावके नेतृत्वमें शम्भूकी सेनाकी दूसरी टुकडी भी आ पहुँची।

२९ जून १६८५को शाहजादा आजम बीजापुर किलेके बिलकुल ही पास पहुँच गया। किन्तु इस एक माहसे भी कम समयमें उसको शत्रुके साथ तीन भयंकर युद्ध करना पडे थे। पहली जुलाईको अब्दुर् रऊफ और शर्जाखाने उसकी खाइयोंपर धावा किया। बहुतसे मुगल सेनानायक घायल हुए और कई मारे गए। घेरा डाले हुई पडी मुगल सेनाके पडाव-में खाद्य-सामग्री तथा अन्य सामान लानेवाले दलोंपर दूसरे दिन दक्षि-णियोंने हमलाकर बहुत करके उन्हें भी मुगल पडाव तक पहुँचनेसे रोक दिया।

१४. फिरोजजंगका खतरेमें पडे हुए शाहजादे आजमको बचाना

अब मुगल पडावमें अकाल-सा पड गया। बीजापुरके आसपासके प्रदेशपर इतने अधिक आक्रमण हो चुके थे, और वह इतनी बार बरबाद किया जा चुका था कि वहा कहीं भी कोई खाद्य-सामग्री मिल सकना असम्भव था। उत्तरकी ओरसे वहाँ जानेवाले सारे रास्ते मराठोंके उप-द्रवोंके कारण बन्द थे, और अब बरसातके प्रारम्भ हो जानेसे सब नदियो में बाढ आ गई थी। "पडावमें अब धान्य पन्द्रह रुपये सेर बिकता था और फिर भी बहुत ही थोडी मात्रा प्राप्य होती थी।"

ससैन्य बीजापुरसे लौटनेके अतिरिक्त आजमके बचावका दूसरा कोई उपाय औरंगजेबको नहीं सूझा, एवं औरंगजेबने आजमको वैसा आदेश दिया अपने सारे सेनापतियोंको एकत्रित कर शाहज़ादेने उनकी सलाह पूछी,

तब उन सबने भी वापिस लौट जानेकी ही राय दी। किन्तु अब आजमको आवेश आ गया। उसका प्रतिद्वन्द्वी भाई शाहजादा शाहआलम कुछ ही समय पहिले पराजित हो घोरणसी नगरसे निराश विफलमनोरथ लौटा था। आजम नहीं चाहता था कि शाहआलमकी सी उसकी भी दुर्दशा हो।

तब तो औरंगजेब आजमको सहायता पहुँचानेके लिए तत्काल प्रयत्नशील हुआ। ५,००० बैलोंपर लादकर खाद्य-सामग्री भेजी गई। सैकड़ों सालो घोड़ोंपर बहुत-सा द्रव्य तथा गोला-बारूद भी शाहजादेके लिए रवाना किया गया। इस रसदको शाहजादेके पड़ाव तक सकुशल पहुँचा देनेके लिए गाजीउद्दीन बहादुर फिरोजजंगके नेतृत्वमें एक सशक्त सेना ४ अक्तूबर १६८५को शाही पड़ावसे रवाना हुई। इन्दीके पास सर्जाखाँको हराकर राह भर लड़ता-भिड़ता फिरोजजंग भूखों मरती मुगल सेना तक जा पहुँचा। फिरोजजंगके वहाँ पहुँचते ही "मुगल पड़ावमें अब दुर्भिक्षके स्थानपर हर वस्तु बहुतायतसे मिलने लगी और भूखों मरते सैनिकोंको जीवन-दान मिला"। उधर प्रत्येकके सिरपर धान्यका एक थैला उठवाए ६,००० पैदल बेरड सैनिकोंको लेकर रात्रिके समय पाम नायकने प्रयत्न किया कि वह सारा धान्य किसी भी तरह बीजापुर किलेमें पहुँचा दे, किन्तु फिरोजजंगने इस दलको पराजित कर मार भगाया। यह उसकी दूसरी उल्लेखनीय सफलता थी।

उधर कुतुबशाहके गोलकुण्डा किलेमें जा छुपनेपर अक्तूबर १६८५के आरम्भमें शाहजादे शाहआलमने बिना किसी विरोधके गोलकुण्डा राज्यकी राजधानी हैदराबादमें प्रवेश किया। कई कुतुबशाही अधिकारी शाहआलम-के साथ जा मिले। किन्तु बीजापुर और मराठोंके साथ मैत्रीपूर्ण नीति बनाए रखनेका पक्षपाती, कुतुबशाही प्रधान मन्त्री मादन्ना पण्डितके मार्च १६८६में मारे जानेके बाद ही वहाँ कुतुबशाही राज्यपर मुगलोंका यह अधिकार स्थायी हो सका।

१८. बीजापुरका घेरा चलाते समय मुगलोंके कष्ट और कठिनाइयाँ

बीजापुरका घेरा डाले जून १६८६में पन्द्रह माह पूरे होनेको आए, फिर भी उसका कोई निर्णायक परिणाम नहीं निकल रहा था।

मतभेद और पारस्परिक ईर्ष्याके कारण मुगल सेनापतियोंमें फूटने उग्र रूप धारण कर लिया था। औरंगजेबने महसूस किया कि जब तक

वह स्वय जाकर इस घेरेके सचालनको अपने हाथमे न लेगा तब तक उस किलेका जीतना सम्भव नही। अतएव १४ जून १६८६के दिन वह शोलापुरसे रवाना हुआ और २ जुलाईको बीजापुरके किलेके पश्चिममे रसूलपुरके पास जा पहुँचा। घेरेको दृढताके साथ चलाकर शत्रुको दबानेके लिए तत्काल ही आदेश दिए गए।

इस वर्ष वर्षाके अभावके कारण दक्षिणमे जो दुर्भिक्ष पडा, उससे घेरा डालनेवालोके कष्ट बहुत बढ गए थे। परन्तु बीजापुर नगरमे घिरे हुओंके कष्ट तो उनसे भी कही दस गुना अधिक थे। "किलेमे अनगिनत मनुष्य और घोडे मरे।" घाडोकी कमीके कारण ही शत्रुके चारा आर मडराने और भटक जानेवाला तथा यातायातके साधनाको छिन्न भिन्न कर देनेकी अपनी परम्परागत प्रिय युद्ध शैलीका प्रयोग दक्षिणी इस बार नही कर सके। घेरा जब बहुत ही कडाईके साथ चल रहा था, तब मुसलमान मुल्लाओका एक दल बीजापुर नगरसे निकला और मुगल पडाव मे पहुँचकर औरगजेबकी सेवामे उपस्थित हुआ। उन्होने निवेदन किया, आप कट्टर मुसलमान है, धार्मिक कानूनका आपने पूर्ण अध्ययन किया है, कुरानकी सम्मति तथा मौलवी-मुल्लाओंके आदेशोंके विरुद्ध आप कभी कुछ नही करते। कृपा कर हम यह बतावें कि हमारे समान मुसलमान भाइयोंके विरुद्ध आपने यह जो अधार्मिक युद्ध छेडा है, उसे किस प्रकार आप न्यायोचित प्रमाणित कर सकते है।" औरगजेबके पास उत्तर तैयार था, उसने तत्काल ही कहा—"तुमने जो कुछ भी कहा वह अक्षरश सत्य है। तुम्हारे राज्यका मुझे लोभ नही है। परन्तु उस नारकीय काफिरका वह काफिर बेटा—औरगजेबका सकेत शम्भूजीकी ओर था—तुम्हारे साथ है, और तुम उसे आश्रय भी देते हो। यहाँसे लेकर दिल्लीके दरवाजो तक वह मुसलमानोको कष्ट दे रहा है, और रात दिन उसकी शिकायतें मेरे पास पहुँचती है। उसे मेरे हवाले कर दो, मै दूसरे ही क्षणमे अपना घेरा उठा लूगा।" निरुत्तर हो बेचारे मुल्लाओको चुप रह जाना पडा।

औरगजेबका निजी डेरा अब तक खाइयोंसे कोई दो मील पीछे था। ४ सितम्बरको उसे वहासे हटाकर खाइयोके ठीक पीछे ला खडा किया। अस्त्र शस्त्रसे पूरी तरह सुसज्जित हो घोडेपर बैठकर एक ढकी हुई सुरक्षित गलीकी राह औरगजेब अपने डेरे तक पहुँचा और वहा घेरा चलानेवाले सेनापतियोकी सलामी ली। तब घोडेपर चढा हुआ वह खाईके

पास पहुँचा और किलेकी बुर्जपर गोलाबारी करनेको चढाई हुई तोपोंकी देखभाल की, तथा वहा उसने स्वय यह समझनेका प्रयत्न किया कि किस कारणसे किलेको जीतनेमे अब तक इतनी देरी हो रही थी।

१६ बीजापुरके अन्तिम सुलतानका पतन और अन्त

उस दिनसे एक सप्ताह बाद ही बीजापुरका पतन हुआ, किन्तु आक्रमण करके बीजापुर नही जीता गया था। किलेमे घिरे हुए सैनिक पूर्णतया हताश हो चुके थे। आदिलशाही राज्यको बचा सकनेकी कोई आशा अब नही रह गई थी। सुलतान स्वार्थी सरदारोंके हाथमे कठपुतली बना हुआ था। बाहरसे किसी भी प्रकारकी सहायता पानेकी सारी आशाएँ तब तक टूट चुकी थी। भविष्य अब सर्वथा अन्धकारपूर्ण देख पडता था। नगरके रक्षक दलमे अब केवल २,००० सैनिक ही बच रहे थे। ९ सितम्बरकी रातको दो प्रमुख बीजापुरी नेताओ नवाब अब्दुर् रऊफ और शर्जाखाके कामदार फिरोजजगकी सेवामे पहुँचे और बीजापुर नगरके आत्म-समर्पण सम्बन्धी समझौतेकी बातचीत प्रारम्भ की। औरगजेबके सम्मुख उपस्थित होनेपर उसने अब्दुर् रऊफ और शर्जाखाके प्रति विशेष कृपा दिखाई।

रविवार, १२ सितम्बर १६८६के दिन बीजापुर राजघरानेका पूर्ण पतन हो गया। उस दिन दोपहरमे कोई एक बजे जब आदिलशाही सुलतानोका अन्तिम वशज सिकन्दर अपने वश-परम्परागत राज्यसिंहासनको छोडकर राव दलपत बुदेलेकी देख रेखमे बीजापुरके राजमहलोंसे निकला, तब उसके मार्गके दोनो ओर उसके प्रजा-जन पक्ति बाँधे खडे रो-राकर विलाप कर रहे थे। वहाँसे चलकर सिकन्दर रसूलपुरमे औरगजेबके पडावमे गया।

गद्दीसे उतारे हुए इस सुलतानको मुगल मनसब देकर उसे 'खान' की उपाधि दी गई और उसकी एक लाख रुपया पेंशन भी नियत की गई। बीजापुरके सब ही अधिकारियोको मुगल साम्राज्यकी नौकरीमे रख लिया गया।

१९ सितम्बरको उस मुगल विजेताने एक पालकीनुमा सिहासनपर बैठकर सफशिकनखाकी खाइयोके पास होते हुए मगली दरवाजे नामक दक्षिणी दरवाजेसे बीजापुरमे प्रवेश किया। किलेपर आक्रमणके लिए भी

पहिले इसी मार्गका निश्चय हुआ था। तब सारी राह अपने दाएँ-बाएँ सोने-चादीकी मोहरें लुटाता हुआ औरगजेब नगरके विभिन्न मार्गोसे गुजरा तथा किलेकी दीवारो, बुर्जों और राजमहलोका भीतरसे निरीक्षण किया। तब वह जुम्मा मसजिदमे पहुँचा और अपने ऊपर की गई ईश्वरीय कृपाओंके लिए उसने ईश्वरसे दुहरी प्रार्थना की। सिकन्दरके राजमहलमें उसने कुछ घण्टो तक विश्राम किया तथा अपनी विजयके उपलक्षम सिकन्दरके राजदरबारियोकी अभिनन्दक भेंटें स्वीकार की। जीवित व्यक्तियोंके चित्र बनाकर मनुष्यको ईश्वरके साथ प्रतिस्पर्धा नही करनी चाहिए, कुरानके इस आदेशके विरुद्ध जो कोई भी चित्र वहाँ दीवारोपर बने हुए थे उन सबको खुरेद देनेका हुक्म दिया गया, और औरगजेबकी इस विजयकी बात सुप्रसिद्ध तोप 'मलिक-इ मैदान' पर खुदवाई गई।

स्वतन्त्र राज्य तथा राजघरानेके पतनके बाद बीजापुर नगर पूर्णतया चौपट हो गया। वह उजड गया और सर्वत्र भयकर नीरवता तथा उदासीनता छा गई।

कैदीकी ही दशामे सतारा किलेके बाहर ३ अप्रैल १७००को सिकन्दर-की मृत्यु हो गई। तब उसकी उम्रके ३२ वर्ष भी पूरे नही हो पाए थे। उसकी अन्तिम इच्छाके अनुसार उसके शवको बीजापुर ले जाकर उसके आध्यात्मिक गुरु शेख फहीमुल्लाकी समाधिके तले बिना छतवाले एक प्राकारमें गाड दिया गया।



अध्याय १३

कुतुबशाहीका पतन और अन्त

१. अबुलहसन कुतुबशाहका राज्यारोहण, १६७२

गोलकुण्डाका छठवाँ सुलतान अब्दुल्ला कुतुबशाह जब अपने पिताके बाद सन् १६२६ ई०मे गोलकुण्डाके सिंहासनपर बैठा, तब उसकी उम्र १२ वर्षकी थी। उसने ४६ वर्ष राज्य किया, परन्तु अपने सारे शासन-कालमे वह दूसरोके हाथकी कठपुतली ही बना रहा। ४० वर्षसे भी अधिक काल तक तो उसकी मा हयातबख्श बेगम ही वास्तवमे शासन करती रही। वह एक दृढ चरित्रवाली स्त्री थी। सन् १६६७मे उसकी मृत्यु हो जानेपर अब्दुल्लाके ज्येष्ठ दामाद सैयद अहमदने राज्यभारको सम्हाला। अब्दुल्ला जीवन पर्यन्त आलसी और प्राय अशक्त बुद्धिहीन ही रहा। राज्यकी परम्पराके अनुसार न्याय करने या जनताको दर्शन देनेके लिए वह कभी खुले दरबारमे नही बैठता था। गोलकुण्डाके किलेकी चहार-दीवारीके बाहर जानेका भी उसने कभी साहस नही किया। इस प्रकारकी परिस्थिति-के स्वाभाविक अनिवार्य परिणामस्वरूप गोलकुण्डा राज्यमे कुप्रबन्ध और अस्त व्यस्तता सदैव बनी रही।

अब्दुल्लाके कोई पुत्र न था। उसके केवल तीन लडकियां थी। दूसरी लडकीका विवाह औरंगजेबके पुत्र मुहम्मद सुलतानके साथ हुआ था। पहली सैयद अहमदको ब्याही थी, जो स्वयको मक्काके एक बहुत ही उच्च घरानेका वशज बताता था। अपनी योग्यतासे वह प्रधान मन्त्री के पदपर पहुँचकर राज्यका यथार्थ शासक भी बन गया था। सैयद सुलतानके साथ तीसरी शाहजादीके विवाहका प्रस्ताव था। किन्तु जिस दिन विवाह होनेवाला था उसी दिन सैयद अहमदने अब्दुल्लासे कहा—

"यदि आपने अपनी लडकीका विवाह सैय्यद सुलतानके साथ किया तो मैं तत्काल ही राज्य छोडकर चला जाऊँगा" । तब तो बडी ही तत्परताके साथ शाहजादीके लिए दूसरा वर खोजा गया । राजमहलके अधिकारियोंने अब अबुलहसनको चुना । इस युवकका पिता कुतुबशाही घरानेका ही वंशज था । पीर सैय्यद राजू कत्तलका शिष्य बनकर इस अबुलहसनने अपने जीवनके १६ वर्ष एक फकीरके समान आलस्यपूर्ण तथा चिन्तारहित ही बिताए थे । अब उसीको राजमहलोंमे ले जाकर तुरन्त ही शाहजादीके साथ उसका विवाह कर दिया गया ।

२१ अप्रैल १६७२को अब्दुल्लाका देहान्त हो गया । अब एकाएक राज्यके उत्तराधिकारके लिए झगडा उठ खडा हुआ । कुछ अव्यवस्था तथा आपसी युद्धके बाद महल्दार मूसाखाँ तथा अन्तःपुरके अन्य अधिकारियोंकी सहायतासे उच्च कुलीन ईरानी नायक सैय्यद मुहम्मदने सैय्यद अहमदको घेरकर बलपूर्वक कैद कर दिया । तब अबुलहसनको राजगद्दीपर बैठाकर उसका राज्याभिषेक किया और मुजफ्फर उसका प्रधान मंत्री बना । अब मुजफ्फरका सब कुछ काम करनेवाले ब्राह्मण नौकर मादन्ना पण्डितको लोभ देकर अबुलहसनने अपनी ओर कर लिया, तथा उसके द्वारा मुजफ्फरके निजी शरीर-रक्षकोंके कई नायकोंको भी प्रलोभन देकर बहका दिया, और तब एक दिन बिना किसी उपद्रवके मुजफ्फरको वजीरके पदसे हटा दिया । अब अबुलहसनने मादन्नाको सूर्यप्रकाशरावकी उपाधि देकर गोलकुण्डाका वजीर बनाया । वजीरोंकी यह बदला-बदली सन् १६७३मे हुई, उसके बाद उस राज्यके पतनसे कुछ ही पहिले सन् १६८६मे उसकी हत्या होने तक मादन्ना ही वजीर बना रहा । मादन्नाका भाई आकन्ना गोलकुण्डाका प्रधान सेनापति बना, उसके वीर और विद्वान् भतीजे योगन्नाको, जो रुस्तमराव कहलाता था, गोलकुण्डाकी सेनामें उच्च पद दिया गया । अपने आश्रित मुहम्मद इब्राहीमको मादन्नाने गोलकुण्डाका सर्वोच्च अमीर बनाया ।

मादन्नाके इस बारह-वर्षीय मन्त्रित्वकालमे भी राज्यके आन्तरिक शासनमें अब्दुल्लाके शासन-कालकी सी अव्यवस्था तथा वैसे ही अत्याचार निरन्तर चलते रहे, स्वभावतया परिस्थिति दिनोदिन बिगडती ही रही । अतएव अपने राज्यकी सुरक्षाके लिए मादन्नाको एकमात्र उपाय सदा विजयी होनेवाले मराठा राजाके साथ घनिष्ठ मैत्री स्थापित करना

ही देख पडा, और इसी कारण गोलकुण्डाकी रक्षाके निमित्त उन्हे प्रति-वर्ष एक लाख हूण देते रहनेका भी उसने वायदा किया था।

२. गोलकुण्डा सुलतानके प्रति मुगल नीति

औरगजेब जानता था कि जब तक बीजापुर राज्य विद्यमान था, गोलकुण्डा सुरक्षित ही रहेगा, अतएव गोलकुण्डापर पहिले अधिकार करनेका उसने प्रयत्न नही किया।

अपने वजीर मादन्नाको ही सारा राजकीय शासन-कार्य सौपकर सुलतान अबुलहसन अपने राजमहलोम बन्द अपनी अनगिनित रखेलियो तथा नतकियोके साथ पडा जीवन बिताता था। सुलतान अब्दुल्ला कुतुबशाहके शासन-कालम हैदराबाद भारतीय भोग विलासियोके लिए तीर्थ बन गया था। वहाँ कोई २० हजार वैश्याएँ थी, जो प्रत्येक शुक्रवारको सार्वजनिक चौकमे सुलतानके सामने नृत्य करती थी, और जिनके घरोंके पासके अनगिनित शराबखानोम प्रतिदिन कुल मिलाकर ताडीकी कोई १,२०० बडी-बडी पखालें खाली हो जाती थी। किन्तु साथ ही अब्दुल्लाने विलासिताको बढानेवाली कई एक ललित कलाओको भी प्रोत्साहन दिया था। आर्थिक सहायता देकर उसने अपनी राजधानीमे कई एक ऐसे चतुर कारीगरोको बसाया था, जिनकी बनाई हुई अत्यधिक सुन्दर वस्तुएँ सारे भारतवर्षमे सुप्रसिद्ध थी। सुलतान अब्दुल्ला स्वय भी बहुत ही उच्चकोटिका सगीतज्ञ था। उसे 'तानशाह' अर्थात् सरस सुलतान कहते थे, जो सर्वथा सार्थक ही था।

सुलतानको पौने तीन करोड रुपयोकी स्थायी आय थी। औरगजेबके गद्दीपर बैठनेके कोई ३० वर्ष बाद तक गोलकुण्डा राज्य मुगल आक्रमणोसे बचा रहा। शिवाजी और उनके सहायक आदिलशाहके साथ उलझे रहनेके कारण गोलकुण्डाकी ओर मुगल ध्यान न दे सके।

सन् १६६५-६६ ई०मे जयसिंहके सेनापतित्वमे, सन् १६७९ मे दिलेरखा द्वारा किए गए तथा सन् १६८५मे शाहजादे मुहम्मद आजमके नेतृत्वमे जब-जब मुगल सेनाने बीजापुरपर आक्रमण किया, तब तब विपत्तिमे पडे अपने इस भाईकी सहायतार्थ अपनी सेनाएँ भेजकर गोलकुण्डाके सुलतानने खुले तौरपर बीजापुरको मदद दी थी। किन्तु औरगजेबकी दृष्टिमे काफिरोके साथ भाई-चारा स्थापित करना ही कुतुबशाहका सबसे भयकर

अपराध था। सन् १६६६मे शिवाजीके आगरासे भाग निकलनेके बाद उन्हे युद्ध-सामग्री, आदि लेकर कुतुबशाहने शिवाजीकी पर्याप्त सहायता की थी, जिसके फलस्वरूप उन्होने अपने सारे किले मुगलोके पाससे वापिस छीन लिए। पुन १६७७मे जब शिवाजी हैदराबाद गए थे, तब कुतुबशाहने बडे ही आनन्द और उत्साहके साथ उनका स्वागत किया था, शिवाजीके घोडेके गलेमे रत्नोका हार डालकर तथा अपने राज्यकी सुरक्षा के निमित्त प्रति वर्ष एक लाख हूण कर देनेका वायदा कर शिवाजीके एक विनीत आश्रितकी तरह कुतुबशाहने उनके प्रति व्यवहार किया था। यही नही, उसने मादन्ना और आकन्ना जैसे ब्राह्मणोका अपना प्रधान मन्त्री बनाया तथा यो अपने राज्य-शासनमे हिन्दुओके प्रभावको प्राधान्य प्राप्त करने दिया था।[1]

३. मुगलोंके साथ युद्ध तथा उनका हैंदराबादको विजय करना; १६८५

इसपर औरगजेबने तत्काल ही शाहजादे शाहआलमको हैदराबादपर आक्रमण करनेके लिए एक बडी सेनाके साथ रवाना किया। किन्तु जब शाही सेनाका अग्रभाग मालखेडसे ८ मील पूर्वमे सेरूमके पास पहुँचा, तब उसने देखा कि गोलकुण्डाकी सेना उसका मार्ग रोके हुए थी। मुगल अब आगे नही बढ सके। शाही सेनाने पीछे लौटकर मालखेडमे पडाव

१ गोलकुण्डा राजदरबारमें अपने राजदूतको औरगजेबने लिखा था—"इस अभागे बदमाशने (अर्थात अबुलहसन कुतुबशाह) अपने राज्यकी सर्वोच्च सत्ता एव काफिरको दे रखी है, और सैय्यदो, शेखों तथा विद्वानोको भी उसके अधीन कर दिया है। (शराबखाने, वेश्यालय और जुआघर जैसे) सब तरहके पापो और दुराचारोका उसने (अपने राज्यमे) सार्वजनिक रूपसे प्रचारित होने दिया है। अपनी राज्य-सत्ताके मदमें चूर वह स्वय भी दिन रात भयकर पापोमें लीन रहता है, जिससे इस्लाम और काफिरी, न्याय और अत्याचार तथा पाप और पुण्यके भेदोंको वह नही पहिचान सकता है। ईश्वरकी आज्ञाओ तथा निषेधोंका पालन करनेसे इकार करके, काफिर राज्योको सहायता देकर और अभी अभी उस काफ़िर शम्भूजीको एक लाख हूण देकर उसने ईश्वर तथा मानव के सामने समान रूपसे स्वयका निन्दनीय अपराधो सिद्ध कर दिया है।" (खफीखाँ भाग २, पृ० ३२८)।

किया। शत्रुके साथ प्रति दिन छोटी-मोटी लडाइयाँ होने लगी। मालखेडमें अपने पडावके चारो ओर खान इ-जहाँने दीवालें खडी कर दी, और वहाँ एक प्रकारके घेरेका सामना करने लगा।

कुछ समयके बाद और भी अधिक सेना लेकर शाहजादा वहाँ आ पहुँचा। मालखेडमें अपना सामान, आदि छोडकर मुगलोंने पुन खान इ-जहाको अधीनतामे, अपनी सेनाके अग्रभागको बलपूर्वक हैदराबादका रास्ता खुलवानेके लिए भेजा। दक्षिणी सैनिकोकी सख्या इनसे तिगुनी थी, और उनके साथ बार-बार युद्ध होते रहते थे। विना युद्ध किए माल-खेडके पास ही पडे रहकर मुगल सेनापतियोने पूरे दो माह व्यर्थ ही विताए। तब औरगजेबकी कडी फटकार पानेके साथ ही शाहजादेके पडावपर शत्रुके बहुत ही साहसपूर्ण आक्रमणने भी उन्हें पुन युद्ध करनेके लिए उत्तेजित किया। एक बडी घमासान लडाईके बाद दक्षिणियोको पीछे अपने पडावकी ओर हटना पडा। दूसरे दिन प्रात काल पता चला कि वे हैदराबादकी ओर भाग गए थे। गोलकुण्डाके प्रधान सेनानायक तथा उसके सहायक शेख मिनहाजमे पारस्परिक मतभेद हो जाने तथा मुगलोके प्रलोभन देनेपर मुहम्मद इब्राहीमके उनके साथ आ मिलनेके फलस्वरूप ही दक्षिणियोके विरोधका यो एकाएक अन्त हो गया था। अब शाहजादा तेजीसे निर्विरोध बढता हुआ हैदराबादकी ओर चला।

प्रधान सेनापतिके यो भाग जानेसे हैदराबादके सारे ही आयोजन ढीले पड गए। अब वह किसपर विश्वास करे, कुतुबशाहके लिए यह एक अन बूझ पहेली हो गई, अतएव हैदराबादसे भागकर उसने गोलकुण्डाके किलेमें आश्रय लिया। गोलकुण्डा भागनेमे कुतुबशाहको ऐसी हडबडी पड गई थी कि उसकी सारी सम्पत्ति हैदराबादमे ही छूट गई। जब हैदरा-बादके नगर-निवासियोको पता लगा कि उनके शासक अधिकारियोने नगर छोड दिया है, तथा शत्रु उनके सिर पर आ पहुँचा है, तब किलेमे जा छुपनेके लिए पागलोकी-सी भाग दौड प्रारम्भ हुई। कुछ समय बाद वहाँ सवत्र लूट-मार भी होने लगी, जिससे भी वहा गडबडी बहुत बढ गई। अनेको हिन्दू-मुसलमान स्त्री-बच्चोको लोग भगा ले गए और कुछके साथ बलात्कार भी किया गया।

हैदराबादके नागरिकोकी रक्षाके लिए शाहआलमने दूसरे दिन एक सैनिक-दल भेजा, किन्तु ये मुगल सैनिक भी हैदराबादकी इस लूटमे

सम्मिलित हो गए। दो दिन बाद नगरकी रक्षाके लिए शाहज़ादेने खान-इ-जहाँको नियुक्त किया। शहरमें शान्ति स्थापित करनेमें उसे कुछ हद तक सफलता भी मिली। तब ८ अक्तूबर १६८५के लगभग मुग़ल सेनाने यो दूसरी बार हैदराबाद नगरमें प्रवेश किया। उधर शाहज़ादेके पास बारम्बार अपने वकील भेजकर कुतुबशाह उसके साथ सन्धि की जानेके लिए विवशतापूर्ण प्रार्थना कर रहा था। कुतुबशाहके साथ सन्धि कर लेनेकी शाहज़ादेकी सिफारिश १८ अक्तूबरको औरगज़ेबके पास पहुँची, तब उसे स्वीकार कर निम्नलिखित शर्तोंपर अबुलहसनको क्षमा प्रदान करनेकी औरगजेबने स्वीकृति दी। (१) सारे पुराने कर्जके चुकानेके लिए एक करोड़ २० लाख रुपया दे और साथ ही दो लाख हूणका वार्षिक टाँका भी देता रहे। (२) मादन्ना और आकन्नाको पदच्युत कर दिया जावे। (३) मालखेड और सेरूम मुगलोंने जीत लिए थे एव उनपर अपने अधिकारके दावेको कुतुबशाह छोड़ दे।

४ मादन्नाकी हत्या, १६८६

कुछ महीनो तक शाहआलम वही ठहरा रहा। पहले तो गोलकुण्डाके पास ही उसका पड़ाव था, किन्तु बादमे कुतुबशाहकी प्रार्थनापर वह वहाँसे ४८ मील उत्तर-पश्चिममें कुहीर नामक स्थानपर चला गया, और युद्धका हर्जाना वसूल करनेके लिए वहा टिका रहा। जब तक भी हो सके तब तक मादन्नाको अपना मन्त्री बनाए रखनेके उद्देश्यसे अबुलहसन उसको पदच्युत करनेके औरगजेबके आदेशको टालता ही रहा, जिससे असन्तुष्ट अमीरोका धैर्य अब छूट गया, क्योकि मुगलोंके हाथो आनेवाली अपनी सारी आपत्तियाका एकमात्र कारण वे मादन्नाको ही मानते थे। गोलकुण्डा सुलतानके अन्त पुरमे निरकुशतापूर्ण शासन करनेवाली अब्दुल्ला कुतुब-शाहकी विधवाओ, सरमा और जानी साहिबाने तथा शेख मिनहाजके नेतृत्वमे सारे असन्तुष्ट मुसलमान अमीरोने मिलकर मादन्नाके विरुद्ध एक षड्यन्त्र रचा। मार्च १६८६के प्रारम्भमे एक रातको जब मादन्ना अपने स्वामीके पाससे बाहर निकला, तब उसका पीछा करके जमशेद तथा अन्य मुगलोंने गोलकुण्डाकी गलियोमे उसकी हत्या कर दी। आकन्नाको भी वहाँ घटनास्थलपर ही मार डाला गया। उनके वीर सुशिक्षित भतीजे रुस्तमरावका उसके घर तक पीछा कर वहाँ उसका वध किया गया।

मादन्नाके सब ही घर लूट लिए गए, तथा उपद्रवकारियोंको भीडने किले-मे हिन्दुओके मुहल्लोपर हमला कर दिया, जिसमे "उस रात कई दूसरे ब्राह्मणोंको भी अपनी जान और मालसे हाथ धोने पडे"। तब राजमाता सुलतानाने अपनी ओरसे सन्धिकी सबसे श्रेष्ठ भेंटके रूपमे उन दोनो अवांछनीय मन्त्रियोंके कटे हुए सिर औरगजेबके पास भेजे, जिसपर औरगजेबने शाहआलमको अपने पास वापिस शोलापुर बुलवा लिया। शाहजादा ७ जून १६८६को औरगजेबकी सेवामे उपस्थित हुआ, और मुगलोने गोलकुण्डाके प्रदेशको पूर्णतया छोड दिया। उसी वर्ष १२ सितम्बरके दिन बीजापुरका पतन हुआ, और उसके बाद मुगल सेनाको पूरा अवकाश मिला कि वे कुतुबशाही राज्यके साथ अन्तिम बार सबदाके लिए निपट लें।

५ औरगजेबका गोलकुण्डाको घेरना, १६८७

२८ जनवरी १६८७को औरगजेब गोलकुण्डासे दो मीलकी दूरी तक जा पहुँचा। उधर इस बार भी अबुलहसन अपनी राजधानीसे भागकर उसी किलेमे जा छिपा था, और तीसरी तथा अन्तिम बार मुगलोने हैदराबाद नगरपर अधिकार किया।

हैदराबाद नगरके दोनो भागोंको जोडनेवाले, मूसी नदीपर बने हुए पत्थरके पुलसे दो मील पश्चिममे गोलकुण्डाका यह किला है। एक असमान चतुभुजके आकारवाले इस किलेकी उत्तर पूर्वी तरफ साथ ही लगा हुआ असम पचकोण आकारका नया किला है। लगभग ४ मील लम्बी और कठोर चट्टानोंकी बनी हुई अत्यधिक मोटाईवाली दीवाल इस किलेको घेरे हुए है, जिसमे स्थान-स्थानपर गोली चलानेके लिए आवश्यक मोर्चे भी बने हुए हैं। एक-एक टनसे भी अधिक वजनवाली बडी-बडी कठोर ठोस चट्टानोंको चूने मसालेके द्वारा एक दूसरेसे जोडकर ५०से ६० फीट ऊँची बनाई गई ८७ अर्धचन्द्राकार बुर्जोंके कारण भी यह किला अत्यधिक सुदृढ तथा सुरक्षित बन गया था। सत्रहवी शताब्दीमे प्राप्य तोपखानोंकी सफलतापूर्वक उपेक्षा कर सकना उस किलेके उन सुदृढ मोटे मोटे आठ दरवाजोंके लिए कोई विशेष बात न थी। किलेके बाहर ५० फुट चौडी एक गहरी खाई थी, जिसमे पानी भरा रखनेके लिए पत्थरकी दीवाल भी बनी हुई थी। किन्तु वास्तवमे गोलकुण्डाके इस एक ही किलेमे एक-

दूसरेसे सम्बद्ध तथा एक ही परकोटेमे साथ घिरे हुए सवथा विभिन्न चार किले हैं।

मूसी नदीके उत्तरी तथा दक्षिणी, दोनो किनारोंपर चलकर मुगल सैनिक किलेके दक्षिणमे पहुँचे और वहा किलेकी दक्षिणपूर्वीय तथा दक्षिणी दीवालोंपर उन्होंने आक्रमण किया। किलेके उत्तर-पूर्वी दरवाजेपर मुगलोंकी गोलाबारी शत्रुको धोखा देनेके उद्देश्यमे एक दिखावा मात्र था।

गोलकुण्डाके पास पहुँचते ही औरगजेबने अपने सेनापतियोंको आदेश दिया कि किलेकी दीवालोंके नीचे सूखी खाईमे एकत्रित शत्रु-सेनापर आक्रमण कर उसे भगा दिया जावे। किलेका घेरा डालनेका विधिवत् कार्य ७ फरवरी १६८७को ही प्रारम्भ हुआ।

६. शाहआलमका क़ैद किया जाना

किन्तु मुगल पडावमे व्यक्तिगत कटु ईर्ष्याके फैलनेके कारण इस घेरेके प्रारम्भसे ही शाही सेनाकी सारी गतिविधि स्थगितसी हो गई थी। शाहजादा शाहआलम स्वभावसे ही सुकोमल एव विलास प्रिय था, अपनी शारीरिक स्थितिके कारण कडी मिहनत करना या वीरतापूर्ण दुष्कर कार्य करना उसको बहुत ही अप्रिय था। अबुलहसन जैसे एक स्वाधीन सुलतान बन्धुको सम्पूर्णतया विध्वस होते देखना भी उसे कदापि रुचिकर नही था। किन्तु इस उदारतापूर्ण सद्भावनाके साथ उसकी लोभमय कुत्सित वृत्ति भी सम्मिलित थी। यदि उसके द्वारा ही सन्धिका प्रस्ताव करनेके लिए वह अबुलहसनको राजी कर सका तो शाही सूचनाओंमे उसे ही गोलकुण्डाका विजेता घोषित किया जावेगा। बहुमूल्य उपहार लेकर अबुलहसनके वकीलोंने गुप्तरूपसे शाहआलमके साथ भेंट की, और शाहआलमसे प्रार्थना की कि औरगजेबसे निवेदनकर अपने निजी प्रभाव द्वारा वह अबुलहसनके राज्य तथा राजघरानेको किसी भी प्रकार बचा ले। शाहजादेका उत्तर बहुत ही आश्वासनपूर्ण था।

किन्तु औरगजेबने बडी तत्परताके साथ सारी कार्यवाही की। शाहजादेके पडावके चारो ओर तत्काल ही शाही सेनाका पहरा बैठा दिया गया। दूसरे दिन २१ फरवरीको प्रातःकालमे शाहआलमको अपने चारो पुत्रो सहित औरगजेबके डेरेमे मन्त्रणाके लिए बुलाया गया। कुछ क्षण तक उनके साथ बातचीत होनेके बाद उन्हे वजीरने कहा कि सम्राट्के

कुछ गुप्त आदेश सुननेके लिए पासके ही एक कमरेमें वे उसके साथ चले आवें। वहा जानेपर बडी ही नम्रतापूर्वक उन्हे बताया गया कि वे सब स्वयको कैदी ही समझें और अपनी तलवारें दे दें। शाहजादेके सारे ही कुटुम्बको कैद कर उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति जब्त कर ली गई तथा उसके अधीन सेनाएँ दूसरे-दूसरे सेनापतियोके साथ नियुक्त कर दी गईं।

७. गोलकुण्डाके घेरेमे औरगजेबकी कठिनाइयाँ

घेरा डालनेवाले पडावमे गडबडी डालनेवाला व्यक्ति अकेला शाह-आलम ही न था। भारतके एकमात्र शिया राज्यके यों समूल नष्ट हो जानेकी यह सम्भावना शिया धर्मावलम्बी अनेको शाही सेवकोको अत्यधिक अप्रिय था। शियाओने ही नही, कई कट्टर सुन्नियोने भी अबुलहसनका विध्वस करनेके लिए ही छेडे गए इस युद्धको मुसलमानोके ही आपसम् अकारण छिड जानेमे पापपूर्ण बताकर उसकी निन्दा की थी। सरल वृत्ति-वाले साधु-चरित्र प्रमुख न्यायाधीश शेख-उल-इस्लामने भी सम्राट्को सलाह दी थी कि दक्षिणकी इन दोनो सल्तनतोपर वह आक्रमण न करे, अतएव जब उसकी सलाहको औरगजेबने न सुना तब अपने उच्चपदको त्यागकर उसने मक्काकी राह ली। तदनन्तर उसी पदपर नियुक्त होने वाले काजी अब्दुल्लाने भी सम्राट्को यही अप्रिय परामर्श दिया था, जिससे वहासे रवाना कर उसे दक्षिणके शाही केन्द्रीय अड्डेमें भेज दिया गया।

शियाओंके प्रति औरगजेबका स्वाभाविक अविश्वास उसके सारे कार्योंमे निरन्तर बाधक ही सिद्ध हुआ। प्रारम्भमे तो घेरा चलानेवालोंमें एकमात्र उल्लेखनीय उच्च अधिकारी फिरोजजग था। तोपखानेका प्रधान नायक सफशिकनखाँ था। वह स्वय ईरानी था, एव उसके तुर्क होनेके कारण ही फिरोजजगके उच्चाधिकार तथा उसके प्रति सम्राट्की विशेष कृपावा वह द्वेषी बन गया। कुछ समय तक मिनहतके साथ काम करते रहनेके बाद केवल 'फिरोजजगके साथ अपना वैर निकालनेके लिए' उसने त्यागपत्र दे दिया। तब उसके स्थानपर सलाबतखा नियुक्त हुआ, किन्तु वह अपना काम ठीक तरह नही कर सका, और कुछ समयके बाद वह भी उस पदसे अलग हो गया। तोपखाने का नायकत्व अब गैरतखाँको मिला, किन्तु उसकी ही बेपरवाहीके कारण एक दिन उसपर अचानक

हमला कर शत्रु उसे कैदी वना ले गए। अब तोपखानेके नायकत्वके इस पदको स्वीकार करनेके लिए कोई भी तैयार नही होता था, एव कुछ समय तक वह रिक्त ही रहा, जिससे घेरा लगानेके कार्यमें बहुत हानि पहुँची। अन्तमें सफशिकनखाँको ही कैदसे निकालकर २२ जून १६८७के दिन उसे पुन इस पदपर नियुक्त किया गया।

किलेकी दीवार तोडकर आक्रमण करनेके ये सब आयोजन जब धीरे-धीरे चल रहे थे, तब प्रधान सेनापति फिरोजजगने किलेकी दीवालोपर चढकर अन्दर जा पहुँचने तथा यो किलेपर अधिकार करनेका भी प्रयत्न १६ मईके दिन किया। रातके नौ बजे चुपचाप अपने डेरेसे निकल कर वह एक गुम्बजके पास पहुँचा, जहा नियुक्त शत्रुओके पहरेदार सोए पडे थे। दीवालके सहारे एक सीढी लगाकर उसने अपने दो सैनिकोको शहर-पनाह पर चढा दिया। दो और सीढियाँ भी वह अपने साथ ले गया था, किन्तु वे दोनो ही लम्बाईमें छोटी पडी, अतएव दरवाजेके सिरेपरसे रस्सीकी एक सीढी बाधी गई। दुर्भाग्यसे उस समय एक आवारा कुत्ता दीवालपर खडा, नीचे खाईमे पडी लाशोको खानेके लिए उत्सुक नीचे उतरनेके लिए समुचित राह खोज रहा था। अनजान व्यक्तियोको वहाँ आते देखकर वह कुत्ता चौककर जोर-जोरसे भौकने लगा जिससे किलेके पहरेवाले सैनिक जाग गए और उन्होने मुगलोको वहासे खदेड दिया। मुसलमान कुत्तेको एक अशुद्ध जानवर मानते हैं, किन्तु उस दिन तो एक कुत्तेने ही राजधानीकी रक्षा की थी। अपने इस रक्षक श्वानको अबुल-हसनने पुरस्कारके रूपमें एक सोनेकी जजीर दी, रत्नजटित सोनेका पट्टा उसके गलेमें डाला और सुनहरी जरवाले कामका एक कोट भी उसे पहनाया। पुन फिरोजजगके खान, बहादुर और जगके तीनो खिताबोकी विडम्बना करनेके उद्देश्यसे अब इस कुत्ते भी 'सेह तबगा' (तीन उपाधि वाले अमीरका) खिताब दिया और अबुलहसनने हँस कर कहा—"इस पशुने जो कुछ किया वह (फिरोजजगके कार्यसे) किसी भी प्रकार कम महत्त्वका नही था"।

अब मुगलोको अकालने आ घेरा। दक्षिणी तथा उनके मराठा सहायक रास्तोपर उपद्रव करने लगे और मुगल पडावपर रसद ले जाना भी रोक दिया। तब जून माहमे घनघोर बरसात हुई नदी-नालोमे बाढ आ जानेसे उन्हे पार करना असम्भव हो गया तथा सारे रास्ते दलदलोम

परिणत हो गए। घेरा डालनेवालों तक कुछ भी रसद पहुँचना सर्वथा असम्भव बात हो गई। तोपोंके मध्यकी लगातार वर्षाने घेरेका सारा काम चौपट कर दिया। तोप चलानेके लिए बनाए हुए ऊँचे चबूतरे गिरकर कीचडके ढेर-मात्र रह गए। खाइयोकी दीवारें गिर गई, जिससे उनमें आने-जानेके रास्ते भी रुक गए। पूरा पडाव एक जलाशय बन गया जिसमें खडे हुए सफेद तम्बू फेनके बुदबुदोंके समान दिखाई पड रहे थे।

८ मुगल पडावपर दक्षिणियोंके आक्रमण तथा उनसे मुगलोंकी भारी हानि

शत्रुओंने इस अवसरसे पूरा लाभ उठाया। १५ जूनकी रातको उन्होंने मुगलोंके आगे बढे हुए तोपखाने और खाइयोंपर धावा बोल दिया। तोपखानेके प्रधान नायक गैरतखाँ, सरबराहखाँ और अन्य बारह उच्च पदाधिकारियोंको वे पकडकर ले गए तथा उन्हें कैद कर दिया। तीन दिन तक लगातार युद्ध करनेके बाद ही शत्रुओंको खदेडकर अपने क्षत विक्षत तोपखानेपर मुगल फिरसे अधिकार कर सके। कैद मुगल अधिकारियोंके साथ अबुलहसनने बहुत ही कृपापूर्ण व्यवहार किया, तथा उन्हें औरगजेबके पास वापिस भेज दिया। इस पिछली दुर्घटनासे हुई हानिकी पूर्ति तथा अपने आक्रमणको पूर्णतया सफल बनानेके लिए मुगल बडे ज़ोरोंसे प्रयत्न करने लगे।

स्वय देखभाल करनेके लिए औरगजेब फिरोजजगकी खाइयोमे जा पहुँचा। २० जूनको सुबहमे जल्दी ही पहली सुरग दाग दी गई, किन्तु वह बाहरकी तरफ ही फूटी जिससे किलेकी दीवालको कोई क्षति नही पहुँची, उलटे शाही सेनाके ही कोई १,१०० सैनिक मारे गए। घबडाए हुए मुगलोपर आक्रमण कर शत्रुओंने उनकी खाइयो तथा चौकियोंपर अधिकार कर लिया, जिन्हे वापिस जीतनेमें मुगलोको बहुत समय तक लडना पडा, तथा उनको बहुत हानि भी उठानी पडी। यह होते ही दूसरी सुरग चलाई गई और उसका भी परिणाम पहिलीकी ही तरह मुगलोके लिए हानिकारक हुआ। शत्रुओंने तब दूसरी बार आक्रमण कर मुगलोकी इन खाइयो तथा आश्रय स्थानोपर अधिकार कर लिया। तब उनके लिए भयकर युद्ध शुरू हुआ, जिसमें फिरोजजग स्वय तथा दूसरे दो सेनापति घायल हुए और बहुतसे सैनिक मारे गए।

इस सकटपूर्ण रुकावटकी सूचना मिलने ही शत्रुओ द्वारा बुरी तरह दवाए हुए अपने सैनिकोंकी सहायताके लिए अपने अधिकारियोको लेकर औरगजेब स्वय चल पडा। उसके पालकीनुमा सिंहासन "तख्त इ-रवां"के आसपास चारो ओर तोपके गोले पडने लगे, फिर भी पूरी शान्तिके साथ वह अपने स्थानपर डटा ही रहा, और अपनी धीरताके इस अनुकरणीय प्रदर्शन द्वारा वह अपने सैनिकोको उत्साहित करता रहा।

जिस समय यह युद्ध चल रहा था, तब ही वहां मैदानमे तूफान आ गया, बडे ज़ोरके आंधी आई और भयकर गर्जनाके साथ मूसलाधार पानी बरसने लगा। तब तो शत्रुओंने उसी दिन तीसरी बार आक्रमण किया तथा और भी आगेवाली मुगलोंकी खाइयां छीन ली। शाम पड जानेपर हारे हुए मुगल अपने डेरोंको लौट आए। वह रात औरगजेबने फिरोज़जगके पडावमे ही बिताई।

९. मुगलोंकी निष्फलता, अकाल और महामारी

दूसरे दिन २१ जूनको सुबहमे औरगजेब तीसरी सुरगको चलवाने तथा अपनी ही देख-रेखमे आक्रमण करवाकर अपना भाग्य परखनेके लिए आगे बढा। किन्तु वह सुरग फूटी ही नही। बादमे ज्ञात हुआ कि पहिलेसे ही उसका पता लगाकर शत्रुओंने उस स्थानपर पानी भर दिया था। खाद्य-सामग्रीका अभाव अब और भी अधिक बढ गया था तथा अकालके साथ ही अनिवार्य रूपेण प्रगट होनेवाली महामारी भी वहां फैल गई। हैदराबाद नगर पूर्णतया निर्जन हो गया, मकानो, नदी तथा मैदानमे सर्वत्र मुर्दे ही पडे हुए थे। मुगल पडावकी भी यही दुर्दशा थी। रातके समय लाशोका ढेर लग जाता था। कुछ महीनोके बाद जब बरसात बन्द हुई, नर-ककालोंके ये ढेर दूरसे बर्फकी छोटी-छोटी पहाडियोंके समान देख पडते थे।

किलेमे घिरे हुओको भूखों मारकर आत्म-समर्पण करनेके लिए बाध्य करनेके उद्देश्यसे दारुण दृढताके साथ औरगजेब वहां डटा ही रहा। "गोलकुण्डाके किलेके चारो ओर लकडी और मिट्टीकी एक दीवाल बनानेका औरगजेबने निश्चय किया। कुछ ही समयमे वह दीवाल बनकर पूरी हो गई तथा उसके दरवाज़ोपर पहरेवाले बैठा दिए गए और परवाना

दिखाए विना किसीका भी बाहर निकलना या भीतर जाना पूर्णतया रोक दिया गया।" इसी समय औरंगजेबने एक विशेष घोषणा द्वारा हैदराबाद राज्यको मुगल साम्राज्यमे सम्मिलित कर लिया, जिससे कि किलेका बचाव करनेवालोको भविष्यमे खाद्य-सामग्री नही मिल सके। राज्यके सभी स्थानोपर उसने अपने ही काजी, फौजदार और दीवान नियुक्त कर दिए। औरंगजेबके नामसे खुतबा पढा गया और हैदराबादमे भी मुहतसिब अर्थात् जनताके सदाचारकी देख रेख करनेवालेकी नियुक्ति हुई।

१०. विश्वासघात कर एक सरदारका गोलकुण्डाका किला मुगलोंको सौंपना

आठ माहके लगभग घेरा डाले रहनेके बाद भी घूसके द्वारा ही २१ सितम्बर १६८७ ई०के दिन गोलकुण्डाके किलेपर मुगलोका अधिकार हो सका। अब्दुल्ला पानी नामक अफगानने, जो अब सरदारखाँ कहलाता था, पहिले बीजापुरी सेनासे भागकर मुगलोकी सेवा स्वीकार की थी, और फिर मुगलोको भी छोडकर वह अबुलहसनके पास जा पहुँचा था, अब उसी सरदारखाने मुगलोसे घूस लेकर अपने इस अन्तिम स्वामीको भी बेच दिया। किलेके पिछले दरवाजेकी खिडकी उसने खुली छोड दी, और उसके ही बुलावेपर २१ सितम्बर १६८७को पिछली रातकी तीन बजे रुहेल्लाखाकी अधीनतामे मुगल सैनिकोका एक दल विना किसी रोक-टोकके किलेमे जा घुसा। वहाँ अपना अधिकार बनाए रखनेके उद्देश्यसे कुछ सैनिकोको वही नियुक्त कर उन्होने किलेके मुख्य दरवाजेके किवाड खोल दिए, जिसमे होकर आक्रमणकारी मुगल सेनाने उमडती बाढकी तरह किलेमे प्रवेश किया। शाहजादा आजम भी अपने सहायकोंके साथ नदीके पाससे आगे बढकर किलेकी दीवालके नीचे तक जा पहुँचा।

गोलकुण्डाके उन विश्वासघातियोमे एक व्यक्ति ऐसा था, जो तब भी अबुलहसनके प्रति स्वामि भक्त बना रहा, वह था अब्दुर्-रज्जाक लारी उर्फ मुस्तफाखा। घेरेके प्रारम्भसे ही उसने औरंगजेबके सारे प्रलोभनोको तिरस्कारके साथ ठुकरा दिया था। एक बार जब उसे [illegible] हज़ार सवारो का मुगल मनसब देनेका प्रस्ताव किया गया, तब उसने कहा था— "कर्बलामे इमाम हुसैनपर विजय प्राप्त करनेवाले २२,००० द्रोहियोकी

अपेक्षा उनके साथ जान देनेवाले स्वामि-भक्त बहत्तर साथियोमे ही अपनी गिनती करवाना मुझे अधिक प्रिय होगा।" "जब तक मै जीवित हूँ तब तक कम-से-कम एक व्यक्तिके प्राण अवश्य अबुलहसनकी रक्षाके लिए बलिदान होगे।" यह कहता हुआ वह अकेला ही आक्रमणकारियोके बढते हुए सैनिक दलपर टूट पडा। कोई ७० विभिन्न घावोसे उसका शरीर जर्जरित हो गया, एक आँख भी जाती रही थी, पुन अनेको घावो तथा बहुत-सा रुधिर बह जानेके फलस्वरूप उत्पन्न निर्बलताके कारण उसका घोडा भी लडखडा रहा था। अब्दुर्-रज्जाकको अपने सामनेका माग भी अब नही दिखाई देता था, फिर भी वह किसी-न किसी तरह घोडेपर टिका ही रहा और अब उसने घोडेकी लगाम भी ढीली कर दी। तब तो घोडा उस सबडे स्थानसे बच निकला और किलेके पासवाले नगीना बागमे पहुँचा, जहा मूर्च्छित होकर अब्दुर्-रज्जाक नारियलके एक वृक्षके नीचे गिर पडा। अब्दुर्-रज्जाकको वहासे उठाकर मुगल पडावमे ले गए और औरगजेबकी आज्ञानुसार वहाँ उसकी सेवा शुश्रूषा कर उसको मृत्युके मुखमे निकाल लिया।

११. अबुलहसनका कैद होना

उधर जब आगे बढते हुए मुगलोके कोलाहलको अबुल्हसनने सुना, तब वह बाहर निकलकर अपने राजदरबारके दालानमे आया और वहाँ अपने राजसिंहासनपर बैठकर वह बिना बुलाए ही आ घुसनेवाले इन अतिथियोकी बडी ही शान्तिपूर्वक प्रतीक्षा करने लगा। अन्तमे जब अपने दलके साथ रुहेल्लाखाने वहा प्रवेश किया, तब अबुलहसनने बडी ही नम्रताके साथ उसका स्वागत किया, और इस करुण प्रसगके आरम्भसे अन्त तक उसका सारा आचरण सर्वथा राजकीय गौरवके अनुरूप ही था। तब स्वयको कैद करनेके लिए आए हुए इन व्यक्तियोको भी उसने अपने साथ जलपानके लिए आमन्त्रित किया तथा अपना भोजन हो जानेके बाद ही वह अपने राजमहलसे निकला। उस दिन सध्या समय आजमने उसे औरगजेबके सम्मुख उपस्थित किया। कुछ दिनोके बाद उसे दौलताबाद भेज दिया गया, और वही उसकी मृत्यु हुई। अपने इस बन्दी जीवनमे उसे ५०,००० रुपयोकी वार्षिक पेंशन दी जाती थी।

अपना राजसिंहासन छोडकर कडी कैदकी यातनाएँ भुगतनेके लिए

अपने कट्टर शत्रुके हाथोंमें स्वयंको सौंपते समय अबुल्हसनने जो संयम और सौम्य दिखाया, उसे देखकर उसको कैद करनेवाले भी आश्चर्यचकित रह गए। उसकी आदरपूर्ण आश्चर्यभरी दृष्टिको सुनकर उसने यह कहा कि यद्यपि उसका जन्म राजघरानेमें हुआ था, उसका यौवन दारिद्र्यपूर्ण कठिनाइयोंमें ही बीता था, एवं वह जानता था कि सुख और दुख दोनोंको ही ईश्वरकी देन समझकर समान निस्पृहताके साथ उसे स्वीकार करना चाहिए। "ईश्वरने ही मुझे पहिले भिखारी बनाया था, बादमें उसने सुल्तान बना दिया, और अब मुझे पुन भिखारी बनाया है। अपने दासोंकी भलाईका ध्यान उसे सदैव बना रहता है, और भोजनका निश्चित अंश वह प्रत्येक मनुष्यके पास बराबर पहुँचा देता है।"[1]

---

[1] तज़्किरात, २, पृ० ३६३-३६४। किन्तु फचिल कृत "ग्यासंजेग"में (भाग ४, पृ० २४९) डा० करेरी तथा मनुची (भाग २, पृ० ३०६-३०७) लिखते हैं कि जब उसे औरंगज़ेबके सम्मुख ले गए तब वहाँ उसको अपमानित कर पीटा गया था। ईश्वरदासने एक विलक्षण कहानी लिखी है कि जब अबुल-हसनको कैद किया गया तब वह नर्तकियों और गायकोंके साथ बैठा आनन्दरसमें लीन था। शत्रुओंके आ घुसनेपर जब डरके मारे नर्तकियाँ नाचने-गाचने रुक गई तब चिल्लाकर उसने कहा "पहिलेके ही समान नाचती रहो। जो भी क्षण मैं सानन्द बिता सकता हूँ वही मेरे लिए बहुत बड़ा लाभ है।" फ़िरोज़जंगने उसे उसके सिंहासनसे उठाया और घोड़ेपर बैठाकर अपने पीछे-पीछे औरंगज़ेबके पास ले गया। तब कोर्निश या सलाम न कर बिना झुके ही अबुल्हसन औरंगज़ेबके सम्मुख जा खड़ा हुआ। सम्राटने उससे पूछा—"तुम कैसे हो?" उसने उत्तर दिया—"मुझे न तो कोई हर्ष है और न विषाद ही। किन्तु उस रहस्यपूर्ण अज्ञेय पर्देके पीछेसे निकलकर जो कुछ भी मेरे सामने प्रत्यक्ष हुआ है, उसे देखकर मैं आनन्दित हूँ।" (पत्र सं० ९३ अ-ब)

फोर्ट सेण्ट जार्जकी अंग्रेजी डायरीमें १२ नवम्बर १६८७के दिन जो सूचना लिखी गई, वह मनुचीके विवरणसे अधिक विश्वसनीय है। उसमें लिखा गया था—"फरासीसी, डच तथा अन्य राष्ट्रोंसे ये समाचार मिले कि (संशोधित पंचांगके अनुसार) गए महीनेकी दूसरी तारीखको आधी रातके समय विश्वासघातके द्वारा मुगलोंने गोलकुण्डाका क़िला ले लिया। जब गोलकुण्डाके सुलतानने मुगल (सम्राट्)के सम्मुख साष्टांग प्रणाम किया, तब मुगलने उसके दुराचारपूर्ण शासनकी विस्तृत आलोचना की और उसे बताया कि ब्राह्मणोंको

गोलकुण्डाको जीतनेपर वहाँके किलेसे सोने-चाँदीके बतनों, रत्नों तथा जडाऊ सामानके अतिरिक्त सात करोड रुपये नकद भी मिले। जीते हुए राज्यकी आमदनी २ करोड ८७ लाख रुपयेकी थी।



प्रोत्साहन देकर तथा दूसरी ओर उनके धर्म और देशके प्रति अनादर प्रगट कर मुसल्मानोको हतोत्साह कर अपने उत्तरदायित्वके प्रति उसने जो विश्वासघात किया था, उसीके फलस्वरूप इस न्यायोचित सकटको उसने स्वय ही अपने सिरपर ले लिया था। तब उसने आदेश दिया कि उसे (अबुलहसनको) बेड़ियाँ पहनाई जावें, ऐसा कहा जाता है कि ये बेडियाँ दूसरे ही दिन निकाल ली गई थी।"

अध्याय १४

शम्भूजीका राज्य-काल; १६८०–१६८९

१ उत्तराधिकारके लिए कशमकश, शम्भूजीका स्वय राजा बन बैठना

शिवाजीकी मृत्यु होनेपर उनका नव निर्मित मराठा राज्य आन्तरिक फूटके कारण बहुत ही छिन्न-भिन्न तथा बिलकुल ही अस्त-व्यस्त हो गया, और उसका भविष्य भी अत्यधिक अनिश्चित देख पडने लगा। शिवाजीके ज्येष्ठ पुत्र शम्भजीके व्यभिचारी उच्छृङ्खल जीवनके कारण उसका भावी राज्य-काल दु खपूर्ण ही देख पडा। उधर अपने धर्म तथा राज्यके घातक शत्रुके साथ उसके जा मिलनेके कारण सारे विचारवान् लोगोकी दृष्टिमे वह बहुत ही गिर गया था। शम्भूजीके सुधारके लिए विफल प्रयत्न करनेके बाद अपने जीवनके अन्तिम दिनोमे उसके सुविज्ञ पिताने अवश्य ही उसे पन्हालाके किलेमे नजरबन्द रक्खा था। अतएव शिवाजीकी दाह-क्रियाके बाद अन्नाजी दत्तोके सुझावपर रायगढमे उपस्थित मन्त्रियोने उनके दस वर्षीय छोटे लडके राजारामको मराठोका राजा घोषित कर दिया।

राजारामको राजा घोषित करते ही मराठोमे फूट पड गई। शम्भूजीके पक्षका समर्थन करनेवालोका तत्काल ही एक दल बन गया। शिवाजीके शासन-कालमे लूटके लिए लालायित रहनेवाली सेनाको इस नए राजाकी नियुक्तिके शुभ अवसरपर भी बहुत करके कुछ नही मिला था, एव अपनी विवशतापूर्ण परिस्थितिके कारण बेपरवाह होकर अपने पक्षको सबल बनानेके लिए जब शम्भूजी चाहे जो वादे करने लगा तब प्रलोभनमे

पड़कर सेना भी उसका साथ देनेको उत्सुक हो गई। उधर रायगढ़में जो राज्याभिभावक-मण्डल नियुक्त किया गया उसमे सब ही ब्राह्मण थे, और मराठा सेनानायक राजमहलोंके इन ब्राह्मण राजगुरुओंके आदेश माननेको कदापि तैयार नही थे।

परिणाम यह हुआ कि शिवाजीकी मृत्युके एक सप्ताह बादसे ही प्रति दिन अधिकाधिक सैनिकोंके दल शम्भूजीके पक्षम होने लगे। तब तो रायगढम स्थापित मराठा राज्य शासन की अवहेलना कर शम्भूजीने पन्हालामें सारे राज्याधिकार खुल्लम-खुल्ला अपने हाथम ले लिए।

अपने शासन-कालके प्रारम्भिक कार्योंम शम्भूजीने जो चातुर्य्य तथा समयोचित तत्परता दिखाई वह उसकेसे चरित्रवाले व्यक्तिसे सर्वथा अनपेक्षित ही थी। पन्हालापर अपना पूर्णाधिपत्य स्थापित कर उसने दक्षिणी मराठा देश तथा दक्षिणी कोकणके अपने प्रदेशोंपर अधिकार सुदृढ किया, और उसके बाद ही उत्तरमे स्थित राजधानीवाले अपने प्रतिद्वन्द्वीकी सेनाके साथ युद्ध छेड़नेका उसने साहस किया।

उधर २१ अप्रेलके दिन रायगढमे अन्नाजी दत्तोने राजारामको राज सिंहासनपर बैठा दिया, और उसके कुछ ही समय बाद पन्हालाके किलेपर अधिकार कर शम्भूजीको कैद करनेके उद्देश्यसे वह पेशवाको साथ लेकर पन्हालाके लिए रवाना हुआ। किन्तु शम्भूजीकी सफल कार्यवाहीका विवरण सुनकर वे हताश हो गए और शम्भूजीपर आक्रमण करनेसे हिचकिचाने लगे। किन्तु सेनाने दुरंगी नीतिमे चलनेवाले इन स्वार्थी मन्त्रियोंको अधिक समय तक इस दुविधाम न रहने दिया। मई माहके अन्तमे सेनापति हम्बीरराव मोहितेने अन्नाजी और मोरोपन्तको कैद कर लिया और कैदीके ही रूपमे उन्हें शम्भूजीके पास पन्हाला ले गए। वहाँ एकत्रित सारे ही सेनापतियोने शम्भजीको अपना राजा स्वीकार कर लिया।

हथकडी और बेडियोंसे जकडकर अन्नाजीको कैदखानेमे डाल दिया। अवसर रहते ही पश्चात्ताप और क्षमा प्रार्थना कर पेशवाने शम्भूजीकी कृपा भी प्राप्त कर ली, किन्तु वह उसका विश्वासपात्र नही बन सका। तब यह नया राजा रायगढके लिए चल पडा, और वहाँ पहुँचते-पहुँचते उसकी सेना बढकर कोई २०,०००के लगभगकी हो गई। १८ जूनको राजधानीने भी उसके लिए अपने द्वार खोल दिए। राजारामने कोई भी विरोध नही किया, क्योंकि वैसा करना उसके लिए सम्भव भी नही था।

सिंहासनच्युत किए जानेपर भी राजारामके साथ दयालुतापूर्ण व्यवहार किया गया, क्योंकि वह तो अन्य षड्यन्त्रकारियोंके हाथमें एक साधनमात्र था।

शम्भूजी २० जुलाईको प्रथम बार राजसिंहासनपर बैठा, किन्तु उसका विधिवत् राज्याभिषेक तथा तत्सम्बन्धी सारे संस्कार बड़े ही ठाट-बाटके साथ १६ जनवरी, १६८१को हुए। १८ मई, १६८२को शम्भूजीके एक पुत्र तथा उत्तराधिकारी उत्पन्न हुआ, पूरे तीस वर्ष बाद मराठा राजा बनकर उस पदका पुनरुत्थान करना इसीके भाग्यमें बदा था। वह था शिवाजी द्वितीय, जो राजा शाहूके नामसे लोक-प्रसिद्ध हुआ।

२. शम्भूजीका मुगलोंसे फिर युद्ध आरम्भ करना

राज्यारोहणके बाद पर्याप्त काल तक नये राजाको बाहरी आक्रमणोंका सामना करनेकी चिन्ता नहीं करनी पड़ी। उस समय राजपूतोंके साथ युद्धके लिए मुगल साम्राज्यके सारे सैनिक साधन औरंगजेबके ही सम्मुख राजस्थानमें एकत्र थे। अक्तूबर, १६८०के अन्तमें सदैवकी भांति दशहरेके बाद मराठा सेनाएँ राज्यसे बाहर जानेके लिए चल पड़ी। पैदल और घुड़सवारोंके एक दलको सूरतकी ओर जाना था, तथा दूसरेको बुरहानपुरकी तरफ। तीसरा दल औरंगाबादके पास दक्षिणके नये सूबेदार बहादुरखांके (जो अब खान-इ-जहां बना दिया गया था) पड़ाव तक जा पहुँचा और उसे तब तक वहीं उलझाए रखा। किन्तु मराठोंके इन आक्रमणोंकी सूचना मिलते ही यह मुगल सेनानायक तत्परताके साथ २५ नवम्बरके लगभग खानदेशमें जा पहुँचा। तब तो मराठे उस प्रान्तको छोड़कर, कुछ ही समयके लिए क्यों न हो, वहांसे चल दिए।

अतिशयोक्ति होते-होते शाहजादे अकबरके विद्रोहके समाचार औरंगजेबके पतनकी गप्पमें परिणत होकर सर्वत्र फैलने लगे थे, एवं उनसे भी प्रोत्साहित होकर जनवरी, १६८१के अन्तमें आक्रमणकारी पुनः वहाँ जा पहुँचे। हम्बीररावके नेतृत्वमें एक दलने धारनगाव तथा उत्तरी खानदेशके अन्य नगरोंको लूटा, और वहांसे पूर्वकी ओर बढ़कर उनके उधर आनेका पता किसीको लगे उससे पहिले ही ३० जनवरीके दिन उन्होंने बुरहानपुरके बहादुरपुरा नामक उपनगरपर हमला कर दिया और वहांकी अनेकों दूकानों और घरोंसे लूटका अत्यधिक माल एकत्र कर वे ले गए। शहर

पनाहके बाहर बसे हुए ऐसे ही सत्रह अन्य पुरोको भी उन्होने उसी तरह लूटा। आक्रमण इतना आकस्मिक हुआ था कि बचाव या विरोधके लिए कोई भी आयोजन नही हो सके।

बिना किसी भी बाधा या विरोधके मराठोने तीन दिन तक इन उपनगरोको भी जी भरकर लूटा, और उन्होंने प्रत्येक घरका फर्श तक खुदवा डाला, जिससे पिछली कई पीढियोका सचित माल भी उनके हाथ लगा। यहां पहुँचनेम खानजहाँने बहुत ही सुस्ती की, और तब भी आक्रमणकारियोके लौटनेकी ठीक-ठीक राहका निश्चय करनेमे वह चूक गया, जिससे सारे कैदियो और लूटके मालको लेकर वे बिना रोक टोकके निकल गए।

सदैवकी तरह अक्तूबर, १६८१मे भी दशहराके बाद विभिन्न दिशाओ-मे विचरनेके लिए मराठे घुडसवार चल पडे। दिलेरखाँ द्वारा कैद की गई शम्भूजीकी पत्नी और बहन इस समय अहमदनगरके किलेमे बन्द थी, अतएव उन्हे छुडानेके लिए उत्सुक मराठोने अक्तूबरके अन्तमे उस किले-पर आक्रमण कर उसे लेनेका भी सचमुच प्रयत्न किया था। वेश बदलकर जिन मराठा सैनिकोने किलेमे प्रवेश किया था, उनका पता लग जानेपर किलेदारने उन्हे मरवा डाला और दूसरोको एक युद्धके बाद मार भगाया।

३. शाहज़ादे अकबरका शम्भूजीकी शरणमे जाना

सत्यवादी राठौड वीर दुर्गादासके निर्देशनमे औरगजेबके विद्रोही पुत्र शाहज़ादे मुहम्मद अकबरने ९ मई, १६८१को अकबरपुरके पास नर्मदा नदीको पार किया और तब उसने महाराष्ट्रकी राह ली। मुगल साम्रा-ज्यकी सीमाएँ पार करनेके बाद शम्भूजीके अनेको उच्चाधिकारियोने उसका स्वागत किया और १ जूनके दिन उसे ससम्मान पाली ले गए।

शाहज़ादेके साथ ४०० घुडसवार, पैदल सैनिकोका एक छोटा-सा दल जिसमे कुछ मुसलमानोके अतिरिक्त अधिकाश राजपूत ही थे, और बारबरदारीके लिए कोई ५० ऊँट थे।

४. शम्भूजीके विरुद्ध षड्यन्त्र, कविकलशका शम्भूजीका स्नेह-भाजन बनना

१८ जून, १६८०को रायगढपर अधिकार कर लेनेके बाद शम्भूजीने अपने प्रमुख शत्रुओको उनके नेता अन्नाजी दत्तो और पेशवा मोरेश्वर

निम्बवके पुत्र नीलकण्ठ मोरेश्वर पिंगले समेत बंद कर दिया। अक्तूबरके प्रारम्भमे मोरेश्वर मर गया, तब शम्भूजीने उसके पुत्र नीलकण्ठको छोड दिया और अपने प्रधान मन्त्रीका रिक्त पद उसे दिया। प्रमुख विद्रोही अन्नाजी दत्तोको छोडकर शम्भूजीने उसे मजमुआदारके पदपर नियुक्त किया।

किन्तु अगस्त, १६८१मे सोयराबाई, हीराजी फरजन्द और कई दूसरे प्रमुख व्यक्तियोंके साथ मिलकर अन्नाजी दत्तोने शम्भूजीकी हत्या कर शाहज़ादे अकबरके सरक्षणमे राजारामको गद्दीपर बैठानेके लिए एक षड्यन्त्र रचा। उनका इरादा था कि भोजनमे विष मिलाकर शम्भूजीको मार डालें।

परन्तु इस षड्यन्त्रका भण्डा-फोड हो गया और शम्भूजीने तत्काल ही विद्रोहियोको पकडवाकर कैदखानेमे डाल दिया और उन्हे भयकर यातनाएँ दी गईं। अन्नाजी दत्तो, उसका भाई सोमजी, हीराजी फरजन्द, बालाजी आवजी प्रभु, महादेव अनन्त और तीन अन्य व्यक्तियोंको बेडियाँ पडे हुए ही हाथियोके पैरोंसे कुचलवाकर मरवा डाला। दूसरे बीस अपराधियाको बादमे मृत्यु-दण्ड दिया गया। राजारामकी माँ, सोयराबाईपर यह अभियोग लगाया गया कि अपने पतिको विष देकर उसने (डेढ वर्ष पहिले) उनकी हत्या की थी, और अब शम्भूजीने सोयराबाईको विष देकर या भूखो मारनेका कष्टपूर्ण मृत्यु-दण्ड दिया। ये सारी घटनाएँ अक्तूबर, १६८१मे घटी। तब शम्भूजी सोयराबाईके पिताके शिरके घरानेका उत्पीडन करने लगा, उस घरानेके कई व्यक्तिको उसने मरवा डाला और बाकी रहे भागकर मुगलोंसे जा मिले।

भोसले घरानेका इलाहाबादमे रहनेवाला वश परम्परागत पण्डा, जो कनौजिया ब्राह्मण था, शम्भूजीके भव्य राज्याभिषेकसे कुछ ही पहिले रायगढ आ पहुँचा। बहुत ही जल्दी उसने शम्भूजीपर अपना प्रभाव जमा लिया, और उसका परम विश्वासपात्र बनकर कविकलशकी (कवियोमे श्रेष्ठ) उपाधिसे भूषित हो सारे राज्य-शासनका भी एकमात्र कर्ता धर्ता वही बन गया। उधर शम्भूजी दिनो दिन अधिकाधिक निरुद्यमी होने लगा और आखें बन्दकर अपने मन्त्री कविकलशकी सलाह माननेके अतिरिक्त राज्य-कार्यकी ओर यत्किंचित् भी ध्यान नही देता था। यदा कदा उमड पडनेवाले अस्थायी सामरिक जोशके अतिरिक्त शम्भूजीका सारा समय सुरा और सुन्दरियोकी उपासनामे ही बीतता था।

एक अज्ञात गाँवमे शरण लिए शाहज़ादा अकबर वहा भी अपने सीमित साधनो द्वारा जहाँ तक भी सम्भव था एक समाट्का-सा दिखावा बनाए रखता था। नोकरी-पेशा घुडसवार निरन्तर उसकी सेनामे भरती होते जा रहे थे और अगस्त, १६८१मे उसके पास लगभग २,००० घुड-सवार एकत्र हो गए थे। अपनी सारी सेना तथा अपने सारे सरदार और सेवकोको साथ लेकर १३ नवम्बर, १६८१के दिन शम्भूजीने पादि-शाहपुरमे (पालीमे) शाहज़ादे अकबरसे भेंट की। तब अकबरके साथ दुर्गादास भी था। किन्तु मुगल साम्राज्यपर आक्रमण कर वहाँ सफलता प्राप्त करनेका अकबरका एकमात्र अवसर अब तक निकल चुका था। १३ नवम्बर १६८१को औरगज़ेब स्वय बुरहानपुर आ पहुँचा था। यो आधा नवम्बर महीना बीतते-बीतते साम्राज्यके सारे सैनिक-साधन दक्षिणम ही औरगज़ेब स्वय, उसके तीनो शाहज़ादो तथा सर्वश्रेष्ठ सेनापतियोके नेतृत्वमे एकत्र हो गए थे। प्रारम्भम तो औरगज़ेबने भी शम्भूजी तथा अकबरके प्रति सजग ताकते रहनेकी नीतिको ही अपना कर सतोष कर लिया था।

५. औरगज़ेबका युद्ध-कौशल सम्बन्धी रन-सेना विन्यास, १६८२

अपनी ही देख-रेखमे जजीरापर प्रचण्ड आक्रमण करनेमे शम्भूजी जनवरी (१६८२) महीने भर व्यस्त रहा। औरगज़ेबको यह सुअवसर मिल गया। जुन्नरसे चलकर सैयद हसनअली उत्तर कोकणमे उतर गया और ३० जनवरी, १६८२के लगभग उसने कल्याणपर अधिकार कर लिया, किन्तु मई माहमे उस प्रान्तको छोडकर वह वापस लौट गया।

२२ मार्च, १६८२को औरगजेब औरगाबाद पहुँचा, तब उसने आजम-शाह और दिलेरखाको अहमदनगर भेजा, तथा दलपतरावके साथ शहाबुद्दीनखाने नासिकसे ७ मील उत्तरमे स्थित रामसेज किलेका घेरा डाला। किन्तु एक चतुर किलेदारके नेतृत्वमे वहाके वीर मराठा सैनिकोने डटकर किलेका बचाव किया, जिससे मुगलोकी वहा एक न चली। खान-जहाको भी कोई सफलता न मिली, तब अक्तूबर, १६८२म यह घेरा उठा लिया गया।

अब औरगज़ेबने सब ओरसे शम्भूजीपर चढाई करनेका निश्चय किया। १४ जूनको उसने शाहज़ादे आजमको बीजापुरकी ओर भेजा कि

शाही सेनाके डरसे वह राज्य मराठे दलोको कोई भी सहायता या आश्रय न दे। सितम्बर माहमे उसे एक स्वाधीन सेनापति बनाकर रणमस्तखा की उन्नति की गई और उसे कोकणपर चढाई करनेका आदेश दिया गया। कोककणमे घुसकर उसने नवम्बर, १६८२ ई०के पिछले दिनोमे कल्याणपर अधिकार कर लिया। रूपाजी भोसले और पेशवाने रणमस्तखाँका सामना किया, कई युद्ध भी हुए जिनमे अनेको मारे गए, परन्तु उन्हे कोई सफलता न मिली।

उधर औरगावादसे २५ मील दक्षिणमे गोदावरीके तीरपर रामद्रु नामक स्थानमे खान इ-जहा शाहजादेकी सेनामे आ मिला और तब पूवमे नान्देर तथा वहासे बीदर तक बढा चला गया। तदनन्तर उसने चान्दा और गोलकुण्डाकी सीमाओ तक आक्रमणकारियोका पीछा किया।

जून, १६८२मे आदिलशाही राज्यके प्रदेशपर आक्रमणकर शाहजादे आजमने धरूरपर अधिकार कर लिया। तब अपनी पत्नी जहाँजेब बानूको, जो साधारणतया जानी बेगम कहलाती थी, राव अनिरुद्धसिह हाडा और उसके राजपूतोके सरक्षणमे अपने ही पडावमे पीछे छोडकर शाहजादेने शम्भूजीके राज्यमे प्रवेश किया। इसपर बहुत बडी सख्यावाले एक मराठा दलने इस बेगमके पडावको आ घेरा। तब दाराशिकोहकी यह वीर पुत्री हाथीपर कसे पडदेवाले अपने हौदेपर बैठकर शत्रुओका सामना करनेके लिए आगे बढी।

अनिरुद्धसिहको बुलाकर उसने कहा—"राजपूतोके लिए चगताइयो की मान-प्रतिष्ठा अपनी ही है[1]। मैं तुम्हे अपना बेटा बनाती हूँ। अपनी इस थोडी-सी ही सेनासे यदि ईश्वरने हमे विजय प्रदान कर दी तो बहुत ही अच्छा। नही तो, तुम भरोसा रखना कि (शत्रुके हाथा कैद न होनेके उद्देश्यसे ही) मैं अपना काम तमाम कर डालूँगी।" तब एक घमासान युद्ध हुआ। घायल हो जानेपर भी अन्तमे अनिरुद्धसिह ही विजयी हुआ। नीराके तीरपर कुछ समय बितानेके बाद जून, १६८३मे आजम वापस शाही दरबारमे बुला लिया गया।

६ मुगल प्रयत्नोंकी असफलता : सम्राट्की व्यग्रता तथा आशकाएँ

२३ माच, १६८३को रुहेल्लाखाने कल्याण खाली कर दिया। वहाँसे

---

१ फारसी में—"शर्म इ चग़ताइया वा राजपूतिया एकस्त"।

वापस लौटते समय रूपाजी भोसलेके नेतृत्वमें एक मराठा सेनाने उसकी राह रोकी और कल्याणसे सात मील उत्तर-पूर्वमें तितवालके पास पीछेसे मुगलोंपर आक्रमण किया।

इस प्रकार दक्षिण पहुँचनेके बाद नवम्बर, १६८१से अप्रैल, १६८३ तकके एक वर्षसे भी अधिक समयमें उसके अत्यधिक साधन होते हुए भी औरंगजेबको कोई सफलता नही मिली। सच बात तो यह थी कि इस समय उसका जीवन घरेलू तथा मानसिक उलझनोंवाले एक कठिन संकट कालमेंसे बीत रहा था। अपने कुटुम्बियोंमें उसका रहा-सहा विश्वास भी पूर्णतया डाँवाडोल हो चुका था। किसपर वह विश्वास करे और कहाँ रहना उसके लिए निरापद होगा, यह कुछ भी उसे सूझता नही था। अतएव कुछ काल तक उसकी नीतिमें बहुत ही अधिक उलट-पुलट होती रही, मगर होनेके कारण वह पूरी-पूरी सावधानी बरतता था, जिससे ऊपरी तौरपर देखनेमें उसकी नीति अस्थिर और परस्पर-विरोधी ही जान पड़ती थी।

७. मराठोंकी जल सेना और सिद्दियोंके साथ उसके युद्ध, १६८०–१६८२

अंग्रेजोंके साथ भी मराठोंका स्थायी मेल नही रह सकता था, क्योंकि सिद्दियोंका जहाजी बेड़ा तथा यदा-कदा वहाँ आनेवाले मुगलोंके सूरत-वाले बेड़ेके जहाज भी प्रति वर्ष मईसे लेकर अक्तूबर तकके तूफानी बरसातवाले महीने बम्बई बन्दरगाहके सुरक्षापूर्ण संरक्षणमें ही बिताते थे। सिद्दियोंको अपने बन्दरगाहसे निकाल देनेके लिए शम्भूजी अंग्रेजोंको धमकाता था, और उनके शम्भूजीके आदेशोंका पालन करनेकी हालतमें उनके साथ मैत्री करनेका भी प्रस्ताव वह यदा-कदा करता था। किन्तु अनेकों उपायों द्वारा अंग्रेजोंने दोनोंके ही साथ मेल बनाए रखा।

बरसातके दिनोंमें जमकर युद्ध करनेका मराठोंके जहाजोंको कभी साहस नही हुआ। दोनों दलोंके विरोधी जलवासोंमें यदा-कदा झड़पें हो जाती थीं, किन्तु उनमें सिद्दियोंका ही पलड़ा भारी रहता था और समुद्रके उन भागोंमें मराठोंके व्यापारी जहाजोंका आना-जाना भी प्रायः बन्द रहता था।

७ दिसम्बर, १६८१के दिन पनवेलसे दस मील दक्षिणमे पतालगगा पर स्थित आप्ताके नगरको सिद्दियोने जला दिया। इसपर उत्तेजित हो १८ दिसम्बरको शम्भूजी दण्डा आए और पूरे तीस दिन तक निरन्तर जजीरापर गोलाबारी की। किन्तु उत्तरी कोकणपर चढाई कर जब मुगलोने ३० जनवरीके लगभग कल्याणपर अधिकार कर लिया, तब शम्भूजीको विवश होकर वापस रायगढको लौटना पडा।

जुलाई, १६८२मे मराठोने जजीराके टापूपर अपने पॉव जमानेके लिए प्रयत्न किए किन्तु वे विफल ही रहे। ४ अक्तूबरके दिन कोलाबासे ८ मील दक्षिणमे कलगॉवके सामने मराठोंके सेवक सिद्दी मिश्रीने सिद्दी कासिमके जहाजी बेडेको युद्धके लिए ललकारा। किन्तु युद्धमे सिद्दी मिश्री की हार हुई, बुरी तरहसे घायल हो वह कैद हो गया और उसके सात जहाजोंके साथ उसे भी बम्बई ले गए।

८. पुर्तगालियोंके साथ शम्भूजीका युद्ध, १६८३

अब शम्भूजीका क्रोध पुर्तगालियोपर उतरा। कारवारके दक्षिणमे स्थित अजदीवके टापूपर अधिकार कर तथा अप्रेल, १६८२मे वहाँ किले बन्दी कर उन्होने शम्भूजीको उत्तेजित किया था। उधर कल्याणके परगनेको उजाड रहे मुगल सेनापति रणमस्तखॉ तथा उसकी सेनाके लिए रसद लेकर आनेवाले मुगल जहाजोको दिसम्बर, १६८२म पुर्तगालियोंके वाइसरायने अपने थानाके किलेके नीचे होकर कल्याण तककी खाडीमे जाने दिया था। पुन मराठोंके उत्तरी कोकणके जिलोपर आक्रमण करनेके लिए भी उसने पुर्तगालियोंके दमनवाले उत्तरी जिलेमेसे होकर मुगल सेनाको बेरोक टोक गुजरने दिया था। ऐसे कार्यो द्वारा अपनी तटस्थताको भग करनेपर ही अब शम्भूजीने पुर्तगालियासे बदला लेनेका दृढ निश्चय किया। ५ अप्रेल, १६८३को उसने उनपर अपना आक्रमण प्रारम्भ कर दिया। उसने चढाई कर तारापुर तथा दमनसे लेकर बसी। तकके अन्य सारे ही नगराको जला दिया। ३१ जुलाईको पेशवाने चौलका घेरा डाला, किन्तु कई महीनोके घेरेके बाद भी मराठे चौलको नही जीत सके।

मराठोका ध्यान बॅटानेके उद्देश्यसे गोआके वाइसरायने फोण्डाके किलेका घेरा डालनेका आयोजन किया और २२ अक्तूबरको वहाँ पहुँच गया। उस किलेकी भीतरी दीवारोमे पडी हुई दरारोमे घुसनेका कुछ

भी प्रयत्न कर सकनेके पहिले ही ३० अक्तूबरको उस किलेकी सहायताके लिए शम्भूजीके सेनापतित्वमें एक बडी मराठा सेना वहा आ पहुँची। तब तो पुर्तगाली सेना घेरा उठाकर लौट पडी और १ नवम्बरके दिन वह दुरवत्ता पहुँची। दुरवत्तासे आगे लौटते समय पुतगालियोंको अनेको विकट आपत्तियोका सामना करना पडा। वडे ही दृढ निश्चयके साथ मराठा घुडसवारोंने पुर्तगाली पैदल सैनिकोपर आक्रमण किया, तब तो घबडाकर पुतगाली सेना बिखर गई और वहासे भाग खडी हुई।

९. शम्भूजीका गोआपर आक्रमण करना

फोण्डासे चल कर शम्भूजी गोआ नगरकी ओर बढे। १४ नवम्बरकी रातके समय गोआसे दो मील उत्तर-पूर्वमे पहाडकी चोटीपर बने हुए किलेकी दीवालें फाँदकर अन्दर जा पहुँचे। शीघ्र ही उनकी सहायतार्थ और भी चार हजार सैनिक वहाँ आ धमके।

दूसरे दिन प्रात कालमे ७ वजे गोआका वाइसराय सेण्टो इस्टेवाओके टापूपर जा उतरा और मराठे पैदल सैनिकोपर बडे जोरोंसे आक्रमण किया, किन्तु उसे हारकर ही वापस लौटना पडा। उसी दिन तीसरे पहर नावमें बैठकर वह उस टापूसे चल दिया। किन्तु दूसरे दिन १६ नवम्बर-को मराठे भी बडी ही शीघ्रतासे उस टापूको छोडकर वहासे चल दिए।

पहली दिसम्बरको एक हजार मराठा घुडसवार तथा तीन हजार पैदल सालसिट और बार्डेसके परगनोमे पहुँचे और कोई एक माह तक वहाँ यत्र-तत्र घूमकर लूट-मार की। युद्धके उत्तरी क्षेत्र, दमनके जिलेमे भी पुर्तगालियोकी बुरी तरह पराजय हुई और २२ दिसम्बरके दिन बम्बई-से दस मील दक्षिण-पूर्वमे स्थित कारिंजाके टापूपर शम्भूजीने अधिकार कर लिया। किन्तु इसके कुछ ही समय बाद ५ जनवरी, १६८४को शम्भूजीके राज्यके महत्त्वपूर्ण नगर बिचोलिमपर शाहआलमने अधिकार कर लिया, और उसके तीन दिन बाद मुगलोका एक जबरदस्त जहाजी बेडा गोआके बन्दरगाहमे पहुँचा। उधर २३ दिसम्बरको ही शम्भूजी रायगढ-को भाग गए थे। पुतर्गालियोंसे सन्धिकी बातचीत करनेके लिए शम्भूजीने अकबरके साथ कविकलशको भी वहाँ पीछे छोड दिया था। मुगलोके गोआ आ पहुँचनेपर उनसे बचनेके लिए कविकलश और अकबरने पहिले गोआसे २७ मील पूवमे भीमगढके जगल तथा बादमे फोण्डामे आश्रय

लिया। अन्तमे पुर्तगाली राजदूत मेन्युअल एस० ॾ अलबुकर्कके साथ जीते हुए प्रदेशो तथा लूटके मालका परस्पर लौटाने तथा भविष्यमे एक दूसरेके तटस्थताकी नीति बरतनेकी शर्तोपर मराठोने २० जनवरी, १६८८के लगभग सन्धि कर ली। किन्तु यह सन्धि तो एक सारहीन क्षणिक समझौता ही था। पुर्तगालियोंके साथ थोडा बहुत विरोध तो शम्भूजीके शासन-कालके अन्त तक बराबर चलता ही रहा।

१०. मराठोंके राजदरबारमे शाहज़ादे अकबरके आयोजन और उसकी निराशाएँ

सूरतके अँग्रेज व्यापारियोंने दिसम्बर, १६८३मे ठीक ही विवेचन किया था कि लूट-मारके लिए ही यत्र-तत्र छोटे आक्रमण करके या सिद्दियों और पुर्तगालियोंके साथ लाभविहीन युद्धोमे उलझकर शम्भूजी अपनी सारी शक्ति यो ही क्षीण कर रहे थे, और साथ ही अनेको मामलोमे उलझे रहनेके कारण कोई भी काम सफलतापूर्वक पूरा करना उसके लिए अत्यधिक कठिन हो रहा था।

शाहज़ादे अकबरको एकमात्र चिन्ता इसी बातकी थी कि किस प्रकार वह दिल्लीके राजसिंहासनको प्राप्त कर ले। अपने आयोजनके एक साधनके रूपमे ही वह शम्भूजीका महत्त्व आँकता था। महाराष्ट्रमे बीतनेवाला उसका प्रत्येक दिन उसकी आशाओको उतना ही आगे टालता था, तथा उसके जीवनका वह एक और दिन इन अनभ्यस्त असुविधापूर्ण परिस्थितियोमे ही बीतता था। महाराष्ट्र छोड देनेपर ही वह पुन सभ्य ससारको लौट सकता था।

हृदयको सतप्त करनेवाली प्रतीक्षा, आशाओंके निरन्तर टलते रहने तथा वचन पूरा करनेमे टालमटोलका पूरे अठारह महीनो तक कटु अनुभव करनेके बाद ही अकबरको शम्भूजीके चरित्र तथा उसकी नीतिका ठीक-ठीक पता लगा, और उससे किसी भी प्रकारकी सहायता पानेकी उसे कोई आशा न रही। अतएव उसने महाराष्ट्रसे चल देनेका ही निश्चय किया। अपने राठौड सैनिकोको लेकर वह दिसम्बर, १६८२मे अपने आश्रय-स्थान पालीसे चल पडा और सावन्तवाडीमे बादा नामक स्थानमे जा ठहरा। यद्यपि यह बाँदा मराठा राज्यके अन्तर्गत ही था किन्तु गोआ वहाँसे २५ मील उत्तरमे रह जाता था।

सितम्बर माहमें अकबर बाँदासे चलकर शम्भूजीके ही राज्यके अन्त-गत बिचोलिम नामक नगरमें पहुँचा, जहाँसे गोआ केवल १० मीलकी ही दूरीपर था। शम्भूजीसे पूणतया उब ताकर भ्रममें रहनेवाले उस बेचारे शाहज़ादेने अन्तमें ८ नवम्बरके लगभग ईरान जानेकी इच्छासे विंगुर्लामें एक जहाज़ मोल लिया। किन्तु कविकलश बडी ही शीघ्रताके साथ राजापुरसे वहा पहुँचा और दुर्गादास राठौडको लेकर उसने जहाज़पर अकबरसे भेंट की और भारतमें ही शम्भूजीकी ओरसे उसे सैनिक सहायता दिलवानेका वादाकर वापस थलपर आनेके लिए अकबरको फुसला लिया। उसके बाद पुर्तगालियोंके साथ मराठोंका युद्ध छिड गया जिसमें अकबर मध्यस्थ बना था।

फरवरी, १६८४के बाद अकबर पूरे एक वर्ष तक रत्नागिरी जिलेमें साखर्पे तथा मलकापुरमें ठहरा रहा और भावी कार्यवाहीकी योजना बनानेके लिए उससे मिलनेके हेतु बारम्बार कविकलशको बुलाता रहा।

११ शम्भूजीके विरुद्ध विद्रोह तथा जुलाई, १६८३के बादकी मुगलोंकी चढ़ाइयाँ

जुलाई, १६८३के बाद दक्षिणके इन युद्धोंमें मुगलोंकी सफलताओंकी सम्भावनाएँ निरन्तर बढने लगी। शम्भूजीके साथ अकबरका बेबनाव हो गया था, तथा अब अकबर भारतसे चल देनेकी सोच रहा था। मराठे पुर्तगालियोंके साथ एक दीर्घकालीन युद्धमें उलझ रहे थे। इन सारी परिस्थितियोंसे मुगलोंने लाभ उठाया। औरंगज़ेबकी अनिश्चितता तथा सावधानीपूर्ण निष्क्रियताका भी अन्त हो गया, तथा अनेकों दिशाओंमें एक साथ ही जोरोंसे मुगलोंके आक्रमण प्रारम्भ हुए।

शम्भजीके व्यभिचारों, अस्थिर चित्तवृत्ति तथा क्रूरतापूर्ण अत्याचारों-के कारण उसके अधिकारियों तथा सामन्तोंमें सर्वत्र असन्तोष फैल गया था। औरंगज़ेबकी रिश्वतोंने असन्तोषकी इस आगमें घीका काम किया और लोग मराठोंकी नौकरी छोड-छोडकर मुगलोंके साथ जा मिलने लगे। २६ जुलाई १६८३को शिवाजीका मुंशी काज़ी हैदर औरंगज़ेबके पास जा पहुँचा और उसे खानकी उपाधि तथा दो हज़ारी मनसब मिला, सन् १७०६में वही सारे साम्राज्यका काज़ी नियुक्त हुआ था।

कुडालके शासक तथा शम्भूजीके एक सामन्त खेम सामन्तने शम्भू-

जीके विरुद्ध विद्रोह किया और पुर्तगालियोंकी सहायता पाकर फरवरी, १६८५मे गोआसे उत्तरमे सावन्तवाडी तथा मराठा राज्यके अन्य अनेको नगरोमे लूट मार की और उन्हे जला भी डाला। कुछ ही दिनोमे समुद्र तटके इस सारे प्रदेशमे शम्भूजीके विरुद्ध विद्रोह हो गया।

वर्षा ऋतुका अन्त हो जानेपर सितम्बर आधा बीतते-बीतते मुगलोंके आक्रमण प्रारम्भ हो गए। रामघाटकी घाटीमे होकर सावन्तवाडी तथा दक्षिणी कोकणमे जा घुसनेके लिए १५ सितम्बरके कुछ दिन बाद शाह आलम एक बहुत बडी सेनाके साथ औरगाबादसे रवाना हुआ। उधर अक्तूबरमे शहाबुद्दीनको पूना भेजा, जहासे २७ दिसम्बरको घाटके पार कोलाबा जिलेमे निजामपुरपर उसने धावा बोल दिया।

१२ दक्षिणी कोंकणपर शाहआलमका आक्रमण

सितम्बर, १६८३मे औरगाबादसे सीधा दक्षिण चलकर बीजापुर राज्यमे होता हुआ शाहआलम बेलगाँवके जिलेमे पहुँचा और वहाँ शाह पुरके किले, बेलगाँवसे १८ मील दक्षिणपूर्वमे सापगाँव, अन्य कई बडे नगरो तथा उस प्रदेशके कुछ और किलोपर अधिकार कर लिया, जहाँ उसे लूटमे बहुतसा माल हाथ लगा। तब वह सीधा पश्चिमकी ओर पलट गया, और बेलगाँवसे २६ मील पश्चिममे तथा गोआसे सीधा ३० मील उत्तर-पूर्वमे रामघाटकी घाटीको पार कर वह सावन्तवाडीके मैदानोमे उतर पडा। ५ जनवरी १६८४को शाहआलम बिचोलिम पहुँचा।

गोआके पास जा पहुँचनेपर शम्भूजीकी लूटसे उन्हे बचानेके शुल्कके रूपमे शाहआलमने पुर्तगालियोंसे बहुतसा द्रव्य माँगा। गोआपर छल द्वारा अधिकार कर लेनेका भी उसने आयोजन किया।

गोआके पाससे शाहआलम उत्तरमे मालवण गया और वहा मराठा राजाके सुप्रसिद्ध श्वेत मन्दिर तथा अन्य देवघरोको बारूदसे उडवा दिया। इस चढाईके समय उसने कुडाल, और सावन्तवाडीमे बाँदाको जलाया तथा विंगुर्लाको लूटा। तब पुन दक्षिणकी ओर पलटकर वह गोआसे उत्तरमे चापोरा नदीके तटपर पहुँचा। उसका इरादा था कि या तो रसदका सामान लानेवाले मुगल जहाजोके साथ लगाव स्थापित करे, या पुर्तगालियोंकी राजधानीपर आक्रमण करनेका दूसरी बार प्रयत्न करे।

अकालके कारण फरवरी माहमे मुगल सेना आगे नही बढ सकी। पुतगाली सशक हो उठे थे, एव उन्होने रसद लेकर आए हुए मुगल वेडेको गोआके पास होकर खाडीम ऊपर शाहजादेके पडाव तक नही जाने दिया। पडावके आसपास कही भी धान्य प्राप्य नही था, उधर गोआमे भी अकाल पडा हुआ था। अतएव हारकर शाहजादा २० फरवरीके दिन वापस घाटको लौट गया।

किन्तु उसकी कठिनाइयाँ तो वढती ही जा रही थी। रामघाटकी सकडी घाटीम इतने जोरोसे महामारी फैली कि एक सप्ताहमे ही शाहआलमकी सेनाके कोई एक तिहाई सैनिक मर गए, जो कोई भी वीमार हुआ वह किसी भी प्रकार नही वच सका। हाथी, घोडे तथा ऊँट तो और भी अधिक सख्यामे मरे और उनकी लाशोसे वहाँका सारा वायुमण्डल ही अत्यधिक दूपित हो गया। यातायातके साधन न रह जानेके कारण अव दूसरी वार अकालका सामना करना पडा। गरमी और प्यासके मारे ही अनेको आदमी वहाँ मर गए।

तव उस घाटीको पार कर शाहआलम कनाडाके मैदानोम उतरा। कुछ गाँवोको जलाने तथा कुछ नगरोको लूटनेके अतिरिक्त कोई महत्त्वपूण कार्य किए विना ही उसकी सेनाके वचे-खुचे सैनिक दयनीय दशामे १८ मई, १६८४को अहमदनगर पहुँचे।

१३. सन् १६८३ ई०के वादकी शम्भूजीकी कार्यवाही

सन् १६८३ ई०से १६८५ ई० तककी छोटी-छोटी चढाइयोका यहा विवरण करना आवश्यक नही। सन् १६८४मे पहिले छ महीनोम मुगलोने शम्भूजीपर चढाई की थी वह बहुत ही सफल रही। अनेको मराठा सेनाओकी वारम्वार हार हुई और शम्भूजीके राज्यका वहुत सा भाग जीतकर मुगल साम्राज्यमे मिला लिया गया। किन्तु बहादुरगढके किलेमे सुरक्षित शम्भूजीकी दो पत्नियो, एक पुत्री तथा तीन दासियोको जुलाई माहमे पकडकर मुगलोने अपनी सवसे अधिक उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। दिलेरखाँ द्वारा क़ैद की गई शम्भूजीकी एक पत्नी और एक वहिन पहिले ही अहमदनगरके किलेमे वन्द पडी थी।

इस समय शम्भूजी कहा था? सन् १६८३के अन्तम गोआपर किए गए आक्रमणकी विफलताके वाद शम्भूजीने स्वयको विलासवासनाके

सागरमे पूर्णतया डुबो दिया। युद्ध-क्षेत्रमे सेना-सचालन करने तथा अपने पूज्य पिता द्वारा उपस्थित वीरता और अथक परिश्रमके अनुकरणीय आदर्शका अनुसरण न कर, अब शम्भूजीका सारा समय सुरा, सुन्दरी, सगीत तथा मनोरजनमे ही बीतता था।

जनवरी, १६८५ आधा बीतते-बीतते सहाबुद्दीनने भोरघाटकी राह कोकणपर आक्रमण किया और रायगढके तले पचाड गाँवको जलाया, और 'अनेको काफिर राजाओंको मारा, उनकी धन-सम्पत्तिको लूटा, अनेकोको कैद किया और यो उसने एक बडी विजय प्राप्त की।' उसकी इस महत्त्वपूर्ण सफलताके पुरस्कारस्वरूप उसे खान बहादुर फिरोजजगकी उपाधि प्रदान की गई।

अनेको मराठा सेनानायकोको फिरोज़जगने फुसलाया, जिससे वे शम्भूजीका साथ छोडकर शाही पक्षमें हो गए। दिसम्बरके प्रारम्भमे अब्दुल कादिरने कोण्डानाके किलेपर अधिकार कर लिया।

१४. मुगलोंका बीजापुर राज्यके परगने जीतना

१२ सितम्बर, १६८६को बीजापुर किलेके आत्म-समर्पणके बाद अपने इस नये जीते हुए प्रदेशके विभिन्न भागोके किलोपर अपना अधिकार करने, वहाका माली बन्दोबस्त करने तथा वहाँ शान्ति बनाए रखनेके लिए औरगजेबने अपने सेनापतियोको वहाँके विभिन्न भागामें भेजा। किन्तु अगले वर्ष फरवरीसे लेकर सितम्बर तक सारी मुगल सेना गोलकुण्डाके घेरेके लिए ही वहाँ एकत्रित रही और २१ सितम्बर १६८७के दिन गोल-कुण्डाके किलेके पतनके बाद ही शाही सेनानायकोको अवकाश मिला कि पुराने आदिलशाही राज्यके परगनोमे जाकर वहाँ वे आवश्यक कार्यवाही प्रारम्भ कर सके।

कृष्णा और भीमा नदीके बीचमे स्थित प्रदेशपर राज्य करनेवाले बेरडोकी राजधानी सागरमे थी। मुगलोंने सबसे पहले इन्ही बेरडोंपर चढाई की। एक ही वर्षमें बीजापुर और गोलकुण्डाके दोनो किलोंके आत्म-समर्पण कर देनेके कारण मुगल सेनाका आतक सब बहुत फैल गया था, एव बेरडोंके शासक पाम नायकने २७ नवम्बर, १६८७को अपना किला सौंपकर मुगलोंकी अधीनता स्वीकार कर ली, और २७ दिसम्बर, १६८७को वह स्वय औरगजेबकी सेवामे उपस्थित हुआ। किन्तु उसके

पाँच ही दिन बाद पाम नायक एकाएक मर गया, तब उसका राज्य मुगल साम्राज्यमे मिला लिया गया।

इन नये जीते हुए दक्षिणी राज्योके पूर्व और दक्षिणके प्रदेशोकी ओर मुगल सेनानायकोंने अब ध्यान दिया। सिद्दी मसूद स्वतन्त्र बनकर तुगभद्रासे दक्षिणमे स्थित अडोनीके किलेमे बैठा कर्नूलके जिलेपर शासन कर रहा था, एव फिरोजजगने उसपर चढाई की, तब बाध्य होकर सिद्दी मसूदने ६ अगस्त, १६८८के दिन आत्म समपण किया। अडोनीके इस किलेपर मुगलोने अधिकार कर लिया और उस किलेका नाम पलट-कर इम्तियाजगढ रख दिया। सिद्दी मसूदको सात हजारीका मुगल मन-सब दिया गया।

उधर घेरा डालनेके बाद माच, १६८८के लगभग शाहजादे आजमने बेलगावका सुदृढ किला जीत लिया। अन्य दिशाओम भी शाही सेनाने अनेको किलोपर अधिकार कर लिया।

२५ जनवरी, १६८८को हैदराबादसे रवाना होकर १५ माचको औरंग-गजेब बीजापुर पहुँचा। किन्तु नवम्बर, १६८८के प्रारम्भमे बीजापुर नगर तथा शाही पडावमे एक भयकर महामारी फैल गई। "पहिले तो काँख और जघाके ऊपरी सिरेपर गाँठें उठती थी, तब ज्वर बहुत बढ जाता और अन्तमे एकाएक बेहोशी छा जाती। इलाज या दवाईका कुछ भी असर नही होता था। कुछ बीमार तो दो दिनसे अधिक भी नही निकाल पाते थे। इस बीमारीसे मरनेवालोमे विशेपरूपेण उल्लेखनीय थे—औरगजेबकी बूढी बेगम औरगाबादी महल, महाराजा जसवन्तसिहका बेटा कहा जानेवाला तेरह-वर्षीय मुहम्मदी राज, सदर फाजिलखाँ, तथा कई अन्य अमीर। हिन्दू और मुसलमान दोनो ही धर्मोंके मध्यम वर्गवालो या दरिद्रियोंमेसे जो मरे उनकी गणना नही की जा सकती, किन्तु अनुमान यह था कि उनकी सख्या एक लाखसे किसी भी प्रकार कम न होगी। फिरोजजगकी आखें भी इसी बीमारीमे चली गईं।

किन्तु अपने पूव निश्चयके अनुसार औरगजेब १४ दिसम्बर, १६८८-को बीजापुरसे ससैन्य चल पडा, और उसके एक सप्ताह बाद महामारीका जोर कुछ घटा। बीजापुरसे ८५ मील उत्तरकी ओर चलकर औरगजेब अकलूज पहुँचा और उसने वही पडाव डाल दिया।

१५. भारतमें अकबरके अन्तिम प्रयत्न

बीजापुरके घेरेमे सम्मिलित होनेके लिए औरंगजेबके शोलापुरसे चले जानेके बाद जब मुगलोंके दक्षिणी जिलोंमे मुगल सेना नाम-मात्रको ही रह गई थी, तब जून, १६८६मे अकबरने मुगल प्रदेशपर एक धावा किया, किन्तु उसका यह प्रयत्न विफल हुआ।

अन्तमे अकबरने राजापुरमे एक जहाज किराए किया, जिसका संचालन वेण्डल नामक एक अंग्रेज करता था। तब शुजाके पुराने अनुचर जियाउद्दीन मुहम्मद तथा अपने ४५ सेवकोको साथ लेकर फरवरी, १६८७मे अकबर उस जहाजसे ईरानके लिए रवाना हुआ, किन्तु हवा अनुकूल न होनेके कारण वह मसकतके बन्दरगाहमे जा पहुँचा। कई माह तक वहा रुके रहनेके बाद २४ जनवरी, १६८८को वह इस्फहानके ईरानी शाही राजदरबारमे पहुँचा। उसको सकुशल भारतसे विदा करनेके बाद दुर्गादास मारवाडमे अपने घरको लौट गया।

१६. मराठा राज्यकी आंतरिक परिस्थिति तथा शम्भूजीकी कार्यवाहियाँ, १६८५–१६८७

जब औरंगजेब अपने साम्राज्यकी पूरी शक्तिके साथ बीजापुर और गोलकुण्डाको दबा रहा था, तब शम्भूजीने दक्षिणके सभी राज्योंको समान रूपसे आतंकित करनेवाले इस बढते हुए खतरेका सामना करनेका कोई भी उपयुक्त उपाय नही किया। निश्चित वार्षिक कार्यक्रमके तौरपर शम्भूजीके सैनिक मुगल प्रदेशमे लूट-मार करते थे, किन्तु ऐसे आक्रमणो का सैनिक परिस्थितिपर कोई भी प्रभाव नही पडता था। ऐसी छोटी-मोटी बातोकी तो औरंगजेब पूर्ण उपेक्षा ही करता था। कही उनका पतन न हो जावे, इस उद्देश्यसे बीजापुर और गोलकुण्डाके घेरोंसे औरंगजेबका ध्यान तथा शक्ति बटानेके हेतु पूरे विचारके साथ बनाया हुआ कोई सुनिश्चित बडा आयोजन कार्यरूपमे परिणत करनेकी बुद्धिमानी मराठा राजामे न थी। उसके सामन्तोंके विद्रोहों और राजदरबारियोंके षड्यन्त्रोंके कारण उसका शासन-प्रबन्ध बहुत ही निर्बल होकर शोचनीय दशामे पहुँच चुका था। जिन जिन मन्त्रियो तथा सेनापतियोंने उसके पिताके शासनको गौरवपूर्ण बनानेमे कुछ भी सहयोग दिया था, शम्भूजीके

राज्यारोहणके बाद कुछ ही वर्षोंमे वे सब एक-एककर इस लोकसे विदा हो गए। मराठा राज्यके सुदूरस्थ प्रदेशोंमे सुयोग्य स्थानीय अधिकारियोंके अभावके कारण वहाके शासन-प्रबन्धको बहुत हानि पहुँचती थी। मराठा सेनानायको तथा महत्त्वपूर्ण पदोपर आरूढ मन्त्रियोको मृत्यु-दण्ड देने या कम-से-कम उन्हे कैद करवा देनेके अनिवार्य फलस्वरूप जो नित्य नये षड्यन्त्र होते थे उनसे परिस्थिति अधिकाधिक बिगडती जा रही थी। मद्रास-देशीय कर्नाटक प्रदेश, जो एक स्वाधीन राज्यके समान ही था, शम्भूजीके अधिकारसे प्राय निकल चुका था। शम्भूजीका बहनोई हरजी महाडिक वहाँ शासन करता था, अब हरजीने स्वय महाराजाकी उपाधि धारण की और वह अर्द्ध स्वतन्त्र बन बैठा।

शम्भूजीके आलस्यपूर्ण शासन, उसके अधिकारियोके भ्रष्टाचार तथा विद्रोहियो द्वारा किए गए उपद्रवोके फलस्वरूप मराठा राज्यका जो आर्थिक पतन हुआ था, अग्रेजोकी फैक्टरियोके कागज-पत्रो तथा वहाँके अन्य विवरणोमे उसका बहुत ही सम्पूर्ण सुस्पष्ट विवरण मिलता है।

१७. कैद होकर शम्भूजीका मृत्यु-दण्ड पाना

अक्तूबर, १६८४मे शम्भूजीके विरुद्ध एक नया षड्यन्त्र हुआ, जिसके फलस्वरूप कई प्रधान व्यक्तियोको कैद कर लिया गया, शम्भूजीकी मृत्यु तक वे सब कैद ही रहे। तदनन्तर अगले चार वर्ष तक शम्भूजीके राज-दरबारमे शान्ति बनी रही। किन्तु अक्तूबर १६८८मे शिरके घरानेने पुन शम्भूजीके विरुद्ध सिर उठाया। रायगढसे चलकर शम्भूजीने सग-मेश्वरमे विद्रोहियोको हराकर भगा दिया और तब वह स्वय खेलना पहुँचा। इस सन्देहमे कि इस पिछले विद्रोहमे उनका भी हाथ था, शम्भू-जीने प्रह्लाद नीराजी और कई अन्य मन्त्रियो तथा कुछ प्रमुख व्यक्तियोको कैद किया, एव खेलनाके किलेमे आवश्यक रसद और युद्ध-सामग्रीको एकत्रित करवाकर वह स्वय कविकलशके साथ अपनी राजधानीको लौट पडा। राहमे सगमेश्वर पहुँचनेपर उसके साथ बहुत ही थोडे शरीर-रक्षक होते हुए भी वह पूर्ण लापरवाहीके साथ वहा ही सुरा-पान और विलासमे रत हो गया। यह विश्वास कर कि मुगल सैनिक कदापि वहा नहा पहुँच सकते थे, अत्यावश्यक देख भाल और पहरेका भी वहा कोई प्रबन्ध नही किया गया।

उधर पन्हालाके किलेका घेरा डालनेके लिए १६८८मे औरगज़ेबने मुकर्रबखा नामक एक सुयोग्य तथा उत्साही सेनापतिको ससैन्य रवाना किया था। जब उसके गुप्तचरोने उसे सगमेश्वरमे अरक्षित ही शम्भूजीके व्यभिचारमे रत होनेकी सूचना दी, तब कोल्हापुरके अपने पडावसे चलकर राहमे बिना रुके ही तत्परताके साथ वह उधर बढा। केवल ३०० सैनिकोको ही अपने साथ लिये ९० मीलकी दूरीको केवल दो या तीन दिनमे पार कर वह 'बिजली और हवाकी-सी तेज़ीसे' सगमेश्वर जा पहुँचा।

जब आक्रमणकारी नगरमे जा घुसे तब कविकलशने उनका सामना किया और युद्धमे घायल हुआ। अपने नेताके न रहनेसे तब मराठा सेना बिखरकर भाग खडी हुई। शम्भूजी और उसके मन्त्रीने उस मन्त्रीके मकानके एक तलघरमे आश्रय लिया। किन्तु मुगल सैनिकोने उनके लम्बे-लम्बे बालोके द्वारा खीचकर उन्हे वहाँसे निकाला और पकडकर बाहर हाथीपर सवार अपने सेनापतिके पास उन्हे ले गए। १ फरवरी, १६८९ को यो शम्भूजी पकडा गया। शम्भूजीके मुख्य अनुचरोमें से कोई २५ आदमी अपनी पत्नियो तथा पुत्रियोके साथ उस दिन वहाँ पकडे गए।

शम्भूजीके पकडे जानेका समाचार शीघ्र ही शाही पडावमे अकलूज पहुँच गया, और तब साम्राज्यके सब ही विभिन्न भागोमे आनन्द और उल्लासकी लहर-सी फैल गई।

१५ फरवरीको शाही पडाव बहादुरगढ पहुँचा और तब ये कैदी भी वहा लाए गए। औरगज़ेबकी आज्ञासे दक्षिणके इस प्रजापीडकको जन साधारणके उपहासका लक्ष्य बनाया गया। धीमी चालसे चलाकर कैदियोको सारे पडावमे घुमाया गया, और तब उन्हे औरगज़ेबके सम्मुख ले गए, जो इस अवसरके उपलक्ष्यमे पूरा दरबार लगाए बैठा था। कैदी शम्भूजीको देखते ही औरगज़ेब अपने राजसिंहासनसे उतर पडा और नीचे कालीन पर घुटने टेककर बैठ गया तथा धरतीपर सिर झुकाकर इस आशातीत विजयके उस दाताके प्रति उसने अपनी दुहरी कृतज्ञता प्रकट की।[1] सम्राट्के सलाहकारोका सुझाव था कि शम्भूजीको जीवन

---

१ एक परम्परागत लोक-कथाका उल्लेख करते हुए खफीखाने लिखा है कि जब औरगज़ेब इस प्रकार प्रार्थना कर रहा था, तब तत्काल ही हिन्दीके कुछ छन्द बनाकर कविकलशने शम्भूजीको सुनाए, जिनमे उसने कहा था—"ओ राजा! औरगज़ेब भी तुम्हारे सामने राजसिंहासनपर बैठनेका साहस नही कर

दान देकर सारे मराठा किले शान्तिपूर्वक मुगलोंका सौंप देनेकी आज्ञा अपने अधिकारियोंको देनेके लिए उसे बाध्य किया जावे। किन्तु सार्वजनिक रूपसे अपमानित किए जानेके कारण उसकी आत्मामें भर जानेवाली तीव्र कटुतासे क्षुब्ध तथा अब बिलकुल ही निराश होकर शम्भूजीने जीवनदानके इस प्रस्तावको ठुकरा दिया।

मराठा राजाके अपराध सर्वथा अक्षम्य थे। उसी रात शम्भूजीकी आँखें फोड़ दी गईं और दूसरे दिन कविकलशकी जीभ काट डाली गई। इस्लाम धर्मवेत्ता मुल्लाओं और काज़ियोंने फैसला दिया कि शम्भूजीको मृत्यु-दण्ड दिया जाना चाहिए, जिसे औरंगज़ेबने स्वीकार किया। एक पखवाड़े भर निरन्तर अत्याचार और अपमान भुगतनेके बाद ११ मार्चको कोरेगाँवमें भयंकर पीड़ाकारक क्रूरताके साथ इन कैदियोंको मृत्यु-दण्ड दिया गया।

१८. सन् १६८९ ई०का युद्ध, रायगढ़पर मुगलोंका अधिकार होनेपर शम्भूजीके सारे कुटुम्बका कैद होना

शम्भूजीके पतनके बाद उसके छोटे भाई राजारामको कैदखानेमेंसे निकालकर रायगढ़में उपस्थित मराठा मन्त्रियोंने उसे ८ फरवरीको राजसिंहासनपर बैठाया, क्योंकि शम्भूजीका पुत्र शाहू इस समय निरा बालक था, और जब कि औरंगज़ेब जैसे शत्रुके साथ राज्यके जीवन-मरणकी भयंकर लड़ाई चल रही थी, तब एक बालकको राजा बनाना उचित प्रतीत नहीं हुआ। कुछ ही दिनों बाद इतिकादखाके नेतृत्वमें एक शाही सेनाने आकर मराठा राजधानीका घेरा डाला, किन्तु राजाराम तो योगीका भेष बनाकर ५ अप्रैलके दिन वहाँसे निकल भागा। पता लगनेपर मुगलोंने उसका पीछा किया, किन्तु उसके साथियोंने मुगलोंकी राह रोकी और युद्ध कर उन्हें उलझाए रखा, तब कहीं बड़ी कठिनाईके साथ राजा-

---

सकता हूँ, किन्तु तुम्हारे सम्मुख घुटने झुकाकर तुम्हारा अभिनन्दन करता हूँ"। (खफीखाँ, भाग २, पृ० ३८८)।

ईश्वरदासका कथन है कि औरंगज़ेबके सामने झुककर उसे प्रणाम करनेके लिए प्रेरित किए जानेपर भी शम्भूजीने वैसा नहीं किया। (ईश्वरदास, पृ० १५५ ब)।

राम उनसे बच सका। कुछ समय तक वह वर्तमान मैसूर राज्यके शिमोगा ज़िलेके बेदनूरकी रानीके राज्यमें आश्रय लिए छिपा रहा। अन्तमें जब उस रानीने उसे जाने दिया तब वहाँसे चलकर वह १ नवम्बरके दिन जिंजी पहुँचा।

मुगल साम्राज्यके प्रधान मन्त्री असदखाँके पुत्र इतिकादखाँने बहुत दिनों तक चलनेवाली कशमकशके बाद १ अक्तूबर, १६८९के दिन रायगढ़के किलेपर अधिकार कर लिया। तब वहाँ शिवाजीकी जीवित विधवाओं, शम्भूजी तथा राजारामकी पत्नियों, पुत्रियों और पुत्रोंको, जिनमें शम्भजीका सप्त-वर्षीय पुत्र शाहू भी था, इतिकादखाँने पकड़ लिया। उनके लिए आवश्यक पड़देका प्रबन्ध कर मराठा राजघरानेकी इन स्त्रियों को पूरे आदरके साथ अलग तम्बुओंमें रखा गया। शाहूको राजाकी उपाधि देकर ७ हज़ारीका मनसब दिया गया, किन्तु फिर भी शाही डेरोंके पास ही वह कैद रखा जाता था।

यों सन् १६८९के अन्त तक औरंगजेब उत्तरी भारतके साथ ही दक्षिणका भी प्रतिद्वन्द्वी विहीन एकछत्र सम्राट् बन गया। आदिलशाह, कुतुबशाह और राजा शम्भूजी, तीनों हीका पतन हो चुका था, तथा उनके राज्य मुगल साम्राज्यमें सम्मिलित हो गए थे।

"ऐसा प्रतीत होने लगा था कि औरंगजेबने अब सब कुछ प्राप्त कर लिया था, परन्तु वास्तवमें वह सब कुछ खो बैठा था। उसके अध पतनका प्रारम्भ यहींसे हुआ। मुगल साम्राज्य इतना विस्तृत हो गया था कि किसी एक व्यक्तिका या केवल एक ही केन्द्रसे उसपर शासन करना सर्वथा असम्भव बात थी। सब ही दिशाओंमें उसके शत्रुओंने सिर उठाया, वह उन्हें हरा सकता था, परन्तु सदाके लिए उन्हें कुचल देना उसके लिए सम्भव न था। उत्तरी तथा मध्य भारतके बहुतसे भागोंमें अराजकता फैली हुई थी। शासन प्रबन्ध शिथिल और भ्रष्टाचारपूर्ण होता जा रहा था। दक्षिणके इस अनन्त युद्धके कारण खजाना खाली हो गया था। नैपोलियन प्रथम प्रायः कहा करता था कि 'स्पेनके नासूरने मुझे बरबाद किया।' दक्षिणके इस विपैले फोड़ेने सचमुच ही औरंगजेबको चौपट किया।" (यदुनाथ सरकार कृत 'स्टडीज़ इन मुगल इण्डिया', पृ० ५०)।

भाग ५

कर सका, क्योकि उसपर आक्रमण कर नष्ट करनेके लिए अब वहां मराठा राज्यकी केन्द्रिय सत्ता या उसकी राजकीय सेना नही रह गई थी।

आदिलशाह और कुतुबशाहके वैधानिक उत्तराधिकारीके रूपमे उसके हाथो पडनेवाले पूव तथा दक्षिणमे सुदूर तक फैले हुए उन उपजाऊ प्रदेशोपर अपना एकाधिपत्य स्थापित करनेमे ही औरगजेवने सन् १६९० और १६९१के पूरे दो वप विताए। मराठ राज्यका एक तरहसे विध्वस हो चुका था, यह सोचकर उसने अब मराठोकी शक्तिको स्पष्टतया नगण्य ही समझा। मराठा जनताकी शक्तिका ठीक ठीक नाप-तोल तब भी उसे करना था।

सन् १६९१ ई०की पतझड तक जिजीका घेरा लगानेवाली मुगल सेना की स्थिति इतनी सकटपूर्ण हो गई थी कि औरगजेवको उसकी सहायताथ एक वहुत वडी सेना वहां भेजनी पडी। सन् १६९२मे पश्चिमी युद्ध-क्षेत्रमे मुगलोको कोई भी सफलता नही मिली, परन्तु इधर पूर्वी तटपर तो मुगल सेनाको बुरी तरह मुंहकी खानी पडी, दो उच्च मुगल सेनानी शत्रुके हाथो कैद हो गए, मुगल सेनाको जिजीका घेरा उठा लेना पडा तथा शाहजादे कामवख्शको उसके ही साथी सेनानायकोने कैद कर लिया (दिसम्बर, १६९२-जनवरी, १६९३)। अतएव सन् १६९३ ई०के प्रारम्भ मे सबसे पहला काम यही हो गया कि पूर्वी कर्नाटकमे बहुत अधिक-सेना तथा पूरी पूरी युद्ध सामग्री भिजवाकर वहांकी सैनिक स्थितिको सम्हाल लिया जावे। उधर पश्चिमी युद्ध-क्षेत्रमे शाहजादे मुईज्जुद्दीनने अक्तूबर, १६९२मे पन्हालेके किलका घेरा डाला और अगले-सारे वर्ष भर यथाशक्ति प्रयत्न करनेके बाद भी उसे कोई सफलता नही मिली तथा अन्तमे माच, १६९४म मराठाने उसे वहासे खदेड दिया। इसके साथ ही सन्ता घोरपडे, धना जादव, नीमा सिंधिया, हनुमन्तराव आदि मराठा पक्षके अनेको सेनानायक निरन्तर आक्रमण कर रहे थे।

इसी समय वीदरसे लकर बीजापुर तथा रायचूरसे मालखेड तक फैले हुए इस विस्तृत एव सामरिक दृष्टिसे महत्त्वपूण प्रदेशमे रहनेवाले बेरड जातिके सवल आदिवासियोका विद्रोह उन्हीके साहसी शासक पीडिया नायकके नेतृत्वमे इतना उग्र हो गया था कि जून, १६९१से लेकर दिसम्बर, १६९२ तक एक उच्च कोटिके सेनापतिको एक वडी सेनाके साथ सागरम रखना अत्यावश्यक प्रतीत हुआ।

अन्तमे अप्रैल, १६९५मे जाकर ही कही औरगजेवने अनुभव किया

कि आदिलशाही तथा कुतुबशाही राजधानियोको जीतकर तथा वहाँके राजघरानोको मिटानेपर भी उसे वास्तवमे कोई लाभ नही पहुँचा । उसने देखा कि शिवाजीके कालकी तुलनामे अब मराठा समस्याका स्वरूप पूणतया बदल गया था, शम्भूजीके समयकी परिस्थितियोंके साथ भी उनका कोई साम्य नही पाया जाता था। अब मराठे एक लूट मार करनेवाली जाति या स्थानीय विद्रोही मात्र नही रह गए थे, किन्तु अब वे मुगल साम्राज्यके एकमात्र शत्रु तथा दक्षिणी भारतकी राजनीतिमे एक महत्त्वपूण शक्ति बन गए थे। सारे भारतीय प्रायद्वीपम बम्बईसे मद्रास तक फैला हुआ यह सर्वव्यापी शत्रु वायुके समान ही किसी भी प्रकार पकडमे न आनेवाला था, उसका न तो कोई एक प्रमुख नायक था और न कोई शक्तिशाली केन्द्र ही कि जिनपर अधिकार हो जानेके फलस्वरूप शत्रुकी शक्तिका आप-ही-आप अन्त हो जावे। उनकी शक्ति बढते-बढते अब परिस्थिति बहुत ही भयकारक हो गई थी, क्योकि केवल दक्षिणके ही नही, परन्तु मालवा, मध्यप्रदेश और बुन्देलखण्ड तकके मुगल साम्राज्यके सारे शत्रु तथा सार्वजनिक शान्ति और सुसगठित शासन-व्यवस्थाके सब ही विरोधी उनके मित्र बनकर अब उनका साथ देनेके लिए तत्पर होने लगे थे।

अतएव अब औरगज़ेबके लिए वापस दिल्ली लौटना कदापि सम्भव नही था। दक्षिणमे उसका काय अभी अधूरा ही था, वास्तवमे तो अब उसका प्रारम्भ ही हो रहा था।

२. इस्लामपुरीमे औरगजेबका निवास; १६९५-१६९९

अतएव मई, १६९५मे औरगज़ेबने अपने ज्येष्ठ जीवित पुत्र शाहआलमको अपने साम्राज्यके उत्तर-पश्चिमी भाग, पजाब, सिन्ध तथा बादमे अफगानिस्तान सूबा भी सौप दिए कि वह उनपर शासन कर भारतके पश्चिमी सीमान्त द्वारकी सुरक्षा करे, और वह स्वय अगले साढे चार वर्षोके लिए इस्लामपुरीमे जा टिका और बादम भी अपनी सारी चढाइयोंके लिए इसे ही अपना सैनिक अड्डा (बुनगाह) बनाया। औरगज़ेबके इस्लामपुरी निवासकालमे (१६९५–१६९७) मराठोका खतरा अधिकाधिक पास आता गया और मुगलोको विवश होकर रक्षात्मक युद्ध-नीति ही अपनानी पडी। औरगजेबकेस्थानीय अधिकारियोको अन्तम हार मानकर विवश हो सम्राट् या अन्य ऊपरी अधिकारियोकी स्वीकृति

प्राप्त किए विना ही प्रति वर्ष वहांकी मालगुजारीका चौथाई भाग चौथके रूपमें देनेका वादाकर मराठोंके साथ समझौता करना पडा। किन्तु मुगल अधिकारियोंके पतनकी इतनेसे ही इतिश्री नहीं हुई। अपनी उजाड वरवाद जागीरोंसे कोई लगान वसूल नहीं हो सकनेके कारण आर्थिक कठिनाइयां अनुभव करनेवाले कई शाही अधिकारी तो मराठोंसे मिलकर सम्राट्की ही प्रजा तथा वेचारे व्यापारियोंको ही लूटकर धनी वननेका भरसक प्रयत्न करने लगे। मुगल शासन-व्यवस्था सचमुच ही विलीन हो चुकी थी। एक वडी सेनाके साथ स्वय सम्राट्की वहां उपस्थितिसे ही वहाके सारे प्रदेशपर कुछ भी मुगल सत्ता वनी हुई थी, किन्तु अव तो यह सव भ्रमम डालनेवाली एक निस्सार कल्पना-मात्र रह गई थी।

इस्लामपुरी निवासकालकी महत्त्वपूर्ण घटनाएं थी—नवम्वर १६९५में कासिमखां तथा जनवरी, १६९६में हिम्मतखा जैसे दो प्रमुख सेनापतियोंका सन्ताके हाथो अन्त, आपसी झगडेमें जून, १६९७में सन्ताका मारा जाना, ७ जनवरी, १६९८को जिंजीके किलेपर मुगलोंका आधिपत्य होना तथा उसीके फलस्वरूप तदनन्तर राजारामका महाराष्ट्रको वापस लौट आना।

३. औरगजेबकी अन्तिम चढाइयॉ, १६९९-१७०५

इस अन्तिम घटनाके फलस्वरूप औरगजेवको अपनी सारी नीति ही वदल देनी पडी। पूर्वी तटवाले प्रदेशपर अव उसका पूर्ण एकाधिपत्य हो गया था एव उसने अपनी सारी सैनिक शक्तियां पश्चिमी युद्ध-क्षेत्रमें ही केन्द्रित की। औरगजेवके जीवन कालका अन्तिम पहलू अव प्रारम्भ हुआ, वह स्वय जाकर वारी-वारीसे एक-एक मराठा किलेका घेरा डालने लगा। उसके जीवनके इन आखिरी वर्षोंमें (१६९९-१७०७ ई०) वार म्वार एक ही दुःखद कहानीकी पुनरावृत्ति होती रही, अत्यधिक समय, सैनिकों तथा धनकी वरवादीके वाद औरगजेवने जिस पहाडी किलेको जीता था, कुछ ही महीनों वाद मराठोंने वहाके शक्तिहीन रक्षकोंको पराजित कर उसी दुर्गको वापस छीन लिया, और तब एक या दो वर्ष वाद पुनः मुगल उसी किलेका घेरा डालनेको वहा जा पहुँचे। चढी हुई नदियों, दलदलपूर्ण रास्तो तथा ऊबड खावड पहाडी पगडडियोंपर चलनेमें मुगल सैनिकोंको निरन्तर अवर्णनीय कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा, मजदूर भाग खडे होते, वारवरदारीके पशु भूख और थकावटके मारे मर जाते,

और शाही सैनिक पड़ावमें सदैव ही धान्यकी बहुत बड़ी कमी बनी रहती। कभी समाप्त न होनेवाले इन उद्योगोंने शाही अधिकारियोंका पूर्णतया थका दिया। किन्तु जब कभी कोई औरंगज़ेबके सम्मुख उत्तरी भारतको लौटनेका सुझाव रखता तब वह क्रोधके मारे उबल पड़ता और उस अभागे प्रस्तावक अधिकारीको कायर तथा सुखजीवी होनेका उलाहना देता। स्पेनके युद्धमें जिस प्रकार नैपोलियनके सेनानायकोंकी आपसी ईर्ष्याके कारण फरासीसियोंके पक्षको अमित हानि पहुँची थी, उसी तरह मुगल सेनापतियोंकी पारस्परिक डाहने औरंगज़ेबके सारे प्रयत्नोंको बरबाद कर दिया था। अतएव यह अत्यावश्यक हो गया कि प्रत्येक चढ़ाईका संचालन वह स्वयं करे, नहीं तो कोई भी काम होना शक्य नहीं था। सतारा, पार्ली, खेलना, कोण्डाना, राजगढ़, तोरणा और वागिनखेड़ाके इन आठ किलोंका घेरा डालनेमें औरंगज़ेबको पूरे साढ़े पाँच वर्ष (१६९९-१७०५) लगे।

८ फरवरीसे २७ अप्रैल, १७०५ तक चलनेवाला वागिनखेड़ाका घेरा ही इस अट्ठासी वर्षके बूढ़े सेना संचालकका अन्तिम घेरा था। इस किलेको जीतनेके बाद जब उसने देवपुरमें पड़ाव किया (मई-अक्तूबर, १७०५), तब वहाँ औरंगजेब बहुत ही सख्त बीमार पड़ गया। सारे पड़ावमें घबराहट और निराशा फैल गई। निकटतम आती हुई अपनी मृत्युके इस संकेतको देख औरंगज़ेबने अपने हितैषियोंकी प्रार्थनाको स्वीकार किया और २० जनवरी, १७०६को वह अहमदनगरके लिए लौट पड़ा, जहाँ एक वर्ष बाद उसकी मृत्यु हुई।

४. अपने अन्तिम वर्षोंके उसके संताप और व्यथाएँ

औरंगज़ेबके जीवनके कुछ अन्तिम वर्ष अकथनीय दुःखसे पूर्ण रहे। जन-साधारणके हृदयमें यह भावना अधिकाधिक स्पष्ट होने लगी थी कि अर्ध शताब्दीका यह लम्बा शासनकाल पूर्णतया विफल ही रहा। अनवरत चलनेवाले दक्षिणके इन युद्धोंने शाही कोषको खाली कर दिया था, साम्राज्य दिवालिया हो गया था, प्रायः तीन-तीन वर्षका वेतन चढ़ जाता था, जिससे भूखों मरनेवाले सैनिक निरन्तर विद्रोह करते रहते थे, बंगालके ईमानदार सुयोग्य दीवान मुर्शिदकुलीखाँ द्वारा नियमित रूपसे भेजी हुई वहाँकी आयसे ही शासन-कालके इन पिछले वर्षोंमें शाही कुटुम्ब तथा

सेनाका बहुत-कुछ काम चलता था और उसके वहाँसे आनेकी बडी ही उत्सुकतापूर्वक बाट देखी जाती थी। दक्षिणमें अन्त तक मराठोंका ही प्राधान्य बना रहा, और उधर उत्तरी तथा मध्य भारतके कई स्थानोंमें पूर्ण अराजकताका दौरदौरा हो गया था। सुदूर दक्षिणमें पहुँचकर बूढा सम्राट् हिन्दुस्तानके अधिकारियोंपर अपना नियन्त्रण नही रख सका और वहाके शासनमें ढिलाई तथा भ्रष्टाचार दिनोदिन बढने लगे। स्थानीय शाही अधिकारियोंकी उपेक्षा कर उस प्रदेशके राजा और जमींदार अपनी ही मनमानी करते थे, जिससे देशमें गडबडी फैलने लगी, और औरगजेब-की आँखें बन्द होनेसे पहिले ही दिल्लीके साम्राज्यमें भयकर अराजकताका प्रारम्भ हो गया।

अपनी-अपनी इच्छानुसार मुगल प्रदेशोपर निरन्तर आक्रमण कर अपनी इस छापा मार युद्ध-शैली द्वारा मराठे सेनानायक शाही सेनाको दक्षिणमें अत्यधिक हानि पहुँचाते थे, वायुकी तरह सर्वव्यापी होते हुए उसीके समान उन्हें भी कही पकड पाना सर्वथा असम्भव था। "लुटेरोको दण्ड देनेके लिए" शाही सैनिक केन्द्रसे बारम्बार भेजे जानेवाले चलते-फिरते सैनिक दल उधर कूच कर शत्रुओंको बिना दबाए ही वापस लौट आते थे। पतवारमें अलग हुए पानीकी ही तरह मराठे भी मुगल सेनाके वापस लौटते ही पुन एक हो जाते थे और पहिले ही समान फिर धावे करने लग जाते थे। और जब कभी शाही पडाव आगे बढता था या वही ठहर जाता था, तब उससे कोई तीन चार मीलकी ही दूरीपर पीछे-पीछे सदैव एक बडी भयकारक उन्मत्त मराठा सेना लगी रहती थी।

लगभग बीस वर्ष तक चलनेवाले इस भयकर युद्धमें प्रति वर्ष मुगलोंके पक्षके एक लाख सैनिक और अन्य अनुयायी तथा उससे तीन गुने घोडे, हाथी, ऊँट, बैल, आदि व्यर्थ ही मर मिटते थे। शाही पडावमें महामारी सदैव बनी रहती थी, जिससे प्रति दिन मरनेवालोंकी सख्या बहुत अधिक होती थी। दक्षिणका आर्थिक शोषण चरम सीमाको पहुँच चुका था। "खेतोंमें न तो वृक्ष थे और न किसी प्रकारकी फसलें ही, उनके स्थानपर वहा पशुओं और मनुष्योंकी हड्डियाँ ही सर्वत्र बिखरी देख पडती पडती थी। सारा प्रदेश इतना अधिक बरबाद और वीरान हो चुका था कि तीन चार दिन तक निरन्तर यात्रा करनेपर भी वहाँ आग या दीपक देखनेको नहीं मिलते थे।" (मनुची)।

५. राजारामके राज्यारोहणके समयके प्रमुख मत्री और सेनापति

ऐसे भयकर राष्ट्रीय सकटके समय जब कि शम्भूजीके लडके कैद हो गए थे और उसके उत्तराधिकारीको मुगलोने वहासे भागनेको वाध्य किया, तव उनकी बुद्धि सामर्थ्यने ही मराठा जनताको बचाया तथा उसकी स्वतन्त्रताको सुरक्षित रखा, अतएव उस समयके उस राजा-विहीन राज्यके उन नेताओको पूरी तरह जान लेना अत्यावश्यक हो जाता है। सन् १६९८ ई०के अन्तमे मराठा राज्यमे चार प्रमुख व्यक्ति थे, पेशवा नीलकण्ठ मोरेश्वर पिगले, आमात्य रामचन्द्र नीलकण्ठ वावडेकर, सचिव शंकरजी मल्हार, और स्वर्गीय प्रधान न्यायाधीश नीराजी रावजीका पुत्र प्रह्लाद। यही प्रह्लाद गोलकुण्डामे मराठा राजदूत रह चुका था। इनके अतिरिक्त तीन और व्यक्ति ऐसे थे, जो पहिले निम्न श्रेणीके उपाश्रित पदोपर काम कर रहे थे, परन्तु मराठा इतिहासके इस विषम सकट-कालमे अपनी प्रतिभा और साहसके ही बलपर वे मराठा राज्यके सर्वोच्च पदाधिकारी तथा मराठा जनताके लोकमान्य नेता बननेमे सफल हुए। वे थे, सेनापति पदके लिए प्रतिद्वन्द्वी धना जादव और सन्ताजी घोरपडे, तथा परशुराम निम्बक जो अन्तम प्रतिनिधि पदपर पहुँचकर सन् १७०१मे राज्यका अभिभावक बना।

आमात्य रामचन्द्रने राजारामको सलाह दी थी कि जब उसके अन्य अधिकारी मुगलोको दक्षिणी प्रायद्वीपके पश्चिमी भागमे उलझाए रखेंगे तब मराठोंके एक दलको लेकर पूर्वी कर्नाटकमे अपनी कार्यवाही प्रारम्भ कर देना चतुराईपूर्ण सैनिक चाल होगी, क्योकि उससे मुगल सेनाको अपना ध्यान दो तरफ बाँटनेको वाध्य होना पडेगा।

भावी कार्यक्रमकी योजना इस प्रकार तय की गई। पूर्वी प्रदेशमे शत्रुका सामना करनेके लिए राजारामको सकुशल जिंजी पहुँचा देना था। पुन उसे 'हुकूमत-पनाह' अर्थात् सर्वेसर्वाकी नई उपाधि देकर अपने स्वराष्ट्रीय प्रदेशका सारा शासन आमात्य रामचन्द्र नीलकण्ठ बावडेकरको सौंपा गया, तथा सचिव शकरजी मल्हार और कुछ अन्य अधिकारी उसकी सहायतार्थ नियुक्त किए गए। पहिले विशालगढको तथा बादमे पार्लीको उनका प्रधान केन्द्र-स्थान नियुक्त किया गया। स्वराष्ट्रीय प्रदेशके सारे अधिकारियो तथा सेनानायकोंके लिए यह आवश्यक था कि सब बातोमे रामचन्द्रसे आदेश लें और उनका अक्षरश पालन करें मानो वही मराठा

ससैन्य भेजा गया। शत्रुने लुत्फुल्लाखाँपर भी आक्रमण किया था, किन्तु उसने उन्हे बुरी तरह हराकर मार भगाया।

सन् १६९०के अन्त तक कोई भी महत्त्वपूर्ण घटना नही घटी, और मुगलोके कुछ मराठा सहकारी, नीमा सिंधिया, माणकोजी पाँढरे और नागोजी माने अपने-अपने सैनिकोको लेकर जिजीमे राजारामके साथ जा मिले।

सन् १६९२मे मराठोंके उद्योग पुन प्रारम्भ हो गए, और कई क्षेत्रोम उन्हे विशेप महत्त्वपूर्ण सफलताएँ भी मिली, जिनमे मुगलोंके अधिकारसे मराठोका पन्हालाका किला वापस छीन लेना उल्लेखनीय है। सताराके उत्तर पूवमे महादेवकी पहाडीपर सन्ताजी घोरपडेका अड्डा था और अपने इसी आश्रय-स्थानसे निकलकर वह पूर्वमे वीजापुरके विस्तृत मैदानोमे दूर-दूर तक वडी ही तेज़ीके साथ आक्रमण करता था। वडी-वडी सेनाएँ लेकर सन्ता और धन्ना दोनो ही दिसम्बर माहमे जिजीकी सहायतार्थ मद्रास गए, जिससे इस समय महाराष्ट्रमे कोई श्रेष्ठ सेनानायक एव सेना नही रह गई थी, और कुछ समय तक पश्चिमी युद्ध-क्षेत्रमे मुगल शान्तिसे रहे।

८ सताजी घोरपडे ओर धन्ना जादवके साथ कशमकश; १६९३–१६९४

सन् १६९३ ई०के पिछले महीनोम मराठोने पश्चिमी युद्ध-क्षेत्रमे भी अपने उद्योग पुन प्रारम्भ किए। सन्ताजी घोरपडे जिजीसे वापस लौट आया था, और अक्तूबर, १६९३मे वह स्वराष्ट्रीय प्रदेशम फिर आक्रमण करने लगा। हिम्मतखाने उसका पीछा किया और विक्रमहल्ली गावके पास १४ नवम्बरके लगभग सन्ताजी तथा उसके वेरड साथियोको उसने पूणतया पराजित किया। तव विभिन्न मुगल सेनापति आपसमे लड बैठे, हमीदुद्दीन और ख्वाजाखाने शत्रुका पीछा करना छोड दिया तथा वे दोनो कुलवर्गाकी ओर लौट गए, अब शत्रुका पीछा करनेको अकेला हिम्मतखा ही रह गया था। तव किसी भी प्रकारके खतरेकी आशका न रह जानेके कारण सन्ताने अपनी सेनाको दो दलोमे वाट दिया, अपने ४,००० सैनिकोको साथ लेकर उसने अमृतरावको वरारपर धावा करनेके लिए भेजा, और वाकी रहे ६,००० घुडसवारोको लेकर सन्ता स्वय मालखेडकी

ओर चला तथा चौथ एकत्रित करने लगा। कई माह तक वारम्वार व्यर्थ ही एक ओरसे दूसरी ओरको कूच करने तथा अव्यवस्थित युद्धोके बाद भी मुगलोके हाथ कुछ भी नही लगा।

सन् १६९४ और १६९५के वर्षोमे यद्यपि दक्षिणके सारे ही पश्चिमी मराठोके दल लगातार घूमते रहे और घेरडावा उपद्रव बराबर बना रहा, फिर भी दोनो ही पक्षवाले कोई निश्चित उल्लेखनीय कार्यवाही नही कर पाए। किन्तु सन् १६९५ समाप्त होते-होते सन्ताने दो उच्चकोटिके मुगल सेनापतियो, हिम्मतखाँ और कासिमखाँको हराकर उन्हे मार डाला।

मराठावा प्रश्न अब एक सीधी-सादी सैनिक समस्या मात्र नही रह गया था, किन्तु एक ओर मुगल साम्राज्य तथा दूसरी ओर दक्षिणकी स्थानीय जनताम चलनेवाली कशमकशमे दोनो दलोकी क्षमता तथा उनके साधनोकी कडी परीक्षाका वह एक साधन बन गया था।

०. पूर्वी कर्नाटक, उसके विभाग उसका इतिहास

पूर्वी या मद्रासकी ओरका कर्नाटक, वम्बई प्रान्तके कन्नड भाषा भाषी प्रदेश अथवा पश्चिमी कर्नाटकसे जिसे इस ग्रन्थमे कनाडा नामसे निर्देश किया है, सवथा भिन्न है। पूर्वी कर्नाटकका यह प्रदेश उत्तरमे १५° अक्षाशसे लेकर दक्षिणम कावेरी नदी तक फैला हुआ है। ईसाकी १७वी शताब्दीके पिछले अशम यह प्रदेश पलार नदी या वेलूरसे सदरम तक निकाली जानेवाली एक काल्पनिक रेखा द्वारा दो विभिन्न भागोमे विभक्त था। ये दोनो भाग क्रमश हैदरावादी कर्नाटक और बीजापुरी कर्नाटक कहलाते थे, और प्रत्येक भागके पुन दो विभाग थे, एक तो था ऊपरी पठार जो फारसीमे वालाघाट कहलाता था और दूसरा था नीचेका मैदान जिसे पाईघाट कहते थे। हैदरावादी कर्नाटकके पठारके अन्तगत पडते थे, सिधौत, गण्डीकोटा, गुत्ती, गरमकोण्डा और कडप्पाके परगने। बीजापुरी पाईघाट उत्तरमे सदरससे (१२°३०′ अक्षाश उत्तर) लेकर दक्षिणमे तजोर तक फैला हुआ था। सन् १६७७-७८मे जब शिवाजीने आक्रमण कर इस प्रदेशको जीत लिया, तब उन्होने जिजीको राजधानी बनाकर दक्षिणी अर्काटके जिलेमे मराठा शासन स्थापित किया था। रघुनाथ नारायण हनुवन्तेको अपना प्रतिनिधि बनाकर शिवाजीने अपने इस नये जीते हुए प्रदेशका शासन उसे सौंप दिया। राज्यारोहणके कुछ ही समय बाद

जनवरी, १६८१के प्रारम्भमे शम्भूजीने रघुनाथको पदच्युत कर कैद कर दिया और अपने बहनोई हरजी महाडिकको वहाँका शासक बनाकर जिजी भेजा। हरजीने स्वयको महाराजा घोषित किया और उस प्रदेशकी अतिरिक्त आय उसने कभी अपने स्वामीके पास रायगढ नही भेजी।

अक्तूबर, १६८६मे शम्भूजीने केशो त्रिम्बक पिंगलेको १२,००० घुडसवारोके साथ जिजी भेजा। यद्यपि वाहरी तौरमे शम्भूजीका उद्देश्य यही था कि पूर्वी कर्नाटककी मराठा सेनाको यो अधिक सशक्त बना दिया जावे, किन्तु पिंगलेको गुप्त आदेश यह दिया गया था कि वह विद्रोही राजा हरजीको पकडकर पदच्युत कर दे तथा शम्भूजीके नामसे जिजीकी सारी शासन-सत्ता स्वय सम्हाल ले। ११ फरवरी, १६८७को केशो त्रिम्बक जिजीके पास पहुँचा, परन्तु उसकी सारी आशाओपर पानी फिर गया। जिजीके किलेको हरजीने अमोघ रूपसे अपने अधिकारमे कर लिया था तथा वहाँकी सारी स्थानीय सेना पूर्णतया उसकी ऐसी आज्ञाकारी बन गई थी कि उसको किसी भी प्रकार फुसलाना सम्भव नही था।

१०. पूर्वी कर्नाटकमे मुगलोका प्रवेश, १६८७

गोलकुण्डा जीत लेनेके बाद कुछ समय तक कुतुबशाही अधिकारियोको ही उनके पुराने पदोपर रहने देकर औरगजेबने बुद्धिमत्ताका परिचय दिया। अक्तूबर, १६८७मे इन्ही अधिकारियोने औरगजेबकी अधीनता स्वीकार कर उसे अपना सम्राट् घोषित किया।[१] किन्तु कुछ ही समय वाद उसका विचार बदल गया, महाबतखाके स्थानपर रुहेल्लाखाको सूबेदारी दी गई, जनवरी, १६८८मे अली अस्करके स्थानपर कासिमखाको नियुक्त कर उसे आदेश दिया गया कि कर्नाटकपर चढाई कर वहा मराठा सेनाके विरुद्ध बडे जोरोसे युद्ध करे।

पलार नदीके उत्तरवाले जिस प्रदेशपर पहिले गोलकुण्डा राज्यका अधिकार था, और यद्यपि उसने अब मुगल अधीनता स्वीकार कर ली

---

१ "पुनामल्लीके अधिकारीने कहा कि चक्रके समान जसे दुनियाँ पूरी घूम गई, वैसे ही अपने पिछले स्वामीपर शक्तिशाली आलमगीर द्वारा प्राप्त की गई विजयके उपलक्ष्यमे उसने भी ढोल बजाए और तोपें चलाई।" (ओम कृत फ्रेगमेण्ट्स, पृ० १५७)।

थी, तथापि जहाँ अब तक आवश्यक मुगलोकी रक्षक सेना नही पहुँची थी, उस प्रदेशमे लूट-मार करने तथा जीतकर उसे अपने अधिकारमे करनेके लिये हरजीने अपनी ही इच्छासे अपनी सेनाका एक दल वहाँ भेजा। उस प्रदेशके कई किलो तथा कोई एक सौ गावोपर बडी ही सफलतासे हरजीका अधिकार हो गया। आक्रमण कर २४ दिसम्बर, १६८७का उसने अर्काट भी ले लिया। उस सारे प्रदेशमे फैलकर मराठे वहाँ सर्वत्र लूट-मार करने और धर्म-भेदका कुछ भी विचार किए विना ही स्त्री-पुरुष सवपर वे अत्याचार भी करने लगे। मराठाके उपद्रवोमे अपने शरीरा और द्रव्यकी रक्षा करनेके उद्देश्यसे काँजीवरम्‌के कई बडे-बडे ब्राह्मणोने अपने बाल-बच्चोको साथ लेकर २७ दिसम्बर, १६८७से १० जनवरी, १६८८ तक मद्रासमे आश्रय लिया। ११ जनवरी, १६८८को मराठे काजीवरम्‌म जा घुसे, उस नगरको उन्होने लूटा, वहा कोइ ५०० मनुष्योको मार डाला, तथा घराको नष्ट कर दिया, जिससे भयभीत होकर वहाके निवासी भाग खडे हुए। अपने सैनिक दलको लेकर केशो त्रिम्बक भी इसी लाभदायक उद्योगम लग गया, चिटपट और कावेरीपाकपर अधिकार करनेके बाद जनवरी, १६८८मे उसने काँजीवरम्‌म अपना पडाव डाला।

किन्तु काँजीवरम्‌मे मराठोका आधिपत्य अल्पकालीन ही रहा। विगत गोलकुण्डा राज्यके चार उच्च पदस्थ सेनापतियो, इस्माइलखा मका, याचप्पा नायक, रुस्तमखा और मुहम्मद सादिकको औरगजेबने आदेश दिया कि वे ससैन्य कर्नाटकके मैदानम पहुँचे और वहा मुगलोके समर्थको की सहायता करें। ये सारे सेनानायक २५ फरवरी, १६८८को काँजीवरम् पहुँचे। तब तक मराठोने उस नगरको खाली कर दिया था। मुगल सेनाके हरोलने उनका पीछा किया, उनके साथ युद्ध कर वाण्डीवाशको जीत लिया तथा वहा अपना पडाव डाला, उधर वहाँसे एक ही मजिलकी दूरीपर दक्षिणमे चिटपटमे मराठोका पडाव था। दोनों पक्षकी प्रधान सेनाएँ केवल एक-दूसरेकी रखवाली करती हुई, उन्ही स्थानोम एक वर्ष तक यो ही पडी रही। सन् १६८६ ई०के भयकर अकालके परिणामोसे अब तक वहाकी अभागी जनताको पूरी तरह छुटकारा नही मिला था, और अब उसपर उसे एकके स्थानपर दो विभिन्न डाकू-दलोका भार उठाना पडा। उस जिलेका सारा व्यापार बरबाद हो गया, उद्योग धधोका अन्त हो गया, धान्य और तेलहन वहा दुष्प्राप्य हो गए, तथा समुद्र तटपर स्थित किलेबन्दीवाली युरोपीय बस्तियोमे आश्रय लेनेको इच्छुक लोगोकी भीड

लग गई, क्योकि उन्हे अपने बचावके लिए दूसरा कोई स्थान नही देख पडा।

१९ सितम्बर, १६८९को हरजी महाडिककी मृत्यु हो गई। तदनन्तर हरजीके अल्पवयस्क पुत्रोके नामसे उनकी माता, शिवाजीकी पुत्री अम्बिकाबाई, उस किले तथा प्रान्तपर शासन करती रही।

११. जिंजीमे राजाराम

१ नवम्बर, १६८९को राजारामके जिंजी पहुँचते ही वहा एक शान्तिपूर्ण क्रान्ति हो गई। बलात् ग्रहण की गई जिस सत्ता एव स्थानीय स्वाधीनताका उन्होने पिछले आठ वर्षो तक उपभोग किया था, उसे यो छोड देनेका हरजीकी विधवा तथा उसके ब्राह्मण सलाहकार तैयार न थे। (एफ्० मार्टिन की डायरी देखो)। किन्तु राजारामके अधिकारको अस्वीकार करना कदापि सम्भव नही था। अतएव जिंजीकी शासनसत्ता उसके हाथमे आ गई। हरजीके पुत्रको कैद कर दिया गया, और उसके पतिके लम्बे शासन-कालके समयके उस प्रदेशकी आय-व्ययका लेखा दिखलानेके लिए कह कर उस स्वर्गीय शासककी विधवाको रुपया देनेके लिए बाध्य किया गया। राजारामको तीन लाख हूण तथा सन्ताजीको एक लाख हूण देकर उस विधवाका उनके साथ समझौता करना पडा। राजारामके प्रमुख सलाहकार प्रह्लाद नीराजीको 'प्रतिनिधि' अथवा राज्याधिनायकके एक सर्वथा नये पदपर नियुक्त किया गया। नीला मोरेश्वर पिंगले तब भी पेशवा कहलाकर नाम-मात्रका प्रधान मन्त्री बना रहा। प्रतिनिधि प्रह्लाद नीराजीने "राजारामको व्यभिचारपूर्ण जीवनमे रत कर दिया", तथा "गाँजा और अफीमके नशेका आदि हो जानेपर वह नवयुवा राजा अब निरन्तर उन्हींके नशेमे चूर रहने लगा"। तब "प्रह्लाद नीराजीने सारी वास्तविक शासन-सत्ता अपने हाथोमे लेकर जिन जिन ब्राह्मणोने हरजीके शासन कालमे बहुत कुछ द्रव्य एकत्रित कर लिया था, उनका सारा धन और मालअसबाब जब्त कर वह उनसे छीन लिया"।

परन्तु पिछले अधिकारियोंसे यो धन वसूल करनेसे ही मराठा राज्य शासनकी कमी पूरी न हो सकनेवाली आर्थिक कमियाकी समस्या हल होनेवाली न थी। अतएव अब जिंजीके मन्त्रियोने पूर्वी तट तककी पुरो

पीय वस्तियोंसे रुपया वसूल करनेकी सोची, वहांके प्रत्येक धनी व्यापा
को ५,००० हूण या केवल १,५०० हूण ही उधार देनेके लिए कहा गया

अगस्त, १६९०में मुगलोंका सर्वोच्च सेनापति जुल्फिकारखा का
वरम् आया और सितम्बर माह प्रारम्भ होते-होते वह जिंजीके पास
जा पहुँचा। अब सारी सैनिक परिस्थिति उलट गई, धावा करनेव
मराठा सैनिक दलोंको मुगलोंने पीछा मार भगाया, और अब मु
"राजारामके राज्यपर भी चढाई करनेकी धमकी देने लगे।" तब तो
घबडाहट फैल गई और राजाराम जिंजी छोडकर कर्नाटकमें और
दक्षिणकी ओर अपने मित्र तंजोरके राजाके पास ही किसी सुरक्षित आश्र
स्थानमें जा छिपा।

१२. जिंजीके घेरेका प्रारम्भ

जिंजीके पहाडी किलेमें केवल एक ही किला नहीं है। किन्तु वास्तव
रायगिरि,-कृष्णागिरि और चान्द्रायण दुर्गकी किलेबन्दीवाली तीन पह
डियां उस किलेमें पडती है, जिन्हें सुदृढ परकोटोंकी पंक्तियां एक-दूसरे
सम्बद्ध करती हैं और यों तीन मीलके घेरेका एक असम त्रिकोण सा
जाता है। "ये पहाडियां करारी तथा पथरीली हैं और उनपर इतनी बडी
बडी चट्टानें पडी हुई है कि उन पहाडियोंपर चढना भी असम्भव-सा
है। इन तीनों ही पहाडियोंपर पत्थरकी दीवारके ऊपर प्रत्येक ओ
किलेबन्दी की हुई है।" इस किलेके तीन फाटक है।

सितम्बर, १६९०के प्रारम्भमें ही जुल्फिकारखा जिंजी पहुँच गया थ
किन्तु वहाँ वह उस किलेके सामने पडाव डाले केवल बैठा ही रहा। उस
साथकी सेनासे ही ऐसे किलोंके इस विस्तृत समूहका पूरा-पूरा घेरा डाल
जुल्फिकारखांके लिए सर्वथा असम्भव था, पुन उस किलेपर गोलाबा
करनेके लिए उसके पास न तो बडी-बडी तोपें ही थी और न पर्याप्त गोल
बारूद ही। किलेको पूरी तरह घेर सकना सम्भव नहीं होनेके कारण उ
किलेमें खाद्य-सामग्री न पहुँचने देनेका उचित प्रबन्ध कर सकना कदा
सम्भव नहीं था। "मराठोंकी प्रारम्भिक घडबडाहट मिट जानेपर वे जुल्फि
कारखांको निरन्तर सताने लगे।" फरवरी, १६९१में राजाराम भी वाप
जिंजी लौट आया।

अप्रैलके बाद मुगलोकी सैनिक प्रबलता बडी ही तेजीसे क्षीण होने लगी और उधर निरन्तर आसपास घूमनेवाले मराठा दलोंके उद्योगसे जुल्फिकारखाके पडावमे धान्य पहुँचना ही बन्द हो गया। अतएव शीघ्र ही सैनिक सहायता भेजनेके लिए उसने औरगजेबसे प्रार्थना की। इस सेनापतिके पिता वजीर असदखाँ और वागिनखेडासे शाहजादे कामबख्श-को एक बडी सेनाके साथ भेजा गया, तथा १६ दिसम्बर, १६९१को वे जिंजी पहुँचे।

या सन् १६९१ई० सारा बीत गया और फिर भी मुगलोको कोई सफलता नही मिली। अगले वर्ष भर भी मुगल कोई सफलता प्राप्त नही कर सके। सन् १६९२ ई०की वर्षा ऋतुमे मुगल पडावकी जो दशा थी, उसका वर्णन करते हुए एक प्रत्यक्षदर्शीने लिखा था—"घनघोर वर्षा हुई। अनाज बहुत ही महगा था। सैनिकोको कई-कई दिन और रातें खाइयोमे ही बितानी पडती थी, जिनसे उन्हे बडी कठिनाइयोका सामना करना पडता था। पडावका सारा ही भाग एक झीलके समान दिखाई पडता था।"

१३ सन्ता घोरपडे और धन्ना जादवका अलिमर्दान और इस्माइलखाँको पकडना; १६९२

शीत कालमे तो मुगलोका वहाँ अधिक ठहरना बिलकुल ही असम्भव हो गया था। धन्ना जादव और सन्ता घोरपडेके नेतृत्वमे एक बहुत बडी मराठा सेना दिसम्बर, १६९२मे पूर्वी कर्नाटक पहुँची। जब सन्ताका सैनिक दल कावेरीपाकके पास पहुँचा तब काँजीवरमका मुगल फौजदार अलिमर्दानखा उसका सामना करनेके लिए आगे बढा, किन्तु उसकी थोडी सी सेनाको मराठोने सब ओरसे घेरकर, अलिमर्दानखाको उन्होंने पकड लिया और १३ दिसम्बरको उसकी सारी सम्पत्ति लूट ली गई। एक लाख हूण देनेपर ही उसको छुटकारा मिला।

धनाके नेतृत्वमे मराठा सेनाके दूसरे दलने जिंजीके चारो ओर घेरा डालनेके लिए लगाए गए पडावोपर आक्रमण किया। विभिन्न चौकियो वालोको जुल्फिकारखाने आदेश दिया कि वे प्रधान सेनाके साथ वापस आ मिलें। इस्माइलखाँ किलेकी पश्चिमी ओर था, एव वहासे लौटते

समय मराठोंने उसकी राह रोक ली। वह घायल हुआ और शत्रुओंने उसे क़ैद कर लिया।

१४. मराठोंके साथ शाहज़ादे कामबख्शके षड्यन्त्र; उसका क़ैद किया जाना

मराठोंके पुनः क्रियाशील हो उठने तथा आसपासके प्रदेशमें उन्हींकी शक्तिकी प्रबलता होनेके कारण अब जिंजीके बाहर पडी हुई मुगल सेना भी सब ओरसे घिर गई, और उनके आपसी झगडोंके कारण उसकी परिस्थिति बहुत ही सकटपूर्ण हो गई। शाहज़ादे कामबख्शने अपने वयो-वृद्ध प्रभावशाली अभिभावक वज़ीर असदखांको रुष्ट कर दिया था, और साथ ही उसने राजारामके साथ गुप्त पत्र-व्यवहार भी प्रारम्भ किया। जुल्फिकारखांको शाहज़ादेके इस भेदका शीघ्र ही पता चल गया, और उसने शाहज़ादेको कडी निगरानीमें रखनेके लिए सम्राट्की आवश्यक आज्ञा ले ली। दिसम्बर, १६९२में मुगलोंके इस सैनिक पडावका शाही दरबारके साथ सारा लगाव टूट गया। तत्काल ही अनेकों भयप्रद गप्पें उडने लगी और कामबख्शने समझ लिया कि वह स्वयं बहुत ही सकटपूर्ण परिस्थितिमें था। राजारामके साथ समझौता कर मुगल पडावसे सकुटुम्ब निकल किलेमें जा पहुँचने तथा तब मराठोंकी सहायतासे दिल्लीके सिंहासनपर अधिकार करनेका प्रयत्न करना ही उसके बचावका एकमात्र उपाय था, इस बातका उसके अनुचरोंने कामबख्शको पक्का विश्वास दिला दिया।

कामबख्शके इस आयोजनकी सूचना असदखांको भी अपने जासूसोंसे मिल गई। शाही सेनाके सारे बडे सेनापतियोंने एक स्वरसे माग की कि शाहज़ादेको कडी नजरबन्दीमें रखा जावे तथा खाइयोंको छोडकर सारी सेना पिछले भागमें ही एकत्रित रहे।

घेरा लगानेकी खाइयोंको छोडकर वापस लौटते समय मुगल सेनाको सख्त लडाइयां लडनी पडी। मुगलोंका सैनिक पडाव वहासे कोई चार मील पीछे था। अतएव किलेके दुर्ग-रक्षक भी बाहर निकल आए और घन्ना जादवके साथवाले अपने सैनिक भाइयोंके साथ मिलकर उन्होंने मुग़ल सेनाको चारों ओरसे घेर लिया। उस दिन सन्ध्या होनेके बाद ही वहीं मुगल सैनिक असदखांके पडावपर पहुँच पाए।

इधर शाहज़ादेने अपने मूर्ख दरबारियोंके साथ मिलकर यह षड्यन्त्र रचा था कि जब अगली बार वे दोनो सेनापति उससे मिलने आवे तब उन्हे वहा ही कैद कर लिया जावे और यो वह वहाकी सर्वोच्च सत्ताको अपने हाथमे ले ले। किन्तु उसके दूसरे षड्यन्त्रोंकी तरह इसका भी भेद खुल गया था। मारी सेनाके बचाव तथा सम्राट्की प्रतिष्ठाको बनाए रखनेके लिए यह अत्यावश्यक हो गया था कि कुछ भी उपद्रव कर सकने-की शाहज़ादेकी शक्तिका पूर्णतया अन्त कर दिया जावे। अतएव काम-बख़्शको कैद करनेके लिए जुल्फिकारख़ाँ और उसके पिता दोनो कामबख़्शके डेरेपर गए और कैदी बना कर उसे असदख़ाँके निजी डेरेमे ले आए जहाँ उसके साथ पूरी भलमनसाहत बरती गई।

सन्ताजी घोरपडे भी अब जिंजी आ पहुँचा और जुल्फिकारख़ाँका विरोध करनेमे उसने अपनी सारी शक्ति और बुद्धि लगा दी। प्रति दिन युद्ध होता था। "शत्रुओंकी सख्या २०,०००से भी अधिक थी। इधर उनका सामना करनेका सारा भार जुल्फिकारख़ाँ और कुछ अन्य मनसब-दारोपर ही पडता था, जिनके साथ केवल २,००० घुडसवार थे।

१८ जुल्फिकारकी सेनामे अकाल तथा उसका जिंजीसे वाण्डिवाशको वापस लौटना

किन्तु अब मुगल सेना चारो ओरसे घिर गई थी। कुछ ही दिनोंमें धान्यकी कमी पूर्ण अकालमे परिणत हो गई। "तब जुल्फिकारख़ा अपने सैनिक दलको लेकर वाण्डीवाशसे धान्य लेने चला।" जब ५ जनवरी, १६९३को वह वहासे वापस लौट रहा था तब देसूरके पास सन्ताने उसकी राह रोकी। दूसरे दिन मरहठोने पूरे वेगके साथ उसपर हमला किया, किन्तु मुगलोकी ओरसे दलपत अदम्य वीरतासे लडा जिससे विवश होकर मरहठोको पीछे हटना पडा। किन्तु जो खाद्य-सामग्री जुल्फिकारख़ा लाया था वह वैसी बडी सेनाके लिए बहुत ही कम थी। भूखो मरते मुगल सैनिकोकी हालत अधिकाधिक बिगडती जा रही थी।

बिना किसी बाधाके उसे वाण्डिवाश लौटने देनेके लिए राजारामको बहुतसा धन रिश्वतमे देकर उसके साथ समझौता करनेके लिए अब असदख़ाँने गुप्त रूपसे बातचीत शुरू की। राजाराम भी इसपर राज़ी हो गया। उधर दूसरी ओर दलपत जुल्फिकारसे आग्रह कर रहा था कि

वह वहांसे वापस न लौटे। किन्तु जुल्फिकारखांके तोपखानेवाले अपना सारा सामान लादकर पडावसे वाण्डिवाशके लिए चल पडे थे। अब शाहज़ादेके साथ दोपहरमे वहांसे रवाना होनेके सिवाय जुल्फिकारखांके लिए दूसरा कोई चारा नही रह गया था। जब मुगल सेना पडावसे निकली तब कोई एक हजार मराठे घुडसवार उसके पीछे लग गए, और उन्होने मुगल सैनिकोंका सारा माल-असबाब लूट लिया। तीन दिनमे जाकर कहीं २२ या २३ जनवरी, १६९३को मुगल वाण्डीवाश पहुँचे। दस दिनके बाद सूचना मिली कि अलीमर्दानखांके स्थानपर नियुक्त कांजीवरम्का नया फौजदार कासिमखां कडप्पासे बहुतसी सामग्री लेकर एक बडी सेनाके साथ वहां आ रहा था। सन्ता घोरपडेने राहमे उसको रोकनेका प्रयत्न किया। उसके आक्रमण करनेपर कासिमखां कांजीवरम्के बडे मन्दिरकी चहारदीवारीमे जा छिपा। दूसरे दिन जुल्फिकारखां उसकी मददपर आ पहुँचा, उसने मराठोंको मार भगाया, और कासिमखां को साथ लेकर ७ फरवरीको वह वापस वाण्डीवाशको लौटा। अब पुन मुगल पडावमे धान्य बहुतायतसे मिलने लगा तथा औरगजेबके जीवित ही नही सकुशल भी होनेके समाचार मिलनेपर सैनिकोंकी पूरी तसल्ली हो गई। फरवरीसे लेकर मई, १६९३ तक चार महीनेके लिए जुल्फिकारखांने वाण्डीवाशमे पडाव किया। कामबख्शको साथ लेकर असदखां ११ जूनके दिन शाही पडावमे पहुँचा जो तब गलगलामे था। उसकी बहिन जीनतुन्निसाके बीच-बचाव करनेपर अन्त पुरमे ही कामबख्श अपने पिताके सामने उपस्थित हो सका।

१६ सन् १६९३–९४ई०मे कर्नाटकमे सैनिक हलचलें

मद्राससे लेकर दक्षिणमे पार्टो नोवो तकका पूर्वी कर्नाटक प्रदेश इस समय तीन विभिन्न सत्ताओंमे बँटा हुआ था, जिनमे आपसी कशमकश प्राय चलती ही रहती थी।

ये तीन विभिन्न शक्तियाँ थी —सर्व प्रथम तो वहांके पिछले स्थानीय हिन्दू शासक तथा विजयनगर राज्यके वे अधिकारी जिन्हे बीजापुर और गोलकुण्डा राज्यकी विजयी सेनाएँ भी पूरी तरह नही दबा सकी थी, दूसरे, तभी नष्ट हुए बीजापुर और गोलकुण्डा राज्योंके वे अधिकारी जो उनके नये मुगल शासककी अधीनता स्वीकार करनेको तैयार नही थे, और अन्तमे शिवाजी तथा व्यकोजीके घरानोंके प्रतिनिधि मराठा आक्र

मणकारो। याचप्पा नायक इनममे पहले वर्गका था। उनके पूर्वजोंने वारगलके राजा प्रतापरुद्रके मन्त्रियोंसे वेलूरसे २६ मील पूर्वमे स्थित सतगढका किला प्राप्त किया था और वह स्वय भी एक बार गोलकुण्डाके स्थानीय सेहबन्दी सैनिकोंका नायक रह चुका था। जब राजाराम जिंजी पहुँचा तो याचप्पा नायक उसके साथ आ मिला। मार्च, १६९३मे राजारामको छोडकर उसने पुन सतगढपर अधिकार कर लिया और उससे पूर्वके प्रदेशको अपने आधिपत्यमे लेने लगा। वह वर्ष समाप्त होते-होते उसे छ हजारीका मनसब दिलवाकर जुल्फिकारखाने याचप्पाको अपने पक्षमे कर लिया।

उधर मराठा सेनानायकोंमे आपसी कलह शुरू हो गया, सन्ताजीका स्वभाव असहनीय प्रमाणित हुआ, और क्रुद्ध होकर वह महाराष्ट्रको लौट गया, तब राजारामने सन्ताजीके स्थानपर धनाको सेनापति नियुक्त किया।

फरवरी, १६९४मे जुल्फिकारखा दक्षिणी अर्काट जिलेको जीतनेके लिए निकला। उसके अधीन दलपतके बुन्देलोंने पहिले ही पहुँचकर पाण्डिचेरीसे १८ मील उत्तरमे स्थित पेरमुक्कल किलेपर आक्रमण कर उसे जीत लिया था। तब जुल्फिकारखाँ पूर्वी तटपर दक्षिणकी ओर बढा और तजोरके पास जा पहुँचा। तजोर राज्यका पडोसी एव उसका सदाका शत्रु त्रिचनापल्लीका नायक पहिले ही मुगलोंसे मिल गया था, एव अब तजोरके महाराजा दूसरे शाहजीने जुल्फिकारखाँका विरोध करना सर्वथा निरर्थक समझा। इसलिए शाहजीको भी मुगलोंके सामने झुकना पडा। २२ मईको शाहजीने एक पत्रपर हस्ताक्षर कर दिए, जिसके द्वारा उसने औरगजेबकी अधीनता स्वीकार कर भविष्यमे एक स्वामिभक्त सामन्तकी तरह सम्राट्के आदेशोंका पालन करने, राजारामको किसी भी तरहकी सहायता न देने, मुगलोंको आगे प्रति वर्ष तीस लाख रुपये करके रूपमे देते रहने, और पालमकोटा, सित्तानूर एव तुगानूरके किलोंके साथ ही उनके अधीन आसपासके परगने तथा अन्य कई स्थान मुगलोंको सौंप देनेका वादा किया था। सितम्बर माहमे एक दरबारके समय जुल्फिकारखाने एकाएक याचप्पाको कैद करवाकर राजद्रोहके अपराधमे उसका सिर कटवा डाला।[1]

---

१. मनूचीने याचप्पाकी पत्नियों और बच्चोंके आत्मघातका बहुत ही दारुण

१७. सन् १६९८ ई०मे जुल्फिकारखॉके उद्योग

सन् १६९४ ई०के अन्तमे जुल्फिकारखाँने पुन जिजीका घेरा डाला, किन्तु यह तो औरगजेबको धोखा देनेका एक दिखावा मात्र था। उस प्रदेशमे सब हीको यह सुज्ञात था कि जुल्फिकारखाने मराठोंके साथ गुप्त रूपसे मेल कर लिया था।

१८. सन् १६९६ ई०मे जुल्फिकारखॉकी सैनिक हलचल

दिसम्बर, १६९५के अन्तमें धन्ना जादव वेलूरके पास पहुँचा, तब जुल्फिकारखाने एकाएक घेरा उठा लिया, अपने पडाव तथा कुटुम्बको उसने अर्काट भेज दिया और वह स्वय युद्धके लिए तत्पर हुआ। मराठाके दल उस प्रदेशके बहुतसे भागोमें फैल गए, तब तक शाही सेनाकी सख्या कम हो जानेसे वे इतने अधिक स्थानोंकी मराठोंके हाथोंसे रक्षा नही कर पाए। बुद्धिमानी कर जुल्फिकारखाने अपनी सेनाको एक ही स्थानपर केन्द्रित रखा। परन्तु द्रव्यके पूर्ण अभावके कारण १६९६ ई०के सारे वष भर उसके सारे आयोजनोम बाधा ही पडती रही। मुगल सेनाकी शक्ति तब भी बहुत कम थी, एव केवल अर्काटके किलेके बचावके लिए ही वह प्रयत्नशील रहा। मराठे तो सदैवको तरह उसके चारो ओर मडराते रहे।

१९. जिजीका घेरा दोबारा लगनेपर उस किलेका पतन

नवम्बर, १६९७के प्रारम्भमे जुल्फिकारने बडी ही तत्परताके साथ पुन जिजीका घेरा डाला। उत्तरी फाटकके सामने वह स्वय जा डटा,

---

विवरण सविस्तार लिखा है। उसका यह भी कथन है कि याचप्पापर राजद्रोहका झूठा आरोप लगाकर जुल्फिकारखाँने उसे यो मरवानेका प्रधान कारण यह था कि याचप्पाने सम्राटकी सेवामें एक पत्र भेजकर उसमे जुल्फिकारखाँकी पूरी पोल खोल दी थी, मराठोंके साथ गुप्त रूपसे मिलकर जिजीके घेरेको चाहकर दीर्घ काल तक चलाए जानेका विवरण लिखा था, तथा केवल अपने सनिकोंका लेकर उस किलेको आठ ही दिनमें जीत लेनेका भी प्रस्ताव उसने किया था। किन्तु असदखाने इस पत्रको बीचमें ही पकडवा लिया था।

(भाग ३, पृ० २७१-२)।

शैतानदरी दरवाजेके सामने रामसिंह हाडाको नियुक्त किया, तथा जिंजीसे आधे मील दक्षिणमें चिक्कली-दुर्गके विरुद्ध दाऊदखांको भेजा। उस किलेके बहुत ही पास पहुँच निडर हो आक्रमण कर दाऊदखांने एक ही दिनमें चिक्कली-दुर्गको जीत लिया, तब वह वापस जिंजी ही चला आया और दक्षिणी दुर्ग चान्द्रायणगढके सामने खाइयोंमें डट गया। यदि जुल्फिकारखां सचमुच चाहता तो वह उस सारे किलेको दूसरे ही दिन जीत सकता था। किन्तु अपनी सारी सेनाको एकत्र रखने, अधिकाधिक द्रव्य पाते रहने और किसी नए युद्ध क्षेत्रसे भेजे जानेपर वहांके सैनिक जीवनकी सारी कठिनाइयोंसे बचनेके लिए ही इस घेरेको अधिक समय तक चलाए जाना जुल्फिकारखांकी गुप्त नीति थी।[1] उसने मराठोंको जता दिया कि उसके आक्रमण केवल दिखावेके लिए थे, और यों यह घेरा अगले दो महीनों तक चलता ही गया।

अन्तमें औरंगजेब द्वारा किए जानेवाले अपमान और दण्डसे बचनेके लिए किलेको जीतना जुल्फिकारखांके लिए अनिवार्य हो गया। समय रहते पहिले ही राजारामको सूचना मिल गई थी एवं अपने प्रधान सरदारोंके साथ जिंजीसे निकलकर वह वेलूर जा पहुँचा, परन्तु अपने कुटुम्बको राजारामने जिंजीमें ही छोड दिया था। तब जुल्फिकारखांने हमला करनेका आदेश दिया। कृष्णागिरिकी उत्तरी दीवालोंपर चढकर दलपत राव अन्दर जा पहुँचा और घमासान युद्धके बाद उसने बाहरी किला जीत लिया। तब दुर्ग-रक्षक काला-कोट कहे जानेवाले भीतरी किलेमें जाने लगे, किन्तु इन मराठा सैनिकोंके साथ ही साथ दलपतरावके बुन्देले भी

---

१ "ऊपरी दिखावा बनाए रखनेके लिए यह अत्यावश्यक था कि प्राय किए गए आक्रमणों तथा शत्रु द्वारा उनके पीछे हटाए जानेकी सूचना समय-समय पर सम्राट्के पास भेजी जावे। दूसरी ओर जुल्फिकारखांके बाद मुगल सेनाका द्वितीय प्रमुख सेनापति दाऊदखां सर्वश्रेष्ठ युरोपीय मदिरा खूब पीता था और मदोन्मत हो धार्मिक आवेशमें आकर वह सदैव काफिरोंका सर्वनाश करनेका बीडा उठाता था। ऐसा उद्योगोंके लिए किए गए दाऊदखांके प्रस्ताव स्वीकार करना जुल्फिकारखांके लिए अनिवार्य हो जाता था, किन्तु ऐसे आक्रमण कब होंगे और कहाँ होंगे इसकी गुप्त सूचना वह शत्रुओंके पास पहिले ही पहुँचा देता था। जिससे मार-काटके बाद प्रत्येक बार दाऊदखांको सेनाको विवश हो पीछे हटना पडता था।" विल्कीज, खण्ड १, पृ० १३३।

कालाकोटमे घुस गए और उसपर भी अधिकार कर लिया। तब बाकी बचे मराठोंने जिंजीके सबसे ऊँचे किले राजगिरिमे आश्रय लिया। उधर दाऊदखाँ भी चान्द्रायणगढ़ जा पहुँचा और नगरमेसे या जिंजी किलेके भीतरी नीचे मैदानमें होकर वह कृष्णागिरिकी ओर बढा। नगर निवासी कृष्णागिरिकी चोटीकी ओर भागे, परन्तु यहा भी बचावका कोई उपाय न देखकर उन्होने आत्मसमर्पण कर दिया। ८ जनवरी, १६९८को सैकडो घोडे और ऊँट तथा बहुतसा माल-असबाब लूटमे मुगलोंके हाथ लगा। राजारामका कुटुम्ब राजगिरिमे था, एव अब राजगिरिको घेरा। उनकी परिस्थिति निराशापूर्ण हो गई थी। राजगिरिके तलकी खाईको लकडीके पुलको सहायतासे पार कर रामसिंह हाडा राजगिरिके शिखरपर जा पहुँचा। मराठा राजघरानेको सुरक्षाका आश्वासन दिया गया, तब राजारामकी चार पत्नियाँ, तीन पुत्र और दो लडकियां किलेसे बाहर निकली और उन्हे आदरपूर्वक कैदमें रख दिया गया। राजारामकी एक पत्नीने तो किलेकी चोटीपरसे नीचे गिरकर आत्म-हत्या कर ली और यो मरकर मुगलो की कैदसे वह बच गई। कुल मिलाकर कोई ४,००० मनुष्य, स्त्रियाँ और बच्चे तब किलेमें पाए गए, किन्तु उनमें सैनिक बहुत ही थोडे थे।

जुल्फिकारखाँने जिंजीसे गरमकोण्डा तक राजारामका पीछा किया। किन्तु मराठा राजा बहुत पहिले ही वहाँसे रवाना हो चुका था, एव वह उसको नही पा सका और राजाराम फरवरी, १६९८मे सकुल विशालगढ पहुँच गया। जिंजीके इतने लम्बे घेरे द्वारा सम्राट जिस उद्देश्यको पूर्ण करना चाहता था, वह विफल ही रहा। चिडिया पिंजरेसे निकलकर उड गई थी।

२०. सन्ता घोरपडेके हाथों कासिमखाँकी पराजय तथा दुडेरीमे कासिमखाँकी मृत्यु, १६९५

सन्ता घोरपडे अब तक बीजापुर जिलेमें लूट-मार कर रहा था। उसके पास लूटका बहुत अधिक द्रव्य एकत्रित हो गया था, एव उत्तर-पश्चिमी मैसूर प्रदेशमे स्थित अपनी जमीदारीमे अपने निवास-स्थानको उसे ले जानेके लिए नवम्बर, १६९५में सन्ता दक्षिणकी ओर मुडा।

तब औरगज़ेबका पडाव इस्लामपुरीमे था, उसने कासिमखाको आदेश

दिया कि वह आक्रमणकारियोंकी राह रोक कर उनपर आक्रमण करे। सन्ता कासिमखांसे कुछ दूरीपर ही चक्कर काट रहा था। कासिमखां तब कहां था और किधर जा रहा था, इसका पक्का पता लगाकर तेजीसे कूच करता हुआ सन्ता उसके पास जा पहुँचा और उसकी सेनाके साथ ही कासिमखांके भी सहारकी उसने ऐसी योजना बनाई, जो मुगल सेना नायकोंकी विलास प्रियता तथा विवेक विहीनताके फलस्वरूप अकल्पनीय परिपूर्ण रूपेण सफल हुई। सन्ता घोरपडेने अपनी सेनाको तीन दलोंमें विभक्त किया, जिनमेंसे एकको मुगल पडावको लूटनेके लिए भेजा, दूसरेको मुगल सैनिकोंके साथ युद्ध करनेका आदेश दिया, तथा तीसरेको उसने अलग ही रखा कि जहाँ कहीं भी विशेष आवश्यकता हो उसे तत्काल ही सहायतार्थ भेजा जा सके। इस प्रकार सन्ताने मुगल सेनाको चारों ओरसे घेरकर उस तक कोई भी समाचार पहुँच सकनेके लिए सारे साधनोंका अन्त कर दिया गया।

२० नवम्बरके लगभग सूर्योदयके कोई डेढ़ घण्टे बाद मराठोंका पहला दल कासिमखांके अगले पडावके डेरोंपर टूट पडा और जो कुछ भी वहाँ था उसे वे साथ उठा ले गए। इसकी सूचना मिलनेपर जहाँ मराठोंका आक्रमण हुआ था वहांके लिए कासिमखां जल्दी जल्दी चल पडा। किन्तु अपने मुख्य पडावसे वह दो मील ही गया था कि शत्रुओंका दूसरा दल उसके सामने आ पहुँचा और अब युद्ध छिड गया। मुगलोंकी तुलनामें शत्रु सैनिकोंकी संख्या बहुत अधिक थी। घमासान लडाई हुई जिसमें दोनों ही पक्षके अनेकों सैनिक मारे गए। तब सन्ताके सैनिकोंका तीसरा सहायक दल मुगल पडाव और माल-असबाबपर टूट पडा तथा वहांसे वे सब कुछ लूट ले गए। इसकी सूचना जब कासिम और खानाजादको मिली तब वे बडे जोरोंसे मराठोंके साथ युद्ध कर रहे थे, किन्तु यह सुनकर वे विचलित हो गए और आपसमें सलाह कर वे दुडेरी[1] तक पीछे हट गए। दुडेरीका किला छोटा ही था और वहां खाद्य सामग्रीका संग्रह भी बहुत सीमित था। अतएव जब ये मुगल सेनापति वहाँ पहुँचे तब उस दुर्गकी शाही रक्षक सेनाने अपने किलेके फाटक बन्द कर अपने इन सैनिक साथियोंको

---

१ दुडेरी—१४° २०' उ०, ७५° ४६' पू०, मैसूरके चित्तलदुर्ग विभागमें चित्तलदुर्गसे २२ मील पूर्वमें तथा अडोनीसे सीधे ९६ मील दक्षिणमें है। दुडेरी दुर्गके दक्षिणमें पानीका एक बडा तालाब है।

अन्दर घुसने नही दिया। तब दोनो खानोने किलेसे बाहर ही पडाव डाला। जब रात पड गई तब शत्रुओने उन्हे पूरी तरहसे घेर लिया, यह सब तीन दिन तक चलता रहा। चौथे दिन मराठोने आक्रमण किया। किन्तु शाही तोपखानेका सारा ही गोला-बारूद तब तक समाप्त हो गया था, एव कुछ घण्टो तक विफल प्रयत्न करनेके बाद निराश होकर मुगल सैनिक बैठ गए और कनाडी बन्दूकचियोका निशाना बनने लगे।

तब अपने भूखो मरते सैनिकोका साथ छोडकर दोनो सेनापति किलेमे जा छुपे। कासिमखां बहुत बडा अफीमची था, अतएव अफीम न मिलनेसे तीसरे ही दिन उसकी मृत्यु हो गई।

किलेका खाद्य-सग्रह जब पूर्णतया समाप्त हो गया और जब वहा पानी भी बहुत थोडा तथा पीने योग्य न रहा, तब खानाजादखाने आत्म-समर्पणकी शर्तें की, बीस लाख रुपये तथा नष्टप्राय मुगल सेनाका सारा द्रव्य, माल-असबाब, आभूषण, हाथी, घोडे आदि सब कुछ सौंप देनेका निश्चय हुआ। किलेमे घुसनेके १३ दिन बाद शाही सेनाके बचे-खुचे सैनिक एक-एक कर बाहर निकले। दो दिन तक विश्राम करनेके बाद अपने मराठा रक्षकोको साथ ले खानाजाद शाही दरबारके लिए चल पडा। वह अपना सब-कुछ खो चुका था।

२१. बसवापट्टणमे सन्ताका हिम्मतखाँको मारना

इस आघातके एक माहसे कम समय बाद सन्ताने ऐसी ही सुविख्यात एक और विजय प्राप्त की। अपनी सेना बहुत ही थोडी होनेके कारण हिम्मतखांने दुडेरीसे ४० मील पश्चिममे बसवापट्टण नामक स्थानमे आश्रय लिया था। दस हजार घुडसवार और लगभग उतने ही पैदलोको लेकर २० जनवरी, १६९६को सन्ता हिम्मतखांकी सेनाके सामने पहुंचा। दक्षिणके सबसे अचूक निशानेबाज कर्नाटकी बन्दूकचियोने एक पहाडीपर मोर्चा लगाया। आक्रमण कर उन्हे वहासे हटानेके लिए हिम्मतखा आगे बढा, तभी एकाएक उसके ललाटपर गोली लगी। खांका सारा माल-असबाब लेकर मराठे कुछ दिन बाद वापस लौट गए।

२८ जनवरीको औरगज़ेबने हिम्मतखांकी मृत्युका समाचार सुना। बसवापट्टणकी सहायतार्थ हमीदुद्दीन वहासे रवाना हुआ। २६ फरवरीको सन्ताने उसपर भी हमला किया, किन्तु इस बार मराठोकी हार हुई, उन्हे उस प्रदेशसे मार भगाया और बसवापट्टणको मराठोके घेरेसे मुक्त किया।

२२. सन् १६९७ ई० मुगलोंके सैनिक आयोजन

मार्च, १६९७मे सन्ता घोरपडे पूर्वी समुद्री तटसे वापस सतारा जिलेको लौट आया, तव उसका सामना करनेके लिए फिरोजजगको भेजा गया। किन्तु तव मराठा सेनापतियोमे आपसी युद्ध छिड गया था, जिससे सन् १६९७के पहिले छ महीनोम मराठोकी शक्ति वहुत घट गई थी।

२३. सता घोरपडे और धन्ना जादवमे आपसी युद्ध : सताकी मृत्यु

प्रथम श्रेणीके इन दो मुगल सेनापतियोपर पश्चिममे प्राप्त सुदूर तक सुविख्यात अपनी विजयोमे गर्वित सन्ता माच, १६९६मे राजारामके पास जिजी पहुँचा। उसके अहकार, उद्धत स्वभाव और अवज्ञाके कारण जिजीका राजदरवार उसके प्रति क्षुब्ध हो गया और अन्तने मई, १६९६में काजीवरम्म खुल्लमखुल्ला विरोध प्रारम्भ हो गया। धन्ना और अमृतराव निम्वालकरको अपने हरोलमे रखकर राजारामने अपने इस दुर्दम सेनानायकपर आक्रमण किया। परन्तु इस वार भी सन्ताकी सैनिक चतुरता विजयी हुई, पराजित होकर धन्ना सीधा पश्चिमी भारतमे अपने घरको लौट गया। अमृतराव युद्धमे काम आया।

कई महीनो तक पूर्वी कर्नाटकमे चक्कर लगानेके वाद माच, १६९७मे सन्ता वापस अपने ही प्रदेशको लौट आया। अव यहाँ धन्नाके साथ उसका गृह-युद्ध प्रारम्भ हुआ और अन्य सारे मराठे सेनानायक एक या दूसरेके पक्षमे हो गए। माच, १६९७मे सतारा जिलेमे युद्ध हुआ। किन्तु अव भाग्य सन्ताका साथ छोड चुका था। सन्ताकी कडाई तथा उसके अपमानपूर्ण व्यवहारसे उसके सारे ही सेनानायक उससे रुष्ट हो गए थे, अतएव इस युद्धमे जो घायल या मारे नही गए, वे सव सन्ताका साथ छोडकर धन्नासे आ मिले। सेनाके यो छोड देनेपर अपना सव-कुछ गवा सन्ता कुछ इने गिने अनुचरोके साथ युद्ध क्षेत्रसे नागोजी मानेके निवास स्थान म्हासवडको भागा। इसी नागोजीके साले अमृतरावको पहिले सन्ताने मार डाला था। नागोजीने सन्ताको कुछ दिन आश्रय और भोजन दिया, तव उसे वहासे सकुशल विदा कर दिया। किन्तु नागोजीकी पत्नी राधावाई प्रतिहिंसाकी प्यासी थी, एव उसने अपने एकमात्र जीवित भाईको उसके पीछे-पीछे भेजा। तेजीसे कूच करते रहनेके कारण थक कर जव सतारा जिलेमे शम्भू महादेव पहाडीके पासवाले नालेमे सन्ता

नहीं रहा था, तब उसका पीछा करनेवालोने उसको जा मिलाया। म्हासवडके इस दलने इस विवशतापूर्ण अवस्थामे उसे पकडकर उसका सिर काट डाला (जून, १६९७)।

एक विस्तृत क्षत्रम दूर-दूर तक फैले हुए बडे-बडे सैनिक दलोका कुशलतापूर्वक सचालन करने, शत्रुके बदलते हुए आयोजनो तथा परिस्थितियोके अनुसार अपनी युद्ध-चालोमे भी तत्परताके साथ फेरफार कर उनसे पूरा पूरा लाभ उठाने तथा अपने विभिन्न सैनिक दलोकी गतिविधिको सामूहिक रूपसे सुसगठित करनेकी सन्ताजीमे अनोखी जन्मजात प्रतिभा थी। सन्ताकी सैनिक चालोकी सारी सफलता प्रधानतया उसकी सेनाकी तीव्र गति और एक मिनटका भी अन्तर पडे बिना ठीक निश्चित समयपर ही उसके सहकारियो द्वारा उसके आदेशोके पालनपर ही निर्भर रहती थी। अतएव अपने अधिकारियो द्वारा उसकी आज्ञाओके निर्विवाद पालनके लिए उसका विशेष आग्रह रहता था, और बहुत ही कठोर दण्डो द्वारा वह अपनी सेनामे कडा अनुशासन बनाए रखता था, अतएव "बहुतसे मराठा सरदारोका उसका शत्रु बन जाना' स्वाभाविक ही था।

दूसरी ओर धनाकी तुलनामे सन्ता सभ्यता तथा उदारतासे पूर्णतया विहीन निरा असभ्य जगली ही था। अपनी वासनाओका नियन्त्रण करना या सुदूर भविष्यकी कुछ भी सोचना उसके लिए असम्भव था। जिस किसीसे भी वह मिलता था उसके साथ बहुत ही अनादरपूर्वक बर्ताव करनेमे उसे विशेष आनन्द आता था, और इस मामलेमे वह राजारामका भी अपवाद नही करता था। वह न तो किसीके प्रति दया दिखाता था और न वह स्वय ही किसीसे पानेकी अपेक्षा करता था। किसी दूसरेके साथ सहयोग करना उसके लिए स्वभावतया ही सर्वथा असम्भव था, और अपनी जातिकी आवश्यकताओके लिए अपनी इच्छाको उपाश्रित बना देनेके स्वदेशानुरागका उसमे अभाव ही था। मराठोके राजनैतिक इतिहासकी प्रवृत्ति या औरगजेबकी चढाइयोके साधारण परिणामोपर भी सन्ताका कोई प्रभाव नही पडा। एकाकी उल्काकी तरह दक्षिणके आकाशमें सहसा प्रकाश करके उसीकी तरह वह शीघ्र हो विलीन हो गया।

२४ राजारामका महाराष्ट्रको लौटना तथा सन् १६९८-९९मे उसकी हलचलें

भीमामे बाढ आ जानेसे १९ जुलाई, १६९७को पेडगाँव और इस्लाम-

पुरीके मुगल पडावोंके वह जाने तथा उसके फलस्वरूप सवत्र कष्ट और बरबादी होनेके अतिरिक्त सन् १६९७के पिछले छ महीनोमे कोई महत्त्व पूर्ण घटना नही हुई। किन्तु अगली जनवरीम जिंजी मुगलोंके अधिकारमे आ गया। वहाँसे भागकर दूसरे महीनेमे राजाराम विशालगढ पहुँचा।

सन् १६९९ई०के प्रारम्भम राजाराम कोकणकी देखभालके लिए दौरे-पर निकला, और सारे किलोकी निगरानी कर जूनके अन्तमे वह वापस सताराको लौट आया। खानदेश और बरारमे होकर एक विस्तृत आक्रमण करनेका आयोजन बना २६ अक्तूबरके लगभग उसने सतारासे कूच किया।

सताराके किलेका घेरा डालनेके औरगजेबके निश्चयके भेदका पता अवश्य ही राजारामको लग गया होगा, क्योकि १९ अक्तूबरको औरग-जेबके इस्लामपुरीसे रवाना होते ही राजारामने अपने कुटुम्बको सतारासे खेलना पहुँचा दिया और सम्राट्के हाथोमें न पडनेके उद्देश्यसे ही वह स्वय भी २६ अक्तूबरको वहासे निकल पडा।

इस विरोधी सेनाका पीछा कर उसे हटानेके लिए तत्काल ही औरग-जेबने बेदारबख्तको अत्यावश्यक आदेश भिजवाया। परेण्डाके किलेसे चार मील आगे बेदारबख्तकी मराठोसे मुठभेड हो गई। एक भयकर युद्धके बाद १३ या १४ नवम्बरको उसने मराठोकी सेनाको छिन्न भिन्न कर अहमदनगरकी ओर उसे मार भगाया। २६ दिसम्बरको सूचना मिली कि सतारा किलेके नीचे शाही पडावसे कोई ३० मीलकी दूरीपर राजा रामने विश्राम लिया था और तब वह विशालगढ जानेकी सोच रहा था। बरारपर मराठा राजाका वह आक्रमण प्रारम्भ होनेसे पहिले ही रोक दिया गया। किन्तु कृष्णा सावन्तके नेतृत्वमे एक मराठा दल धामुनीके पास कई स्थानोमे लूटमार कर वापस लौट आया। मराठा सेनाके नमदा पार करनेका यह सवप्रथम अवसर था।

२५. राजारामकी मृत्यु; ताराबाईकी नीति

सम्भवत इस चढाईकी कठिनाइयो तथा मुगलोंके निरन्तर पीछा करनेके कारण ही राजारामको ज्वर हो गया था, जिससे २ मार्च, १७०० को सिंहगढमे राजारामकी मृत्यु हो गई। उसका कुटुम्ब तब विशालगढम था। धना जादवकी सहायतासे राजारामके मन्त्रियोने तब तत्काल ही

राजारामके स्नेहभाजन उसके अनौरस पुत्र कणको गद्दी पर बैठाया, किन्तु शीतलासे पीडित हो वह भी तीन ही सप्ताह बाद मर गया। तब राजाराम की स्त्री ताराबाईसे उत्पन्न उसके औरस पुत्रको पश्चिमी राज्यके राज्याभिभावक रामचन्द्रकी सहायतासे शिवाजी तृतीयके नामसे गद्दीपर बैठाया। अब राजारामकी दोनो जीवित विधवाओ, शिवाजी तृतीयकी माता ताराबाई तथा शम्भूजी द्वितीयकी जननी राजसबाईने अपने पुत्रका पक्ष लेकर गृह-युद्ध छेड दिया जिसमे विभिन्न अधिकारी तथा सेनानायक एक या दूसरे पक्षका समर्थन करने लगे। किन्तु अपनी योग्यता तथा साहसके कारण उनमे ज्येष्ठ पत्नी ताराबाईको ही राज्यमे सर्वोच्च सत्ता प्राप्त हो गई।

अपने पतिकी मृत्युके समाचार मालूम होते ही ताराबाईने औरगजेब-की अधीनता स्वीकार करनेका प्रस्ताव किया, तथा राजारामके औरस पुत्रको ७ हजारी मनसब और दक्षिणमे देशमुखीके अधिकार दिए जानेकी माग की, एव उसके बदले ७ किले मुगलोको सौंप देने और दक्षिणम नियुक्त शाही प्रतिनिधिकी सेवामे ५,००० सैनिकोका दल भेजते रहनेका भी सुझाव रखा। औरगजेबने इस प्रस्तावको ठुकरा दिया। तब मईके अन्तमे रामचन्द्रका प्रतिनिधि रामाजी पण्डित और परशुरामका प्रतिनिधि अम्बाजी शाहजादे आजमके पास पहुँचे, तथा चाहा कि मराठा किले मुगलोको सौंप देनेपर राजारामके छोटे लडकेको जीवनदान देनेके लिए वह औरगजेबसे विशेषरूपसे प्रार्थना करे। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि ये प्रस्ताव विश्वसनीय नही थे, एव उनका कोई परिणाम नही निकला।

२६. कोंकणमे युद्ध; १६८९-१७०४

शिवाजीने १६५७से लेकर १६६३ ई०के कालमे कोकणको एव १६७०-७३के वर्षोमे कोली प्रदेशको जीता था। उनकी मृत्युके बाद मुगल उत्तरी कोकणमे उतर आए थे और वहाके केन्द्र कल्याणपर कुछ कालके लिए उन्होने अधिकार कर लिया था, किन्तु दिसम्बर, १६८३मे मराठोने कल्याणको वापिस ले लिया और अगले पाच वर्ष तक कोकणपर मराठो-का निर्विघ्न अधिकार बना रहा। सन् १६८९के बाद, और वह भी वहाके एक सुयोग्य स्थानीय अधिकारीके प्रयत्नों द्वारा ही, इस प्रदेशमे मुगल आगे बढ सके।

कल्याणके एक अरब सैय्यद मातबरखाको जब नासिक जिलेका थानेदार नियुक्त किया, तब सन् १६८८में प्रथम वार उसने अपने साहस और दूरदर्शिताका परिचय दिया, जिससे उसकी ओर ध्यान आकर्षित होने लगा। पास-पडोसके कई जमीदारोंको उसने अपने साथ कर लिया और शक्ति या लालच द्वारा उसने मराठोंके कई किलोपर भी अधिकार किया। शम्भूजीका अन्त होनेके बाद यह विजयी मुगल सेनानी घाटोको पार कर कोंकणमे उतर आया। इस प्रान्तमे अगस्त माहमे माहुलीको भी उसने ले लिया। इस प्रकार कोली प्रदेशसे लेकर नीचे दक्षिणम बम्बईके अक्षाश तकका सारा उत्तरी कोकण मुगलोंके अधिकारमे आ गया। वहाँ मातबरने शाही शासन स्थापित किया और शान्ति स्थापित कर उस प्रदेशमे खेती बाडी तथा समृद्धि पुन प्रारम्भ करनेके हेतु उसने किसानोको ला-लाकर वहाँ बसाया।

इन सफल चढाइयोके बाद सन् १६९० ई०मे मातबरखा कल्याणको लौट गया और अगले कुछ वर्ष उसने वहाँ शान्तिपूर्वक ही बिताए। किन्तु १६९३के प्रारम्भमे मराठोंने अपनी शक्ति पुन प्राप्त कर ली थी और विवश होकर मुगलोको रक्षात्मक नीति ही अपनानी पड रही थी। घूमने वाले मराठोके लुटेरे दल मुगल प्रदेशोंपर आक्रमण कर कुछ ही समय पहिले मराठोंसे जीते हुए उनके किलोंको मुगलोंके अधिकारसे वापस लेने लगे। पुर्तगाली सूबेदारको रिश्वत देकर उत्तरी कोंकणके अपने किलो और गाँवोमे आवश्यक खाद्य-सामग्री पहुँचाते रहनेके लिए मराठोंने पहिले ही प्रबन्ध कर लिया था। अतएव मातबरखाँने पुर्तगाली प्रदेशके इस उत्तरी भागपर आक्रमण किया, जिससे विवश होकर गोआके वाइसरायने मुगलोंके साथ सन्धि कर ली और औरंगजेबकी सेवामे उपहार भेजकर अपनी अधीनताका प्रमाण भी दिया।

अध्याय १६

औरंगज़ेबके जीवन-कालके अन्तिम वर्ष

१. मराठा नेताओंकी राजनीति व चालें, १६८९–१६९९

शम्भाजीकी गद्दीपर बैठनेके कुछ ही समय बाद जब मराठोंका नया राजा राजाराम जुलाई, १६८९में मद्रासके पूर्वी तटको भाग गया, तब महाराष्ट्र देशके शासन-प्रबन्धका सारा भार वहां पीछे रह जानेवाले उसके मन्त्रियोंपर ही आ पडा। 'हुकूमत-पनाह'की उपाधि देकर रामचन्द्र नीलकण्ठको इस पश्चिमी प्रदेशका राज्याभिभावक नियुक्त किया। राजा-विहीनके समान इस राज्यका सारा काम-काज उसने बडी ही बुद्धिमानी और कार्य-कुशलतासे चलाया। आगे बढते हुए मुगलोंको भी उसने रोक दिया।

कर्नाटक पहुंचनेपर राजाराम वहाँ व्यभिचारमें लीन हो गया, किन्तु जन्मसे भी वह बहुत ही निर्बल मनका था। उसकी राजनैतिक स्थितिने उसे पूर्णतया शक्तिहीन बना दिया। राजा बन जानेपर भी न उसकी अपनी कोई सेना थी और न अपना निजी कोष ही, और न उसकी ऐसी प्रजा ही थी जिसपर उसका पूर्ण एकाधिपत्य हो। अपने साथ एक हज़ार या केवल पांच सौ सैनिक एकत्र करके कोई भी मराठा सेनानायक अपनी सेवाओं तथा आज्ञापालनके पुरस्कारस्वरूप उस नाम-मात्रके मराठा राजासे अपनी सारी मनचाही शर्तें स्वीकार करवा सकता था। अतएव उपाधियां देने और जीते हुए प्रदेशोंको भी बांटनेमें राजाराम बडी उदारता दिखाता था। सारे ही मराठा सरदार अपने राजाके पास जिंजी गए, जहाँ उसने उन्हें खिताब, सेनाओंका सेनापतित्व तथा ऐसे विभिन्न ज़िले दिए, जहाँ जाकर उनको लूटमार करना तथा चौथ वसूल करना

थी। जब उसका राज्य दिनोदिन घटता जा रहा था, तब भी उसके दिए हुए खिताबों और नए नियुक्त पदाधिकारियोंकी संख्या दुगुनी हो गई, जिससे ही राजारामकी राजनैतिक निःसत्त्वता पूर्णतया प्रदर्शित हो जाती है। प्रत्येक अभिमानी स्वार्थी सरदार या नायककी इच्छापूर्ति किए विना राजारामका काम नहीं चल सकता था।

परन्तु शासकीय सत्ताका यह विकेन्द्रीकरण महाराष्ट्रकी तत्कालीन परिस्थितिके लिए सर्वथा उपयुक्त था। सारे मराठा सेनानायक अपने अपने स्वार्थोंसे प्रेरित होकर अपनी-अपनी इच्छानुसार मुगलोंके विरुद्ध छापामार युद्ध करते रहते थे, जिससे मुगल प्रदेशमें अत्यधिक उपद्रव मचता था और आशातीत हानि पहुँचती थी। किस स्थान विशेषकी रक्षाके लिए प्रबन्ध किया जावे तथा शत्रुको पराजित करनेके लिए किस महत्त्वपूर्ण स्थानपर आक्रमण करना चाहिए यह शाही सेनानायकोंको बिलकुल ही समझमें आता न था। तेजीके साथ घूमनेवाले मराठे सैनिकोंके दल दूर-दूरका धावा मारकर बिलकुल ही अनपेक्षित स्थानोंपर अचानक आक्रमण करते थे, और मराठा लुटेरोंके ऐसे दल असंख्य थे।

जिंजीके मराठा राजदरबारके तथा महाराष्ट्रमें पीछे रह जानेवाले मन्त्रियोंमें पारस्परिक द्वेष और वैमनस्य चलते ही रहते थे। परशुराम त्रिम्बकने अपनी एक गुट बना ली और सन्ताजी घोरपडेको भी उसमें सम्मिलित कर लिया। जिसका एक स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि रामचन्द्र धन्ना जादवका पक्ष लेने लगा। सन्ताजी घोरपडे एवं धन्ना जादवकी इस प्रतिद्वन्द्विताके फलस्वरूप सन् १६९६ ई०में एक गृह-युद्ध छिड गया और उन दोनोंके बीच तीन युद्ध हुए। जून, १६९७में सन्ताके मारे जानेपर एक ओर उसके पुत्र राणोजी एवं उसके भाई बहीरजी हिन्दूरावमें तथा दूसरी ओर धन्नाके पक्षवालोंमें वंशपरम्परागत शत्रुता हो गई जिसके दूर होनेमें बहुत समय लगा। किन्तु मराठोंके इन आपसी झगडोंके कारण मुगलोंको सुस्तानेके लिए कुछ अवकाश मिल गया।

२ राजमाता बनकर ताराबाईका शासन करना, मराठा राज्यमें आपसी फूट एवं वैमनस्य

२ मार्च, १७००को राजारामकी मृत्यु हुई और उसके बाद तीन सप्ताह तक शासन कर जब उसका अनौरस पुत्र कर्ण भी मर गया, तब

ताराबाईने अपने ही औरस पुत्र दस-वर्षीय शिवाजीको गद्दीपर बैठाया और परशुराम त्रिम्बककी सहायतासे वह स्वयं शासन करने लगी। इस प्रकार राज्याभिभावककी देख रेखमें दूसरी बार मराठा राज्यका शासन-प्रबन्ध प्रारम्भ हुआ। अब महाराष्ट्रका प्रमुख सूत्रधार कोई मन्त्री न था, किन्तु विधवा राजमाता ताराबाई मोहितेके ही आदेशानुसार सब कुछ सचालित होता था। राजारामकी मृत्युके बाद उत्तराधिकारके लिए छिड़नेवाले गृह-युद्ध तथा सन् १६९९ से १७०१ ई० तक होनेवाली औरंगजेबकी निरन्तर सफलताओंके फलस्वरूप मराठा जातिके लिए जो विषम सकट उपस्थित हुआ था, अपनी शासकीय योग्यता एवं चारित्र्यबलके द्वारा ताराबाईने मराठोंको उससे बचा लिया। विरोधी मुसलमान इतिहासकार खफीखाको भी विवश होकर स्वीकार करना पड़ा कि वह बुद्धिमती, साहसी, शासनकलामें निपुण तथा सेनामें लोकप्रिय रानी थी। "ताराबाईके निर्देशनमें मराठोंकी कार्यकारिता दिनोदिन बढ़ने लगी। सेनापतियोंकी नियुक्ति और उनकी बदला-बदली, देशमें खेती बाड़ी, तथा मुगल प्रदेशपर आक्रमणोंके आयोजन बनाने जैसे सारे ही महत्त्वपूर्ण कार्य उसने अपने हाथमें ले लिए। दक्षिणके छः सूबोंके साथ ही साथ मालवामें मन्दसौर और सिरोज तक धावा मारकर वहां बरबादी करनेके लिए सेनाएँ भेजने तथा अपने अधिकारियोंको अपने प्रति स्वामिभक्त बनाए रखनेके लिए उसने ऐसा प्रबन्ध किया कि मराठोंको दबानेके लिए अपने शासन-कालके अन्त तक किए गए औरंगजेबके सारे ही प्रयत्न विफल रहे।"

परन्तु यह प्रभुता प्राप्त करनेके लिए ताराबाईको कठिन सघर्षका सामना करना पड़ा था। कुछ सेनापति उसके आज्ञाकारी थे, परन्तु कुछ उसके आदेशोंको सुनते न थे। राजारामकी छोटी रानी एवं शम्भूजी द्वितीयकी जननी राजसबाईने अपने पुत्रको प्रतिद्वन्द्वी राजा बनाया तथा अपना एक विरोधी दल सगठित कर वह ताराबाईसे झगड़ने लगी। उधर मराठा नेताओंमें एक तीसरा दल भी था, जो जातीय एकता स्थापित करनेके लिए शिवाजीके वंशजोंमें ज्येष्ठतर शाखाके प्रतिनिधि होनेके नाते शाहूको राजा बनाना चाहता था। मराठा सेनापतियों, विशेषतया धन्ना जादव और सन्ता घोरपडे तथा उनके पक्षवालोंकी व्यक्तिगत प्रतिद्वन्द्विताने इस राजवंशीय झगड़ोंको और भी उलझा दिया।

३. शाहूका कैदी जीवन, १६८९–१७०७ ई०

मुगलोंके मराठा सहयोगी

अक्तूवर, १६८९में राजगढका किला मुगलोंके अधिकारमे आनेपर सात वर्षकी उम्रम ही शम्भूजीका ज्येष्ठ पुत्र मुगलोंके हाथो कैद हो गया था। यद्यपि उसे सम्राट्के डेरेके पास ही रखते थे और उसके साथ बडी ही दयालुताका व्यवहार किया जाता था, उसपर बहुत ही कडा पहरा रहता था। उसकी मा येशुबाई तथा उसके सौतेले भाई मदनसिंह और माधोसिंह भी उसीके साथ रहते थे। सन् १७०० ई०मे शाहू बहुत ही सख्त बीमार पड गया, जिससे उसके शरीर और मस्तिष्क इतने अधिक जर्जरित हो गए थे कि वे जीवन भर वेकाम ही रहे।

जैसे-जैसे औरगजेबके चारो ओर कठिनाइयाँ बढती जा रही थी और ज्यो-ज्यो दक्षिणको यह उलझन अधिकाधिक विकट होती जा रही थी, शाहूके द्वारा मराठा सेनापतियोसे झगडा निपटानेके आयोजन औरगजेब बनाने लगा। पहिले तो ९ मई, १७०३के दिन शाहूको मुसलमान बन जानेके लिए कहा गया, किन्तु शाहू धम परिवतन करनेको तैयार नही हुआ। तब शाहूको कैदसे छुटकारा देकर मराठोमे आपसी फूट डालनेकी भी औरगजेबने सोची। शाहजादे कामबख्शके जरिए प्रमुख मराठा सेनापतियोके साथ सन्धि कर शाहूको छोडनेकी शर्ते तय होनेवाली थीं। किन्तु यह चाल भी विफल हुई और "राजा शाहूको फिर गुलालबारमे नजरबन्द कर दिया गया।"

औरगजेबने अपनी पूण निस्सहायताको महसूस किया। अपने जीवनके अन्तिम वप सन् १७०७मे उसने मराठोके साथ सन्धि करनेके लिए एक बार और प्रयत्न करनेका निश्चय किया, किन्तु उसका भी कोई नतीजा नही निकला। मराठोमे गृह-युद्ध छिड गया था, किन्तु उससे लाभ उठाने की औरगजेबकी आशा इस बार भी निष्फल ही हुई।

इधर अनेकानेक विभिन्न हेतुसे कई प्रमुख मराठा घराने मुगलोकी सेवामें लगे हुए थे। सिंदखेडके जादवरावका कुलीन घराना कई पीढियोंसे मुगलोंके पक्षमे बना हुआ था। शम्भूजीके अत्याचारोंमे पीडित कान्होजी शिर्के और उसके पुत्रोने भागकर मुगल सम्राट्का आश्रय लिया था। शिर्के घरानेके साथ ही नागोजी माने भी सदैव मुगलोंके प्रति स्वामिभक्त बना

रहा और बहुत समय तक उसने मुगलोको उल्लेखनीय सेवाएँ की। औरंगजेबके तीन अन्य भक्त मराठा सेवक थे आवजी अढल, रामचन्द्र और वहीरजी पाँढरे।

मराठा सरदार सतवाजी डफले भी मुगल सेवक था। इस घरानेकी गणना पहिले आदिलशाही सुलतानके सरदारोमे होती थी। आदिलशाही घरानेका अन्त होनेपर मुगल विजेताने उन्हे अपनी सेवामे ले लिया। सन् १६९५से पहिले सतवाने स्वय तो मुगलोके पक्षको छोड दिया था, परन्तु अगस्त, १७०१मे उसे पच-हजारी मनसब दिए जाने तथा १३ अप्रैल, १७००को सताराके घेरेके समय प्रदर्शित उसके स्वर्गीय पुत्रकी वीरता व आत्म-बलिदानके पुरस्कार-स्वरूप जथका परगना जागीरमे मिलनेपर वह पीछा औरंगजेबके पक्षमे हो गया।

कई हजार मराठा पहाडी पैदल सैनिक, मावले, औरंगजेबकी सेनामे नौकर थे। किन्तु इसका एकमात्र वास्तविक प्रभाव यही होता था कि वे कोई उपद्रव नही कर सकते थे।

४. औरंगजेबका सतारा किलेको घेरना

मराठोंके बडे ही सुदृढ किलोपर चढाई करनेके लिए १९ अक्तूबर, १६९९को औरंगजेब इस्लामपुरीसे चला. औरंगजेबके जीवनके अगले छ वर्ष इन्ही चढाइयोमे खप जानेवाले थे। एक-एक कर उसने सतारा, पार्ली, पन्हाला, विशालगढ (खेलना), कोण्डाना (सिंहगढ), राजगढ और तोरणाके सुप्रसिद्ध पहाडी किले जीते, इनके अतिरिक्त पाच और कम महत्त्वके स्थानोपर भी उसका अधिकार हो गया था। किन्तु यह बात विशेष रूपसे स्मरणीय है कि एकमात्र तोरणा छोडकर दूसरा कोई भी किला आक्रमण करके जीता नही गया, कुछ समयके उपरान्त ही इन अन्य किलोने आत्मसमर्पण किया और उसके लिए भी कुछ-न-कुछ कीमत अवश्य ही चुकानी पडी थी, वहाके दुर्गरक्षकोको अपना निजी सारा माल-असबाब लेकर बेरोक-टोक जाने दिया गया और अपने विरोधका अन्त कर देनेके पुरस्कारस्वरूप वहाके किलेदारोको बहुमूल्य इनाम दिए गए।

अपनी उदयपुरी बेगम, उसके पुत्र शाहज़ादे कामबख़्श तथा अपनी बेटी शाहज़ादी जीनत उन्निसाको औरंगज़ेबने अनावश्यक माल-असबाब,

अतिरिक्त अधिकारियो, सैनिकोके कुटुम्बो और छावनीके नौकरोंके साथ इस्लामपुरीमे ही छोड दिया था। एक उपयुक्त सेना देकर वहांकी देख रेखका भार वजीर असदखांको सौंपा गया। घेरा डालनेवाले मुगल सैनिक पडावके आसपास मण्डरानेवाले या इस्लामपुरीके इस केन्द्रपर आक्रमण करनेको उद्यत रणतत्पर मराठे सैनिकदलोके साथ युद्ध करनेका काम जुल्फिकारखांको सौंपा गया, जिसे अब नसरतजगका खिताब मिला।

इस्लामपुरीमे चलकर शाही सेना ८ दिसम्बरको सताराके सामने जा पहुँची। किलेकी शहरपनाहसे कोई डेढ मील उत्तरमे स्थित करजा नामक गाँवमे उसने अपना पडाव डाला। अपने नौकरो तथा बारबरदारीके पशुओको एक ही स्थानपर पाँच मीलके घेरेमे एकत्रित कर शाही सेनाने अपने पडावके चारो ओर किलेबन्दीकी दीवाल खडी कर दी जिससे कि मराठा आक्रमणकारी शाही पडावम न घुस सके। ९ दिसम्बरको किलेका घेरा डालनेका काम प्रारम्भ हुआ। उस पथरीली धरतीमे खोदनेका काम बहुत ही धीरे-धीरे और बडी ही कठिनाईसे हो पाता था। दुर्गरक्षक निरन्तर रातदिन सब तरहके अस्त्रोकी बौछार मुगल सेनापर करते रहते थे। किन्तु किलेको पूरी तरह घेरा भी नही जा सका था, जिससे इस घेरेका अन्त होने तक भी शत्रु सताराके किलेमे आते-जाते ही रहते थे।

दुर्गरक्षक सेना बारम्बार मुगलोपर आक्रमण भी करती थी, किन्तु हर बार थोडी बहुत हानिके साथ मुगल उन्हे विफल मनोरथ ही मार भगाते थे। किन्तु युद्धक्षेत्रमे उतरी हुई दूसरी मराठा सेनाएँ ही मुगलोंके लिए सबसे बडा खतरा साबित हुई, क्योकि घेरा डालनेवाली इस मुगल सेनाकी हालत भी उन्होंने एक घिरे हुए नगरकी-सी कर दी। घास-दाना एकत्र करनेवाले मुगल सैनिक-दल भी प्रमुख मुगल सरदारोंके सरक्षणमे बिना शक्तिशाली रक्षकोंके बाहर भी नही निकल सकते थे। धन्ना, शकर तथा अन्य शत्रु सेनानायक सारे मुगल प्रदेशमे फैल गए और गाँवोपर आक्रमण कर मुगलोकी चौकियोको हटाने तथा बनजारोको भी इधर-उधर जानेसे रोकने लगे।

बडी मिहनतके बाद तरबियतखाँने २४ गज लम्बी एक सुरग खोद कर तैयार की जो किलेकी दीवालके नीचे तक पहुँच गई थी। किन्तु दीवाल तोडकर उसपर आक्रमण करना अनुचित समझा गया। तब २३ जनवरीको शाही सेनामे नौकर २,००० मावलोंने अचानक किलेकी दीवाल

फादकर अन्दर जा पहुँचनेका प्रयत्न किया, किन्तु उन्हे सफलता न मिली। १३ अप्रैलको दो सुरगें दागी गइ। पहिलीके चलनेसे कई दुर्गरक्षक मर गए और गिरी हुई दीवालके ढेरके नीचे हवालदार प्रयागजी प्रभु दव गया, किन्तु उसे जीवित ही खोदकर निकाल लिया गया। दूसरी सुरग वाहरकी ओर फूटी, एक वुर्ज उड गई और आक्रमणके लिए दीवालके नीचे एक साथ एकत्र हुए बहुतसे मुगल सैनिकोंपर वह गिरी, जिससे कोई दो हजार मुगल सैनिक मर गए। इस धडाकेसे दीवालमे कोई वीस गज चौडी दरार पड गई। कुछ वीर शाही सेनानायक और विशेषतया वीजापुर जिलेमे स्थित जय राज्यके सस्थापक सतवा डफलेका वेटा वाजी चव्हाण डफले शाहरपनाहके सिरेकी ओर दौड पडे और "ऊपर चले आओ। यहा दुश्मन नही हैं।" चिल्ला चिल्लाकर अपने साथियोंको भी वुलाने लगे। किन्तु किसी भी मुगल सैनिकने उनका साथ नही दिया। इस धडाकेसे आई हुई आपत्तिसे वच जानेवाले मुगल सैनिक इतने स्तब्ध और भयभीत हो गए थे कि उनमसे कोई भी अपनी खाईमेसे नही निकला। अचानककी इस घटनासे उत्पन्न हुई दुगरक्षकोंकी घवडाहट तव तक दूर हो चुकी थी, वे अव तत्परताके साथ उस टूटी हुई दीवालकी ओर झपटे और मुगलोंकी एकमात्र आशा उस वीर सेनापतिको भी उन्होने मार डाला।

अन्तमे हताश होकर सताराके किलेदार सुभानजीने शाहजादे आजमके द्वारा औरगजेवसे शर्तें कर ली। २१ अप्रेलको उसने अपने किलेपर शाही झण्डा चढा दिया और दूमरे दिन अपने अन्य साथी दुगरक्षकोंके साथ ही उसने किला खाली कर दिया। शाहजादे मुहम्मद आजमके सम्मानार्थ इस किलेका नाम वदलकर 'आजमतारा' रखा गया।

५ पार्लीके किलेको जीतना

इसके कुछ ही दिनो वाद सतारासे छ मील पश्चिममे स्थित पार्ली किलेका घेरा डालकर मुग़लोने वहा खाइया खोदी। यह किला शिवाजीके गुरु रामदास स्वामीका निवास-स्थान था, और जव मुगल सताराके किलेको घेरे हुए थे तव मराठा शासनका प्रधान केन्द्र इसी किलेमे था। राजारामकी मृत्यु तथा सताराके किलेके पतनके वाद हताश होकर मराठा शासनका प्रमुख माल हाकिम परशुराम पार्लीके किलेसे निकल भागा, परन्तु उसके अधीन अधिकारी किलेम ही रहकर मुगलोका विरोध करते

रहे। अन्तमें वहाके किलेदारसे बातें कर ली गई और घूस देकर ९ जूनको पार्ली किला भी खाली करवा लिया गया।

इन दोनो घेरोंमे शाही सेनाके बहुत अधिक आदमी, घोडे और बारबरदारीके पशु व्यय ही मर गए। शाही कोष खाली था; सैनिकोंकी तीन वर्षकी तनख्वाह चढी हुई थी, जिस कारण वे भूखा मर रहे थे। पहिले कभी न हुई ऐसी मूसलाधार वर्षा मईके प्रारम्भसे ही होने लगी, जो जुलाईके अन्त तक होती ही रही। वापस भूषणगढको लौटनेके लिए २१ जूनको शाही सेना वहाँसे चल पडी, किन्तु इस यात्रामें बेचारे सैनिकों की कठिनाइयाँ असहनीय हो गई। बारबरदारीके प्राय सारे ही पशु घेरेके दिनोंमे मर चुके थे। ४५ मीलका यह रास्ता तय करनेमें मुगल सेनाको ३५ दिन लगे। तब ३० अगस्त, १७००ई०को शाही पडाव वहाँसे ३६ मील दूर मान नदीपर स्थित खवासपुर ले गए और वहाँ उस नदीके दोनो ही किनारो तथा नदीके मध्यमें सूखे भागपर भी शाही सैनिकोंने पडाव किया। तब ऊपर पहाडोंमे असमय ही घनघोर वर्षा हो जानेसे अक्तूबरकी एक रातके समय जब सब सैनिक गहरी नींद सो रहे थे, नदीमें एकाएक भयकर बाढ आई, जिससे उसका पानी दोनो किनारोंसे भी ऊपर चढकर आसपासके मैदानोंमे फैल गया। कई आदमी और पशु इस बाढमें मर मिटे और उससे भी अधिक सैनिक तथा कई सरदार भी बिलकुल दरिद्री तथा नगे हो गए, प्राय सारे ही तम्बू तथा अन्य माल असबाब बरबाद हो गए।

आधी रातसे कुछ ही पहिले जब प्रथम बार बाढका पानी पडावमे जा घुसा तब सारी सेनामे बडे जोरोंसे कोलाहल मच गया। सम्राट्को भय हुआ कि मराठे पडावमे घुस आए हैं, अतएव वह घबडाकर उठा, किन्तु ठोकर खाकर गिर पडा, जिससे उसका दाहिना घुटना उखड गया। इस जोडको हकीम पीछा ठीक तरह नही जमा सके, जिससे शेष जीवन भर वह उस पैरसे कुछ लँगडाता ही रहा। शाही-दरबारके चापलूस इसे सम्राट्के पूर्वज विश्व विजेता तैमूरलगको विरासत बताकर औरगजेबको दिलासा देते थे।

शाही सेनाके इन सारे दुर्भाग्योंसे मराठाने पूरा-पूरा लाभ उठाया।

६ पन्हालाका घेरा, १७०१ ई०

अब पन्हालापर आक्रमण हुआ। ९ मार्च, १७०१को औरगजेब वहाँ

पहुँचा, और पन्हाला तथा उसके साथ ही उसके पडोसी किले पावनगढको भी पूरी तरह घेरकर कोई १४ मीलकी लम्बाईमे यह घेरा डाला। "जहा कही भी वे सिर उठावें वही उन्हे दवा देनेके लिए" एक घूमते फिरते सैनिक-दलके साथ नसरतजगको वहाँसे रवाना किया। किन्तु पथरीले स्थानमे सुरग खोदनेका काम बहुत ही धीरे-धीरे चलना अवश्यम्भावी था, और साथ ही भयकारक वर्षा ऋतु भी दिनोदिन पास आ रही थी। जहाँ सम्राट्के दोनो सर्वोच्च सेनापतियो नसरतजग और फिरोज़जगमे इतनी उत्कट प्रतिस्पर्धा घर कर गई थी कि दोनोको साथ ही एक स्थान-पर किसी कायम लगाना सवथा असम्भव हो गया था, वहाँ अब तर्बियतख़ाँ और फतेहउल्लाख़ामे भी प्रतिद्वन्द्विता छिड गई, तथा तब ही आगे बढे हुए गुजरातके एक नये सुयोग्य अधिकारी मुहम्मद मुरादसे सारे ही पुराने अधिकारी ईर्ष्या करने लगे। सेनापतियोंके इस आपसी बेजनाव और द्वेपके कारण उनका एक-दूसरेसे सहयोग करना सवथा असम्भव हो गया। उलटे एक-दूसरेके कायम बाधा डालते रहनेका ये गुप्त रूपसे भरसक प्रयत्न करते थे। बरसात शुरु होनेसे पहिले ही पन्हालापर अधिकार कर लेनेके लिए वहाके किलेदार त्रिम्बकको बहुत बडी रिश्वत दी गई, तब २८ मई, १७०१को उसने वह किला मुगलोको सौंप दिया।

७. खेलनाका घेरा

तब औरगजेब खेलनाके (अथवा विशालगढके) किलेको जीतनेके लिए निकला। पन्हालासे तीस मील पश्चिममे समुद्रसे ३,३५० फुट ऊँची सह्याद्रि पवतकी चोटीपर स्थित इस किलेसे पश्चिममे दूर तक कोकणके मैदान फैले हुए हैं। इस जिलेम काफी ठण्डक रहती है और वहा पानी भी बहुत बरसता है, सत्रहवी शताब्दीमे यहाकी पहाडिया, वृक्षा और घनी झाडियासे पूरी तरह ढकी हुई थी।

वर्धनगढसे ७ नवम्बर, १७०१ ई०को रवाना हो राहमे १२ पडाव करनेपर औरगजेब मलकापुरके पास पहुँचा। यहा एक सप्ताह तक वह ठहरा रहा और तब तक आगेकी राह ठीक करनेको उसने मज़दूरो आदि-को वहाँ भेजा। अभी अम्बाघाटीको सारी सेनाके निकल सकने योग्य बनाना था। अनेकों रास्ता बनानेवालो और पत्थर तोडनेवालोको एक सप्ताह तक वहा लगाकर निरन्तर कडी मिहनतके बाद फतेहउल्लाख़ाने

इस कठिन कार्यको किसी तरह पूरा किया। तब घेरा डालनेके लिए २६ दिसम्बरके दिन अहमदनगरसे भेजा गया। १६ जनवरी, १७०२को औरंगजेबने भी खेलनासे एक मीलकी ही दूरीपर पहुँच वहाँ अपना डेरा लगाया। उस घाटीको पार करने तथा उसके पडाव और माल-असबाबको किलेके नीचे तक पहुँचानेमे औरंगजेबके अनुयायियोको अत्यधिक कठिनाइयाँ और हानि उठानी पडी।

जनवरीसे लेकर जून, १७०२ तक पूरे पाँच माह यह घेरा चलता ही गया। और तब बम्बईके समुद्री तटको भयकारक वर्षा ऋतु प्रारम्भ होकर आनावारी मुगल सेनाका तर-बतर करने लगी। बेदारबख्तसे बहुत बडी रिश्वत लेकर ४ जूनको किलेदार परशुरामने किलेके परकोटेपर शाहजादेका झण्डा चढाया और ७ जूनकी रातको दुर्गरक्षकोंने वह किला खाली कर दिया।

खेलनासे लौटते समय मुगल सेनाने जो दुःख उठाए थे वे सर्वथा अवर्णनीय थे। उसी हालतमे ३८ दिनमें ३० मीलका रास्ता पार कर १७ जुलाई, १७०२को यह दुर्दशापन्न सेना पन्हालाके पास पहुँची। अन्तमे १३ नवम्बर, १७०२को मुगल भीमा नदीके उत्तरी तीरपर बहादुरगढ अथवा पेडगाँव पहुँचे।

८ कोण्डानाके (सिंहगढ), राजगढ़ और तोरणाके घेरे

केवल १८ दिन ही विश्राम करनेके बाद २ दिसम्बरको औरंगजेब कोण्डाना (सिंहगढ) जीतनेके लिए चल पडा और २७ दिसम्बरके दिन वहाँ पहुँचा। शाही कुटुम्ब, दफ्तर और सारा भारी माल-असबाब बहादुरगढ भेज दिया गया। घेरा प्रारम्भ हुआ, परन्तु जी लगाकर कोई भी व्यक्ति प्रयत्न नही करता था एवं पूरे तीन माह इसी तरह व्यर्थ ही बरबाद हुए। उधर वर्षा ऋतु भी निकट आ रही थी, एवं सम्राट्के अधिकारियोंने किलेदारको बडी घूस देकर ८ अप्रैल, १७०३ ई०को किलेपर अधिकार कर लिया।

कोण्डानासे रवाना होकर एक सप्ताहमे शाही सेना पूना पहुँची (१ मई), जहा सात माह तक वह ठहरी रही। सन् १७०३-४ ई०मे वहाँ बिलकुल ही वर्षा नही हुई, जिससे सारे महाराष्ट्रमे अकाल पड गया और महामारी फैल गई।

तब राजगढ पहुँचकर ३ दिसम्बर, १७०३को शाही सेनाने वहाँका घेरा डाला। आक्रमण कर उन्होंने ६ फरवरी, १७०४को किलेके पहिले फाटकपर अधिकार कर लिया। दुर्गरक्षक अब भीतरी किलेमें जा घुसे। अन्तमें शर्तें कर १६ फरवरीकी रातको किलेदार वहाँसे भाग खडा हुआ।

उसके बाद औरगजेबने तोरणाका घेरा डाला। १० मार्चकी रातमें केवल २३ मावल पैदल सैनिकोंको साथ ले अमानुल्लाखाने चुपचाप किलेकी दीवाल फाँदी और शत्रुपर आक्रमण कर दिया। किसी भी प्रकारकी रिश्वत दिए बिना केवल बलपूर्वक इस एक किलेको ही औरगजेबने जीता था।

तोरणासे शाही पडाव खेड पहुँचा, जहाँसे २२ अक्तूबर, १७०४को औरगजेबने अपने जीवन-कालकी अन्तिम चढाईके लिए प्रस्थान किया।

९ बेरड जाति, उनका प्रदेश तथा उनका नायक

बीजापुर नगरसे पूर्वमें स्थित कृष्णा और भीमा नदियोंके बीचका प्रदेश बेरडोंका निवास-स्थान है। कन्नड आदिवासी जातिके लोग ढेड भी कहलाते हैं और हिन्दू जातियोंमें निम्नतर श्रेणीके अछूतोंमें उनकी गणना होती है। वे बहुत ही शक्तिपूर्ण तथा परिश्रमी होते हैं। वे प्राय जगली ही होते हैं और उच्च जातीय अति-सभ्य हिन्दुओंकी तरह वे सुकुमार नही हो पाए हैं। वे बकरे, गाय, सूअर, मुर्गों आदिका मास खाते हैं, और अत्यधिक मदिरापान भी करते हैं। उनका रग साँवला, शरीर सुगठित, कद मझौला, चेहरा गोल, गाल चिपटे, होठ पतले तथा बाल पतले या घुघराले होते हैं। वे कठिनाइयाँ सहन कर सकते हैं, किन्तु किसी स्थायी उद्योग धधेमें लगना या शान्तिपूर्वक जीविका पैदा करना उनकी प्रकृतिके विपरीत है। उनके जातीय सगठनके अनुसार विभिन्न घरानोंके प्रमुखोंके नियन्त्रण तथा सारी जातिके मुखियाकी सर्वोच्च न्याय-सत्ताके कारण उस जातिमें अनुशासन तथा एकता बनी रहती थी। ईसाकी १७ वी और १८ वी शताब्दियोंमें दक्षिणी भारतके साहसी अचूक निशानेबाज प्राय इसी जातिके होते थे। युद्धमें वीरता दिखाने तथा वहा लगनेवाले घावों तथा मृत्यु तककी पूर्ण उपेक्षाके लिए वे सुविख्यात थे। उसी तरह बहुत ही दक्ष ढोर चुरानेवालोंसे जैसी आशा की जा सकती है, वैसी ही चतुराई वे रातके समय आक्रमण करने या अचानक छापा मारनेमें भी दिखाते थे, तथा उनकी यह विशेषता सर्वत्र सुज्ञात थी। उनके नामके अर्थ-श्लेष

कलाकार द्वारा समकालीन इतिहासकार उन्हें 'बेडर' (निर्भीक) कहा करते थे।

कृष्णा और भीमाके बीचवाले शोरापुर प्रदेशमें बेरड नायकका था शासकोंकी राजधानी सागर बीजापुरसे कोई ७० मील पूरब है। सन् १६८७ ई०में जब मुगलोंने सागरपर अधिकार कर लिया, तब नायकने सागरसे ही १२ मील दक्षिण पश्चिममें वागिनखेडा नामक नई राजधानी बनाई। औरंगजेबके शासनकालके अन्तिम वर्षोंमें यह किला भी मुगलोंने उससे छीन लिया, तब नायक अपनी राजधानीको वागिनखेडासे चार मील ही दूर उसी पर्वत श्रेणीके पूर्वी ढालपर स्थित शोरापुर ले गया।

पाम नायकका भतीजा तथा उसका गोद लिया हुआ उत्तराधिकारी पीडिया नायक सन् १६८३में शाही दरबारमें पहुँचा। औरंगजेबकी सेवामें उपस्थित हुआ तब उसे शाही सेनामें मनसब भी मिल गया। मुग़लोंने सागर जीतने तथा उसके चाचाकी मृत्युके बाद वह वागिनखेडाका किला बनाने और अपनी सेना संगठित करनेमें ही लगा रहा। अपनी ही जातिके कोई बारह हजार बहुत अच्छे निशानेबाज उसने एकत्र किए तथा धीरे धीरे तोपें, गोला-बारूद और अन्य युद्ध-सामग्री भी इकट्ठा करता रहा। पीडिया नायक मुलकगिरी जिलेमें लूटमार भी करता था। अन्तमें उसकी यह लूटमार इतनी अधिक बढ़ गई कि उसके विरुद्ध कार्यवाही करना अनिवार्य हो गया।

१०. औरंगज़ेबका वागिनखेडा जीतना, १७०५

सन् १७०४ ई० समाप्त होते-होते जब सारे ही महत्त्वपूर्ण मराठा किले जीते जा चुके, तब अन्तमें औरंगज़ेब वागिनखेडाके लिए रवाना हुआ और ८ फरवरी, १७०५को उसका घेरा प्रारम्भ हुआ।

किलेके फाटकके सामने नीचे मैदानमें दक्षिणकी ओर 'तलवरखेडा' नामक एक गाव है, जिसके चारो ओर मिट्टीकी दीवाल बनी हुई है। सारी आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त करनेके लिए किलेमें रहनेवाले दुर्गरक्षकोंके वास्ते इस गाँवका बाजार ही एकमात्र स्थान है। इसीके पास घास फूसकी बनी हुई झोपडियोंका 'ढेडपुरा' नामक एक और गाँव है। साधारण गरीब बेरडोंके कुटुम्ब यहा रहकर आसपासकी भूमिमे खेतीवाडी करते हैं।

इस सारे प्रदेशमे ये ही तीन स्थान है जहाँ मनुष्योंकी कोई बस्ती है। किन्तु किलेके पास ही पूर्व और उत्तरमे कई एक ऐसी पहाडिया है, जो घेरा डालनेवालोंके लिए बहुत ही उपयोगी हो सकती हे। वहाँकी लाल धरतीके कारण उनमसे एक 'लाल टेकरी' कहलाती थी, जिसपरसे वागिनखेडा किलेके एक भागका भीतरी हिस्सा कुछ-कुछ देख पडता था। उस किलेकी सुरक्षाके लिए यह लाल टेकरी बहुत ही महत्त्वकी थी, किन्तु आसपासकी इन पहाडियापर भी छोटी छोटी बुर्जे बना लेने या वहा कोई सुदृढ चौकिया स्थापित करनेकी बेरडोने कभी नही सोची।

एक दिन प्रात कालम किलेकी आरक्षाओके मम स्थानोको खोजनेके लिए जब मुगल सेनापति देखभाल कर रहे थे तब उन्होने एकाएक लाल टेकरीपर हमला कर दिया और उसके सिरेपरके बेरड निशानेबाजोको मार भगाया तथा उस टेकरीपर अधिकार कर लिया। चट्टानोवाली उस पहाडीपर खाइया खोदकर वहाँ अपनी स्थिति सुदृढ करना मुगलोके लिए सवथा असम्भव था। तत्काल ही बेरडोने अपने पैदल सैनिकके बडे-बडे दल भेजे, "चींटियो और टिड्डियोकी ही तरह असख्य" इन बेरडोंने उस पहाडीको घेर लिया और पहाडोकी चोटीपर एकत्र हुए शाही सैनिकोपर वे पत्थरो और बन्दूकोकी गोलियोके घातक निशाने लगाने लगे। बहुतसे मुगल सैनिक मारे गए और अन्तम विवश होकर मुगलोको वह पहाडी छोड देनी पडी।

किन्तु २६ माचको धन्ना जादव और सन्ता घोरपडेके भाई हिन्दूरावके नेतृत्वम पाँच या छ हजार मराठा घुडसवारोका एक दल उनके बेरड मित्रोकी सहायताथ किलेके पास आया। कई मराठा सेनापतियोंके कुटुम्बोने भी उस किलेमे शरण ली थी, अतएव उन्ह किलेमेसे निकालकर किसी सुरक्षित स्थानमे पहुँचा देना ही मराठोका पहला काय था। इस आगन्तुक मराठा सेनाके प्रधान दलने जब किलेके सम्मुख पहुँचकर घेरा डालनेवाली मुगल खाइयोंके साथ युद्ध करनेका कोलाहलपूर्ण दिखावा कर शाही सेनाको वहा उलझाए रखा, तब उनकी सहायताथ किलेकी दीवालोपरसे भी बडी जोरोंसे गोलाबारी हुई। उसी समय चुने हुए २,००० मराठा घुडसवारोने वागिनखेडा किलेके पिछले दरवाजेसे मराठा स्त्रियो और बच्चोको निकाला तथा तेज भागनेवाली घोडियोपर बैठाकर उन्हे वहाँसे साथ ले गए। इस दूसरे दलके पृष्ठ भागकी रक्षार्थ पैदल सैनिकोकी एक टुकडी किलेसे निकल आई।

जहाँ तक भी वे उसकी राजधानीकी रक्षामे उसकी सहायता देंगे, तब तक कई हजार रुपये प्रति दिनके हिसाबसे मराठोको देने रहनेका पोडिया ने वादा किया था। अतएव पास हीमे ठहरकर मराठे बारम्बार मुगलोपर आक्रमण करने लगे। अब तो स्वय मुगल सेनाकी भी हालत घिरे हुओंरी-सी हो गई। उनकी सारी गतिविधि ही रुक गई, अपने पडावकी सीमासे बाहर निकलना भी उनके लिए कठिन हो गया। पडावम घास और दाना बिलकुल ही नही मिलता था। औरगजेबने अपने सेनापतियोकी भर्त्सना की, किन्तु उसका भी कोई प्रभाव नही हुआ।

अब पोडियाने औरगजेबके प्रति आत्मसमर्पणका प्रस्ताव किया। पास और दूरसे सारी ही सहायक सेनाको एकत्रित करनेके लिए पर्याप्त अवकाश प्राप्त करना हो उसकी इस बातचीतका वास्तविक उद्देश्य था।

अब्दुल गनी नामक एक मधुर-भाषी परन्तु झूठा कश्मीरी फेरीवाला पोडियाकी ओरसे सन्धिका प्रस्ताव लेकर एक दिन शाही गुप्तचर विभागके मुखिया हिदायत-केशके पास पहुँचा। औरगजेबने उस पत्रका अनुकूल उत्तर दिया। तब अगली बार पोडियाने अपने भाई सोमसिंहको शाही पडावमे भेजा और जमीदारी, सारी जातिका मुखिया पद तथा शाही मनसब अपने उस भाईको दिए जानेपर किला भी मुगलोको सौंप देनेका पोडियाने प्रस्ताव किया। शाही पडावमे ठहरकर सोमसिंहने यहा खबर उडा दी कि पागल होकर पोडिया मराठोके साथ भाग गया था। अगली बार वही कश्मीरी बेरड मुखियाकी माकी ओरसे एक सन्देशा लाया, जिसमे भी उसी खबरको दुहराया गया और सोमसिंहको वापस लौटने देनेके लिए प्रार्थना की गई, जिससे कि सात दिनमे किला खाली किया जा सके। सम्राट्ने सोमसिंहको वापस जाने देनेकी स्वीकृति दे दी और अब लडाई भी बन्द हो गई।

किन्तु यह सब झूठ कब तक चलता। शीघ्र ही भण्डा फूट गया। यह सब धोखेबाजी ही थी। पोडिया जीवित, सर्वथा स्वस्थ तथा तब भी किलेमे ही था। मुगलोको किला सौंप देनेसे उसने इनकार कर दिया और अब मुगलोपर पुन आक्रमण करने लगा। यह सब देखकर सम्राट् क्रोध और लज्जाके मारे पागल हो उठा।

अब औरगज़ेबने सब ओरसे अपने सारे ही योग्यतम सेनापतियोको वहा बुलवा लिया। नसरतजग २७ मार्चको वहा आया और दूसरे दिन शाही घुडसवारोको साथ लेकर वह तेजीसे लाल टेकरीके पास जा पहुँचा।

घेरेके प्रारम्भमें इसी टेकरीपर एक बार मुगलोका अधिकार हो गया था, परन्तु बादमें बेरडोने उन्हे वहाँसे पीछे हटनेको विवश किया था। इस टेकरी-पर चढकर नसरतजगने वहाँसे शत्रुओका मार भगाया। तब बेरड भागकर पहाडीके नीचे तलवरखेडाम जा पहुँचे और वहाकी मिट्टीकी दीवालोंके पीछे आश्रय लेकर वहीसे गोलियाँ चलाने लगे। लाल टेकरीके इस आक्र-मणम तथा उस गाँवके बाहर बहुतसे राजपूत मारे गए। किन्तु नसरतजग ने दलपत बुदेलाको आदेश दिया कि पासकी एक ओर पहाडीपर अधिकार कर ले जो तब भी शत्रुओंके हाथमें थी। इस दूसरी पहाडीसे भागकर बेरड ढेडपुराम पहुँचे। इतनी मारकाटके बाद परकोटेके पास ही नसरतजगने जो स्थान अपने अधिकारमें कर लिया था, उसे उसने अपने हाथसे निकलने नही दिया। पहाडीके पासके जिन कुँओंसे शत्रु अपने लिए पानी ले जाते थे, कुछ दिनो बाद नसरतने उनपर भी अधिकार कर लिया। २७ अप्रैलको उसने तलवरखेडापर आक्रमण किया। जिस किसीने विरोध किया उसको मारते हुए मुगल परकोटेवाली उस पेठम घुसे, तब बाकी बचे हुए शत्रु वहासे भाग खडे हुए।

अब आगे युद्ध करते रहना बेरडोको सवथा निस्सार देख पडा। तब रातके समय पिछले दरवाजेसे निकलकर पीडिया नायक 'दुर्दिनके अपने मराठा सगियोंके साथ' भाग गया। दूसरे दिन रात पडनेके बाद जब किलेमेंसे बन्दूकें चलना बन्द हो गईं, तब मुगल सैनिक किलेम गए और उन्होंने किलेको बिलकुल ही निजन पाया। अब वहा गडबडी, लूटमार और आग लगानेका अजीब दृश्य उपस्थित हुआ। शत्रुओने किलेको खाली कर दिया है, यह समाचार फैलते ही शाही सेनाके अनुयायी, साधारण सैनिक और उस पडावके सारे ही गुण्डे-बदमाश किलेमे जा घुसनेको हडबडाकर भागे। किलेम पहुँचकर वहाकी सारी सम्पत्तिको शाही अधिकारी जप्त कर लें उससे पहिले ही लूटमारकर जो कुछ हथिया सकें उसे उठा लानेको वे सब वहा पहुँचे। जलते हुए छप्परोंसे होती हुई आग बारूदके एक कोठेमे जा पहुँची, जिससे बडे जोरोसे एक धडाका हुआ और अनेको मनुष्य उड गए। दो-तीन दिन बाद बारूदके दूसरे कोठेमें भी विस्फोट हुआ। वागिनखेडा जीत लिया गया, परन्तु उसका मुखिया बच निकला था, एव अपने विजेताओको बादम भी निरन्तर सतानेके लिए वह जीवित था। या इन तीन महीनोकी औरगजेबकी सारी मिहनत निरथक हो गई।

११. औरंगजेबके निरन्तर युद्धोंके कारण देशका उजड़ना एवं सर्वत्र अराजकताका फैलना

अकबरने जिसे स्थापित किया तथा शाहजहांके समय जिसकी समृद्धि और शान शौकतकी प्रसिद्धि सारे संसारमें फैल गई थी, ईसाकी १७वीं शताब्दीके अंतमें वही साम्राज्य निराशापूर्ण लाचारी अवस्थामें पहुँच गया था। साम्राज्यका राज्य शासन, संस्कृति, आर्थिक जीवन, सैनिक शक्ति, और सामाजिक संगठन, सब-कुछ ही बड़ी तेजीसे विशृंखलित हो सर्वनाशकी ओर बढ़ रहे थे। इन पच्चीस वर्षोंके निरन्तर युद्धोंमें साम्राज्यके जान-माल, आदिका भयंकर अपव्यय हुआ। दक्षिण देश तो पूर्णतया बरबाद हो गया। समकालीन विदेशी दर्शक मनुचीने लिखा है, "औरंगजेब अहमदनगरको वापस लौट गया, और पीछे उन प्रान्तोंके खेतोंमें वृक्षों और फसलोंका नामो निशान भी नहीं रहा, उनके बजाय सर्वत्र मनुष्यों और पशुओंकी हड्डियोंके ढेर पडे थे। हरियालीके स्थानपर सर्वत्र खाली जमीन वीरान पडी थी। उनकी सेनामें प्रति वर्ष कुल मिलाकर एक लाख मनुष्य मरते थे, सेनामें प्रति वर्ष मरनेवाले पशुओं, बारबरदारीके बैल, ऊँट, हाथियों, आदिकी संख्या तो तीन लाखसे भी ऊपर पहुँच जाती थी। दक्षिणी प्रान्तोंमें सन् १७०२से १७०४ तक निरन्तर महामारी (और अकाल) बने रहे। इन दो वर्षोंमें कोई २० लाखसे अधिक प्राणी मरे।"

वागिनगेडासे पालमें रवाना होकर जब वह वापस उत्तरकी ओर लौट पडा, तब ५० ६० हजार मराठोंका एक बडा दल शाही सेनासे कुछ ही मील पीछे-पीछे सतत चला। खाद्य-सामग्रीको शाही सेना तक न पहुँचने देने तथा पिछड जानेवालोंको पकड ले जानेका वे प्रयत्न करते रहे, और कभी-कभी शाही पडावपर भी आक्रमण कर देनेका आयोजन करते थे।

इस सारी परिस्थितिको आखों देखनेवाला भीमसेन लिखता है— "पूरे राज्यमें सर्वत्र मराठोंका पूर्ण प्राधान्य हो गया और उन्होंने सारे ही रास्ते रोक दिए। लूटमार कर वे अपना दारिद्र्य दूर करते तथा बहुतसा धन भी एकत्र कर लेते थे। मैंने सुना है कि वे हर हफ्ते मिठाई और द्रव्य दान कर सम्राट्की दीर्घायुके लिए प्रार्थना करते हैं, क्योंकि वह (उनके लिए तो अवश्य ही) विश्वम्भर है। धान्यकी कीमत दिलो-

दिन बढती ही जा रही थी। शाही पडावमे तो विशेष रूपसे बहुत अधिक आदमी भूखो ही मर जाते थे। बलपूर्वक अनुचित रुपया वसूल करनेके अनेको अवैध तरीके और कारण वहाँ प्रचलित हो गए थे। सिंहासनारूढ होनेके समयसे ही सम्राट् किसी भी नगरमे नही रहे हैं, किन्तु इन युद्धो तथा तदर्थ कष्टपूर्ण यात्राएँ करते रहनेका ही मार्ग उन्होने चुना है, जिससे उनके पडावके अनुचरोने अपने कुटुम्बियोसे होनेवाले दीर्घकालीन विछोहसे क्षुब्ध हो उन्हे भी पडावमे ही बुला लिया तथा वे सब तब वहाँ उनके साथ रहने लगे थे। (उन तम्बुओम ही) यो एक नई पीढीका जन्म हुआ, वही शिशु युवा हुए और युवक बूढे हो गए, तथा वृद्धावस्था पार कर आगे देवताओंके उस परलोकको भी उन्होने तैयारी कर ली, किन्तु फिर भी उन्होने कभी घरकी सूरत नही देखी और सदैव यही जाना कि ससारमे रहनेके लिए डेरेके अतिरिक्त दूसरा कोई आश्रय स्थान नही है। जब कभी मराठे किसी स्थानपर आक्रमण करते हैं तब वहाके प्रत्येक परगनेसे जितना भी वे चाहते है रुपया ले लेते है और वे अपने घोडोको खडी फसलें खिलाते है या उनसे उन फसलोको रुँदवा देते हैं। उनका पीछा करती हुई जो भी शाही सेना आती है, उन खेतोके (पुन) आबाद किए जानेपर ही उसका वहाँ कुछ भी गुजारा हो सकता है। सारी शासन-व्यवस्था विलीन हो गई है। साम्राज्य वीरान हो गया है। रैयतने खेती करना छोड दिया है, जागीरदारोको अपनी जागीरोंसे एक फूटी कौडी भी नही मिलती है। अपने अधिकारियोको वेतन देनेकी मराठा शासनकी प्रथा भी उठ गई है। अतएव मराठा राजकमचारी चारो ओर लूटमार करके ही अपना पालन करने लगे ह, और अपनी लूटसे प्राप्त मालका थोडा-सा ही भाग वे अपने राजाको भी देते हैं।"

१२. लूटमार तथा युद्ध करनेके मराठोंके तरीके

अपनी लूटमारको भी मराठोने एक व्यवस्थित पद्धतिका स्वरूप दे दिया था। "जहाँ कही भी ये आक्रमणकारी पहुँच जाते थे, वहाँ स्थानीय लगान, आदि वसूल करने लग जाते थे, और यो अपने बाल-बच्चोंके साथ वहाँ शान्तिपूर्वक रहते कई महीने और वर्ष भी बिता देते थे। परगनोको वे आपसमे बाँट लेते थे और शाही शासनकी देखा-देखी वे अपने ही सूबेदार, लगान वसूल करनेवाले कमाविशदार और सडकोकी सुरक्षाके लिए

राहदार भी नियुक्त करते थे। सैनिकोंका नायक ही उनका सूबेदार होता था, किसी भी बड़े कारवाके आनेकी सूचना मिलते ही वह (कोई) सात हज़ार घुड़सवारोंके साथ उसे जा मिलाता और उसे लूट लेता था। चौथ वसूल करनेके लिए उन्होने सर्वत्र कमाविशदार नियुक्त कर दिए थे। जब कभी कोई सशक्त ज़मीदार या शाही फौजदार कमाविशदारका विरोध कर उसे वहासे चौथ वसूल नही करने देता तब कमाविशदारकी मदद-के लिए सूबेदार वहा जा पहुँचता और वहांकी वस्तीको घेरकर उसे वीरान कर देता था। मराठा राहदारका कार्य यह था—जब कभी कोई व्यापारी चाहता कि मराठोकी किसी भी बाधाके विना ही वह कहीकी यात्रा करे तब राहदार उससे प्रत्येक गाडी या बैलका कुछ रुपया लेकर उसके लिए वह रास्ता खुला कर देता था। शाही फौजदार जो राहदारी वसूल करता था उसका तीन या चार गुना रुपया मराठा राहदार यों हड़प लेता था। प्रत्येक सूबेमे मराठोने एक या दो गढ़ियाँ वनवाईं, जहा वे आश्रय ले सकें और जहासे चलकर वे आसपासके प्रदेशपर धावा मार सकें।" (ख़फीख़ाँ)।

सन् १७०३के वाद सारे दक्षिणमे तथा उत्तरी भारतके भी कुछ भागोमे मराठोका ही पूरा दौरदौरा था। मुगल अधिकारी बेवससे हो गए और आत्मरक्षा तथा बचावकी ही सोचने को वाध्य हुए। उनकी शक्ति बढनेके साथ ही मराठोकी चालो तथा गति विधिमे भी परिवर्तन होने लगे। शिवाजी और शम्भूजीके समयमे जिस तरह चपल छापा मार मराठे लूटमार कर भाग जाते थे, अरक्षित व्यापारियो और गाँवोको लूटते थे और मुगल सेनाके आनेकी सूचना मिलते ही तत्काल बिखर जाते थे, अब उनका यह सारा तरीका ही बदल गया, जिसे देखकर सन् १७०४मे मनुचीने लिखा था—"आजकल ये (मराठा) सेनानायक तथा उनके सैनिक पूर्ण आत्मविश्वासके साथ घूमते-फिरते हैं, क्योकि उन्होने मुगल सेनापतिओको त्रस्त कर दिया है और मुगल उनसे अब डरने भी लगे हैं। अब उनके पास तोपें, बन्दूकें, तीर-कमान, आदि सब-कुछ हैं और उनका माल-असवाव तथा तम्बुओको ढोनेके लिए उनके अपने हाथी और ऊँट भी हैं। साराश यह है कि अब मराठा सेना भी मुगल सेनाकी ही तरह सुसज्जित तथा उसीकी तरह प्रयाण भी करती है।"

औरगजेबके राज्यकी भीतरी व्यवस्था भी पूर्णतया विशृंखलित हो गई थी। अधिकारी असाध्य भ्रष्टाचारी और बिलकुल ही अयोग्य हो गए

थे, शाही आज्ञाओंके विरुद्ध स्थानीय शासक सारे बन्द किए गए कर (अबवाब) पुन: वसूल करने लगे, उनके बुढापेमें साम्राज्यके दूरस्थ कर्मचारी औरंगज़ेबके आदेशोंका उल्लंघन करते थे, तथा सारे शासनकी कार्यक्षमता ही नष्ट हो गई।

१३ औरंगज़ेबका अहमदनगरको लौटना, १७०५

२७ अप्रैल, १७०५के दिन वागिनखेडापर अधिकार हो जानेके बाद औरंगज़ेबने अपना पडाव वहाँसे उठा लिया। अब उस किलेसे आठ मील दक्षिणमें कृष्णा नदीके किनारे देवापुर नामक एक शान्त हरे-भरे गांवमें औरंगज़ेबने अपना पडाव किया। अब उसकी उम्र हिजरी सनके हिसाबसे नव्वे वर्षकी हो गई थी, एवं इन पिछले दिनोंकी इस सारी कडी मिहनतके कारण वह यहाँ बीमार पड गया।

सारे पडावमें निराशा छा गई। अत्यधिक दर्दके मारे वह बारम्बार बेसुध हो जाता था। इसी हालतमें उसने १०-१२ दिन निकाले, और तब बहुत ही धीरे धीरे उसकी हालत सुधरने लगी, किन्तु फिर भी अत्यधिक दुर्बलता बनी ही रही।

२३ अक्तूबर, १७०५को उसने देवापुरसे पडाव उठा लिया, और पालकीमें बैठकर वह उत्तरकी ओर लौटा। थोडी-थोडी दूरीपर प्रति दिन पडाव करता हुआ वह सुविधानुसार २० जनवरी, १७०६को अहमदनगर पहुँचा। दक्षिण विजयके लिए जिस दिन वह वहाँसे चला था, उसके पूरे २३ वर्ष बाद अब वहाँ लौटा। इसी स्थानको उसने अपनी (जीवन-) यात्राका अन्तिम पडाव घोषित किया।

१४. औरंगज़ेबके अन्तिम वर्षोंके दु:ख और निराशाएँ

औरंगज़ेबके जीवनके ये अन्तिम वर्ष अवर्णनीय विपदसे पूर्ण रहे। उसने देखा कि भारतपर दृढताके साथ न्यायपूर्वक शासन करनेके उसके जीवन भरके प्रयत्नोंका परिणाम राजनैतिक क्षेत्रमें भी बिलकुल ही उलटा हुआ और सारे साम्राज्यमें अराजकता और विश्रृंखलताका दौरदौरा हो गया। अपने बुढापेमें औरंगज़ेबके दिलको अकथनीय सूनापन घेरे रहा। एक-एक कर सारे ही वयोवृद्ध अमीर मरते गए, अब उसके यौवनकालके गए-बीते वातावरणमें पली-पोसी पीढियोंका अकेला प्रतीक उसका वज़ीर

राहदार भी नियुक्त करते थे। सैनिकोंका नायक ही उनका सूबेदार होता था, किसी भी बड़े कारवांके आनेकी सूचना मिलते ही वह (कोई) सात हज़ार घुड़सवारोंके साथ उसे जा मिलता और उसे लूट लेता था। चौथ वसूल करनेके लिए उन्होंने सर्वत्र कमाविशदार नियुक्त कर दिए थे। जब कभी कोई सशक्त ज़मींदार या शाही फ़ौजदार कमाविशदारका विरोध कर उसे वहांसे चौथ वसूल नहीं करने देता तब कमाविशदारकी मदद-के लिए सूबेदार वहां जा पहुँचता और वहांकी बस्तीको घेरकर उसे वीरान कर देता था। मराठा राहदारका कार्य यह था—जब कभी कोई व्यापारी चाहता कि मराठोंकी किसी भी बाधाके बिना ही वह कहींको जाना करे तब राहदार उससे प्रत्येक गाड़ी या बैलका कुछ रुपया लेकर उसके लिए वह रास्ता खुला कर देता था। शाही फ़ौजदार जो राहदारी वसूल करता था उसका तीन या चार गुना रुपया मराठा राहदार भी हड़प लेता था। प्रत्येक सूबेमें मराठोंने एक या दो गढ़ियाँ बनवाईं, जहाँ वे आश्रय ले सकें और जहाँसे चक्कर दे आसपासके प्रदेशपर धावा मार सकें।' (खफ़ीखां)।

सन् १७०३के बाद सारे दक्खिनमें तथा उत्तरी भारतके भी कुछ भागोंमें मराठोंकी ही धूम दौड़ थी। मुग़ल अधिकारी बेबससे हो गए और आत्मरक्षा तथा बचावकी ही सोचनेको बाध्य हुए। उनकी शक्ति बढ़नेके साथ ही मराठोंकी चालों तथा गति-विधिमें भी परिवर्तन होने लगे। शिवाजी और शम्भूजीके समयमें जिस तरह चपल छापा-मार मराठे लूटमार कर भाग जाते थे, अरक्षित व्यापारियों और गाँवोंको लूटते थे और मुग़ल सेनाके आनेकी सूचना मिलते ही तत्काल बिखर जाते थे, अब उनका यह सारा तरीका ही बदल गया, जिसे देखकर सन् १७०४में मनूचीने लिखा था—"आजकल ये (मराठा) सेनानायक तथा उनके सैनिक पूर्ण आत्मविश्वासके साथ घूमते-फिरते हैं, क्योंकि उन्होंने मुग़ल सेनापतियोंको पस्त कर दिया है और मुग़ल उनसे अब डरने भी लगे हैं। अब उनके पास तोपें, बन्दूकें, तीर-कमान, आदि सब-कुछ हैं और उनका माल-असबाब तथा तम्बुओंको ढोनेके लिए उनके अपने हाथी और ऊँट भी हैं। सारांश यह है कि अब मराठा सेना भी मुग़ल सेनाकी ही तरह सुसज्जित तथा उसीकी तरह प्रयाण भी करती है।"

औरंगज़ेबके राज्यकी भीतरी व्यवस्था भी पूर्णतया विशृंखलित हो गई थी। अधिकारी असाध्य भ्रष्टाचारी और बिल्कुल ही अयोग्य हो गए

थे, शाही आज्ञाओंके विरुद्ध स्थानीय शासक सारे बन्द किए गए कर (अबवाब) पुनः वसूल करने लगे, उनके बुढ़ापेमें साम्राज्यके दूरस्थ कर्मचारी औरंगजेबके आदेशोंका उल्लंघन करते थे, तथा सारे शासनकी कार्यक्षमता ही नष्ट हो गई।

१३. औरंगजेबका अहमदनगरको लौटना, १७०५

२७ अप्रैल, १७०५के दिन वागिनखेड़ापर अधिकार हो जानेके बाद औरंगजेबने अपना पड़ाव वहाँसे उठा लिया। अब उस किलेसे आठ मील दक्षिणमें कृष्णा नदीके किनारे देवापुर नामक एक शान्त हरे-भरे गाँवमें औरंगजेबने अपना पड़ाव किया। अब उसकी उम्र हिजरी सन्के हिसाबसे नब्बे वर्षकी हो गई थी, एवं इन पिछले दिनोंकी इस भारी कड़ी मिहनतके कारण वह यहाँ बीमार पड़ गया।

सारे पड़ावमें निराशा छा गई। अत्यधिक दर्दके मारे वह बारम्बार बेसुध हो जाता था। इसी हालतमें उसने १०-१२ दिन निकाले, और तब बहुत ही धीरे-धीरे उसकी हालत सुधरने लगी, किन्तु फिर भी अत्यधिक दुर्बलता बनी ही रही।

२३ अक्तूबर, १७०५को उसने देवापुरसे पड़ाव उठा लिया, और पालकीमें बैठकर वह उत्तरकी ओर लौटा। थोड़ी-थोड़ी दूरीपर प्रति दिन पड़ाव करता हुआ वह सुविधानुसार २० जनवरी, १७०६को अहमदनगर पहुँचा। दक्षिण-विजयके लिए जिस दिन वह वहाँसे चला था, उसके [illegible] २३ वर्ष बाद अब वहाँ लौटा। इसी स्थानको उसने अपनी ([illegible]) यात्राका अन्तिम पड़ाव घोषित किया।

१४. औरंगजेबके अन्तिम वर्षोंके दुःख और चिन्ताएँ

औरंगजेबके जीवनके ये अन्तिम वर्ष अत्यन्त [illegible] देता कि भारतवर्ष [illegible] भरके [illegible] और सारे साम्राज्यमें अव्यवस्था और [illegible] था। [illegible] औरंगजेबके [illegible] एक पर एक [illegible] थी। [illegible]

असदखाँ ही उसका एकमात्र व्यक्तिगत साथी रह गया था, और वह भी उम्रमे औरंगजेबसे पाँच वर्ष छोटा था। जब बूढा सम्राट् अपने शाही दरबारियोकी ओर दृष्टि डालता था, तब उसे अपने चारो ओर कम उम्रके ही व्यक्ति दिखाई पढते थे, जो स्वभावसे ही भीरु, चाटुकारी, जिम्मेवारी लेनेसे घबरानेवाले, सब बात कहते हिचकिचाने तथा अपने स्वार्थ और पारस्परिक द्वेषकी क्षुद्र भावनाओंसे प्रेरित हो निरन्तर षड्यन्त्र करते रहनेवाले थे। उसके साथ अधिक आत्मीयता स्थापित करनेके लिए औरोका उत्साह उसके कट्टरतापूर्ण अतिसयमके कारण आप ही मन्द हो जाता था। सर्व साधारणकी दृष्टिमें औरगजेब सासारिक हर्ष और विषाद तथा मानवीय दुर्बलताओ और करुणामे बहुत ही ऊपर था, साधारण मानवीय गुणोमेसे कदाचित् ही कोई उसमे पाया जाता था, तथा यहा रहते हुए भी वह इस लोकका प्राणी नही प्रतीत होता था, अतएव उनके हृदयोपर उसका ऐसा अलौकिक आतक छाया हुआ था कि वे उससे दूर ही रहते थे। साम्राज्यके निरन्तर बने रहनेवाले काम-काजसे जब कभी उसे कुछ अवकाश मिलता था तब दो ही व्यक्ति उसके सहचर होते थे, एक तो थी उसकी बेटी जीनत्-उन्निसा, जो स्वय भी अब बढी हो चली थी, और दूसरी थी उसकी सबसे छोटी पत्नी पशुकी-सी मूर्ख अर्द्धांगी उदयपुरी बेगम, जिसके पुत्र कामबख्शकी मूर्खतापूर्ण सनको तथा व्यसनी स्वेच्छाचारने उसके शाही पिताकी सारी आशाओको भग कर दिया था। औरगजेबकी मरती हुई आखोने अपने कई निकट सम्बन्धियोको एक एक कर इस लोकसे विदा होते देखा, जिससे इन अन्तिम दिनोमे उसका गार्हस्थ्य जीवन दुःख और निराशाके अधकारसे पूर्णतया भर गया था।

१५ शाही प्रदेशोंमे मराठोके उत्पात : १७०६-१७०७

अप्रैल या मई, १७०६मे अपने सारे बडे-बडे सेनापतियोके नेतृत्वमे एक बडी मराठा सेना शाही पडावसे चार मीलकी दूरीपर आ धमकी और वहा आक्रमण करनेका भी उसने आयोजन किया। इस मराठा सेना का सामना करनेके लिए औरगजेबने खान इ-आलम तथा अन्य सेना नायकोंका भेजा। बहुत देर तक घमासान युद्ध करनेके बाद ही वे मराठा को वहाँसे दूर हटानेमें समर्थ हुए।

उधर गुजरातमे मुगलोपर एक भयकर आपत्ति आ गई। खानदेशका

इनूमन्द नामक एक कलार इधर कुछ समयसे दिन-दहाड़े डकैती करने लगा था, अब उसने मराठा सेनापतियोंसे सम्बन्ध जोड़ा, और धन्ना जादव तथा उसकी सेनाको साथ लेकर उसने मार्च १७०६मे गुजरातके धनी व्यापार-केन्द्र बड़ौदाके नगरको लूटा। वहाँके फौजदार नजरअलीको हरा कर मराठोंने उसे तथा उसके सैनिकोंको कैद कर लिया।

इसी प्रकार धन्ना जादव और अन्य मराठा सेनापतियोंके नेतृत्वमे कई मराठा दल औरंगाबादके प्रान्तको बारम्बार लूटते रहते थे।

सितम्बर, १७०६मे जब वर्षा ऋतु समाप्त हुई तब मराठोंके उपद्रव दस गुना हो गए। धन्ना जादवने मुगलोंके पुराने प्रदेश बरार और खान-देशपर धावा मारा, किन्तु मीरजके अपने पड़ावसे चलकर नसरतजंगने उसका पीछा किया, तब बीजापुरकी ओर होता हुआ धन्ना कृष्णा नदीके पार चला गया। उधर औरंगाबादसे शाही पड़ावको आनेवाले एक बहुत लम्बे काफिलेको अहमदनगरसे २४ मीलकी ही दूरीपर चाँदाके पास मराठों-ने लूट लिया और उसका सब-कुछ वे छीन ले गए।

१६. औरंगजेबके अन्तिम दिन

औरंगजेबकी सेनाओंके चारों ओर जब इस प्रकार अनेकों आपत्तियाँ बढ़ती जा रही थी, तब शाही पड़ावकी आन्तरिक कठिनाइयोंके कारण वहाँकी परिस्थिति और भी अधिक सकटपूर्ण हो गई थी। अपने असीम अहकार तथा महत्वाकाक्षासे प्रेरित हो मुहम्मद आजम उत्सुक था कि अपने सारे अन्य प्रतिद्वद्वियोको अपनी राहसे हटाकर वह स्वय औरंगजेब-का उत्तराधिकारी बने। इसी कारण उसने सम्राट्के कान भरभर शाह-आलमके तीसरे बेटे सुयोग्य अजीमउश्शानको पटनाकी सूबेदारीसे वापस लौट आनेका आदेश भिजवा दिया था। साम्राज्यके वजीर असदखाँ और कुछ अन्य अमीरोको भी उसने अपने पक्षमे कर लिया था। अब वह कामबख्शपर अचानक आक्रमण कर उसे मार डालनेके लिए उपयुक्त अवसरकी खोजमे था। कामबख्शके विरुद्ध आजमके शत्रुतापूर्ण आयोजन दिनोदिन अधिकाधिक सुस्पष्ट होते जा रहे थे, एव औरंगजेबने वीर स्वामि-भक्त सुलतान हुसैनको (मीर मगलको) कामबख्शकी सेनाका फौज-बख्शी नियुक्त कर उस शाहजादेकी सुरक्षाका भार उसे सौंपा।

फरवरी, १७०७के प्रारम्भमे बेहोशी और अस्वस्थताका एक और

दौरा औरंगजेबको हो गया, इधर कुछ समयमे ऐसे दौरे अधिक जल्दी जल्दी होने लगे थे। तब कुछ समयके लिए पुन उसका स्वास्थ्य सुधर-सा गया और वह सदैवके समान फिर अपना दरबार करने तथा राजकीय कार्यकी देखभाल करने लगा। किन्तु उसने अनुभव किया कि होनहार अब अधिक दूर न था। उधर आजमकी दिनोदिन बढनेवाली अधीरता और उसकी हिंसापूर्ण उच्चाकाक्षा किसी भी दिन मर्यादासे बाहर हो सकती थी, जिससे उस शाही पडावकी शान्ति तथा वहाँ एकत्र जन-समाजकी कुशलके लिए ये बहुत ही भयकारक हो गई। अतएव औरंगजेबने कामबख्शको बीजापुरका सूबेदार नियुक्त कर, एक बडी सेनाके साथ उसे ९ फरवरीके दिन अपने प्रान्तके लिए रवाना किया। चार दिन बाद १३ फरवरीको उसने मुहम्मद आजमको मालवाका सूबेदार बनाकर मालवा जानेके लिए उसे भी वहाँसे विदा कर दिया, किन्तु यह चालाक शाहजादा जानता था कि उसके पिताकी मृत्यु अब निकट ही थी एव वह बहुत ही धीरे-धीरे चल रहा था और हर दूसरे दिन विश्राम भी करता जाता था।

अपने पाससे अपने सब बेटोको बिदा कर देनेके चार दिन बाद ही उस थके बूढे जर्जरित सम्राट्को तेज बुखार हो गया, फिर भी तीन दिन तक हठ कर वह बराबर दरबारमे आ औरोंके साथ ही यथा समय दिनमे पाच बार नमाज पढता रहा। इन दिनोमे वह भावी अनिष्ट-सूचक निम्न लिखित दो पंक्तिया प्राय दुहराया करता था —

"प्रति पल, प्रति क्षण, श्वास श्वासमे,
यह नश्वर जगत होता परिवर्तित।"

अपने इन अन्तिम दिनोमे उसने अपने पुत्रो, आजम और कामबख्शके नाम बहुत ही करुणापूर्ण दो पत्र लिखवाए, जिनके अनुवाद आगे परिशिष्टमे दिए हैं। इनमे उसने सासारिक वस्तुओकी असारताकी ओर निर्देश कर आपसमे भ्रातृस्नेह बढाने तथा जीवनमे शान्ति और सयम प्राप्त करनेके लिए विशेष आग्रह किया।

शुक्रवार, २० फरवरी, १७०७के प्रात कालमे औरंगजेब अपने शयनागारसे निकला, उसने सुबहकी नमाज पढी और तब हाथमे माला लेकर जप करने तथा इस्लाम धर्मके मुख्य मन्त्रोको—ईश्वर एक है और मुहम्मद ही उसके एकमात्र सच्चे पैगम्बर हैं—वह दुहराने लगा। धीरे धीरे उसपर बेहोशी छाने लगी, साँस रुक रुक कर चलने लगी, किन्तु

अपने शरीरकी इन स्वाभाविक दुर्बलताओपर भी उस दुर्दम आत्माका इतना पूर्ण आधिपत्य था कि आठ बजेके लगभग जब तक उसका शरीरान्त नही हो गया उसकी अगुलियाँ निरन्तर माला फेरती ही रही और उसके ओठ 'कलमा'का जाप करते रहे। उसकी बडी इच्छा थी कि मुसलमानोके लिए बहुत ही पवित्र दिन शुक्रवारको ही उसका शरीरान्त हो, और उस उदार परमात्माने अपने एक सच्चे भक्तकी इस प्रार्थनाको तो स्वीकार किया।

२२ फरवरीको मुहम्मद आजम लौटकर पडावमे पहुँचा, और अपने पिताकी मृत्युपर मातम मनाकर तथा अपनी बहिन ज़ीनत्-उन्निसा बेगम को सान्त्वना दे, उसने कुछ दूर तक अपने पिताके शवको कन्धा दिया और तब मुसलमान सन्त शेख ज़ैनुद्दीनकी समाधिकी चहार-दीवारीमे ही गाडे जानेके लिए उसे दौलताबादके पास खुल्दाबाद भेज दिया गया।

महान् मुगल सम्राटोमे एकको छोड कर दूसरे सबमे महान् इस मुगल शासकके अस्थि, आदि अवशेषोपर एक साधारण-सी सीधी-सादी कब्र बनी हुई है, वहा न तो नीचे कोई सगमरमरका चौतरा ही बना हुआ है और न उसपर कोई सुन्दर सुडौल गुम्बज ही है, हाँ! दिल्लीके बाहर बनी हुई उसीकी बहिन जहाँनाराकी कब्रके समान औरगजेबकी कब्रके ऊपर रखे गए बडे पत्थरमे खुदी हुई गहराईमे भी हरी-हरी दूब उगानेके लिए मिट्टी भरी हुई है।

परिशिष्ट

१ आजमके नाम औरगजेबका अन्तिम पत्र

"तुम्हे शुभ शान्ति प्राप्त हो!

"बुढापा आ गया है और दुर्बलता बहुत बढ गई है, मेरे अग प्रत्यग शक्तिहीन होते जा रहे हैं। मैं अकेला ही आया था और एकाकी ही जा रहा हूँ। मैं नही जानता कि मै कौन हूँ और अब तक क्या करता रहा हूँ। पूजा प्रार्थनामे बीते समयके अतिरिक्त जो भी दिन मैने यहाँ बिताए

हैं उनसे मुझे खेदके अतिरिक्त कुछ नही मिला। न मैंने साम्राज्य पर ही कोई (सच्चा) शासन किया और न मैं अपनी प्रजाका पालन ही कर पाया।

"ऐसा बहुमूल्य जीवन व्यर्थ ही बीत गया। मेरा स्वामी सदैव मेरे घरमे विद्यमान रहा है, किन्तु मेरी अधी आँखें उसके वैभवको नही देख सकती हैं। जीवन स्थायी नही होता है, गए बीते दिनोका कोई चिन्ह भी नहीं रह जाता है, और भविष्यसे कोई भी आशा नही की जा सकती है।

"मेरा ज्वर उतर गया है, और पीछे रह गए हैं केवल चमडी और यह ऊपरी भूसा। मेरा पुत्र कामबख्श, जो बीजापुर गया है, मेरे पास ही है। और तुम तो उससे भी अधिक निकट हो। मेरे पुत्रोमेसे प्यारा शाहआलम ही सबसे अधिक दूर है। उस परमात्माकी ही इच्छानुसार पौत्र मुहम्मद अजीम (बगालसे लौटकर) हिन्दुस्तानके पास तक आ पहुँचा है।

मेरे सारे सैनिक भी मेरे समान ही असहाय हतबुद्धि और घबराए हुए हैं। अपने प्रभुको छोड देनेके कारण ही मैं पारेके समान चचल और उद्विग्न हूँ। वे (सैनिक) यह नही सोचते कि हमारा स्वामि परमपिता (सदैव हमारे) साथ है। मैं अपने साथ (इस जगतमे) कुछ भी नही लाया था, और अब अपने पापोका भार मैं अपने साथ ले जा रहा हूँ। मै नही जानता हूँ कि मुझे क्या दण्ड मिलनेवाला है। यद्यपि मुझे उसकी उदारता और दयाकी पूरी पूरी आशा है, फिर भी अपने किए हुए कर्मोंके कारण ही यह चिन्ता मुझे नही छोडती है। जब मै अपने आपसे ही बिदा हो रहा हूँ तब दूसरा और कौन मेरे साथ रहेगा ?" (पद्य)

"हो कैसा भी बड़ा तूफान,
डाल रहा हूँ जलमे अपनी नौका मैं अनजान।

"यद्यपि वह परम पालक अपने दासोको बचाता ही रहेगा, फिर भी बाहरी दुनियाकी दृष्टिसे तो मेरे पुत्रोका यह कर्तव्य है कि उसके (ईश्वरके) जीव और मुसलमान व्यर्थ हो नही मारे जावें।

"मेरे पौत्र बहादुरको (अर्थात् बेदारबख्तको) मेरे अन्तिम आशीर्वाद पहुँचा देना। बिदाईके समय मैं उसे नही देख सका हूँ, उससे मिलने

को इच्छा रह गई। जैसा कि दिखाई देता है, बेगम दु खके मारे सतप्त है, किन्तु ईश्वर सबके हृदयोका स्वामी है। दृष्टि सकुचित हो जानेपर निराशाके अतिरिक्त कुछ भी हाथ नही लगता।

"विदा! विदा! अल्विदा!"[1]

२. कामबख्शके नाम औरगजेबका अतिम पत्र

"मेरे पुत्र, मेरे कलेजे (के समान जो मेरे दिलके निकट है)! यद्यपि अपने प्रभुत्व-कालमे मैंने ईश्वरेच्छाके प्रति आत्मसमर्पण करनेकी सलाह दी, और जहाँ तक भी सम्भव हो सका अपनी शक्तिसे भी परे तदर्थ प्रयत्न किया, किन्तु ईश्वरको यह मजूर नही था, और किसीने भी मेरी एक न सुनी। अब मैं मर रहा हूँ एव उस सम्बन्धमे मेरे कुछ भी कहनेसे कोई लाभ नही होगा। जो भी पाप और कुकर्म मैने किए है उनका भार मै अपने साथ ही ले जाऊँगा। कैसी विचित्र बात है कि मै (जगतमे) अकेला ही आया था और (अब) अपने साथ इतना (बडा) काफिला लिए वापस लौट रहा हूँ। जिस ओर भी मैं दृष्टि डालता हूँ, वहा उस ईश्वरके अतिरिक्त दूसरा कोई भी इस काफिलेका नायक नही देख पडता है। सेना तथा दलानुयायियोकी चिन्ताके मारे ही मेरा मस्तिष्क उदास हो गया है और इस अन्तिम समय भी उसीकी आशकाएँ मुझे सता रही है। यद्यपि ईश्वर अपने प्राणियोकी सुरक्षाका भार उठावेगा, किन्तु साथ ही मेरे पुत्रो और मुसलमानोका भी यह कर्तव्य है। जब मेरा शारीरिक बल भरपूर था, तब मैं यत्किंचित् भी उनकी सुरक्षा नही कर सका, और अब तो मै अपने आपकी भी देख-रेख नही कर सकता हूँ। मेरे अगोका हिलना-चलना भी बन्द हो गया है। जो सास निकल जाती है उसके वापस लौटनेकी भी कोई आशा नही रहती। ऐसी अवस्थामे सिवाय प्रार्थनाके और मैं कर ही क्या सकता हूँ? मेरी बीमारीके समय तुम्हारी माता उदयपुरीने (बेगमने) मेरी सेवा शुश्रूषा की, वह तो मेरे साथ (दूसरे लोकमे) चलनेको इच्छुक है। तुम्हे और तुम्हारे बच्चोको मैं

---

[1] ब्रिटिश म्यूजियमके हस्तलिखित ग्रथ स० एडीशनल २६,२४०से मेरे लिए अनूदित। रुक्कात०की लीथोपर छपी हुई प्रतिमे दिया गया उपर्युक्त पत्रका पाठातर अस्वीकार्य माना है।

ईश्वरके भरोसे छोडता हूँ। मैं तो कांप रहा हूँ। तुमसे मैं विदा लेता हूँ सासारिक लोग धोखा देते हैं (अक्षरश अर्थ होगा—गेहूँका नमूना दिखाकर वे जौ ही बेचते हैं), उनकी ईमानदारीपर विश्वास करके ही कोई काम न करो। सकेतो और लक्षणो द्वारा ही काम किया जाना चाहिए। दाराशिकोहने ठीक प्रवन्ध नही किया था, जिससे वह अपने ध्येय तक पहुँचनेमे असफल रहा। उसने अपने सैनिकोका वेतन पहिलेसे भी बहुत अधिक बढा दिया था, किन्तु जब आवश्यकता हुई तब उसके प्रति उनकी सेवाएँ दिनोदिन घटती ही गईं। इसी कारण वह दु खी था। अपनी शतरजीकी सीमाके भीतर ही पांव रखो।

"जो कुछ भी मुझे तुम्हे कहना था वह यहाँ बता दिया है। अब मैं विदा लेता हूँ। इस बातका पूरा पूरा ध्यान रखो कि किसान और प्रजा व्यर्थ ही बरबाद न हो, और मुसलमान न मारे जावें, अन्यथा इस सबका दण्ड मुझे भुगतना पडेगा।" (इण्डिया आफिसमे सगृहीत, हस्तलिखित ग्रथ स० १३४४, प० २६ अ)।

३ औरगजेबका अन्तिम वसीयतनामा

(इण्डिया आफिस लायब्रेरीमे सगृहीत, हस्तलिखित ग्रन्थ स० १३४४, प० ४९ ब। कहा जाता है कि औरगजेबके ही हाथका लिखा हुआ यह कागज उसकी मृत्यु शैय्याके तकियेके नीचे पडा मिला था।)

मै (अपने जीवन भर) असहाय था, और अब वैसा ही निस्सहाय मै यहासे विदा ले रहा हूँ। मेरे जिस किसी भी पुत्रको सम्राट् बननेका सौभाग्य प्राप्त हो उसे चाहिए कि यदि बीजापुर और हैदराबादके दो प्रान्त लेकर ही कामबख्श सन्तुष्ट हो जावे तो उसको वह नही सतावे। असदखासे अच्छा वजीर न हुआ है और न (आगे भी कभी) होगा। दक्षिणका दीवान दयानतखाँ अन्य शाही अधिकारियोसे बेहतर है। अपने जीवनकालमे साम्राज्यके बँटवारेका मैने जो प्रस्ताव किया था, उसे स्वीकार कर लेनेके लिए मुहम्मद आजमशाहसे स्वामिभक्तिपूर्ण आग्रहके साथ प्रार्थना की जावे, अगर वह उनके लिए तैयार हो जावे तो विभिन्न सेनाओमे कोई युद्ध नही होगे और न मनुष्योकी हत्या ही होगी। मेरे वशपरम्परागत सेवकोको न तो नोकरीसे अलग किया जावे और न

उनको सताया जावे। सिंहासनारूढ होनेवालेको दिल्ली और आगराके सूबोंमेंसे कौनसा भी एक सूबा लेना चाहिए। जो कोई भी आगरा सूबा लेनेको तैयार हो उसे पुराने साम्राज्यके चार सूबे—आगरा, मालवा, गुजरात और अजमेर तथा उनके साथ सम्बद्ध चकले भी—तथा दक्षिणके चार सूबे—खानदेश, बरार, औरंगाबाद और बीदर तथा उनके बन्दरगाह भी मिलेंगे। जो दिल्ली सूबा लेनेको सहमत होगा उसे पुराने साम्राज्यके ग्यारह सूबे—दिल्ली, पंजाब, काबुल, मुलतान, थत्ता, कश्मीर, बंगाल, उड़ीसा, बिहार, इलाहाबाद, और अवध मिलेंगे। (फ्रेज़र कृत 'नादिर-शाह', पृ० ३६-३७पर इस बँटवारेका दूसरा पाठान्तर दिया है, अर्विन कृत 'लेटर मुगल्स', १, पृ० ६ भी देखो।)

हामिदुद्दीन खान बहादुर कृत 'अहकाम-इ-आलमगीरी'में औरंग-जेबका कहा जानेवाला एक दूसरा वसीयतनामा दिया गया है। (इस ग्रन्थका मूल भाग तथा अनुवाद मैंने 'एनेकडोट्स आफ औरंगजेब' नामसे प्रकाशित किया है, देखो उनका अध्याय ८)। वह इस प्रकार है —

"मैं ईश्वरकी वन्दना करता हूँ। उसके जो सेवक (उसकी भक्तिमें लगकर) स्वयं पवित्र हो गए हैं, और जिनसे वह सन्तुष्ट है, उन्हें मैं आशीर्वाद देता हूँ।

मेरी अन्तिम वसीयत और मृत्यु-लेख (के रूपमें मेरे कुछ निर्देश यह) हैं —

(१) अन्यायमें डूबे हुए इस पापीकी (अर्थात् मेरी) ओरसे हसन-की—परमात्मा उन्हें शान्ति प्रदान करें—पवित्र कब्रको (वहाँ चढ़ाए गए कपड़ेसे) ढाक देना, क्योंकि पापके सागरमें डूबे हुओंके लिए दया और क्षमाके उस स्रोतका सहारा लेनेके अतिरिक्त उनकी रक्षाका दूसरा कोई उपाय नहीं है। इस महान् पुण्यात्मक कार्यको पूरा करनेके साधन मेरे पुत्र शाहजादे आलीजाहके (आजमके) पास हैं, वे उनसे प्राप्त करो।

(२) मेरी सी हुई टोपियोंकी कीमतसे प्राप्त आमदनीमेंसे बचे हुए चार रुपये और दो आने महालदार आलाबेगके पास जमा है। उससे लेकर वह रकम इस असहाय प्राणीका कफन मोल लेनेमें व्ययकी जावे। कुरान-नकल द्वारा कमाए गए तीन सौ पाँच रुपये मेरे व्यक्तिगत व्ययके लिए मेरे बटुएमें हैं। मेरी मृत्युके दिन उन्हें फकीरोंको बाँट देना। कुरान नकल

कर कमाए हुए धनको शिया सम्प्रदायवाले आदरणीय समझते हैं,[१] अतएव उसे मेरे कफन आदि अन्य आवश्यकीय वस्तुओपर व्यय न करना।

(३) अन्य आवश्यक वस्तुएँ शाहजादे आलीजाहके कमचारीसे ले लेना, क्योकि मेरे पुत्रोम वही मेरा निकटतम उत्तराधिकारी है, और (मुझे दफनाते समय) उचित या अनुचित (विधि)का सारा ही उत्तरदायित्व उसीपर है, यह वेवस व्यक्ति (अर्थात् औरगजेब) उनके लिए जवाबदेह नही है, क्योकि मुर्दोका तो सब-कुछ ही पीछेवालोको दयापर निर्भर रहता है।

(४) मच्चे मागसे वहककर दूर पथ-भ्रष्टोकी घाटीमे इस भटकनेवालेको खुले सिर ही गाड देना क्योकि जो कोई भी वरवाद पापी उस सम्राटो-के सम्राट्के (ईश्वरके) सामने खुले सिर पहुँचता है, वह अवश्य ही उसकी दयाका पात्र वन जाता है।

(५) मेरी अर्थीपरके कफनको गाजी नामक सफेद मोटे कपडेसे ढाकना। उसपर कोई तम्बू खडा नही किया जावे। गायको (के जुलूस) की सी नई रस्मे न करना। पैगम्बरके मौलाद समान कोई उत्सव भी तब नही मनाया जावे।

(६) साम्राज्यके शासनके (अर्थात् मेरे उत्तराधिकारीके लिए) यह उचित होगा कि इस लज्जाविहीन प्राणीके साथ जो बेचारे सेवक मरु भूमि और (दक्षिणके) उजाड जगलोमे मारे मारे फिरते रहे हैं, उनके प्रति दयापूण बर्ताव करे। यदि उन्होने प्रकट रूपसे कोई अपराध किए हो, तव भी दयालुता दिखा (उनके अपराधोकी) उपेक्षा कर उदारतापूवक उन्ह क्षमा ही प्रदान करना।

(७) मुतसद्दीके कामके लिए ईरानियोसे बढकर दूसरी किसी जातिके व्यक्ति नही होते हैं। सम्राट् हुमायूँके समयसे लेकर अब तक युद्धमे भी इस जातिके किसीने भी युद्ध-क्षेत्रसे मुँह नही मोडा है, उनके सुदृढ पाव कभी नही उखडे हैं। अपने स्वामीकी आज्ञाओका उल्लघन या उसके प्रति विश्वासघातका अपराध उनसे कभी नही हुआ है। किन्तु उन्होने

---

१ हस्तलिखित प्रति एन्-के पाठान्तरका यह भी अथ हो सकता ह कि "कुरानकी नक्लें कर प्राप्त किए गए धनका शिया सम्प्रदायवाले अवैध [प्रकारका धन] मानते ह"।

इस वातपर सदैव जोर दिया है कि उनके प्रति विशेष आदरके साथ निर्वाह होना सदैव कठिन ही रहा है। किसी तरह उनका समाधान कर बडी ही चतुराईके साथ तुम्ह उनके प्रति व्यवहार करना चाहिए।

(८) तूरानी लोग सदैवसे सैनिक ही रहे हैं। आक्रमण करने, धावा मारने, रातके समय छापा मारने और शत्रुको पकडनेम वे बडे ही चतुर होत हैं। युद्ध करते-करते वापस हटनेकी आज्ञा पाकर अर्थात् दूसरे शब्दोंम चढे हुए तीरको पीछा उतार लेनेमे भी कोई आशका, निराशा या लज्जा-की भावना उन्ह बिलकुल ही नही सताती है। (युद्धमे) अपने स्थानसे न हटकर अपना सिर तक कटवानेकी हिन्दुस्तानियाकी-सी घोर जडतासे वे सैकडो कोस दूर है। इस जातिके प्रति तुम्ह हर तरहकी कृपा दिखानी चाहिए, क्योकि कई एक अवसरोपर ये जैसी महत्त्वपूण आवश्यक सेवा कर सकते हैं वैसी दूसरे कोई नही कर सकते।

(९) वारहाके सैय्यद पूज्य हैं, एव उनके प्रति तुम्हारा बर्ताव कुरानकी इस आयातके अनुसार होना चाहिए, "(पैगम्बरके) निकट सम्बन्धियोको उनके अधिकारके अनुसार सब कुछ दो।" पुन उनका आदर करने तथा उनके प्रति कृपा दिखानेमे कभी ढिलाई न करो। पवित्र आययम लिखा है, "मैं कहता हूँ कि इसके लिए बदलेमे (मेरे) सम्ब-न्धियाके प्रति प्रेमके सिवाय मै तुमसे और कुछ नही चाहता", तदनुसार इस घरानेके प्रति स्नेह (मुहम्मद साहबकी) पैगम्बरीका उपहार-मात्र है एव उनके प्रति वह प्रदर्शित करनेम भूल न करो और उसका फल तुम्हे इस लोक तथा परलोक दोनोम मिलेगा। किन्तु वारहाके इन सैय्यदो के साथ अपने व्यवहारम तुम्हे पूरी-पूरी सावधानी बरतनी चाहिए। हृदयमे उनके प्रति पूरा प्रेम रखो, किन्तु प्रत्यक्ष रूपसे कभी उनको ऊँचा पद न दो। क्योकि एक बार शासनमे पूण शक्ति प्राप्त कर लेनेके बाद स्वय सम्राट् बननेकी इच्छा होने लगती है। यदि कभी तुमने यत्किंचित् भी उनके हाथमे शासन सौपा तो उसका परिणाम तुम्हारा अपना ही अपमान होगा।

(१०) जहा तक भी किसी प्रकार सम्भव हो एक साम्राज्यके शासक-को तो इधर-उधर घूमते रहनेसे कदापि घबराना नही चाहिए। किसी एक ही स्थानपर उसे बहुत काल तक नही ठहरना चाहिए। यद्यपि एक

स्थानपर ठहरनेसे उसे ऊपरी तौरपर विश्राम मिलेगा, किन्तु वास्तवमे उससे हज़ारों आपदाएँ और कष्ट उसके सिरपर आ पड़ेंगे।

(११) कभी अपने पुत्रोका विश्वास न करो, और न अपने जीवन कालमे ही उनके साथ घनिष्ठताका वर्ताव करो। क्योंकि यदि सम्राट् शाहजहाँने दाराशिकोहके साथ ऐसा वर्ताव नही किया होता तो उसका वह खेदजनक अन्त नही होता। सदैव इस कहावतको ध्यानमे रखो कि—"सम्राट्के शब्द सदैव निष्फल ही रहते हैं"।

(१२) साम्राज्यके समाचारोकी पूरी जानकारी रखना ही शासनका प्रधान आधार स्तम्भ है। एक क्षणकी असावधानीके फलस्वरूप अनेको वर्षो तक अपमान भुगतना पडता है। मेरी ही लापरवाहीसे वह नराधम शिवा निकल भागा, और (उसका परिणाम यह हुआ कि) मुझे अपने जीवनके अन्त तक (मराठोंके विरुद्ध) कडी मिहनत करनी पडी।

(सख्याओमे) बारह एक पवित्र सख्या है, अतएव मैंने भी बारह आदेशोंसे ही इसे समाप्त किया है। (पद्य)

यदि तुम इस (शिक्षाको) ग्रहण करोगे तो मैं तुम्हारी बुद्धिको प्यार करूँगा।

यदि तुमने उसकी अवहेलना की तो अफसोस! सद् अफसोस!!

●

अध्याय १७

उत्तरी भारतका विवरण

१. मारवाड़में तीस-वर्षीय युद्ध

जून, १६८१ ई०मे महाराणाके साथ सन्धि करके जब औरगजेब स्वय दक्षिण चला गया तब मेवाडके साथ हानेवाला युद्ध समाप्त हो गया, किन्तु मारवाडमे यह राजपूत-युद्ध आगे भी चलता ही रहा। राठौडोके राज्यके महत्त्वपूर्ण नगरो तथा सामरिक महत्त्वके स्थानोपर तब भी मुगल सेनाओका ही अधिकार था, और स्वामिभक्त राठौड विरोधी बने उनके विरुद्ध युद्ध चलाए जा रहे थे। इन विरोधी राठौडोने पहाडियो तथा मरु भूमिपर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। वहासे यदा-कदा मैदानोपर धावा कर व्यापारियोके काफिलो या अन्य यात्रियाके दलोके साथ लूटमार करते थे, और जिन मुगल चौकियोकी सुरक्षाका प्रबन्ध समुचित नही होता था उन्हे जीत लेते थे। उनके ऐसे आक्रमणोके कारण खेतोका जोतना-बोना या शाही सैनिकोके सरक्षणके बिना रास्तोपर यात्रा करना भी असम्भव हो गया था। कोई आश्चय नही कि मारवाडमे तब सदैव अकाल ही रहा, और राठौडोके ख्यातकारने लिखा कि उन वर्षोमे "अकाल और तलवारने मिलकर धरतीको पूरी तरह निर्जन कर दिया।"

लगातार युद्ध, स्थानोको जीतने तथा उनपर पुन अधिकार करते रहनेमे ही मारवाडकी एक पीढीका सारा समय गुज़र गया। महाराष्ट्रकी सैनिक परिस्थितिकी प्रतिक्रिया जोधपुरकी स्थितिपर अवश्य होती ही रहती थी, जिससे धीरे-धीरे यहां हालत सुधरती ही गई और उसके परिणाम-स्वरूप अन्तमे राठौड देशभक्ताको सफलता मिली तथा औरग-

जेवकी मृत्युके वाद तत्काल ही उनका राजा अपने वशपरम्परागत सिंहासनपर पुन आरूढ हो गया।

सन् १६८१से १७०७ ई० तकके इन २७ वर्षोंका मारवाडका इतिहास अलग-अलग विभागाम वँट जाता है। सन् १६८१से १६८७ ई० तक वहाँ मारवाडकी प्रजाकी तरफसे युद्ध चलता रहा, उनका राजा वालक था और उनका जातीय नेता दुर्गादास मारवाड छोडकर सुदूर महाराष्ट्रमें था। अपने-अपने अलग नेताओंके नेतृत्वमें राठौड राजपूत लडते ही रहे, उनपर कोई भी एक केन्द्रीय सत्ता नही थी। जहाँ कही भी हो सके वहाँ मुगला पर आक्रमण करनेके सिवाय शत्रुके विरुद्ध लडाईकी उनकी कोई एक सम्मिलित योजना नही थी। यदा कदा होनेवाले इन छोटे-छोटे युद्धोंम राठौडोकी वीरता तथा स्वामिभक्तिके कई एक अपूव उदाहरण सामने आए।

सन् १६८७मे जव दुर्गादास दक्षिणसे लौट आया और अजीतसिंह अपने अज्ञातवाससे प्रगट हुआ, तव इस युद्धका दूसरा दौर शुरू हुआ। तव पहिले तो राठौडोको उल्लेखनीय सफलता मिली। वूदीके हाडोंके साथ आ मिलनेपर उन्होने मुगलोको मारवाडके मैदानोंसे निकाल वाहर किया, मालपुरा और पुर-माण्डलपर सन् १६८७मे आक्रमण किया, तथा तीन वप वाद अजमेरके सूवेदारको भी पराजित किया और लूटमार करते हुए मेवात और दिल्लीके पश्चिम तक जा पहुँचे। तथापि वे अपने देशपर अपना आधिपत्य नही स्थापित कर सके। सन् १६८७मे जव अजीतसिंह और दुर्गादास इस स्वजातीय सेनाका नेतृत्व करने लगे थे, उसी वप औरगजेवकी ओरसे शुजातखा नामक एक वहुत ही सुयोग्य और साहसी व्यक्तिको जोधपुरका अधिकारी नियुक्त किया गया। अगले चौदह वप तक वह इस पदपर वना रहा और उस अरसेमे उसने मारवाडपर मुगलो का आधिपत्य वनाए रखा।

मारवाडका फौजदार शुजातखाँ गुजरातका सूवेदार भी था। अपने अनुयायी सैनिकोकी सख्या वह कदापि कम होने नही देता था और उसके घूमने-फिरनेमे वहुत ही तत्परता तथा फुर्ती थी। हर साल वह कमसे कम छ और कई वार आठ महीने भी मारवाडमे तथा वाकी रहे महीने गुजरातमे विताता था। अतएव जव कभी युद्धका मौका आ जाता तव वह राठौडोको सफलतापूवक रोक सकता था, किन्तु सन् १६८८मे उसने राठौडोंके साथ एक समझौता भी कर लिया था। राहपरसे गुजरनेवाले

व्यापारियोंके साथ राठौडोंके कोई छेड-छाड न करनेपर उनसे वसूल होनेवाली शाही चुगीका चौथा भाग राठौडोको दे दिया जाता था। यह तो एक प्रकारकी चौथ ही थी।

किन्तु ९ जुलाई, १७०१को शुजातखा मर गया, और तब उसके स्थानपर मारवाडकी फौजदारी शाहजादे मुहम्मद आजमको दी गई। आजमने पुन अजीतके साथ युद्ध प्रारम्भ कर दिया, और यो राजपूतोके स्वातन्त्र्य-युद्धका तीसरा दौर प्रारम्भ हुआ। दोनो ही पक्षोकी बहुत खून-खराबी तथा कई एक हारोके बाद अन्तमे मुगलोकी लोभपूर्ण नीति बिलकुल ही विफल हुई और सन् १७०७मे मारवाडके जातीय राजघरानेने उस राज्यपर पूर्ण अधिकार कर लिया।

मारवाडकी राजधानी तथा वहाके अन्य नगरोपर मुगलोका अधिकार हो जानेके बाद राठौडोने पहाडो तथा दुरूह कोनोमें आश्रय लिया। किन्तु उन खुले मैदानोपर तो तब भी राठौडोंके घूमनेवाले दलोके आक्रमण होते रहते थे। मारवाडपर आधिपत्य करनेवाली इस सेनाकी एक या दूसरी चौकीके पास दोनो विरोधी दलोकी मुठभेड होती रहती थी, जिनमे कभी एक ओर कभी दूसरे पक्षकी हार होती थी। कवि करणीदानने उस समयकी दशाका बहुत ही अच्छा वर्णन लिखा है, वह लिखता है—"सूर्यास्तसे दो घडी पहिले ही मरुमे सारे दरवाजे बन्द हो जाते थे। किलोपर मुसलमानोका राज्य था, किन्तु मैदानोमे तो अजीतकी ही आज्ञाका पालन होता था। सारे रास्ते अब बन्द थे।"

२. दुर्गादासका मारवाडमे लौट आना, १६८७–१६९८

महाराष्ट्रसे लौटकर सन् १६८७मे दुर्गादासके वापस मारवाड चले आनेपर वहाँ राठौडोंके उपद्रव फिर बहुत बढ गए, और उनके सौभाग्यसे इस समय उन्हे एक बहुत ही उपयोगी साथी भी मिल गया। बूँदीका शासक अनिरुद्धसिंह हाडा औरगजेबका एक स्वामिभक्त मनसबदार और सेनानायक था। उसने अपने प्रमुख सामन्त दुर्जनसाल हाडाका अपमान किया, तब अपने कुटुम्बियो और अनुयायी सैनिकोको साथ ले, क्रुद्ध दुर्जनसालने एकाएक बूँदीके किलेपर आक्रमण कर उसे जीत लिया। तब वह मारवाड चला आया और यहा राठौड नेता मुकुन्दसिंह चापा-

वंतकी वहिनसे विवाह किया। कोई एक हजार हाडा सवारोंके साथ उसके आ मिलनेसे राठौडोकी जातीय सेनाकी शक्ति बढ गई।

राठौडो और हाडोकी इस सम्मिलित सेनाने मुगलोकी अधिकाश चौकियोंके सैनिकोको या तो मार डाला या उन्हे वहाँसे खदेड दिया। तब उन्होने उत्तरमे शाही प्रदेशोपर एक साहसपूर्ण धावा किया और शाही राजधानी दिल्लीके पास तक जा धमके। वहासे लौटनेके बाद माण्डलके पास एक युद्धमे दुर्जनसाल खेत रहा।

सन् १६७० ई०मे दुर्गादासको एक उल्लेखनीय सफलता मिली। अजमेरके नए सूबेदार सफीखाँ मारवाडकी सीमापर ससैन्य जा डटा था, दुर्गादासने उसे वापस अजमेर तक खदेड दिया। मारवाडके जिन भागोपर तब भी मुगलोका अधिकार था, निरन्तर लूटमार कर वहा वह उपद्रव करता ही रहता था, जिससे वहाके रास्तोपर यात्रियोका आना-जाना भी आपत्पूर्ण हो गया था। ऐसी कठिन परिस्थिति उत्पन्न हो जानेपर शुजातखाको स्वय यह मामला हाथमे लेना पडा। उसने बडी ही चतुराई से कई एक राजपूत मुखियाओ, ठाकुरो और पट्टावतोको अपने पक्षमे कर उन्हे शाही सेवा करनेके लिए प्रोत्साहित किया।

सन् १६८१मे अकबरके भाग जानेके समयसे ही राठौडोने उसकी पुत्री सफियत् उन्निसाको आश्रय दिया था, उसे वापस अपने पास ले आनेके लिए औरगजेब तबमे ही बहुत उत्सुक था। तदर्थ सन् १६९२मे राठौडोसे बातचीत की गई, किन्तु तब वह विफल हो रही। दो वर्ष बाद पुन यह बात छेडी गई और इस बार यह मामला सुयोग्य चतुर शुजातखाको सौंपा गया। अहमदाबादसे ६० मील उत्तर पश्चिममे स्थित पाटण के नागर ब्राह्मण फारसी भाषामे इतिहास-लेखक ईश्वरदासको यह काम सौंपा जो पहिले जोधपुरमे मालगुजारी वसूल करनेवाला अमीन रह चुका था।

ईश्वरदासके कई बार दुर्गादासके पास जानेके बाद अन्तमे अपने महाराजा तथा अपनी ओरसे औरगजेबके साथ समझौता करनेको दुर्गादास तैयार हो गया, और उसने शाहजादीको वापस औरगजेबको लौटा दिया। ईश्वरदास शाहजादीको शाही दरबारम ले आया।

अकबरका पुत्र बुलन्दअख्तर अब भी राठौडोंके ही पास था, एव अब उसे वापस लानेके लिए प्रयत्न प्रारम्भ हुए। किन्तु इस बार दुर्गादासने

अजीतसिंहको जोधपुर वापस दिए जानेकी मांग की, जिससे इस मामलेके तय होनेमें दो वर्ष लग गए।

सन् १६९८मे औरगजेब भीमाके तटपर इस्लामपुरीमे था, बुलन्द-अख्तरको साथ लेकर दुर्गादास शाही पडावमे वहाँ पहुँचा। जन्मकालसे ही उस बेचारे शाहजादेका सारा जीवन अक्खड राजपूत किसानोमे बीता था, उसने न तो कभी कोई नगर देखा था और न कोई राजदरबार ही; किसी सुसस्कृत आदमीसे बात करनेका भी उसे मौका नही मिला था। साफ सुथरी आदरपूर्ण हिन्दुस्तानी भी वह नही बोल सकता था। यह देखकर कि सम्राट्का यह पौत्र केवल राजस्थानी बोली ही बोल सकता था, स्वय सम्राट्को बहुत ही धक्का पहुँचा, परन्तु उसके दरबारी तो मनोरजित हुए। किसी बडे सुसभ्य नगरमे एकाएक पहुँच जानेवाले देहाती युवकके समान बुलन्दअख्तर भी बहुत ही भयभीत-सा हो गया। पुन उन प्रारम्भिक दिनोके उसके राजपूत साथियोने उसके दिलमे यह बात कूट-कूट कर भर दी थी कि औरगजेब एक प्रकारका दानव है जो बुलन्द-अख्तरके पिता शाहजादे अकबर तथा उसके कुटुम्बियोका कट्टर शत्रु है। अब उसने देखा कि उसके बाल्यकालके उन सरक्षको तथा कौमार्यके उन साथियोसे दूर किया जाकर वह उसी भयप्रद औरगजेबको सौंप दिया गया था। ऐसी हालतमे मुँह न खोलकर गूगा बना रहना ही उसे सबसे ठीक जान पडा। उसे धीरे धीरे पढाया जाकर सुसस्कृत बनाया गया, जिससे आगे चलकर सम्राट्के साथ रह कर शाही मोहर सभालनेका काम भी उसे सौंपा गया। दुर्गादासको पुरस्कार-स्वरूप तीन हजारीका मनसब देकर पाटणका फौजदार बनाया गया।

३. अजीत और दुर्गादास, १७०१-१७०७

दुर्गादासके साथ यह समझौता मई, १६९८मे हो गया था, किन्तु सन् १७०१-२मे विवश होकर उसने दूसरी बार पुन शाहजादेके विरुद्ध विद्रोह किया। सच बात यह थी कि इस समझौतेके बाद भी, अजीत और दुर्गा-दास, दोनोके दिलोमे मुगल शासकोके प्रति पूर्ण अविश्वास बना रहा जिससे वे सशक शाही दरबारसे दूर ही रहे।

साम्राज्यका विद्रोही बनकर जब दुर्गादास पुन मारवाडमे पहुँचा,

तब सन् १७०२ ई०मे खुले-आम विद्रोही बनकर अजीतसिंह भी उससे जा मिला और मुगलोपर कुछ आक्रमण भी किए। किन्तु मिलकर भी वे दोना इस बार कुछ भी न कर सके। मारवाडकी आर्थिक हालत पूरी तरह विगड चुकी थी, पूरे पच्चीस वर्ष तक निरन्तर छापा-मार युद्ध करते करते राठौड भी बहुत थक गए थे। अब अजीत और दुर्गादासमे भी अनबन हो गई, जिससे तो मारवाडकी परिस्थिति और भी बिगड गई। औरगजेबने इस सबमे लाभ उठाया। दूसरोकी सलाह सुननेका अजीतको धीरज न था, वह बहुत ही उद्धत स्वभावका था। मारवाडके मन्त्रियो एव प्रमुख अधिकारियोपर दुर्गादासका जो प्रभाव था और राठौडामे दुर्गादास जितना लोक-प्रिय था उसे देखकर अजीतका बहुत ही ईर्ष्या होती थी। ऐसे समय जब सारी परिस्थिति ही औरगजेबके विरुद्ध होती जा रही थी, तब राठौड नेताओंके इस आपसी विरोधसे औरगजेबको बहुत सहायता मिली और अगले पाच वर्षों तक उसने अजीतको उसके राज्य तथा राजधानीसे बाहर ही रखा।

सब ओर बढते हुए अपने शत्रु-दलको देख औरगजेबने अन्तमे अपनी विवशताको स्वीकार कर सन् १७०४मे अजीतको मेडताकी जागीर दी और या उससे एक प्रकारकी सधि कर ली। बिना किसी लाभवाली अपनी उस स्वतन्त्रताको बनाए रखना कठिन देखकर नवम्बर, १७०५मे दुर्गादास ने भी शाहजादे आज़मके द्वारा औरगजेबकी अधीनता जब पुन स्वीकार कर ली, तब उसका पुराना मनसब तथा गुजरातमे पाटणकी वह फौजदारी उसे वापस मिल गए।

औरगजेबके शासन-कालके अतिम वर्ष सन् १७ ६मे मराठोंने गुज रातपर आक्रमण कर रतनपुरमे मुगलोको बुरी तरहसे पराजित किया था। तब तीसरी बार विद्रोही बनकर अजीतने पुन सिर उठाया। दुर्गा दास भी शाही पडावसे फिर भाग खडा हुआ, और अजीतके साथ सम्पर्क स्थापित कर थैराड तथा अन्य स्थानोमे विद्रोह करवाने लगा। किन्तु इस समय शाहज़ादा बेदारबख्त गुजरातका सूबेदार था एव उसने दुर्गा दासके विरुद्ध सेना भेजी, तब दुर्गादास भागकर सूरतमे दक्षिणमे कोलि योंके जगलोवाले पहाडी देशम जा पहुँचा। इधर कुछ समयसे अजीतसिंह भी विद्रोह कर रहा था। नागोरका मुहकमसिंह औरगजेबके पक्षमे था, एव दुनाडामे मुहकमसिंहके साथ अजीतका युद्ध हुआ, जिसमे विजयी

होनेपर अजीतकी प्रतिष्ठा और शक्ति बढ गई। इसी समय अहमदनगरमे औरगजेबके मरनेके समाचार मारवाड पहुँचे, और तब ७ मार्च, १७०७को घोडेपर सवार होकर अजीतने जोधपुरकी राह पकडी और उस नगरके नायब फौजदार जाफरकुलीको वहाँसे निकाल बाहर किया तथा अपने पिताकी राजधानीपर अजीतने अधिकार कर लिया। मुहकर्मसिंहने मेडता भी खाली कर दिया और घायल हो नागोरको भाग गया। सोजत और पालीको भी अजीतने जीत लिया। गगा-जल और तुलसी-दलसे जोधपुरके किलेको शुद्ध किया गया। दुर्गादासके जीवनका ध्येय यो सफलता-पूर्ण पूरा हुआ।

४ आगराके पास जाटोंके उपद्रव

अपनी मृत्यु पर्यन्त चलनेवाले जिन अनन्त युद्धोम औरगजेब सन् १६७९ ई०से उलझ गया था, उनका धीरे-धीरे उत्तरी भारतकी राजनैतिक परिस्थितिपर भी प्रभाव पडने लगा। दक्षिणी युद्धोमे होनेवाली क्षतिके कारण वहा धन तथा सैनिकोका निरन्तर अभाव ही बना रहता था, जिसकी पूर्तिके लिए कम-ज्यादा द्रव्य और युवा सैनिक उत्तरी भारतसे प्रति वप वहाँ भेजे जाते थे। वपपर वर्ष बीतते गए, और तब भी न तो सम्राट् ही अपनी राजधानीको लौटा और न कोई शाहजादा ही वापस वहाँ आया। नर्मदासे उत्तरके सारे ही पुराने सुसमृद्ध सूबे बहुत ही साधारण योग्यतावाले अमीरोको सौपे गए थे और उनके साथ सेना भी बहुत ही थोडी थी। इसके साथ ही व्यापारियोके मालसे लदे हुए, साम्राज्यकी आमदनीका रुपया, सेनाके लिए अत्यावश्यक युद्ध-सामग्री, और अमीरोके कुटुम्बो तथा माल-असबाबको लेकर सुदूर दक्षिणको जानेवाले लम्बे-लम्बे काफिले उत्तरी भारतके रास्तोपरसे निरन्तर गुजरते रहते थे और उनकी सुरक्षाके लिए आवश्यक सैनिक भी उनके साथ नही होते थे, जिससे राहम पडनेवाली लुटेरा जातियोको उनपर आक्रमण करनेका बहुत ही लोभपूर्ण मौका मिल जाता था। दिल्लीसे आगरा और तब धौलपुर तथा आगे मालवामे होकर दक्षिणको जानेवाली शाही सडक जाटोंके ही प्रदेशमे होकर गुजरती थी। इन वीर सशक्त मेहनती जाटोको लूटमार न करने देनेके लिए शक्तिशाली सेनाके आक्रमणका डर ही एकमात्र उपाय था।

औरगज़ेबके दक्षिणपर चढाई कर देनेसे उत्तरी भारतमे जाटोको जो मौका मिला, उससे सन् १६८५मे राजाराम तथा रामचेहरा नामक दो नए जाट नेताओने पूरा लाभ उठाया। सनसनी और सोगरके ये जमीदार पहिले तो अपने स्वजातियोको एकत्रित कर उन्हे सैनिक सगठन तथा आमने-सामनेके युद्धोकी शिक्षा देते रहे। प्रत्येक जाट किसानको लाठी और तलवार चलाना पहिले ही आता था, अब उन्हे सैनिक दलोमे सगठित कर अपने ऊपरी अधिकारियोकी आज्ञा माननेकी शिक्षा दी गई, जिससे उन्हे बन्दूकें देते ही वह जाट सेना तैयार हो जानेवाली थी। सडक-रास्तोसे बहुत दूर जगलोमे उन्होने कई एक छोटी छोटी गढिया बना ली थी, अपने इन सैनिक अड्डोसे निकलकर जाट बाहर लूटमार करते थे, हार जानेपर उनके मुखिया यही आश्रय लेते थे और उनकी लूटका माल भी यही जमा किया जाता था। इन गढियोके चारो ओर उन्होंने मिट्टीकी मोटी मोटी दीवालें बनाकर उन्हे बहुत सुदृढ बना लिया था क्योकि इन दीवालोपर गोला-बारीका भी कोई असर नही हो पाता था। तब वे शाही सडकपर धावे करने लगे और आगराके बाहरी उप नगरो तक लूटमार भी मचाई।

आगराका सूबेदार सफीखा राजारामके इन उपद्रवोको दबा नही सका। जाटोके दलोने राहगीरोका सडकपर आना जाना भी बन्द कर दिया और इस जिलेके कई गाव भी उन्होने लूटे। कुछ ही दिनो बाद धौलपुरके पास सुप्रसिद्ध तूरानी सेनानायक अगरखांपर आक्रमण कर राजारामने उसे मार डाला। अगरखां इस समय बीजापुरके पास पडे शाही पडावसे चलकर काबुल जा रहा था। राजारामकी इस धृष्टतापूर्ण सफलतासे औरगजेब विचलित हुआ और दिसम्बर, १६८७मे उसने जाटोके विरुद्ध चलनेवाले युद्धका सचालन करनेके लिए वहाका प्रधान सेनापति बनाकर शाहजादे बेदारबख्तको भेजा।

किन्तु शाहजादेके पहुँचनेसे पहिले ही उस जाट नायकने कई एक अत्याचार कर डाले। पजाबकी सूबेदारी सभालनेके लिए जानेवाले हैदराबादके मीर इब्राहीमपर, जो अब महाबतखां कहलाने लगा था, सन् १६८८के प्रारम्भमे उसने आक्रमण किया। इसके कुछ ही समय बाद उसने सिकन्दरामे बने हुए अकबरके मकबरेको लूटा। उसे तोड-फोड कर

वहाँके कालीन, सोने चादीके बरतन तथा कन्दीलें, आदि सब कुछ उठा ले गए।[1]

वहाँ पहुँचते ही वेशरबख्त बडी ही तत्परताके साथ मुगल सेनाका सचालन करने लगा। उधर इस प्रदेशमे दो विभिन्न राजपूत जातियोमे चलनेवाले आपसी युद्धमे सम्मिलित हो जानेसे विरोधी दलवालोंने राजारामको ४ जुलाई, १६८८के दिन गोलीसे मार दिया।

आम्बेर (जयपुर)के नए राजा विपनसिंह कछवाहको मथुराका फौजदार बनाकर औरगजेबने उसे जाटोंके इस उपद्रवको जडसे उखाड फेंको तथा तब सनसनीके परगनेको अपनी जागीरमे सम्मिलित कर लेनेका विशेष कार्य सौंपा था। किन्तु जाट-प्रदेशके उन दुस्तर जगलोमे पानी और खाद्य सामग्रीके अभावके कारण आक्रमणकारी सेनाको वहा अनेक कष्टोका सामना करना पडता था। तथापि सनसनीका घेरा डालनेवाले दृढतापूर्वक वहाँ ही डटे रहे। जनवरी, १६९०मे एक सुरगके ठीक तरहसे चल जानेसे उस किलेकी दीवाल टूट गई, जहाँपर मुगल सेनाने आक्रमण किया। तीन घण्टो तक बराबर डटकर सामना करनेके बाद जाटोकी पराजय हुई और किलेपर मुगलोका अधिकार हो गया। इस युद्धमे जाटोंके कोई १५०० सैनिक मारे गए और शाही पक्षके भी २०० मुगल तथा ७०० राजपूत घायल हुए या खेत रहे। अगले वर्ष २१ मई १६८१को एकाएक आक्रमण कर राजा विपनसिंहने जाटाके दूसरे सुदृढ किले सोगरको भी जीत लिया।

मुगलोकी इन सारी चढाइयोका परिणाम यह हुआ कि जाटोका नया नेता ऐसे अज्ञात कोनो और दुरूह स्थानोमे जा घुसा जिनका शाही सेनानायकोको पता तक न था। तब अगले कुछ वर्षों तक इस परगनेमे पूरी शान्ति रही। राजारामके भाई भज्जाका बेटा चूडामन ही अब जाटोका नया नेता था। सुसगठन करने और सुअवसरोसे पूरा-पूरा लाभ उठानेकी

---

१ ईश्वरदास, प० १३२ ब। मनुची लिखता है कि—"वहाँ लगे हुए काँसेके बडे दरवाजेको तोडकर वहा वे घुस पडे और तब लूटमार शुरू की। वहाँ जडे हुए बहुमूल्य रत्नो तथा सोने चाँदीके बरतन लूटे, और जो कुछ भी वे उठाकर नही ले जा सके उन्हें जला डाला। खोद खाद कर उन्होने अकबरकी हड्डियाको भी बाहर निकाला और क्रुद्ध हो आगमें डालकर उन्होंने उन्हें भी जला दिया।" (३, पृ० ३२०)।

अद्भुत चतुराई चूडामनमे थी, जिससे उसने एक राजघरानेकी स्थापना की जो अब तक भरतपुरपर राज्य करता रहा था। "उसने सैनिकोकी सख्या ही नही बढाई, परन्तु अपनी सेनाको अधिक शक्तिशाली बनानेके लिए उसने बन्दूकचियो और घुडसवारोके दल भी सगठित किए जिन्हे उसने कुछ ही दिनो बाद पुन पैदल सैनिक बना दिया। राहपरसे गुजरने वाले कई शाही मन्त्रियो और अधिकारियोको लूटनेके बाद अब वह प्रान्तोसे दक्षिण भेजे जानेवाले शाही खजाने तथा सम्राट्की खास वस्तुओको भी लूटने लगा।" किन्तु चूडामनकी शक्तिका पूर्ण उत्थान औरगजेबकी मृत्युके बाद ही हुआ। सन् १७०४के लगभग उसने सनसनीको पुन मुगलोके अधिकारसे छीन लिया। किन्तु आगराके सूबेदार मुख्तारखाने ९ अक्तूबर, १७०५के दिन फिर सनसनीपर मुगल आधिपत्य स्थापित किया।

५. पहाडसिंह गौड और उसके पुत्रोंके मालवामे उपद्रव; १६८५ ई०

पश्चिमी बुन्देलखण्डमे स्थित इन्दरखीका जमीदार पहाडसिंह गौड मालवामे शाहबाद धघेराका शाही फौजदार था। लालसिंह खीची चौहान पक्ष लेकर सन् १६८५के प्रारम्भमे उसने बूँदीके हाडा अनिरुद्धसिंहको हराया तथा उसका सारा पडाव और माल-असबाब उसने लूट लिया। तब पहाडसिंह मालवाके गाँवोमे लूटमार करने लगा। इस समय मालवा सूबेकी देखभाल राय मुलूकचन्द कर रहा था, एव उसने आक्रमण कर दिसम्बर, १६८६मे पहाडसिंहको मार डाला। किन्तु पहाडसिंहका पुत्र भगवन्त इस विद्रोहको चलाए गया। मार्च, १६८६मे भगवन्तको भी शाही अधिकारियोने मार डाला। तब भी यह विद्रोह कई वर्ष तक चलता गया। अन्तमे इन गौड विद्रोहियोने आत्मसमर्पण किया। सन् १६९२के बाद उनके पुन शाही सेनामे नियुक्त किए जानेका विवरण मिलता है।

६ बिहारमे गगाराम तथा मालवामे गोपालसिंह चन्द्रावतके विद्रोह

गगाराम नामक एक दरिद्री गुजराती नागर ब्राह्मण इलाहाबाद और बिहारमे स्थित खान-इ-जहा बहादुरकी जागीरोका दीवान था। गगाराम की अनुपस्थितिमे खानके दूसरे नौकरोने उसके विरुद्ध खानके कान भर

दिए थे। खानने गगारामको बुला भेजा। अपने जीवन और सम्मानकी अब गगारामको कोई आशा न रही एव वह विद्रोही हो गया। कुछ दिन तक इधर-उधर लूटमार करनेके बाद अन्तमे गगाराम मालवामे जा पहुँचा और अक्तूबर, १६८४म उसने सिरोजको लूटा। कुछ ही दिनों बाद वह उज्जैनमे मर गया।

मालवामे स्थित रामपुराकी अपनी जमीदारीको सँभालनेके लिए वहाँके जमीदार राव गोपालसिंह चन्द्रावतने अपने पुत्र रतनसिंहको रामपुरा भेज दिया था। वह दुष्ट युवक मुसलमान बन गया और औरगजेबका कृपापात्र बन अपनी वशपम्परागत उस जमीदारीको अपने नाम करवा लिया, जिसका नाम अब बदलकर इस्लामपुरा रखा गया था। जब इसकी सूचना गोपालसिंहको मिली तब बिना आज्ञा लिए ही शाही सेना छोडकर वह रामपुरा पहुँचा और जून, १७००म उसे अपने पुत्रके अधिकारसे छीन लेनेका प्रयत्न किया। परन्तु जब उसे सफलता नही मिली तब निराश होकर उसने औरगजेबके प्रति आत्मसमपण कर दिया। किन्तु जब उसकी आयका दूसरा कोई जरिया नहीं रह गया, तब सन् १७०६के प्रारम्भमे वह मराठोंके साथ जा मिला, और उसी वर्ष जब माच महीनेमे मराठोंने बडादाका लटा तब उनके साथ हा गापालसिंह भी गुजरात गया था।

७ बगालमे अग्रेजी व्यापार

अग्रेजोंने सन् १६१२मे अपनी पहली कोठी सूरतमे स्थापित की थी और व्यापारकी अपनी वस्तुएँ थल मागसे आगरा तथा दिल्ली भेजते थे और बदलेमे वहाकी वस्तुएँ मगवाते थे। सन् १६२० तथा बादमे पुन १६३२मे उन्होने आगरासे बिहार प्रान्तमे पटना तक व्यापार करनेका भी प्रयत्न किया, किन्तु सूरतसे वहा तक थल माग द्वारा विशेषतया शोरा जैसी बडे आकार-प्रकारकी वस्तुएँ भेजनेमे इतना अधिक व्यय हो जाता था कि यह आयोजन अतमे छोड देना पडा। गोलकुण्डा राज्यके बन्दरगाह मसलीपट्टममे भी अग्रेज व्यापारियोकी एक शाखा थी।

सन् १६३३मे अग्रेजोंने अपनी एक कोठी बालासोरमे तथा दूसरी कोठी कटकसे २५ मील दक्षिण-पश्चिममे स्थित हरिहरपुरम खोली। कुछ समय बाद सन् १६४०मे मद्रासके सेंट जार्ज किलेको बनाना प्रारम्भ किया।

विजयनगर राजघरानेके हिन्दू राजासे धरतीका कुछ भाग मोल लेकर वहां यह किला बनाया जा रहा था, यो अंग्रेजोने "भारतमे अपना सब प्रथम स्वतन्त्र केन्द्र स्थापित किया"। यह स्थान मुगल साम्राज्यकी सीमाओमे बाहर था। सन् १६५१मे अंग्रेजोने बगालमे कलकत्तासे २४ मील उत्तरमे गगाके किनारे हुगली स्थानपर अपना पहाला व्यापार केन्द्र स्थापित किया। पटनासे उत्तरमे सिंघिया या लालगजमे नावोम डालकर वे प्रधानतया शोरा लाते थे। रेशम और शक्कर भी मोल लेकर वे ले जाते थे। तब शाहजादा शुजा बगालका सूबेदार था, सन् १६५२म उसने अपनी ओरसे लिखकर एक निशान (शाहजादेका विशेष आदेश) उन्हे दे दिया था कि सब तरहकी चुगी और अन्य करोके बदले प्रति वप उनके तीन हजार रुपये देते रहनेपर अंग्रेजोको बगालमे व्यापार करने दिया जावे। यूरोपसे आने जानेवाले सारे ही जहाजोका माल कई वर्षों तक बालासोरमे ही उतारा-चढाया जाता रहा।

सन् १६५८मे इगलैण्डके अधिकारियोंने भारतमे सब अंग्रेजी कोठियोकी व्यवस्थाको सुसगठित किया। अंग्रेजी कम्पनीके ये सारी कोठिया सूरतम नियुक्त अध्यक्ष और उसकी परिषदके अधीन कर दी गइ, हुगली और मद्रासम अवश्य प्रधान एजन्सिया रहने दी गईं।

बगालमे अंग्रेजोका व्यापार सन् १६५८मे बहुत ही अच्छी तरह चल रहा था। कच्चा रेशम बहुतायतसे मिल जाता था, तरह-तरहके बहुत ही सुन्दर रेशमी कपडे मिलते थे, अच्छी किस्मका शोरा भी बहुत ही सस्ता था, उधर इगलैण्डसे भेजे गए सोने-चांदीको भारतीय बडी ही तत्परताके साथ मोल लेते थे।

सन् १६६१ई०मे अंग्रेजोकी इन भारतीय कोठियोकी शासन-व्यवस्थाम कुछ और फेरफार किए गए। मद्रासमे भी एक स्वतन्त्र अध्यक्षकी नियुक्ति की जाकर वहाके उस केन्द्रको सूरतकी ही बराबरीका पद दिया गया, तथा बगालमे नियुक्त अधिकारियोको अब मद्रासके अध्यक्षके अधीन कर दिया गया। बगालमे अंग्रेजोका व्यापार बडी ही तेजीसे बढता जा रहा था, सन् १६६८मे कम्पनीने बगालसे ३४,००० पाउण्ड कीमतका माल खरीदकर यूरप भेजा, सन् १६७५मे भेजे गए मालकी कीमत ८५,००० पाउण्ड तक हो गई, बढते-बढते सन् १६७७ ई०मे १,००,००० पाउण्ड कीमतका माल तथा सन् १६८०मे १,५०,००० पाउण्ड मूल्यका माल बगालसे बाहर भेजा गया। हुगली केन्द्रकी अधीनतामे सन् १६६८मे

ढाका तथा सन् १६७६मे मालदाकी नई कोठियाँ खोली गई। स्थानीय कारखानोसे वे बहुतसा माल मोल लेते थे, परन्तु वहा मोल लिए गए रेशमको रगाईको सुधारनेके लिए अग्रेजोने युरोपीय रगरेजोको बगाल भेजा। समुद्रके मुहानेसे लेकर हुगली तक गगामे जहाजोके आने-जानेकी ठीक-ठीक व्यवस्था करनेके लिए सन् १६६८मे अग्रेजोने बगाल नाविक-दलकी (पायलेट सर्विसकी) स्थापना की। बगालकी खाडीमेसे होता हुआ पहला अग्रेजी जहाज सन् १६९७मे गगामे ऊपर तक गया।

८. बगालके मुगल अधिकारियो और अग्रेज व्यापारियोमे अनबन

वगालके स्थानीय मुगल अधिकारी अग्रेजोसे नियम विरुद्ध बहुतसा रुपया वसूल करते थे, और उनके व्यापारमे बाधा भी डालते थे, जिससे उनमे अनबन बढती जा रही थी, होते-होते यह मामला तूल पकड गया। स्थानीय अधिकारी अग्रेज कम्पनीकी नावोका रोककर उनमे रखा हुआ सारा माल जब्त करते रहे। चुगी चुकानेसे छुटकारा पानेके लिए हेजेसने शायेस्ताखाको बहुत सा रुपया देनेका प्रस्ताव भी किया, किन्तु उससे कोई भी नतीजा नही निकला। अन्तमे अग्रेज व्यापारियोका धीरज छूट गया। भारतीय शासकोके भरोसे न रहकर अपनी शक्ति द्वारा ही अपनी रक्षा करनेको वे उद्यत हुए। भारतीय तटपर ही किसी अच्छे सुविधापूर्ण स्थान-को जीतकर वहा अपना स्वतत्र किला बनानेकी वे सोचने लगे, जिससे उनके व्यापारमे किसी भी प्रकारकी छेड-छाड या बाधा नही डाली जा सके। सन् १६८६मे जाकर यह युद्ध सचमुच छिड गया।

मुगल साम्राज्यके स्थानीय अधिकारियोंके विरुद्ध अग्रेज व्यापारियोकी ये तीन शिकायतें थी —

(१) शाहजादा शुजा जब बगालका सूबेदार था, तब केवल रु० ३,०००) प्रति वर्ष देते रहनेपर अग्रेज व्यापारियोको चुगी तथा अन्य करोंसे माफी दे दी गई थी तथा भविष्यमे चुगीकी दर, आदि न बढानेका भी तब वादा किया गया था। किन्तु अब शुजाके उस हुक्मके विरुद्ध, लाए हुए सारे मालपर चुगी वसूल की जा रही थी। अग्रेजोका यह भी दावा था कि १५ मार्च, १६८०को दिए गए औरगजेबके फरमानके अनु-सार बाहरसे लाए हुए मालपर सूरतमे ३½%के हिसाबसे सम्मिलित चुगी दे देनेके बाद सारे मुगल साम्राज्यमे उन्हे बिना किसी रोक-टोकके

व्यापार करनेका पूरा अधिकार था, और तब कही भी अन्यत्र उनसे कोई भी चुगी या कर वसूल नही किया जा सकता था।

(२) राहदारी, पेशकश और मुशीके मेहनतानेके नामसे स्थानीय अधिकारी रुपया वसूल करते थे, और फरमाइश कर प्रान्तीय सूबेदार जो माल मगवाता था उसका भी मूल्य नही चुकाया जाता था।

(३) बगालके सूबेदार शायेस्ताखाँ और शाहजादा अजीमुश्शान तथा अन्य उच्चाधिकारी वहाँसे गुजरनेवाले मालके बन्द पासलोको खोलकर उनमेसे अपनी पसन्दका माल निकाल लेते थे और अपनी इच्छानुसार उचितसे बहुत ही कम उनका मूल्य चुकाते थे। स्थानीय फौजदार भी कई बार ऐसी ही मनमानी करते थे। कुछ सूबेदार तो, जिनमे शाहजादे अजीमुश्शानका नाम विशेषरूपेण उल्लेखनीय था, यो बलपूर्वक कम कीमतमे माल लेकर उसे बाजारमे पूरी कीमतपर बेचकर रुपया कमाते थे। इस प्रथाको 'सौदा-इ-खास' कहते थे।

१० अप्रैल, १६६५को औरगजेबने आदेश दिया कि भविष्यमे बाहरसे लाए जानेवाले मालपर चुगी दो निश्चित दरोके अनुसार वसूल की जावेगी, मुसलमानोसे २½% और हिन्दुओसे ५%। हिन्दुओके समान यूरोपीयोपर भी प्रत्येक व्यक्तिकी गणनाके अनुसार जजिया कर लगाकर उसे वसूल करनेमे मुगल शासकोने कठिनाईका अनुभव किया, एव जजियाके बदलेमे आनेवाले उनके मालपर वसूल की जानेवाली चुगीकी दरको बढाकर ३½% कर देनेका प्रस्ताव मार्च, १६८०मे किया गया था।

बगालमे अग्रेजोने दो बातका दावा किया था (१) शुजा द्वारा सन् १६५२मे निश्चित कुल मिलाकर केवल रु० ३,०००) देकर ही लाए हुए सारे मालकी असल कीमतपरसे चुगी देनेसे छुटकारा पाना। (२) औरगजेबके सन् १६८०के फरमानके अनुसार सूरतके बन्दरगाहमे एक बार चुँगी चुका देनेके बाद भारतके अन्य किसी भी भागमे बिना कोई कर या चुँगी दिए, बेरोक-टोक व्यापार करना। किन्तु उनकी ये दोनो ही मागें बिलकुल सारहीन तथा निराधार थी, किसी भी प्रकार उनका समर्थन नही किया जा सकता था।

शुजा केवल एक प्रान्तीय सूबेदार था। अपनी सूबेदारीके समय यदि उसने किसी एक व्यापारी-वर्गके प्रति पक्षपात किया और थोडासा रुपया लेकर ही उन्हे विशेष सुविधाएँ दी, तो उसके बाद होनेवाले सूबेदारोके

लिए शुजाका वह निशान तब तक मान्य नही हो सकता था जब तक कि उसमे दी गई शर्तें सम्राट् द्वारा स्वीकृत होकर शाही फरमानके रूपमे नही जारी की जावें। औगरजेबके सन् १६८०के फरमानका जो अर्थ अग्रेजोने लगाया था, वह भी सर्वथा गलत था। सूरतमे उतारे गए मालपर चुगी देनेसे ही इस फरमानके आधारपर इगलैण्ड या चीनसे सूरत न होकर सीधे बगाल जानेवाले दूसरे मालपर भी चुगी न देनेकी छूटकी माग करना किसी भी प्रकारकी चतुराईपूर्ण दलीलसे भी न्याय-सगत प्रमाणित नही किया जा सकता, क्योंकि सूरत होकर नही जानेके कारण उसपर सूरतमे कोई भी चुंगी वसूल नही की जा सकती थी।

दूसरी दो शिकायतोमे अग्रेजोने जिन कुप्रथाओ और वसूलियोका उल्लेख किया था, उनका अन्त कर देनेके लिए औरगजेबने कई वर्ष पहिले ही आदेश दे दिए थे, और शाही आज्ञाओका उल्लघन करके ही अब तक वे जारी रखे गए थे।

९ औरगजेबके साथ बगालमे अग्रेजोंका युद्ध, १६८६–८९

स्थानीय फौजदारकी आज्ञाओका उल्लघन कर २८ अक्तूबर, १६८६ को तीन अग्रेज सिपाहियोने हुगलीके मुगल शहरके बाजारमे जा घुसनेका प्रयत्न किया, जिसमे वे घायल हुए और बादमे उन्हे कैद कर फौजदारके सम्मुख ले गए। कप्तान लेस्लीने उन्हे छुडानेका प्रयत्न किया परन्तु कुछ सैनिकोंके मारे जानेके बाद उसे असफल हो वापस लौटना पडा। किन्तु शीघ्र ही अग्रेजोकी छावनीसे सैनिक सहायता मिलनेपर वह पुन आगे बढा और फौजदारके मकान तथा उसके आगेके शहरके भागको लूटकर उन्हे जला डाला। उसी दिन सध्याके समय अग्रेजोके जहाज भी वहाँ तक जा पहुँचे और उन्होने वहाँ पडे हुए एक मुगल जहाजपर अधिकार कर लिया। फौजदार तो वेश बदलकर वहाँसे भाग गया।

हुगलीपर अग्रेजोके इस प्रकार आक्रमण करनेका विवरण जब शाये-स्ताखाने सुना तो उसने शान्ति भग करनेवाले अग्रेजोको दबानेका ही निश्चय किया। अपनी सारी सम्पत्ति लेकर २० दिसम्बरको अग्रेज हुगली-से चल दिए और सुतनतीमे आकर ठहरे जहाँ वर्तमान कलकत्ता नगर बसा हुआ है।

फरवरी, १६८७मे लडाई फिर छिड गई। मटिया बुर्जके पासवाले नमक-

के शाही गोदामोको उन्होने जला दिया और वर्तमान कलकत्तासे दक्षिण पूवमे आधुनिक 'गार्डेन रीच'के स्थानपर तब बने हुए थानाके क़िलेपर अग्रेजोने आक्रमण किया। अग्रेजोके जहाज गगामे आगे बढे और उन्होने हिजली टापूपर अधिकार कर लिया तथा वगालकी खाडीमे उपस्थित सारी जल-थल सेनाओको वहाँ एकत्र किया।

अग्रेजोको हिजलीसे मार भगानेके लिए १२,००० सैनिकोको लेकर अब्दुस्समदखा नामक शायेस्ताखाका एक अफसर मई, १६८७ आधा बीतते-बीतते वहां पहुँचा। ११ जूनको अग्रेजोने हिजलीका किला खाली कर दिया और अपनी सब तोपें तथा साथका सारा गोला-बारूद लेकर अपने झण्डे उडाते एव ढोल वजाते हुए वहाँसे चल दिए। १६ अगस्तको शायेस्ताखाने अग्रेजोको एक पत्र लिखा, जिसमे उनके इन पिछले उपद्रवो तथा हिंसापूण कार्योके लिए उसने उन्हे बहुत फटकारा, किन्तु साथ ही कलकत्तासे २० मील दक्षिणमे उलुबेरिया नामक स्थानपर अपना किला बनाने तथा हुगलीके साथ पुन व्यापार करनेकी उसने आज्ञा दे दी। अतएव अपने जहाज़ोके साथ कारनाक लौट आया और सितम्बर १६८७मे उसने सुतनतीमे पडाव किया।

अगले वप कप्तान हीथ इगलैण्डसे आया और कारनाकके स्थानपर वगालका एजेन्ट बना। वगालमे अग्रेजोकी कोठिया बन्द कर वहासे चले जानेका ही हीथने निश्चय किया। तब २९ नवम्बर, १६८८को उसने पुराने बालासोरके मुगल किलेपर हमला किया और उसके बाद नये बालासोरपर भी उसने अधिकार कर लिया। अन्तमे वगाल सम्बन्धी अपने सारे आयोजनाका छोडकर १७ फरवरी, १६८९को जहाजमे बैठकर वह मद्रास चला गया।

अग्रेजोके विरोधकी ये सारी बातें सुनकर औरगज़ेबने आज्ञा दी कि सारे अग्रेज तत्काल कैद कर लिए जावें, उनकी सब कोठियोपर अधिकार कर लिया जावे तथा उनके साथ न तो कोई व्यापार किया जावे और न किसी प्रकारका सम्पर्क ही रखे। परन्तु समुद्रपर तो अग्रेजोका ही पूर्ण प्रभुत्व था और मक्का जानेवाले जहाजोको वे रोक सकते थे। पुन उसके साथ चलनेवाले व्यापारके बन्द हो जानेसे साम्राज्यकी सायरकी आमदनी भी बहुत घट गई। अन्तमे फरवरी, १६९०मे पश्चिमी तटके अग्रेजो और मुगल साम्राज्यके बीच सन्धि हो गई। पहिलेके ही समान स्वतन्त्रतापूर्वक वगालमे भी व्यापार करनेकी उन्हे आज्ञा दे दी गई।

पुन एजेन्ट बनकर २४ अगस्त १६९०की कारनाक मद्राससे सुतनती पहुँचा। यों कलकत्ता नगरकी स्थापना हुई और तभीसे उत्तरी भारतमें अंग्रेजोंकी सत्ताका प्रारम्भ हुआ। १० फरवरी, १६९१को मुगल साम्राज्यके प्रधान वजीरने बंगालके दीवानके नाम एक शाही हस्ब-उल्-हुक्म लिख भेजा, जिसके अनुसार चुंगी और अन्य करोंके बदले प्रति वर्ष रु० ३,०००) देते रहनेपर उन्हें उस प्रान्तमें बिना किसी रोक टोकके व्यापार करते रहनेकी आज्ञा दी गई।

१०. पश्चिमी समुद्री तटपर मुगलोंके साथ अंग्रेजोंका युद्ध

किन्तु लन्दनमें इस अंग्रेजी कम्पनीका अध्यक्ष सर जोशिया चाइल्ड बहुत ही उग्र स्वभावका दृढचरित्रवाला व्यक्ति था। उसने दृढतापूर्ण स्वतन्त्र नीतिका ही अनुसरण करनेका निश्चय किया, और आवश्यकता होनेपर मुगल साम्राज्यसे बदला लेनेको वह तत्पर हो गया। इधर भारतमें स्थित सारी अंग्रेजी कोठियोंका प्रधान संचालक सर जान चाइल्ड बहुत ही शक्तिहीन और अयोग्य था। लन्दनसे प्राप्त आदेशोंके अनुसार मुगलोंकी पहुँचसे बाहर हो जानेके लिए वह २५ अप्रेल, १६८७को सूरतसे बम्बईके लिए रवाना हुआ। सूरतके मुगल फौजदारने इसका यही अर्थ लगाया कि अंग्रेज युद्धके लिए तैयारी कर रहे थे, अतएव उसने अंग्रेजोंकी कोठीके चारों ओर शाही सेना बैठा दी, जिससे सूरत कोठीकी परिषदके अध्यक्ष बेंजमिन हेरिस और उसके प्रमुख सहायक सेम्युअल एनस्ले वहाँसे बाहर नहीं निकल सकें।

अन्तमें जल-सेनाका एक जहाजी बेड़ा लेकर ९ अक्तूबर, १६८८को सर जान चाइल्ड सुवाली पहुँचा, और सूरतके फौजदारको अंग्रेजोंकी शिकायतोंकी एक सूची भेजकर तब तक हुए अंग्रेजोंके नुकसानका हर्जाना माँगा तथा अंग्रेजोंको दिए गए विशेष अधिकारोंकी पुष्टि तथा उनको बढ़ानेके लिए एक नया शाही फरमान उन्हें दिए जानेकी भी माँग की। सूरतकी कोठीमें उपस्थित सारे अंग्रेजों तथा उनके साथी भारतीय दला-लोंको कैद कर सूरतके फौजदारने उस कोठीके चारों ओर पहरा बैठा दिया तथा सर जान चाइल्डको पकड़ लानेके लिए सुवाली सेना भेजकर उसने अंग्रेजोंके साथ खुली लड़ाई छेड़ दी। सर जान चाइल्ड तो पकड़में नहीं आया। उलटे उसने सूरतके पाससे बहनेवाली नदीका मुहाना बन्द

कर दिया और जहाजो नेडेम समुद्री तटका चक्कर लगाकर मारे ही भारतीय जहाजोंपर उसने अधिकार कर लिया।

इसके जवाबमे मुगलोने सूरतमे पकडे गए सारे अग्रेज कैदियोके पैरोमे बेडियाँ डाल दी, उसी बुरी हालतमे उन अग्रेजोंने पूरे सोलह महीने (दिसम्बर, १६८८से अप्रेल, १६९० तक) बिताए। साथ ही मई, १६८९मे मुगल जल सेनाके नायक जजीराके सिद्दीने बम्बईपर आक्रमण किया और शाही सेनाने उस टापूपर उतरकर वहाँके बाहरी भागोंपर अधिकार कर लिया। उस टापूकी सुरक्षाके लिए वहाँ नियुक्त अग्रेज सैनिक दलको बम्बईके किलेमे आश्रय लेना पडा, और वहाँ निरन्तर बढते हुए मुसलमानोके सैनिक दलने उस किलेको घेर लिया। तब विवश होकर अग्रेज गवर्नर चाइल्डने १० दिसम्बर, १६८९ के दिन जो० वेल्डन और अब्राहम नेवाराको औरगजेबकी सेवामे भेजा और दया कर क्षमा प्रदान करनेके लिए प्रार्थना की। २५ दिसम्बर, १६८९के अपने शाही हुक्म द्वारा औरगजेबने अग्रेजोको क्षमा कर दिया। डेढ लाख रुपया जुर्माना देने तथा भारतीय जहाजोंसे लूटे गए सारे मालको लौटानेपर अग्रेजोको पुन पहिलेके समान भारतमे व्यापार करते रहनेकी आज्ञा मिल गई।

११. सत्रहवीं शताब्दीमे भारतीय सागरों के युरोपीय समुद्री डाकू

पन्द्रहवी शताब्दीमे वास्को द गामाके भारत पहुँचनेके साथ ही हिन्द महासागरमे भी युरोपीय समुद्री डाकुओंका प्रवेश हो गया था। सोलहवी और सत्रहवी शताब्दियोमे युरोपके सब ही देशो तथा सारे ही वर्गोके व्यापारी तथा साहसिक भारतीय सागरोमे एकत्र होने लगे तथा भारतीय व्यापारकी वृद्धिके साथ ही विभिन्न युरोपीय देशवालोकी समुद्री डकैती भी बढती ही गई।

सन् १६३५मे काबने तथा तीन वर्ष बाद सर विलियम कौटनने भारतीय जहाजोको लूटा। इन अग्रेजोकी लूटमारका नतीजा सूरतकी कोठीके उनके देशवासी निरपराध व्यापारियोको भुगतना पडा। अग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनीके ये कर्मचारी दो माह तक कैद रहे और हर्जानेके रूपमे रु० १,७०,०००) देनेपर ही वे छूट पाए।

सत्रहवी सदीके पिछले पचास वर्षोंमे अनगिनित समुद्री डाकू हिंद

महासागरमे आ पहुँचे। प्राय अपने एकाकी जहाज मे ही वे चक्कर काटते थे और किसी भी राष्ट्रके जहाजको लूटनेसे वे यत्किचित् भी नही हिचकते थे। उस समयके समुद्री डाकुओमे टीच, एव्होरो, किड, रावर्ट्स, इगलैण्ड और टयूके नाम विशेषरूपेण उल्लेखनीय है। इन सारे समुद्री डाकुओमे अग्रेजोकी सख्या ही अधिक थी। यही नही अन्य युरोपीय देशोके रहनेवाले समुद्री डाकू भी प्राय अपने-अपने जहाजोपर इगलैण्डका ही झण्डा उडाते थे। अतएव भारतीय अधिकारी यो ईमानदार व्यापारियो और ऐसे वदमाश डकैतोमे भेद नही कर पाते थे, जिससे उन डाकुओके इन उपद्रवोके लिए भी ईस्ट इण्डिया कम्पनीके कर्मचारियोको ही उत्तरदायी माना जाता था।

इन समुद्री डाकुओम सवसे प्रसिद्ध हेमरी ब्रिजमन था, जिसने अपना उपनाम एव्होरी रखा था। सितम्वर, १६९५मे उसने वहुमूल्य मालसे लदे हुए 'फतेह मुहम्मदी' नामक जहाजपर अधिकार कर लिया। यह जहाज सूरतके व्यपारियोमे सबसे प्रमुख अब्दुलगफूरका था। कुछ समय वाद उसने अरव जानेवाले मुगल जहाज 'गज इ-सवाई'को हथिया लिया, जिसपर भारतीय तीर्थ यात्री मक्का जाते थे और व्यापारके लिए वहुतसा भारतीय माल भी उसपर लाद कर वहाँ भेजा जाता था। मोखासे लौटते समय वम्बई और दमनके बीचमे एव्होरीने कुछ अन्य डकैत जहाजोको साथ लेकर 'गज इ-सवाई' पर आक्रमण किया। युरोपीयोकी गोला वारी वहुत ही अचूक एव घातक हुई। जहाजपर आग लग गई। तब डकैत उसपर सब ओरसे चढ गए। तीन दिन तक उन्होने सुविधापूर्वक उस जहाजको खूब लूटा। अपने लुटे हुए दुर्गतिपूर्ण जहाजको लेकर उसके नाविक १२ सितम्वरको सूरत पहुँचे।

उस जहाजके उन तीर्थ-यात्रियोने उनकी लूटमार तथा उनपर किए गए अत्याचारोका जब सविस्तार वर्णन किया, तब मुसलमानोकी इस दुर्गतिका हाल सुनकर सूरत निवासी क्रोधके मारे उवल पडे। इन अत्याचार-पीडितोंके अनुसार बम्बईसे सम्बद्ध अग्रेजोने ही यह आक्रमण किया था। सूरतका फौजदार इतिमादखाँ अग्रेजोका मित्र था। उसने स्वयको विचलित नही होने दिया और बुद्धिमत्तापूर्वक पूरी चतुराई की, जिससे स्थानीय अग्रेजोको इन मुसलमान धर्मान्धोका शिकार होनेसे उसने बचा लिया। किन्तु अग्रेजोका व्यापार तो बिलकुल वन्द हो गया।

सूरत मे अग्रेजोकी परिषद् का अध्यक्ष एनस्ले तथा अन्य सब अग्रेज

कैद कर लिए गए थे। कैदमे बैठे बैठे ही एनस्ले हमेशा औरगजेबको प्रार्थना-पत्र भेजता रहा, जिनमे उसने 'गज इ सवाई' पर किए गए इस आक्रमणमे अग्रेज कम्पनीके कर्मचारियोका कोई भी हाथ न होनेकी बात निश्चयपूर्वक कही, और निर्दोष होनेके कारण उन सबको कैदसे मुक्त किए जानेके लिए माग की। बम्बई का गवर्नर सर जान गायर भी बडे जोरोंसे लिखा पढी करने लगा। अपने देशवासियोंके यो कैद किए जानेका उसने तीव्र विरोध किया और इस मामलेमे न्याय करनेकी उसने प्रार्थना की।

१२ युरोपीय व्यापारियोके प्रति औरगज़ेबकी नीति

अपने शाही झण्डेवाले जहाज़के लूटे जाने तथा अपने स्वधर्मियोंके प्रति किए गए अत्याचारोको सुनकर औरगजेब बहुत ही क्रुद्ध हुआ। किन्तु उस जैसा चतुर व्यक्ति यो जल्दी ही विचलित होनेवाला नही था। सबसे अधिक वह चाहता था कि तीर्थ यात्रियोको लेकर मक्का जाने वाले जहाज़ोकी सुरक्षाके लिए युरोपीय युद्ध पोतोको उनके साथ भेजे जानेका समुचित प्रबन्ध करवा दे। युरोपीय व्यापारपर रोक लगानेमे भी उसका यही उद्देश्य था कि इस तरह युरोपीयोको दबाकर वह अपना काम कम खर्चम सफलतापूर्वक कर सके।

डच लोगोने प्रस्ताव किया कि बिना किसी तरहकी चुगी या कर दिए सारे साम्राज्यमे व्यापार करनेका एकाधिकार यदि उन्हे दिया जावे तो वे भारतीय सागरोसे सारे समुद्री डाकुओको मार भगावेंगे और साथ ही अरब जानेवाले तीर्थ यात्रियोकी सुरक्षाका भार भी वे उठा लेंगे। किन्तु औरगज़ेबने इस प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया। उधर एनस्लेने भी लिख भेजा था कि यदि मुगल साम्राज्य अग्रेजोको प्रति वर्ष चार लाख रुपये दे तो वे अरब सागरमेसे गुजरनेवाले भारतीय जहाज़ोकी सुरक्षाके लिए उनके साथ अपने युद्ध-पोत भेज देंगे या उनकी सुरक्षाकी जिम्मेदारी उठा लेंगे। अग्रेजो द्वारा मागे गए रुपयेकी रकमका घटानेके लिए औरगजेबने बहुत कहा-सुनी की। अन्तम एनस्लेने सुरक्षार्थ जहाज़ देनेके प्रतिज्ञा-पत्रपर हस्ताक्षर कर दिए और तब २७ जून, १६९६, को अग्रेज कैदी छोड दिए गए।

सन् १६९६मे अग्रेज अमीरोंके एक दलने 'एडवेंचर' नामक एक जहाज़ तैयार करवाकर उसे सुसज्जित किया। फरासीसियोंसे लडनेके साथ ही

हिन्द महासागरके सारे समुद्री डाकुओंको मार-भगाकर उनका नामो निशान मिटानेका काम भी इसी जहाजको सौंपा गया। विलियम किड इस जहाजका कप्तान था। १६९७के प्रारम्भमें कालिकट पहुँचकर किड स्वयं समुद्री डाकू बन बैठा और उसकी सफलतासे प्रोत्साहित होकर अन्य कई उपद्रवी अंग्रेज भी उसके दलमें आ मिले।

ईस्ट इण्डिया कम्पनीके कई जहाजोंपर अधिकार करनेके साथ ही २ फरवरी, १६९८को किडने मुगल साम्राज्यके प्रमुख अमीर मुखलिसखांके जहाज "केदा मरचण्ट" को भी हथिया लिया। १६९८के पिछले महीनोंमें शिवर्स नामक एक डच समुद्री डाकूने जिद्दा और सूरतके हसनखां नामक व्यापारीके एक अच्छे जहाजपर अधिकार कर लिया, जिसपर कोई १४ लाख रुपयेकी कीमतका माल लदा हुआ था।

सूरतके अंग्रेज व्यापारियोंका छूट जाना अब सम्भव नहीं था। २३ दिसम्बर, १६९८को सूरतके मुगल फौजदारने अंग्रेजोंकी सूरत कोठीको घेर लिया और एनस्लेको अन्तिम आदेश दिया कि औरंगजेबके आदेशानुसार यदि अंग्रेज शाही जहाजोंको समुद्री डाकुओंसे सुरक्षा करते रहनेका प्रतिज्ञा-पत्र नहीं दे सकें तो दस दिनके भीतर ही वे इस देशको छोड़कर चले जावें। डच और फरासीसियोंके साथ भी इसी तरहका बर्ताव किया गया। अगस्त, १६९८में औरंगजेबका आदेश सूरत पहुँचा कि समुद्री डकैतीसे होनेवाली हानिका उत्तरदायित्व अंग्रेज, डच और फरासीसी तीनोंपर ही माना जावेगा, एवं अब तककी हानिके हर्जानेके रूपमें तीनों ही राष्ट्रोंके व्यापारी मिलकर कुल १४ लाख रुपया दें।

अन्तमें समुद्री डाकुओंका दमन करनेके लिए अंग्रेज, डच और फरासीसी, तीनों होने साथ मिलकर कार्यवाही करना स्वीकार किया। भविष्यमें होनेवाले नुकसानका हरजाना भरनेका भार तीनों हीने मिलकर उठानेका वचन दिया तथा इसी आदेशके प्रतिज्ञा-पत्रोंपर भी उन्होंने हस्ताक्षर कर दिए। जब यह समझौता औरंगजेबके पास पहुँचा तब मुगल साम्राज्यमें युरोपीयोंके व्यापार करनेपर लगाई गई रुकावटोंको उसने दूर कर दिया, और सूरतके फौजदारको लिख भेजा कि इस मामलेको वह अपने ही ढंगसे तय कर डाले।

८ अप्रेल, १६९९को सूरतमें एक नई अंग्रेजी कम्पनीकी स्थापना की गई, जिसका अध्यक्ष सर निकोलस वेट बना। इस नई कम्पनीके हितार्थ इस मामलेको ठीक तरहसे तय करनेके लिए सर विलियम नारिसको

इगलैण्डके बादशाहका राजदूत बनाकर इगलैण्डसे मुगलशाही दरबारमे भेजा गया, किन्तु यह राजदूत इस कम्पनीके लिए कोई भी लाभदायक विशेषाधिकार नही प्राप्त कर सका। उधर औरगजेबने उससे यह माग की कि भारतीय सागरोंसे समुद्री डाकुओका नामनिशान मिटा देनेका वादा वह कर ले। किन्तु नारिस जानता था कि यह एक सर्वथा असम्भव कार्य था।

इसी समय वेटने षड्यन्त्र कर फरवरी, १७०१मे सर जान गायरको अमानतखां द्वारा सूरतमे कैद करवा दिया था। यदा-कदा मिलनेवाली कुछ स्वतन्त्रताके अतिरिक्त छ वर्ष तक वह यो कैदमे ही रखा गया।

२८ अगस्त, १७०३को सूरतके जहाजोको सूरतके पास ही समुद्री डाकुओने पकड लिया। इस घटनाके समाचार ३१ अगस्तको सूरत पहुँचे। सूरतके फौजदार इतवारखांने युरोपीय कम्पनियोंके सारे ही भारतीय दलालोको पकड लिया और पुरानी अग्रेजी कम्पनीके दलालोंसे तीन लाख रुपये बलपूर्वक वसूल किए, डच कम्पनीके दलालोंसे भी उसने और तीन लाख रुपये लिए। यह सारा विवरण सुनकर औरगजेबने इतवारखाकी कार्यवाहीकी निन्दा की, और फरवरी, १६९९मे दबाकर करवाए गए समझौतेको उसने रद कर दिया।

किन्तु वास्तवमे युरोपीयोंके लिए यहा किसी भी प्रकारकी शान्ति सम्भव नही थी। जुलाई, १७०४मे जो शाही आदेश प्राप्त हुए उनके अनुसार भी सर जान गायर और उसकी परिषद्के सब सदस्य कैद ही रहे, जहाँ उन्हे उपयुक्त सुविधाएँ और छूट अवश्य मिलती रहती थी। मक्कासे लौटनेवाले भारतीय तीर्थ-यात्रियोको वापस लानेवाले एक धन पूर्ण जहाजपर अधिकार कर डच लोगोने मुगल साम्राज्यसे बदला लिया। अन्तमे औरगजेबने साफ तौरपर अनुभव किया कि समुद्रपर कुछ भी कर सकना उसके लिए सर्वथा असम्भव था। अतएव अपनी प्रजाको मक्काकी तीर्थ-यात्रा कर सकनेका अवसर देनेके लिए युरोपीयोसे बिना किसी शर्तके समझौता करना अनिवार्य हो गया था। उसने नेतावतखाको आदेश दिया कि जिस किसी भी प्रकार हो सके डचो द्वारा कैद किए गए तीर्थ-यात्रियोको, जिनमे नूर उल्-हक तथा फज्ल-उल् इस्लाम नामक दो साधु भी थे, वह छुडावे। समुद्री डकैतियोंसे होनेवाले नुकसानका हरजाना भरने सम्बन्धी प्रतिज्ञा पत्र भविष्यमे युरोपियोसे लिखवानेकी मनाही भी औरगजेबने कर दी थी।

अध्याय १८

औरंगज़ेबके शासन-कालमें कुछ प्रान्त[1]

१. बंगाल : वहाँकी प्राकृतिक समृद्धि तथा मुगलों द्वारा स्थापित शांतिसे उसमें वृद्धि

मुगल साम्राज्यके सारे प्रान्तोंमे बंगाल ही ऐसा था जिसे प्रकृतिने भी सब तरहसे अनुगृहीत किया है। वहाँ इतनी अधिक वर्षा होती है कि कृत्रिम सिंचाईके लिए परिश्रम करना बिलकुल ही अनावश्यक हो जाता है। खेतोंसे प्राप्त धान्यके सिवाय यहाँकी अनगिनित मछलियोंसे भरपूर नदियों और तालाबोंसे तथा फलोंसे लदे हुए उपवनोंसे भी उस प्रान्तके निवासियोंको कई गुना अधिक खाद्य सामग्री प्राप्त होती है। वहाका तो केवल जल-वायु ही खराब है। इसी कारण औरंगजेब इस प्रान्तको "रोटीसे परिपूर्ण नरक" कहता था। ऐसे प्रदेशमे समृद्धि और आबादीकी वृद्धिके लिए वहाँ केवल शान्ति-स्थापनाकी ही आवश्यकता थी। सत्रहवीं शताब्दी भर मुगल साम्राज्यकी छत्रछायामें बंगालमें स्थायी रूपसे शान्ति बनी रही और वहाका शासन-प्रबन्ध भी ठीक तरह होता रहा।

ईसाकी सोलहवीं शताब्दीमे बंगालमें निरन्तर अराजकता और बरबादी बनी रही, प्रान्तका स्वतन्त्र राज्य पतनोन्मुख हो छिन्न भिन्न हो रहा था, और बंगाल विजयके लिए मुगलोंके युद्ध बहुत समय तक चलते रहे थे। जनता की दुर्दशा तब चरम सीमाको पहुँच गई थी, राजनैतिक अराजकता के कारण प्रान्तकी समृद्धि तथा संस्कृति दिनोदिन विनष्ट होती जा रही थी। पिछली पठान सल्तनतकी आन्तरिक अवनति तथा

---

१ भारतके प्रत्येक सूबेका औरंगजेबके राज्य कालका अलग-अलग इतिहास यहाँ देना न तो संभव है और न आवश्यक ही। जिन प्रान्तोंके मामले साम्राज्य की दृष्टिसे विशेष महत्त्वके रहे, इतिहासकार केवल उन्हींकी ओर कुछ ध्यान दे सकता है।

पतनके बाद अकबर द्वारा उसका जीता जाना प्रान्तके लिए बहुत ही हितकर प्रमाणित हुआ। किन्तु अकबरके राज्यकालमे बगालका शासन ठीक तरहसे सुसगठित नही किया जा सका था, एव वह विजेताओ द्वारा किए गए सशस्त्र सैनिक अधिकारके समान ही था। प्रान्तके पुराने स्वाधीन अफगान शासको और हिन्दू जमीदारोंसे नाम-मात्रके लिए बादशाहका आधिपत्य स्वीकार करवानेके अतिरिक्त वहा सूबेदार अधिक कुछ भी नही कर सका था। उनसे टाका वसूल करके ही अकबरके समयके सूबेदारोको सतोष करना पडता था। सूबेकी राजधानी तथा सैनिक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण समझे जानेवाले जिन नगरोमे मुगल फौजदार नियुक्त थे, उन सबके आसपासके जिलोमे ही वहाँकी जनताके साथ मुगलोका कुछ कुछ सीधा सम्बन्ध स्थापित हो सका था, प्रान्तमे अन्यत्र बगालकी जनता वहाँके अमीरो या जमीदारोके अधीन थी। विभिन्न जमीदारोंके अपने अपने स्वतन्त्र सैनिक दल थे। सिंहासनारूढ होनेके बाद जहाँगीरने इस्लामखाँको बगालका सूबेदार बनाया था। मई १६०८से लेकर ११ अगस्त, १६१३ तक वह बगालका सूबेदार रहा। इस्लामखाँ बहुत ही महत्त्वाकाक्षी, कमठ उत्साही अमीर था। बारम्बार चढाई कर उसने धीरे-धीरे बगालके स्वतन्त्र जमीदारोको दबा दिया और मैमनसिंह, सिलहट एव उडीसाम अफगान शासकोकी रही-सही शक्तिको भी मिटा दिया। तब बगालके सब ही भागोमे शाति तथा मुगल शासकोके साथ वहाँ की जनताका सीधा सम्बन्ध स्थापित किया। तदनन्तर कोई डेढ शताब्दी तक बगालम सवत्र बहुत-कुछ आन्तरिक शान्ति बनी रही, जिससे उस प्रान्तकी समृद्धि तथा आबादी पुन बढने लगी। वहाँका व्यापार बडी ही तेजीके साथ फैलने लगा, उद्योगधन्धे बढने लगे और वैष्णव पन्थियोने प्रान्तीय भाषामे महत्त्वपूर्ण साहित्यकी रचना कर उसकी बहुत उन्नति की। पूर्वी बगालके नदी किनारेवाले जिलोमे अराकानियो और बादमे उन्हींके साथी चटगाव के पुर्तगाली फिरगी समुद्री डाकुओका उपद्रव बहुत बढा, किन्तु औरगजेबके शासन-कालके प्रारम्भमे सन् १६६६मे ही शायेस्ताखाने उसका अत कर दिया था। सत्रहवी शताब्दीके उत्तरार्द्धमे अग्रेजो और डचोका व्यापार बगालमे दिनोदिन बढने लगा। वे निरन्तर भारतीय माल मोल लेते रहते थे और उनकी स्थानीय कोठियाँ भी व्यापारको बढावा देती थीं, जिससे प्रान्तम मालका उत्पादन और उसके साथ वहाकी समृद्धि भी दिनोदिन बढते ही गए।

२ औरंगजेबके राज्य-कालमें बंगालके सूबेदार

सन् १६६४में शायेस्ताखाँ पहली बार बंगालका सूबेदार नियुक्त हुआ था और तब वह चौदह वर्षों तक उसी पदपर बना रहा। अपनी इस बहुत ही दीर्घकालीन सूबेदारीमें उसने पहिले चटगाँवके समुद्री डाकुओंके अड्डोंको नष्ट कर बंगालकी नदियों तथा वहाँके समुद्री तटको उनके उपद्रवोंसे सुरक्षित कर दिया, तब फिरंगी समुद्री डाकुओंको अपने पक्षमें कर उन्हें ढाकाके आसपास बसा दिया। प्रान्तके आन्तरिक शासन-सम्बन्धी उसकी नीति भी बहुत ही धीमी, उदार तथा लाभदायक थी। मीरजुमलाकी मृत्युके बादके वर्षोंमें स्थानीय अधिकारी पहिलेमें माफ किए गए लगानवाली भूमिको जब्त करने लगे थे, शायेस्ताखाँने आते ही उनकी इस कार्यवाहीको बन्द कर दिया।

प्रति दिन उसका आम दरबार लगता था और वहाँ बड़ी ही तत्परताके साथ वह न्याय करता था तथा पीडितोंकी शिकायतें दूर करनेके लिए यत्न करता था। इसे वह अपना सबसे महत्त्वपूर्ण कर्तव्य मानता था। माल खरीदने और बेचनेकी उसने पूरी स्वतन्त्रता दे-दी। उसके पूर्वाधिकारीने दो कर लगाए थे, 'जकात'के नामसे व्यापारियों तथा यात्रियोंकी आमदनीका चालीसवाँ भाग करके रूपमें वसूल होता था, हर प्रकारके उद्योग धन्धेवाला तथा व्यापारियोंसे 'हासिल' नामसे एक और कर लिया जाता था, जिससे केवल शायेस्ताखाँकी निजी जागीरमें ही कोई १५ लाख रुपयोंकी आमदनी होती थी। शायेस्ताखाँने इन दोनों अवैधानिक करोंको छोड दिया। अपनी सैनिक शक्ति द्वारा उसने बंगालमें बहुत लम्बे समय तक शान्ति बनाए रखी, उस अरसेमें उसने अपनी राजधानी ढाकामें अनेक सुन्दर मकान बनाकर उसे सजाया तथा सारे प्रदेशमें स्थान-स्थानपर सरायें बनवाईं। पुराने शाही ढंगका वह एक उदार अमीर था। सन् १६८०से लेकर सन् १६८८ तक लगभग नौ वर्ष तक शायेस्ताखाँने दूसरी बार वहाँकी सूबेदारी की। इस कालकी सबसे महत्त्वपूर्ण घटना थी ईस्ट इण्डिया कम्पनीके साथ उसका युद्ध जिसका पहिले ही वर्णन किया जा चुका है। बंगालमें लोकप्रवाद है कि उसकी सूबेदारीके समय बंगालमें चावल एक रुपयेका आठ मन बिकता था।

सूबेदार बनकर इब्राहीमखाँ जून, १६८९में बंगाल पहुँचा। वह बूढ़ा आदमी नरम स्वभावका एकान्तप्रिय व्यक्ति था, उसे पुस्तकोंसे बहुत

प्रेम था। न तो वह दृढ प्रतिज्ञ ही था और न कडी मेहनत ही कर सकता था, एव उसने सारे मामलोमे ढील दे दी, जिससे अन्तमे सारी शासन-व्यवस्थाका अन्त हो गया और प्रत्येक व्यक्ति स्वेच्छाचारी हो गया। न्याय शासन वह स्वय करता था। लालच एव अस्थिरता उसमे नाम-मात्रको भी न थी। उसने खेती-बाडी तथा व्यापारकी बडी उन्नति की। बगाल पहुँचते ही सबसे पहिले उसने अग्रेजोके साथ सन्धि की, और उसने समझा बुझाकर पुन बगालमे बसनेके लिए उन्हे प्रेरित किया।

किन्तु १७वी शताब्दीके पिछले अर्द्धांशका बगाल एक पुस्तक प्रेमी शासकके लिए सर्वथा अनुपयुक्त स्थान था। इब्राहीमखाके ढीलेढाले नरम शासन तथा उसके आलसी युद्ध-विरत स्वभावसे उन प्रान्तके उपद्रवकारियोने पूरा लाभ उठाया। मेदिनीपुर जिलेके चटवा बर्दा स्थानके जमीदार शोभासिहने विद्रोह किया, और उडीसाके अफगानोके मुखिया रहीमखाके साथ मिलकर वह अपने पडोसी बधमान जिलेके बडे तहसीलदार राजा कृष्णरामकी जमीदारीको लूटने लगा। थोडीसी सेना लेकर कृष्णराम उनका सामना करनेको आगे बढा, परन्तु उसकी हार हुई और वह मारा गया। तब कृष्णरामकी पत्नी, उसकी पुनिया और उसकी सारी सम्पत्ति विद्रोहियोके हाथ पडी तथा बधमानके शहर पर उनका अधिकार हो गया। पश्चिमी बगालका फौजदार नूरुल्लाखाँ डरके मारे दरवाजे बन्द किए हुगलीके किलेमे ही घुसा बैठा रहा, एव विद्रोहियोने उस किलेको जा घेरा। तब एक रात वह बडी मुश्किलसे अपनी जान बचाकर उस किलेसे निकल भागा, परन्तु उसकी सारी सम्पत्ति तथा वह किला शोभासिहके हाथ लगे।

वहा विद्रोह आरम्भ होनेपर बगालमे रहनेवाले तीनो युरोपीय राष्टो के व्यापारियोने अपनी-अपनी सम्पत्तिकी रक्षाके लिए देशी सैनिक नौकर रख लिए थे, और कलकत्ता, चन्द्रनगर और चिनसुराकी अपनी-अपनी कोठियोके चारो ओर आवश्यक किले-बन्दी करनेके लिए भी उन्होने सूबेदारसे आज्ञा ले ली थी। अतएव जब बगालमे सब दूर उपद्रव और अराजकता फैली हुई थी, तब विदेशी व्यापारियोके इन किलोमे शान्ति बनी हुई थी और वहा सुरक्षाके साधन भी थे जिससे वहा शरण लेनेके लिए सब इच्छुक थे। डचोने हुगलीका किला जीतकर उसे वापस मुगलोको सौंप दिया।

अब शोभासिंह स्वयं तो अपने प्रमुख स्थान वर्धमानको लौट आया, किन्तु नदिया और मुर्शिदाबादके सुसमृद्ध नगरो पर अधिकार करनेके लिए उसने सेनानायक रहीमखांको ससैन्य उधर भेजा। वधमानमे राजा कृष्णरामकी पुत्रीने छुरा भोककर शोभासिहको मार डाला। तब विद्रोही सेनाने रहीमखांको अपना नेता चुना और अब रहीमशाहके नामसे उसका राज्याभिषेक हुआ। इब्राहीमखाँ अब भी ढाकामे निश्चेष्ट बैठा था, और इधर गगासे पश्चिमके सारे बगाल प्रदेशपर विद्रोहियोका अधिकार हो गया था। रहीमखाने अपनी सेना बढाकर १०,००० घुडसवारो और ६०,००० पैदलोको कर ली थी। उसने मुर्शिदाबाद, मालदा और राजमहलके धनपूण नगरोको लूटा।

बगालके इस विद्रोह तथा इब्राहीमखाकी अकर्मण्यताके पूरे समाचार सुनते ही औरगजेबने उसको बगालकी सूबेदारीसे अलग कर दिया और १६९७ ई० आधा बीतते बीतते अपने पौत्र शाहजादे अजीमुद्दशानको उसने उस पदपर नियुक्त किया। शाहजादा तब दक्षिणमे था। उसके बगाल पहुँचनेसे पहिले ही इब्राहीमखाके पुत्र जबरदस्तखाने, जो तब वर्धमानका फौजदार था, राजमहल और मालदापर पुन अधिकार कर लिया। उसके बाद जबरदस्तखाने भगवान-गोलामे विद्रोहियोके पडावपर हमला किया और दो दिनके युद्धके बाद मई, १६९७मे उसने रहीमखांको मुर्शिदाबाद और वधमानमेसे खदेडकर निकाल बाहर किया। तब रहीमखाने जगलोकी शरण ली।

नवम्बरमे शाहजादा वधमान पहुँचा और कई माह तक वहाँ ठहरा रहा। जबरदस्तखाके उस प्रान्तसे चले जानेके कारण अब विद्रोहियोने वहा फिर सिर उठाया और चारो ओर वे पुन उपद्रव मचाने लगे। हुगली और नदिया ज़िलोको लूटनेके बाद शाही सेनाका सामना करनेके लिए रहीमखा वधमानके पास पहुँचा। वहा एक भेंटके समय उसने विश्वासघात कर शाहज़ादेके दीवान ख्वाजा अनवरकी हत्या की और तब शाही सेनापर बडे ज़ोरसे आक्रमण किया, परन्तु इस युद्धमे वह स्वय मारा गया। अपने नेताके मारे जानेपर विद्रोही सेना तितर बितर हो गई।

अब सन् १७००में मुहम्मद हादी उर्फ कारतलबखांको मुर्शिदकुलीखाका खिताब देकर बगालका दीवान बनाया। नये दीवानके चतुराईपूर्ण सुप्रबन्धके कारण जल्दी ही बगाल बहुत ही सुसमृद्ध प्रान्त बन गया।

उसने बहुत ही सावधानीके साथ अपने कर्मचारियोको चुना। उनके द्वारा उसने धरतीकी पैदावार तथा चुंगीकी आमदनीमे वढ सकनेको पूरी-पूरी गुँजाइशका ठीक-ठीक पता लगाया। इनकी वसूलीका काम उसने अपने हाथमे लिया और जमीदार एव जागीरदार जो कुछ भी बीचमे ही गवन कर लेते थे उसको विलकुल बन्द कर दिया, जिससे शाही वार्षिक आय बहुत बढ गई।

मुर्शिदकुलीखाँ शाहजादे अजीमुश्शानको माल-सम्बन्धी मामलोमे किसी भी प्रकारका हस्तक्षेप नही करने देता था। एव दीवानकी हत्या करनेके लिए उस मूर्ख शाहजादेने षड्यन्त्र रचा, परन्तु मुर्शिदकुलीखाँकी युक्ति, बुद्धिमत्ता एव साहसके कारण वह विफल हुआ। भविष्यमे पुन ऐसे घातक फदोसे बचनेके लिए शाहजादा सूबेदारके निवास-स्थान ढाका को छोडकर मुर्शिदकुलीखाँ अपना माली दफ्तर मकसूदाबाद नामक अधिक केन्द्रीय गाँवमे ले गया, जिसका नाम उसने बदल दिया और अपने ही नामपर मुर्शिदाबाद रखा। आगे चलकर १८वी शताब्दीके प्रारम्भिक पचास वर्षो तक बगालकी राजधानी इसी नगरमे बनी रही। इस षडयन्त्र का विवरण सुनकर औरगजेब बहुत ही क्रुद्ध हुआ, और उसने शाहजादे को विहार चले जानेका आदेश दिया। जनवरी, १७०३ ई०से विहार प्रान्तकी सूवेदारी भी इसी शाहजादेको दे दी गई थी एव अगले तीन वर्षों तक (१७०४से १७०७ तक) अजीमुश्शान पटनामे रहा। उसके प्रार्थना करनेपर पटना नगरका नाम पलटकर शाहजादेके नाम पर अजीमाबाद रखनेकी स्वीकृति औरगजेबने दे दी।

बगाल प्रान्तकी आयमेसे बचे हुए करोडो रुपये मुर्शिदकुलीखाँ हर साल औरगजेवकी सेवामे भेजता रहता था। मराठोंके साथ कभी समाप्त नही होनेवाले युद्धोमे अन्य साधनोमे प्राप्त सारी आमदनी व्यय हो जाती थी, एव बगालसे प्राप्त होनेवाले इस द्रव्यसे औरगजेवको बहुत ही समयोचित सहायता मिलती थी। मुर्शिदकुलीखाके सामने कालमे सबको इस बातका अनुभव हो गया कि प्रान्तका शासन सुदृढ सुयोग्य हाथोमे है। अपने ही आदमियोंके द्वारा वह सारी वसूली सीधे ही कर लेता था और यो दलालो या जमीदारोंके अपने निजी लाभकी सारी रकम आप ही बच रहती थी। मुर्शिदकुलीखाँकी आज्ञाएँ इतनी अटल होती थी कि बडेसे बडे विद्रोही भी उसके सामने काँपते थे, और चुपचाप उसकी आज्ञाओंका

पूर्णतया पालन करते थे। हफ्तेमे दो दिन वह स्वय ही न्याय-शासन करता था। वह मामलाको ऐसी निष्पक्षतासे निपटाता था, और ऐसी कडाईके साथ अपने फैसलोका पालन करवाता था कि किसीको भी दूसरों-पर अत्याचार करनेका साहस नही होता था।

औरगजेबकी मृत्युके कुछ ही वर्ष बाद दिनोदिन शिथिल होकर जब दिल्लीकी केन्द्रीय सत्ताका पूर्ण पतन होने लगा तब मुर्शिदकुलीखा बगालका स्वाधीन शासक बन बैठा। उसके शासन-कालमे बगालमे पूर्ण शान्ति छा गई और वहां की समृद्धि अधिकाधिक बढने लगी।

३. मालवा, मुगल कालमे उसका महत्त्व

मालवाका मुगल-कालीन प्रान्त उत्तरमे यमुना नदीसे लेकर दक्षिणमे नर्मदा नदी तक फैला हुआ था। उसके पश्चिममे चम्बलके दूसरे पार राजपूताना था, तथा पूर्वमे स्थित बुन्देलखण्डकी मालवासे लगी हुई पश्चिमी सीमाको बेतवा नदी निर्धारित करती थी। मालवामें बसने-वालोमे राजपूत ही सबसे प्रमुख है, जो अनगिनित छोटी छोटी जातियो या सुविख्यात जातियोके उपविभागोमे बँटे हुए है। किन्तु राजपूतानेके समान यहाँ विभिन्न घरानोके अपने ही सुसगठित राज्य नही है। पुन मालवामे राजपूतोकी न तो सख्या ही इतनी है और न उनका महत्त्व ही इतना अधिक है कि वहा बसनेवाली अन्य जातिया सवथा नगण्य ही रहे। मालवा के उत्तरी भागमे जाट दूर दूर तक फैले हुए है, तथा दक्षिणी एव दक्षिण-पूर्वी भागमे गोण्ड बहुत अधिक सख्यामे एकत्र पाए जाते हैं, उनके अतिरिक्त कुछ विभिन्न केन्द्रोमे बाहरी मुसलमान भी, जिनमे प्रधानतया पठान ही अधिक हैं, आ बसे है। सख्यामे अधिक होते हुए भी आदिवासी बस्तियो और सभ्यतासे दूर पहाडो और जगलोमे ही रहते थे।

खेती-बाडीसे पैदा होनेवाली सम्पदा मालवामे बहुतायतसे पाई जाती है। अफीम, गन्ना, अगूर, खरबूजे, पान आदि बहुमूल्य वस्तुओकी पैदावार वहा बहुत होती है, साथ ही वहाके जगलपूर्ण प्रदेशोमे हाथियोंके बडे-बडे झुण्ड भी पाए जाते थे। उद्योग-धन्धोवाले मुगल सूबोमे गुजरातके बाद मालवाकी ही गणना होती थी। मुगल साम्राज्यकी उत्तरी राज-

धानियाँ आगरा और दिल्लीसे दक्षिण भारतको जानेवाले सारे सैनिक मार्ग इसी प्रान्तमें होकर गुजरते थे, जिससे भी उस कालमें मालवाका विशेष महत्त्व था।

जहा वीर योद्धा राजपूत भी बसते हो ऐसे प्रधानतया हिन्दू प्रान्त मालवामें औरगजेबकी मन्दिर ध्वसक नीतिका विरोध न होना तथा हिन्दुओपर लगनेवाले जजिया करका भार सिर झुकाकर चुपचाप स्वीकार कर लेना सवथा अनहोनी वातें थी। अपने पूज्य धार्मिक स्थानोकी रक्षा करनेके लिए वे इस्लामके प्रतिनिधियोका सामना करते थे। यह सब-कुछ होते हुए भी औरगजेबके शासन-कालके पूर्वांधमें मालवामें विद्रोह बहुत ही कम हुए और वे भी कुछ क्षेत्रो तक ही सीमित रहे। छत्रसाल बुन्देला और बख्तबुलन्द गोण्डके आक्रमणोके अतिरिक्त मालवामें १७वीं शताब्दी के अन्त तक शान्ति बनी रहा और वहाँका शासकीय इतिहास महत्त्वपूण घटनाओसे विहीन रहा। किन्तु राजारामके जिंजीसे लौटकर महाराष्ट्र वापस आनेके बाद वहाँ एक ऐसा नया दौर प्रारम्भ हुआ जिससे अगले पचास वर्षोंम मालवाके राजनैतिक इतिहासम युगान्तरकारी उलट फेर हो गए।

४. मालवापर मराठोंके आक्रमण, १६९९-१७०६

नवम्बर, १६९९मे मराठोका एक दल लेकर कृष्णा सावत प्रथम बार नमदा नदी पार कर मालवामे धामुनीके पास तक जा पहुँचा। इस प्रकार जो रास्ता खुला वह आगे चलकर भी किसी प्रकार बन्द नहीं किया जा सका और अन्तमे १८वीं शताब्दीके पूर्वार्द्धकी समाप्ति तक मालवापर मराठोंका पूण आधिपत्य हो गया। जनवरी, १७०३मे मराठोंने पुन नमदाको पार किया और उज्जैनके आसपास तक उपद्रव किया। अक्तूबर, १७०३म नीमा सिन्धिया बरारम जा धमका, फिरोजजगके नायब सूबेदार रुस्तमखाको हराकर उसे कैद कर लिया, तब नीमाने हुशगाबाद ज़िलेपर आक्रमण किया और छत्रसाल बुन्देलाके आमत्रणपर उसने नमदा नदी पार की और मालवामे जा पहुँचा। कई गाव और नगर लूटनेके बाद अन्तमे उसने सिरोजको जा घेरा। इसी समय एक दूसरे मराठे दलका पीछा करता हुआ फिरोजजग बरारमे आया हुआ था, अपना भारी सामान और तोपें आदि उसने पीछे छोड दी और अच्छे

फुर्तीले घुड़सवारोंको लेकर तेजीसे उसने (आधे नवम्बरके लगभग) सिरोंजके पास मराठे आक्रमणकारियोंको जा मिलाया और तत्काल ही उनपर हमला कर दिया। नीमा घोड़ेपर बैठकर भाग खड़ा हुआ। कई मराठे और उनके मालवाके राजपूत तथा अफगान साथी मारे गए या घायल हुए। रुस्तमखाके साथियों तथा उसके ढोरोंका घेरकर नीमा साथ ले गया, फिरोजजगने अब उन्हें छुड़ाया।

फरवरी, १७०४मे फिरोजजगने नीमाका और भी आगे तक पीछा किया और धामुनीके जगलोंमे जब नीमाको उसका खयाल तक नही था, फिरोजजगने उसे एकाएक जा घेरा। कई मराठे मारे गए और बहुतसा लूटका माल मुगलोंके हाथ लगा। इस हमलेमे मुगल सेनाको भी हानि उठानी पड़ी।

फिरोजजगकी इस विजयसे मुगलोंको बहुत लाभ पहुँचा। बरारमे मराठोंके इन उपद्रवोंके कारण शाही सूचनाएँ, आदेशपत्र, आदि पिछले ३४ महीनेसे नमदा पार नही भेजे जा सके थे। पुन मालवापर आई हुई जो विकट आपत्ति इस बार फिरोजजगकी तत्परता एव साहसके कारण टल गई थी, उसने औरगजेबकी आँखें खोल दी और तब मालवाकी सकटपूर्ण परिस्थिति उसके सामने बहुत ही स्पष्ट हो गई। वीर शाहजादा बेदारबख्त, जो एक कुशल सेनापति भी था, तब औरगाबाद और खानदेशका स्थानापन्न सूबेदार था। ३ अगस्त, १७०४को औरगजेबने उसे वहासे बदलकर मालवाका सूबेदार नियुक्त किया। मार्च, १७०६ तक बेदारबख्त मालवापर शासन करता रहा। तब उसे आदेश मिला कि तत्काल ही गुजरात जाकर उस प्रान्तकी सुरक्षाका पूरा-पूरा प्रबन्ध करे।

इस समय शाहजादेका विश्वस्त सेनानायक आम्बेरका नया नवयुवा राजा सवाई जयसिंह था। अपनी महत्वपूर्ण सैनिक सेवाओ द्वारा सवाई जयसिंहने शाहजादेका ध्यान विशेष रूपसे आकृष्ट किया था, और उसपर शाहजादेका विश्वास भी हो चला था।

इन पिछले वर्षोंमे मालवामे विद्रोह करनेवालोमे नासिरी अफगान, गोपालसिंह चन्द्रावत, सिरोंजका गोपाल चौधरी, अब्बास अफगान और उमर पठान विशेष उल्लेखनीय हैं। वास्तवमे इन वर्षोंमे मालवामे छोटे-मोटे विद्रोह इतने अधिक हुए कि उनकी ठीक ठीक गणना करना किसी

प्रकार सभव नही। "मराठे, बुन्देले और बेकार अफगान प्रान्तमे सर्वत्र उपद्रव मचा रहे थे" (१७०४ ई०)। औरगजेबके ही शब्दोमे नतीजा यह हुआ कि "खानदेशका सूबा बिलकुल ही उजड गया। मालवा भी बरबाद हो गया और वहा बहुत ही कम आबादी शेष रही है।"

५ छत्रसाल बुन्देलाका प्रारम्भिक जीवन

चम्पतराय बुन्देलेके चौथे पुत्र, छत्रसाल बुन्देलाका जन्म १६५० ई०मे हुआ था। कोई आधी शताब्दी तक वह सफलतापूर्वक मुगल साम्राज्यका सामना करता रहा और अन्तमे उसने एक स्वाधीन राज्यकी स्थापना की जिसकी राजधानी पन्ना थी। इक्यासी वर्षकी दीर्घ आयुमे सन् १७३१मे उसका देहान्त हुआ।

प्रारम्भमे छत्रसाल बुन्देला मिर्जा राजा जयसिंहकी निजी सेनामें भरती हो गया और सन् १६६५में उसने शिवाजीके विरुद्ध की गई चढाई मे भाग लिया था। उसकी महत्त्वपूर्ण सेवाओके पुरस्कार-स्वरूप अगस्त, १६६५मे उसे ३ सदीका शाही मनसब दिया गया। परन्तु छत्रसालको यह मनसब अपने लिए किसी भी प्रकार समुचित नही जान पडा। अब वह भी शिवाजीके समान साहसपूर्ण स्वाधीन जीवन बितानेके स्वप्न देखने लगा। दक्षिण जाकर उसने शिवाजीसे भेट भी की।

किन्तु शिवाजीने उसको यही सलाह दी कि वह वापस अपने प्रदेशको लौट जावे और अपने प्रभावसे वहाके निवासियोको मुगलोके विरुद्ध विद्रोह करनेके लिए प्रेरित करे। मन्दिरोका विध्वस करनेकी जो नीति सन् १६७०मे औरगजेबने अपनाई थी उससे छत्रसालको अपने प्रयत्नोमे बहुत सहायता मिली। हिन्दू धर्मके रक्षक और क्षत्रियोके मानको बढाने वालेके रूपमे लोगोने उसका स्वागत किया। मुगलोंके प्रति उसकी पूर्ण स्वामिभक्ति होते हुए भी ओरछाके राजा सुजानसिंह बुन्देलाने छत्रसाल को गुप्त सदेशा भेजकर उसकी सराहना की और उसकी सफलताके लिए हार्दिक इच्छा भी प्रकट की थी।

६ मुगलोंके साथ छत्रसालके युद्ध

"छत्रसालके विद्रोही हो जानेके समाचार सुनकर (सन् १६७१मे)

बुन्देलोमे एक नए उत्साहका सचार हो गया"। लूट द्वारा अधिकाधिक धन प्राप्त करनेकी आशासे वहुतसे बुन्देला योद्धा छत्रसालका साथ देनेको उसके साथ एकत्र होने लगे। प्रारम्भिक वर्षोमे छत्रसालके आक्रमण विशेषतया धामुनी जिले और सिरोज नगरपर ही होते रहते थे।

छत्रसालको निरन्तर सफलता मिलती जा रही थी, जिससे कुछ ही वर्षोंमे लोगोकी सारी हिचकिचाहट दूर हो गई और कई छोटे छोटे जमीदार और शासक छत्रसालके साथ आ मिले। जिस किसी भी स्थान या प्रदेशसे उसे वहांकी माली आमदनीका चौथाई भाग चौथके रूपमे मिल जाता था, मराठोंके समान छत्रसाल भी वहा लूटमार नही करता था। ज्यो ज्यो औरगजेब दक्षिणके मामलोमे अधिकाधिक उलझता गया, त्यो-त्यो उत्तरमे छत्रसालको दिनोदिन अधिक महत्त्वपूर्ण सफलताएँ मिलती गईं। उसने भेलसाको लूटा और कालिंजर तथा धामुनीपर अधिकार कर लिया। अब उसके आक्रमणोका क्षेत्र भी नित्य प्रति बढने लगा।

मार्च, १६९९मे सिरोजसे ७० मील उत्तरमे स्थित राणोद नामक स्थानका फौजदार शेर अफगनखाँ छत्रसालके विरुद्ध बढा। एक घमासान युद्धके बाद छत्रसालने भागकर किलेमे आश्रय लिया, तब खानने उस किलेको जा घेरा, छत्रसाल किसी तरह उस किलेसे बच निकला। किन्तु अगले वर्ष जब पुन दोनोमे मुठभेड हुई तब खानके गोली लगी और वह मारा गया और यो छत्रसालने पिछले वर्षकी अपनी पराजयका बदला लिया।

फिरोजजगने प्रार्थना कर छत्रसाल बुन्देलाको चार हजारीका शाही मनसब देनेके लिए सन् १७०५मे औरगजेबको राजी कर लिया, तब फिरोजजगके सुझावको मानकर छत्रसाल भी औरगजेबकी सेवामे दक्षिण-मे उपस्थित हुआ।

७ गोण्ड राज्य और मुगलोंके साथ उनके सम्बन्ध

गढाके गोण्ड राजाने १६वी शताब्दीमे अपना एक बहुत बडा राज्य स्थापित किया था। किन्तु अकबरके सेनापतियोने उस राज्यको छिन्न-भिन्न कर डाला, जिससे पिछले गोण्ड राजा चौरागढके आस पास ही

शासन करते रहे तथा १७वी शताब्दीके मध्य तक वे सर्वथा नगण्य हो गए थे।

अब गोण्डोमे देवगढका शासक ही सबसे प्रमुख माना जाता था। उधर चादामे एक दूसरा गोण्ड राजा शासन करता था, जो देवगढके गोण्ड राजघरानेका कट्टर प्रतिद्वन्द्वी तथा घोर शत्रु था। इन गोण्ड राजाओके पास बहुतसा धन सचित था, उसी प्रदेशमेंसे खोदकर निकाले गए रत्न भी उनके पास बहुतायतसे थे और साथ ही उनके पास हाथियो के बडे बडे झुण्ड भी थे। इन सबको हथियानेके लिए मुगल लालायित हो उठे। सन् १६३७ई०म एक मुगल सेनाने उस प्रदेशमें पहुँचकर वहाके उन शासकोको टाका देते रहनेकी शर्त माननेके लिए बाध्य किया था। किन्तु यह टाका ठीक समयपर नही चुकाया जा सका और यो बाकी रहे टाकेकी रकम बढते-बढते सन् १६६६के अन्त तक १५ लाख रुपये हो गई।

मुगल सेना लेकर जनवरी, १६६७मे जब दिलेरखा गोडवानाम पहुँचा, तब चादाके राजाने मुगलोकी पूण अधीनता स्वीकार कर ली और कुल मिलाकर एक करोड रुपये देनेका वादा किया। दो महीने तक वहा ठहर कर दिलेरखाने चादाके राजासे कोई ७७ लाख रुपये वसूल किए। तब तो देवगढके राजा कुकसिहने भी अधीनता स्वीकार कर ली और निश्चित समयमे १८ लाख रुपये देनेके सिवाय जुर्मानेके रूपमें ६ लाख रुपये और देनेको वह राजी हो गया। किन्तु वह अपने वादेके अनुसार यह सब रुपया नही चुका सका। तब मुगलोने देवगढपर चढाई कर वहाँ आधिपत्य कर लिया। तब तो अपना राज्य वापस पानेके लिए अपने दो भाइयो और एक बहिनके साथ वह राजा मुसलमान बन गया। परन्तु इस्लाम धर्म स्वीकार करनेके बाद भी यह गोण्ड राजा पूणतया आज्ञाकारी नही बन सका। तब उस राज्यके एक दूसरे हकदारको मुसलमान बनाकर राजा बख्तबुलन्द नामसे उसे देवगढकी गद्दीपर बैठाया।

चादाके राजा रामसिहको अक्तूबर, १६८३मे गद्दीसे उतार कर उसके स्थानपर किशनसिहको वह राज्य दे दिया गया। एक मुगल सेनाके साथ एतकादखा उस राज्यकी राजधानीमे २ नवम्बरको जा पहुँचा और वहा किशनसिहको गद्दीपर बैठा दिया। किशनसिहके बाद जुलाई, १६९६म उसका बडा लडका वीरसिह गद्दीपर बैठा।

८ देवगढ़के गोण्ड राजा बख्तबुलन्दका स्वाधीन होना

जून, १६९१मे औरगजेबने वख्तबुलन्दको देवगढकी गद्दीसे उतार कर वह राज्य दूसरे ही किसी मुसलमान गोण्डको दे दिया। कुछ वर्ष तक नजर-बन्द रहनेके बाद भविष्यमे ठीक तरह आचरण करनेकी जमानत देनेपर अगस्त, १६९५मे उसे छोड दिया गया। किन्तु इसके कुछ ही समय बाद देवगढमे गडबड होने लगी। अपना राज्य वापस मिलनेकी अब बख्तबुलन्दको कोई आशा नहीं रह गई थी। इस समय देवगढ और चान्दा दोनो ही राज्योके शासक कम उम्रवाले लडके थे, एव साहसपूर्ण कार्यवाही कर स्वय लाभ उठानेके लिए उसे यह अवसर बहुत ही उपयुक्त जान पडा। एव वह शाही सेनासे चुपचाप निकल भागा और सीधा देवगढ पहुँचा तथा बडी मेहनत, युक्ति तथा सफलताके साथ उसने वहा विद्रोहका झण्डा खडा किया। अपने पडोसी बरावर प्रान्तमे भी वह लूटमार करने लगा। तब ससैन्य उसका सामना कर फिरोजजगने उसे हरा दिया और जून, १६९९मे देवगढपर अधिकार कर लिया। विद्रोही बख्तबुलन्द वहासे भी बच निकला और एक बडी सेनाके साथ वह मालवामे जा पहुँचा। तदनन्तर गढाके राज्यपर अधिकार कर जुलाईमे उसने नरेन्द्रशाहको पुन उसके पूर्वजोकी गद्दीपर बैठाया।

उसके सैनिक मोर्चेके पीछे भी औरगजेबका ध्यान बटानेके उद्देश्यसे देवगढ आनेके लिए आमन्त्रित करनेके हेतु बख्तबुलन्दने अक्तूबरमे दो दूत राजारामके पास सतारा किलेमे भेजे। परन्तु अपने सेनापतियाकी सलाह मानकर राजारामने देवगढ न जाना ही उचित समझा। मार्च, १७०१के प्रारम्भमे एक बडी सेना एकत्र कर अपने काका नवलशाहके साथ बख्तबुलन्दने बरारके सूबेदार अलीमर्दानखांपर हमला किया, किन्तु इस युद्धमे बख्तबुलन्दकी हार हुई, नवलशाह मारा गया, बख्तबुलन्द स्वय घायल हुआ और उनके पक्षके बहुतसे सैनिक खेत रहे।

बख्तबुलन्दके शासन-कालमे वैनगगा और कन्हन नदीके बीचके उपजाऊ प्रदेशको धीरे-धीरे आबाद किया गया, जिससे कुछ ही समयमे यह भाग बहुत समृद्ध हो गया। मेहनती किसान और उद्योग धन्धेवाले गोण्डवानामें आ पहुँचे, वहाँ कई नगर बस गए और नए गाँव आबाद हो गए। परन्तु बख्तबुलन्दके उत्तराधिकारी चांद सुलतानकी १७३९मे मृत्यु हो

जानेके बाद देवगढका सारा गौरव विलीन हो गया और तब नागपुरके मराठा राजघरानेने उसपर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

९. मुगलोंकी अधीनतामे कश्मीरकी परिस्थिति

मुगल सम्राट् कश्मीरको अपने आमोद प्रमोदके लिए एक सुन्दर स्थानसे अधिक कुछ नही समझते थे। उस प्रदेशकी धरती या वहाके निवासियोकी हालतको यत्किंचित् भी सुधारनेके लिए उन्होने कभी कोई प्रयत्न नही किया।

कश्मीरकी सवसाधारण जनता पूर्ण अज्ञान तथा बहुत अधिक दारिद्रयके गहरे गर्तमे डूबी हुई थी। गाँवोमे रहनेवाले अधिकाश लोग आदिम वासियोका सा बिलकुल ही सादा जीवन बिताते थे, और आवश्यक कपडोंके अभावमे प्राय नगे ही घूमते फिरते थे तथा सर्दीसे अपना बचाव करनेके लिए केवल एक कम्बल अपने शरीरपर लपेट लेते थे। कश्मीर प्रदेशकी सारी बस्तियाँ बहुत दूर-दूर बसी हुई थी और उन्हे एक दूसरेसे मिला सकनेवाली सडकें भी वहा बिलकुल ही नही थी, जिससे बाहरी देशोंसे कुछ भी अनाज वहाँ ले जाना सर्वथा असम्भव था, हरेक घाटीवालोको अपनी आवश्यक खाद्य सामग्री अपने यहाँ ही उत्पन्न करनी होती थी। बाढ या अधिक बर्फ पड जानेके समान प्राकृतिक दैवी आपत्तियोके कारण जब कभी वहासे आना-जाना बिलकुल बन्द हो जाता था तब हजारो कश्मीर निवासी बेवस हो अकालके कारण मर जाते थे। सभ्य ससारके आम रास्तासे यह प्रान्त बहुत दूर पडता था। ले जानेकी कठिनाइयोंके कारण बाजारमे पहुँचते-पहुँचते कश्मीरमे पैदा होनेवाली या वहा बनाई जानेवाली वस्तुओका मूल्य बहुत बढ जाता था। इस प्रान्तका अपना कोई विशेष उद्योग-धन्धा नही था और वहा बननेवाले शालोंके धन्धेपर भी शाही अधिकार था और वह काम करनेवाले मजदूर भी शाही कारखानोसे अपना नियुक्त दैनिक वेतन मात्र पाते थे। कश्मीरमें बननेवाला सुन्दर कागज भी केवल शाही दरबारमे काममे आता था और वहाके आदेशानुसार ही बनता था।

कश्मीरके निवासी इतने अधिक पिछडे हुए और सभ्यतासे अनभिज्ञ थे कि वहाके समाजकी उच्च श्रेणीवालोको भी औरगजेबके शासन-कालके अन्त तक शाही मनसब पानेके योग्य नही समझा जाता था। कश्मीरके

सूबेदारकी विशेष सिफारिशपर ही सन् १६९९मे प्रथम वार औरगजेबने कश्मीर निवासियोको शाही मनसव देनेकी वडी कठिनाईसे स्वीकृति दी थी। किसी भी कश्मीरी हिन्दूको मुगल साम्राज्यमे कोई पद नही दिया गया। वहाँके ग्राम निवासी गरीब मुसलमानोको असभ्य जगली समझा जाता था, तथा वहाँके शहर-निवासी मुसलमान चापलूसी करनेवाले झूठे एव कायर धोखेबाज समझे जाते थे। अतएव मुगल-कालीन भारतमे मीठी-मीठी बातें करनेवाले दगावाज ही कश्मीरी कहे जाते थे। कश्मीरकी जनता बिलकुल ही अपढ और वहुत दरिद्री थी तथा उसपर वहाका शासन सामन्तशाही था, जिससे साधारण कश्मीरियोमे दासताकी भावना इतनी भर गई थी कि वे अपनी बहू-बेटियोकी इज्जत बेचनेसे भी यत्कि-चित् नही हिचकते थे।

कश्मीर-निवासियोके अन्ध विश्वास उनके अज्ञानसे किस भी प्रकार कम नही थे। उस सुहावने जल-वायुमे मुसलमान सन्तो और उनके चेलोके दल दिनो दिन वढते जा रहे थे और श्रद्धालु लोगोसे अनुचित लाभ उठाकर अधिकाधिक समृद्ध होते जा रहे थे। कश्मीरके नगरोमे शिया-सुन्नियोका आपसी धार्मिक विरोध प्राय बढते-बढते उपद्रव या आपसी युद्ध तकमे परिणत हो जाता था। ऐसे समय वहाका सूबेदार यदि इन आपसी झगडोंसे दूर रहनेवाला हुआ तब ही कही सैनिक दबाव द्वारा वह कुछ शाति बनाए रख सकता था। विभिन्न धार्मिक फिरको-वालोका आपसी मनमुटाव भी वहुत ही जल्दी वढकर दो विरोधी दलोंके सार्वजनिक झगडोमे बदल जाता था। काज़ीके आवेशपूर्ण उत्तेजक भाप-णोसे प्रेरित होकर सुन्नी लोग, शिया लोगोको लूटने, उनके घरोको जलाने तथा जो कोई भी शिया पकडमे आ जावे उसे मारनेको दौड पडते थे। शस्त्रोसे सज्जित इन उपद्रवियोके साथ कई बार सूबेदारकी शाही सेनाकी भी जमकर लडाई होती थी। यदि कभी यह आशका हो जाती कि सूबेदार स्वय किसी ऐसे शियाको आश्रय दे रहा है जिसपर सुन्नी अत्याचार करना चाहते थे, तब सुन्नी उपद्रवी या सुन्नी सैनिक सूबेदारके निवास-स्थानपर भी हमला कर देनेसे हिचकिचाते न थे।

गावोंके निवासी वहुत ही दरिद्री थे और अधनगे जगलियोंके समान वे रहते थे। वे अज्ञानके अन्धकारमे ही पडे थे और स्वच्छताकी भावना तो उन्हे छू नही पाई थी। नगर-निवासियोकी हालत भी कोई अधिक

मुसमय नही थी। वहाकी झीलमे यदा-कदा आकस्मिक हानिकारक बाढ भी आ जाती थी एव वहाके निवासियोको बरबस नदी या झील के किनारेसे दूर पहाडीके ऊपरवाले सकडे भागमे ही अपने सब मकान बनाने पडते थे। भूकम्प भी कभी-कभी हो जाता था एव मकान हलकी लकडीके ही बनाए जाते थे। वहा सरदी इतनी अधिक पडती है कि प्रत्येक घरमे दिन रात आग जलाए रखना आवश्यक हो जाता है। इन सारी अनिवार्य बातोके फलस्वरूप वहाँके नगरोमे आग लगना एक बिलकुल साधारण बात थी। जब कभी वहा आग लगती थी तो लकडी और घासके बने हुए मनुष्योके वे सारे छोटे-छोटे घर एक सिरेसे दूसरे सिरे तक एक साथ ही जलकर साफ हो जाते थे।

१० कश्मीरमे औरगजेबके सूबेदार और उनकी कार्यवाहियाँ

औरगजेबके शासन-कालके ४८ वर्षोमे कुल बारह सूबेदारोने कश्मीरपर शासन किया। एकके बाद आनेवाले दूसरे सूबेदारकी निजी विभिन्नताके अनुसार प्रान्तके जीवनमे भी फेर-बदल होता जाता था। इतमादखा और फाजिलखाके-से कुछ सूबेदार विद्वानोका आदर करते थे और बडे ही सोच विचारके साथ वे न्याय शासन करते थे। सैफखाके समान कई दूसरे स्वय अधिकाधिक धन एकत्र करनेके लिए निरन्तर नये-नये अवैधानिक कर लगाकर कडाई के साथ उन्हे वसूल करते रहते थे।

अर्द्ध शताब्दी लम्बे औरगजेबके शासन-कालमे कश्मीरमे प्राकृतिक विपत्तिया भी कई आई, जिनमे विशेष रूपेण उल्लेखनीय थी—(जून, १६६९ और १६८१के) दो भूकम्प, (१६७३ और १६७८मे) दो बार राजधानीमे आग लगना, (१६८१ की) बाढ और १६८८मे अकाल पडना। सन् १६६३मे औरगजेब स्वय कश्मीर गया था। इस कश्मीर-यात्राका आँखो-देखा विस्तृत विवरण बर्नियरने लिखा है, यद्यपि इस यात्राके सन्-सवत् देनेमे उसने भूल की है। पुन १६६६मे तिब्बतके बाहरी भागको भी जीत लिया गया था। फारसी इतिहास ग्रन्थोमे वहाँके शासकका नाम दलदल नजमल दिया है, जिसने औरगजेबकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। कश्मीरके तत्कालीन इतिहासकी यही दा महत्त्वपूण घटनाएँ थी।

सन् १६८४मे कश्मीरमे शिया और सुन्नियोमे भयकर विरोध उठ

खडा हुआ तथा तब उनके बीचमे जो युद्ध हुआ सभवत उस कालके ऐसे युद्धोमे सबसे भीषण था। श्रीनगरका हसनाबाद मुहल्ला शियोका एक सुदृढ अड्डा है। वहाँ रहनेवाले अब्दुस्शकूर नामक एक शिया और उसके लडकोने अब्दुस्सादिक नामक सुन्नीको कुछ हानि पहुँचाई थी, जिससे कुछ समय बाद उनका यह आपसी झगडा लम्बे अरसे तक चलने-वाली कट्टर शत्रुतामे बदल गया। इसी बीच शिया लोगोने सार्वजनिक रूपसे कुछ ऐसे कार्य किए तथा बातें की जिनसे पहिले तीन खलीफा-ओंके प्रति तिरस्कार प्रगट होता था। (शिया फिरकेके धर्म-शास्त्रके के अनुसार ये प्रथम तीन खलीफा बिना किसी न्यायपूर्ण अधिकारके बलात् खलीफा बन बैठे थे)। शिया अपराधियोने सूबेदार इब्राहीमखाकी शरण ली। धार्मिक भावनाओंसे उत्तेजित काजी मुहम्मद यूसुफने नगर-वासियोको भीडको उभाडा, तब सुन्नियोकी उस भीडने हसनाबादके मुहल्लेमे आग लगा दी। इस उपद्रवके समय सूबेदारके लडके फिदाई-खाने हसनाबादवालोकी मदद की। उधर तिब्बतकी चढाईसे तब ही लौटे हुए काबुलके सेनानायको तथा कुछ कश्मीरी मनसबदारोने भीडका साथ देकर फिदईखाका सामना किया। दोनो ही पक्षके कई आदमी मारे गौ ए अबरहुतसे घायल हुए और जनताकी भीडने भयकर उत्पात मचाया।

इब्राहीमखाने जब देखा कि इस झगडेमे भी उसको सफलता नही मिली, तब विवश होकर उसे अब्दुस्शकूर और अन्य शिया अपराधियोको काजीको सौंप देना पडा। काजीने धार्मिक व्यवस्थाके अनुसार शकूर, उसके दो पुत्रो तथा एक दामादको मृत्यु-दण्ड दिया। सुन्नी उपद्रवकारि-योका सारे नगरमे दोरदौरा था, उसके सुन्नी होते हुए भी उन्होने मुफ्तीके मकानको जला डाला। शियोके धर्म-गुरु बाबा कासिमको राहमे पकड लिया गया और बहुत ही दुर्गति करनेके बाद उसे मार डाला। फिदाई-खाने ससैन्य नगरका चक्कर लगाया और भीडके अन्य कई लोगोके साथ सुन्नियोके एक स्थानीय नेताको भी मार डाला। इसी बीच शेख बका बाबाने सुन्नियो की एक भीड एकत्र कर इब्राहीमखाके मकानको भी आग लगा दी थी। तब तो सूबेदारने बका बाबा, काजो, वहाँके वाकया-नवीस, सूबेके बख्शी और श्रीनगरके कुछ और प्रमुख व्यक्तियोको कैद कर लिया। इन सब उपद्रवोंके समाचार सुनकर औरगजेबने इब्राहीमखाँको सूबेदारीसे अलग कर दिया और सारे सुन्नी कैदियोको छोड देनेका हुक्म दिया।

१६९८-९ ई०के लगभग कश्मीरमे एक ऐसी घटना घटी, जिसमे वहाँके मुसलमानोकी धार्मिक भावना बहुत अधिक उमड उठी थी। ख्वाजा नूरुद्दीनने पैगम्बर मुहम्मद साहबका एक सुप्रसिद्ध पूजनीय बाल बीजापुर मे कहीसे प्राप्त किया था। ख्वाजाकी मृत्युके बाद ख्वाजाका शव कश्मीर भेजा गया और उनके साथ ही पैगम्बर साहबका वह बाल भी कश्मीर लाया गया। उस बालको देखने तथा उस पूजनीय स्मृति चिह्नको छूनेके लिए नगरकी गलिया और चौकोमे वहाँके सारे मुसलमान एकत्र हुए थे।

मई १६९२मे एक दूसरी घटना घटी, जो कश्मीरकी जनताके पूर्ण अन्धविश्वासको स्पष्टतया चित्रित करती है। रमजानका महीना था जब मुसलमान रोजे रखते हैं। कुछ अच्छी स्थिति वाले मीर हुसैन नामक एक विदेशीने कश्मीर आकर तख्त-इ-सुलेमान पहाडीके पास एक कुटिया बनाई और वही अपना डेरा डाला। रमजानके महीनेमे उस ऋतुके उपलक्षमे दिये जलाकर उसने बडा उत्सव मनाया। अपने मनोरजन तथा इस दृश्यका देखनेके लिए श्रीनगरके बहुतसे लोग वहाँ गए। तब दिनके तीसरे पहर वहाँ बडे जोरोसे आँधी आई, बिजलियाँ चमकने लगी, पानी बरसने लगा और सारे नगरमे रात्रिका-सा अंधेरा हो गया। कुछ समय तक यह सब चलता रहा, और यह सोचकर कि सूरज डूब चुका है लोगोने अपना रोजा खोल दिया। किन्तु दो-तीन घण्टेके इस आधी-तूफानके बाद जब सूरज फिर देख पडा तब बेवकूफ बनकर या अपमानित होनेपर सारे निवासी हक्के-बक्केसे रह गए, क्योकि रमजान महीनेमे दिनके समय कुछ भी खाना-पीना मुसलमानके लिए सबसे अधिक पापपूर्ण कार्य माना है। कश्मीरकी राजधानीके सारे ही छोटे-बडे लोगोने इस आश्चर्यजनक प्राकृतिक घटनाको उस विदेशी फकीरकी जादूगरीकी ही करामात समझा, जिससे उन सब लोगोकी बुद्धि तथा उनमे शिक्षाके पूर्ण अभावका ही प्रदर्शन होता है। "धर्म-रक्षक और सत्यके पूर्ण ज्ञाता" बादशाह औरगजेबने भी जनताके इस विश्वासको ही ठीक माना और उस जादूगरको वहासे निकाल बाहर किया।

११. गुजरात, उसकी सुविधापूर्ण स्थिति तथा वहाँकी नानाविध आबादी

वहाके घरेलू धधो और व्यापारके कारण ही गुजरात सुसमृद्ध रहा

है। शहरपनाहवाले शहरो या उनके आसपास वसे हुए सुरक्षापूर्ण गाँवोमे ही ये घरेलू धन्धे पनपते थे। गुजरातके सब ही निवासी, हिन्दू और मुसलमान दोनो स्वभावतया भारतके अन्य सब प्रान्तवासियोसे कही अधिक व्यापार-कुशल हैं, साथ ही अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थितिके कारण भी गुजरातको व्यापार-सम्बन्धी अनेकानेक लाभ और सुविधाएँ प्राप्त हैं। खानदेश, बरार और मालवा जैसे समृद्धिपूर्ण भीतरी प्रान्तो तथा उत्तरी भारतके अन्य भागोका भी व्यापारका सारा माल विदेशोको भेजे जानेके हेतु जहाजोपर लादा जानेके लिए गुजरात ही पहुँचता था। भारतके बडे-बडे बन्दर, हिन्दू कालमे भडोच और मुसलमानी युगमे सूरत, इसी प्रान्तके समुद्री तटपर थे। बाहरी मुसलमानी देशोंसे सम्बन्ध बनाये रखनेके लिए मुगल कालमे गुजरात ही भारतका प्रमुख द्वार था। अरबके पवित्र तीर्थस्थानोको जानेवाले हजारो मुसलमान यात्री नजफ और कर्बलाके पवित्र स्थानोकी यात्रा करनेवाले शिया श्रद्धालु भक्त सूरतकी राह ही जाते थे। अपने भाग्यकी परीक्षा करनेवाले यात्री, व्यापारी और विद्वान् तथा ईरान, अरब, तुर्की, मिश्र, जजीबार और खुरासान तथा बर्बरी तकके राजनैतिक शरणार्थी समुद्री राह द्वारा इन्ही गुजराती बन्दरगाहोंसे भारतमे प्रवेश करते थे। इस समुद्री राहसे भारत आनेमे कम रुपया लगता था और यह अधिक सुरक्षित भी थी एव उस ओरसे आनेवाले यात्री भी अब सुलेमान और हिन्दूकुश पर्वत-श्रेणियोको पारकर आनेवाले थल मार्गको छोडकर इसी समुद्री राहको ही अपनाते थे।

अपनी विशेष भौगोलिक परिस्थितिके कारण गुजरातकी आबादी सदैव नानाविध रही है, और वहा पुराने कालसे ही बहुतसे विदेशी बसते आए हैं, जिनमे विशेष रूपेण उल्लेखनीय हैं, अग्नि-पूजक पारसी, इस्मालिया फिरकेके वे विधर्मी मुसलमान जो साधारणतया बोहरे कहे जाते हैं और महदवियोका कट्टरता-विहीन फिरका। इनके अतिरिक्त बाहरसे आए हुए अनेकानेक घरानो तथा भारतमे मुगलोके आनेसे पहिले यहाँ शासन करनेवाले मुसलमान जातियोके रहे-सहे वशज, सब हो इसी समुद्री तटपर आ बसे थे, जिससे तब भी इस प्रान्तकी आबादीमे विभिन्न जातियोका अनोखा सम्मिश्रण हो गया था। गुजरातके हिन्दुओमे भी कम आन्तरिक विभिन्नताएँ नही थी। १७वी शताब्दीम उस प्रान्तकी भीतरी सीमाओवाले प्रदेशमे कई एक आदि-वासी तथा लुटेरा जातिया बसती थी, जिनको या तो सभ्यता छू भी नही गई थी या शान्तिपूर्ण जीवन

विताना जिनके लिए सवथा असम्भव था। दक्षिणी गुजरातमे कोली थे, वगलानेके दक्षिण-पूर्वी प्रदेशमे भील वसे हुए थे और पूर्वी सीमापर जगली राजपूत या राजपूत मिश्रित अन्य जातियोका ज़ोर था, पश्चिममे काठी थे, और इन सबके अतिरिक्त गिरासिये तो सारे ही प्रान्तोम यत्र-तत्र फैले हुए थे। प्रदेशकी शान्तिको भग करनेके लिए ये गिरासिये सदैव तत्पर रहते थे। औरगजेवके शासन-कालमे वहाँ उपद्रव करनेको इन गिरासियोके साथ मराठे भी जा मिले, जिससे आगे चलकर अन्तम मराठोने उस प्रान्तमे मुगल शासनकी इति श्री ही कर दी।

१२. औरगजेवके समयमे गुजरातमे दैवी आपत्तियाँ एव आक्रमण

मध्यकालमे गुजरातमे अकाल प्राय पडते ही रहते थे, और औरग जेवके शासन-कालमे यह परिस्थिति किसी भी प्रकार नही सुधरी थी। सन् १६८१, १६८४, १६९०-१, १६९५-६ और १६९८मे गुजरातम अकाल पडनेका विवरण हमे मिलता है। १६९६मे तो ऐसा भयकर अकाल पडा था कि 'पाटलसे लेकर जोधपुर तक कही भी पानीकी बूँद या घासका एक तिनका देखनेको नही मिल सकता था'। इन दैवी विपत्तियोके साथ ही महामारी भी कई वर्षोतक कई नगरोमे निरन्तर वनी रही, जिससे वे नगर वीरान हो गए। जव मुगल-राजपूत युद्ध चल रहा था तव महा राणा राजसिहके पुत्र भीमसिहने १६८०मे गुजरातपर भी हमला किया और वडनगर, विशालनगर तथा अन्य कई समृद्ध नगरोको लूटा। प्रान्त की शान्तिको तब भग करनेवाली यही एक महत्त्वपूर्ण घटना थी।

१३ गुजरातपर मराठोंका आक्रमण

सन् १७०६के प्रारम्भमे मराठोने शाही मुगल सेनाको बहुत बुरी तरहसे हराया था। शाहजादा आजम (२५ नवम्बर, १७०५को) अहमदा वाद नगरसे रवाना हो गया था और वेदारवख्त ३० जुलाई १७०६का ही वहा पहुँचा। इसी वीचमे यह भयकर पराजय मुगल सेनाको सहनी पडी। तव प्रान्तकी सुरक्षाका ठीक प्रबन्ध नही था, एव उस स्थितिसे लाभ उठाकर धन्ना जादव मराठोके दल लेकर वहा जा पहुँचा। राज पीपरयामे रतनपुर नामक स्थानपर धन्नाने एक एक कर मुगल सेनाओंके दो दलोको बुरी तरह हराया। उन सेनाओंके सफदरखाँ और नज़रअली

खाँ नामक सेनानायकोको मराठोंने कैद कर लिया और उनके छुटकारेके लिए द्रव्यकी माँग की। मराठोंने शाही सेनाओंके पडावोको भी जी भर कर लूटा। इस युद्धमे हज़ारो मुसलमान मारे गए या कैद हुए (१५ मार्च १७०६)।

जब प्रान्तका नायब-सूबेदार अब्दुल हामिदखा स्वय एक सेना लेकर मराठोका सामना करनेको बढा, तब विजयी मराठोने उसकी थोडी-सी सेनाको बाबा प्यारेके घाटके पास जा घेरा। नायब-सूबेदार तथा अन्य सारे शाही सेनानायकोको मराठोने कैद कर लिया तथा शाही सेनाके पडाव और सारे माल-असबाबको उन्होने लूट लिया। तब मराठोने आसपासके पडोसी प्रदेशासे चौथ वसूल की और जिन नगरो या गाँवोने चौथ नही दी उन्हे लूटते हुए वे वापस लौट गए। मराठोके इस उपद्रवसे लाभ उठानेके लिए कोली भी विद्रोही हो गए और उन्होने बडोदाके धनवान् व्यापार-केन्द्रको दो दिन तक खूब लूटा।

१४. बोहरों और खोजाओंपर धार्मिक अत्याचार

इस्मालिया फिरकेके धार्मिक गुरु कुतुबको औरगजेबके शासन-कालके प्रारम्भमे ही शाही आज्ञा द्वारा मृत्यु-दण्ड दिया गया था। सन् १७०५मे औरगजेबने सुना कि कुतुबके उत्तराधिकारी खानजीने, जो अब इस्मालिया फिरकेका धार्मिक गुरु बन गया था, अपने बारह दाई (प्रतिनिधि) भेजे थे जो गुप्त रूपसे मुसलमानोको इन अधार्मिक आचार विचारकी ओर आकर्षित कर रहे थे, तब औरगजेबने हुक्म दिया कि इन बारह व्यक्तियो तथा उस फिरकेके कुछ और लोगोको कैद कर लिया जावे, और उन्होने जो द्रव्य एकत्र किया हो उसे तथा इस धार्मिक फिरकेकी ६०से भी अधिक धार्मिक पुस्तकोंके साथ कैद किए गए उन सब व्यक्तियोको भी बहुत ही कडे पहरेमे शाही दरबारमे भेज दिया जावे। इस शाही आज्ञाका पालन किया गया। अपठित बोहरो तथा उनके बच्चोको सुन्नी फिरकेके धार्मिक तत्त्वो और सुन्नी आचार विचारकी शिक्षा देनेके लिए प्रत्येक गाव और शहरमे कट्टर मुसलमान मौलवी नियुक्त किए गए। सुन्नी रीतिके अनुसार बोहरोकी मसजिदोमे भी आवश्यक परिवतन औरगजेबके शासन कालके प्रारम्भमे ही कर दिए जा चुके थे।

गुजरातमे मोमिन (अथवा मतिया) और काठियाडमे खोजा कह-

लानेवाले अन्य मुसलमान फिरके भी थे, जिनमेंसे बहुतसे पहिले हिन्दू थे और सैय्यद इमामुद्दीन नामक एक मुसलमान सन्तने उन्हे मुसलमान बनाया था। अहमदाबादसे ९ मील बाहर करमता नामक स्थानपर इसी सन्तकी कब्र है, जो इन दोनो फिरकेवालोका प्रमुख तीर्थ-स्थान है। अपने धार्मिक गुरुकी जिस प्रकार वे पूजा करते थे, वह किसी भी प्रकार मूर्ति पूजासे कम नही थी। वे उसके पैरकी अँगुलियाँ चूमते थे और उसके पैरोमे ढेरा चाँदी-सोना चढाते थे। वह धर्मगुरु स्वय शाही ठाठ-बाठके साथ पडदेमें रहता था। अपनी वार्षिक-आयका दसवा हिस्सा वे स्वय ही करके रूपमे उसको भेंट करते थे जिससे उसका सारा कारोबार चलता रहता था। औरगजेबने हुक्म दिया कि सैय्यद शाहजी नामक उनके इस धर्म-गुरुको कैद किया जावे। राहमे ही विष खाकर शाहजीने आत्म-हत्या कर ली, तब उसका बारह-वर्षीय लडका औरगजेबके पास भेजा गया। तब तो गुजरातमे उसके सारे अनुयायी विद्रोही हो गए और यह कहकर कि गुजरातके सूबेदारने ही उनके धर्मगुरुकी हत्या की थी उससे अपना बदला लेनेके लिए वे उतारू हो गए। उन्होने भडौंचके फौजदारका सामना कर उसे मार डाला और उस नगरपर अधिकार कर लिया और ४,००० व्यक्तियोका उनका दल उस नगरपर आधिपत्य किए वहा डटा रहा। बहुत दिनो तक उस नगरका घेरा डाले रहनेके बाद ही कही सूबेदार पुन उस नगरपर अधिकार कर सका। तब उस नगरमे जो भी धर्मान्ध व्यक्ति पकडे जा सके उन सबको उसने मरवा डाला।



अध्याय १९

औरगज़ेबका चरित्र और उसके शासनका परिणाम

१. भारतकी समृद्धिका मूल कारण—शाति

सारे विदेशी दर्शकोको यही दिखाई दिया कि जब औरगजेब दिल्लीके सिंहासनपर बैठा, तब मुगल साम्राज्यका वैभव तथा उसकी शक्ति चरम सीमापर पहुँच चुके थे। सुदूरके विदेशी राजदरबारोमे भी "हिन्दीकी दौलत" एक सुज्ञात लोक प्रसिद्ध बात हो गई थी। महान् मुगलोके शाही दरबारकी शोभा और प्रतापको देखकर "फ्रासकी राजधानीके ऐश्वयमे सुपरिचित आखें भी चकाचौंधित हो गइ"। और ऐसे समय औरगजेबका-सा सुशिक्षित शासक और पक्का सेनानायक ऐसे सुसमृद्ध साम्राज्यका शासक बना, उसका निजी जीवन बहुत ही सादा, निष्कलक तथा धार्मिकतापूर्ण था, पुन तब वह बहुत ही स्वस्थ था और उसकी बुद्धि भी पूर्णतया परिपक्व हो गई थी। अतएव लोगोको यह आशा होने लगी कि औरगजेबके शासन-कालम साम्राज्य न जाने कितने गौरव और सत्ताको प्राप्त कर सकेगा। तथापि औरगज़ेबके लम्बे परिश्रमपूर्ण जीवनका परिणाम हुआ—पूर्ण विशृङ्खलन तथा अत्यधिक दुर्दशा। इतिहासकारका यह कर्तव्य हो जाता है कि वह इस अद्भुत घटनाके ठीक-ठीक कारण ढूँढ निकाले।

भारतके समान गरम सजल उपजाऊ देशमे विरोधी मनुष्यो और जीव-जन्तुओ या कडी धूप तथा अतिवृष्टि या अनावृष्टि द्वारा होनेवाली हानिकी पूर्ति प्रकृति स्वय बडी ही तत्परताके साथ कर देती है, इसलिए अन्य देशोकी अपेक्षा कही अधिक यहाके जातीय जीवनका मूल तत्त्व शान्तिपूर्ण सुव्यवस्था ही होता है। यदि विदेशोसे उसपर आक्रमण न हो और यदि यहाके जीवनमे प्रगतिशीलता उत्पन्न हो जावे तो भारत-निवासी बडी ही तेजीके साथ सुसमृद्ध और शक्तिशाली बनकर अत्यधिक

सास्कृतिक उन्नति भी कर सकते हैं। अकबर, उसके पुत्र और पौत्रके एक शताब्दी तक चलनेवाले सुदृढ बुद्धिमत्तापूर्ण शासनोमे भारतके आधेसे भी अधिक भागमे पूण शान्ति बनी रही। मुगलो द्वारा शासित भारतके इस अधिक सुसमृद्ध और आबाद भागमे उन्नति तथा विकासकी प्रेरणा दिनोदिन बढती ही गई। पानीपतके दूसरे युद्धके बाद निरन्तर होनेवाली सैकडो मुगल विजयोने भारतीयोम यह सुदृढ विश्वास उत्पन्न कर दिया था कि मुगल सेना अजेय थी और मुगल प्रदेशपर किसीका भी आक्रमण कर सकना बिलकुल अनहोनी बात थी। किन्तु इस विश्वासको शिवाजीने मिथ्या प्रमाणित कर दिया। भारतमे मुगलो द्वारा स्थापित शान्ति और सुव्यवस्था ही उनके साम्राज्यके आगे भी बने रहनेका एकमात्र कारण हो सकती थी, परन्तु औरगजेबकी मृत्युके समय वह शान्ति और सुव्यवस्था नाममात्रको भी भारतमे नही रह गई थी।

भारतके समान कृपि प्रधान देशमे खेती करनेवाले किसान ही एक मात्र राष्ट्रीय समृद्धिके कारण होते है। सीधे या परोक्ष रूपसे ही क्यो न हो, धरती ही देशको राष्ट्रीय समृद्धिको प्रति वप बढाती है। उद्योग धधेवालोको भी अपना माल बेचनेके लिए किसानो या धरतीकी आमदनी से धन प्राप्त करनेवालोपर ही निभर रहना पडता है, एव यदि उनके पास बेचनेको अधिक अन्न न हो तो वे कोई भी दूसरो वस्तुएँ मोल नही ले सकते है। अतएव भारतमे तो किसानोकी दुदशाके फलस्वरूप किसानो के साथ ही अन्य दूसरे सब लोगोकी भी दुगति हो जाती है। फ्रासकी कहावत 'किसान दरिद्री तो राज्य भी दरिद्री' भारतके लिए तो अत्यधिक उपयुक्त है। सावजनिक शान्ति और सम्पत्तिकी सुरक्षा किसानोके लिए जितनी आवश्यक है, उससे भी कही अधिक वे उद्योग धन्धेवालो तथा व्यापारियोको जरूरी होती है क्योकि लाभदायक व्यापारक्षेत्रकी खोजम उन्हे अपना माल दूर-दूरके देशमे ले जाना पडता है और आवश्यकता पडनेपर लम्बे समयके लिए उधारखाते भी खोलने पडते हैं। किसाना द्वारा पैदा किए गए मालके अतिरिक्त भागकी बचतसे ही आगे चलकर कुछ भी सम्पत्ति एकत्र की जा सकती है। अतएव उसकी सम्पत्तिके लिए खतरा उत्पन्न होनेके कारण जब कभी किसानकी पैदावार घटने लगती है या अपनी आमदनीमेसे कुछ बचा रखनेके लिए किसानको कोई प्रोत्सा हन नही रह जाता है तब राष्ट्रीय मूलधनमे वृद्धि होना भी बन्द हो जाता

है, और उससे देशकी आर्थिक स्थितिको गहरा आघात लगता है। सार्वजनिक अशान्ति, अव्यवस्था तथा अरक्षाकी परिस्थितिके उत्पन्न हो जानेसे भारतमे जो देशव्यापी तथा बहुत समय तक बना रहनेवाला प्रभाव पडता है उसका सबसे अच्छा उदाहरण हमे औरगजेबके शासन-कालमे देखनेको मिलता है। तबकी घटनाओंसे ऊपर लिखी बातोकी सत्यता भी पूर्णतया प्रमाणित हो जाती है।

२ औरगजेबके लगातार युद्धोके आर्थिक दुष्परिणाम

पूरे पच्चीस वर्ष तक निरन्तर दक्षिणमे औरगजेबके युद्ध चलते रहे, जिनके फलस्वरूप साम्राज्य और देशकी आर्थिक स्थिति बहुत बिगड गई, उसका देशपर सर्वव्यापी भयकर प्रभाव पडा, जो बहुत समय तक बना रहा। शाही सेनाकी चढाइयो तथा विशेषतया उसके अनेकानेक घेरोके कारण उन प्रदेशोके पेड और घास बिलकुल ही बरबाद हो गए। शाही कागज-पत्रोके अनुसार तब शाही सेनामे कोई १,७०,००० सैनिक थे, और सभवत उनके साथ पडावके नौकरोकी सख्या इसकी दस गुनी हो जाती थी। अतएव जहा कही भी यह शाही सेना पहुँच जाती थी, कुछ ही दिनोमे वहा कोई भी हरियाली बाकी बचती न थी। उधर जो कुछ भी वे अपने साथ नही उठा ले जा सकते थे, मराठे आक्रमणकारी उस सबको नष्ट कर देते थे। पुन वे खडी फसले अपने घोडोको खिला देते थे तथा लूटमारके बाद मकान और पीछे छोडी जानेवाली सारी सम्पत्तिको वे जला देते थे। अतएव यह पढकर आश्चर्य नही होता है कि अपनी अन्तिम चढाईके बाद जब सन् १७०५मे औरगजेब वापस लौटा तब तक सारा देश बरबाद होकर पूर्णतया वीरान हो चुका था। "उन प्रातोके खेतोमे न तो फसलें रही थी और न कोई वृक्ष ही, उनके स्थानपर वहा सब ओर मनुष्यो और ढोरोकी हड्डियाँ बिखरी पडी थी" (मनुची)। यो उस प्रदेशमे दूर-दूर तकके जगलोके बिलकुल ही कट जानेसे वहाकी खेतीपर बहुत ही बुरा प्रभाव पडा। युगो तक निरन्तर चलनेवाले इन युद्धोसे साम्राज्यका कोष बिलकुल ही खाली हो गया तथा वहाके अन्य नागरिक भी दरिद्री हो गए, अतएव आवश्यक द्रव्यके अभावमे बहुत अधिक समय बीतनेपर भी मकानो या सडकोकी दुरुस्ती नही हो सकती थी।

साधारण मजदूरोको एकाएक बेगार और भूखकी व्यथाका तो सामना

करना पडता ही था, साथ ही ऐसी चढाइयोंके समय प्राय फैलनेवाली महामारी आदि भयकर बीमारियाँ भी उन्हे पीडित करती थी। शाही पडावमें अधिक सुविधाएँ, सुरक्षा तथा सुव्यवस्थाका होना स्वाभाविक ही था, परन्तु तथापि वहाँ दक्षिणकी इन लडाइयोंके कारण प्रति वर्ष एक लाख मनुष्य तथा हाथी, घोडे, ऊँट, बैल आदि मिलाकर तीन लाख जानवर मरते रहते थे। गोलकुण्डाके घेरेके समय सन् १६८७में अकाल पडा। "हैदराबाद नगरके घर, नदियाँ और मैदान, सब जगह मुर्दे भर गए। शाही पडावमें भी यही हालत थी। ७७ कोसों तक मुर्दोंके ढेर ही देख पडते थे। निरन्तर बरसातसे उन शवोका मास और चमडी गल गई। कुछ महीनोके बाद जब बरसातका अन्त हुआ तब हड्डियोंके वे ढेर दूरसे हिमाच्छादित पहाडियोंके समान दिखाई पडते थे।" जिन प्रदेशो मे तब तक शान्ति और समृद्धि बनी हुई थी वहाँ भी अब ऐसी ही बरबादी होने लगी। बडी ही बारीकीके साथ देखनेवाला इतिहासकार भीमसेन पूर्वी कर्नाटकके विषयमे लिखता है—"बीजापुर, गोलकुण्डा और तैलङ्गके (राजघरानोंके) शासनके समय इस प्रदेशके बहुतसे भागोमे खेती होती थी। किन्तु शाही सेनाओंके आते-जाते रहनेके कारण वहाके लोगोको अब जो कठिनाइयाँ तथा अत्याचार सहन करने पडे उनके फलस्वरूप वहाके अनेको स्थान बिलकुल ही उजड गए हैं।" यही हालत उसने बरारमें भी देखी थी।

सन् १६८८ ई०में बीजापुरमें भयकर महामारी (प्लेग) फैली, जिसमे तीन महीनेमें कोई एक लाख स्त्री-पुरुष मर गए। अगस्त, १६९४मे शाहजादे आजमके पडावमे भी प्लेगके फैलनेका उल्लेख मिलता है। सूरतके अग्रेज व्यापारियोंके विवरणोमे भी सन् १६९४ तथा १६९६मे सारे पश्चिमी भारतमे ऐसी ही घातक महामारियोके फैलनेका वर्णन मिलता है। सन् १६९६मे कोई १५,००० स्त्री पुरुष मरे। एक पीढी तक युद्धकी यह परिस्थिति चलती रही, जिसके फलस्वरूप जन-साधारणके पास कोई सम्पत्ति नही बच रही, और अब कोई विरोध करने या किसी भी सकटका सामना कर सकनेकी भी शक्ति उनमे नही रह गई। जो कुछ भी उन्होने पैदा किया था या जितना भी पिछली पीढियोंसे उनके पास बच रहा था वह सब कुछ दोनो विरोधी दल लूट ले गए, और उसके बाद जब कभी अकाल पडा या अनावृष्टि हुई तब किसान और बिना धरतीवाले मजदूर सब ही बेबस हो मक्खियोकी तरह मरने लगते थे। शाही पडावमे धान्य,

आदि वस्तुओका प्रति दिन अभाव रहता था और प्राय वह अकालकी हद तक भी पहुँच जाता था।

३. युद्ध, उपद्रवों तथा शाही करोंके भारसे व्यापार और उद्योग-धन्धोको हानि पहुँचना

भारतके कई एक भागोमे खेती कर सकनेके लिए आवश्यक शान्ति और सुरक्षाके न रहनेके कारण वहांके किसान भूखो मरने लगे, तथा अन्तमे क्षुब्ध हो अपनी पेट-भराईके लिए राह चलतोको लूटने तथा डाके डालने लगे। दक्षिणके किसानोने घोडे और शस्त्र एकत्र कर लिए और अब वे आक्रमण करनेवाले मराठोका साथ देने लगे। अब स्थान-स्थानपर आक्रमणकारियोंके दल भी बनने लगे, जिससे अनेको गाव निवासी इस काम-धन्धेमे लग गए और उनमसे वीर और साहसी लोगोको यश और धन कमानेका भी अवसर मिलने लगा। इन दु खपूण २५ वर्षोंमे व्यापार बिलकुल ही बन्द हो गया था। नमदाके दक्षिणमे सही सलामत आगे बढनेके लिए काफिलोंके साथ हथियारबन्द शक्तिशाली सैनिक दलाका होना सवथा अनिवार्य हो गया। अतएव अपने निर्दिष्ट स्थानपर सुरक्षित जा पहुँचनेके लिए इन काफिलोको अनेक बार सुदृढ शहरपनाहवाले शहरोमे महीनो तक ठहरा रहना पडता था। नमदासे दक्षिणके शाही मार्गोपर होनेवाले मराठोके उपद्रवोके कारण शाही डाक तथा सम्राट्के भोजनके लिए भेजे जानेवाले फलोंके टोकरे भी कई बार हफ्तो तक नमदाके उत्तरी तीरपर ही रुके रहते थे, एक बार ता उनके पूरे पाच महीने तक या रुके रहनेका उल्लेख मिलता है।

बगालके समान जिन प्रान्तोमे कोई युद्ध नही हो रहा था, केन्द्रीय शासनम कमजोरी आ जानेके कारण अब वहाँ भी शाही निषेधोकी उपेक्षा कर प्रान्तीय सूबेदार व्यापारियोसे उनका माल बहुत ही कम दामोमे बलपूवक स्वय मोल ले लेते थे और तब उसे पूरे दामोपर बाजारमे बेचकर पैसा कमाते थे। उद्योग-धन्धेवाले कारीगरो तथा व्यापारियोसे भी वे कई एक ऐसे कर वसूल करते थे, जिनको न वसूल करनेका शाही आदेश हो चुका था। (देखो मेरा अग्रेजी ग्रन्थ "मुगल एडमिनिस्ट्रेशन", तीसरा अध्याय)। इस प्रकार भारतमे आर्थिक अभावका एक भयकर सकट प्रारम्भ हुआ, जिससे 'राष्ट्रीय सम्पत्ति' दिनोदिन घटने लगी और साथ

ही कारीगरोके कौशलकी कमी भी होने लगी तथा सास्कृतिक दर्जा भी नीचे गिरने लगा। देशके कई वडे भागोसे तो कला-कौशल तथा सस्कृति विलकुल ही लोप हो गयी।

राहसे गुजरनेवाले मुगल सैनिक उधरकी फसलोको रौंद देते थे, एव वहाके किसानोको उनके इस नुकसानकी (पायमाली इ-जरायतकी) उचित पूर्तिके लिए सम्राट्ने विशेष अधिकारियोका एक दल नियुक्त किया था, परन्तु तदर्थ आवश्यक धनके अभावके कारण प्राय इस दयालु शाही आदेशकी उपेक्षा ही की जाती थी। शाही सेनाके पीछे-पीछे नौकरो, मजदूरो, दरवेशो आदि कई एक अन्य विविध प्रकारके लोगोका वहुत वडा दल चलता था जो औरगजेवके 'इस घूमते हुए तम्वुओके नगर'का अनुसरण इसी आशासे करता था कि शाही दरवार और सेनाकी उस भीड द्वारा गिराए गए रोटीके टुकडोको एकत्र कर वे उससे ही अपनी उदर पूर्ति करलें। शाही सेनाके पीछे पीछे चलनेवाला यह दल गरीब किसानोपर सवसे अधिक अत्याचार करता था। शाही सेनाको अपने ऊँट किराए देनेवाले वलूची और नौकरी या काम-धन्धेकी खोजम रहनेवाले वेकार अफगान देहातवालोको वडी ही वेदर्दीसे पीटते और उनको लूटते थे। धानको इधर-उधर ले जाकर उसका व्यापार करनेवाले घुमक्कड वनजारे अनाजसे लदे हुए वैल अपने साथ लिये वडी-वडी टोलियोमे घूमते रहते थे और कई वार एक एक दलमे पाच हजारसे भी अधिक वनजारे होते थे। वनजारो के ये दल वहुत शक्तिशाली होते थे और वे छोटे छोटे शासकीय अधिकारियोको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते थे। वे भी कई वार राहम पडनेवाले लोगोको लूट लेते थे, खेतोमे खडी फसलें अपने ढोरोको चरा देते थे और फिर भी उन्हे कोई दण्ड नही दिया जाता था। मराठा सैनिकोके पीछे अब वेरडो और पिण्डारियोके भी दल चलने लगे, और वेरड तथा पिण्डारी, ये दोनो ही निरे डाकू और केवल लुटेरे थे।

इनके सिवाय गाँववालोको वहाके पुराने और नए दोनो परस्पर विरोधी जागीरदारोके वहाके गुमाश्तोके आपमी झगडोका भार भी उठाना पडता। लगानकी कमी पूरी न चुकनेवाली रकममे वाकी रहा रुपया वसूल करनेके वहाने पुराने जागीरदारका गुमाश्ता वहासे चल देनेसे पहिले जो कुछ भी हो सकता था वलपूर्वक ले लेनेका प्रयत्न करता था, और कई वार नये जागीरदारके गुमाश्तेके आनेके वाद भी वाकी वसूल करनेके

लिए कई महीनो तक उस गाँवमे टिका रहता था। उधर नया तहसील-दार भी अपनी उदर-पूर्तिके लिए भूखे अधमरे किसानोसे अपने खातेके बहुत-कुछ रुपये वसूल करनेमे जुट जाता था।

४. मुगल शासनका दिवाला

अंग्रेजोने ठहर-ठहरकर ही क्रमश भारतको जीता था; लगातार आक्रमण करके उन्होंने एकबारगी यह सफलता नही प्राप्त की थी। प्रत्येक आक्रमणकारी गवर्नर जनरलके बाद आनेवाले गवनर जनरलकी नीति शान्तिपूर्ण तथा भारतके देशी राज्योमे हस्तक्षेप न करनेकी ही रहती थी, तथा व्ययमे कमी करनेकी ओर भी वह पूरा ध्यान देता था। वेलेज़लीकी विजयोकी आवेशपूर्ण नीतिमे जो आर्थिक सकट उत्पन्न हो गया था वह शान्त तथा धीमी नीतिवाले बार्लो और मिण्टोके शासन-कालोमे दूर हो गया। युद्ध प्रिय लार्ड हेस्टिंग्ज और एमहर्स्टके समय जो खज़ाना खाली हो गया था उसे शान्ति प्रिय बेण्टिकने पुन परिपूर्ण कर दिया। परन्तु औरगज़ेबके समयमे यह नही हुआ। मारवाड राज्यपर आधिपत्य करनेके लिए उसने १६७९मे जो युद्ध प्रारम्भ किया वह उसके शासन कालके अन्त तक लगातार चलता ही गया। बीच-बीचमे कुछ ठहरकर पुन शान्ति-पूर्ण नीति अपनाने तथा सैनिक व्ययको घटानेकी बडी आवश्यकताको उसने कभी नही समझा, जिससे कि उसकी प्रजाको कुछ अवकाश मिल जाता और पिछले युद्धमे जो हानि हुई थी उसको पूरा कर भावी युद्धोंके लिए आवश्यक सामग्री आदिको वे एकत्र कर सकते। अपने शासन कालकी एकत्रित बचत, सन् १६७९मे हिन्दुओपर लगाए गए नये जज़िया करसे होनेवाली नई आमदनी तथा आगरा और दिल्लीके तलघरोंमे पीढियोसे सचित सारी सम्पत्तिको भी कुछ ही वर्षोमे औरगज़ेबने खर्च कर डाली।

इस प्रकार साम्राज्यका अन्तिम सचित कोष भी समाप्त हो गया और तब शासकीय सत्ताका दिवाला निकलना सर्वथा अनिवार्य हो गया। सैनिको तथा शासकीय अधिकारियोके पिछले तीन-तीन वर्षके वेतन भी तब तक चुकाए न जा सके थे। वेतन नही मिल रहा था और बनिया आगे उधार देनेको तैयार नही था, जिससे लोगोंके भूखो मरनेकी नौबत आ जाती थी और वे कई बार शाही दरबारमे भी धरना देकर उपद्रव

खड़ा कर देते थे तथा अपने सेनानायकके दीवानको गालियाँ देकर कभी कभी उसको मार-पीट भी देते थे। तनख्वाहके पेटे दी जानेवाली जागीरो सम्बन्धी हुक्मोंका जारी किए जानेके बाद भी कई बार बरसों तक पालन नही होता था, क्योंकि जिसको वह जागीर दी जाती थी उसको वे गाव वास्तवमे सिपुर्द नही किए जा सकते थे। जागीर दिए जानेके लिए हुक्म होनेके बाद वह जागीर उसके सिपुर्द होनेमे कई बार इतनी अधिक देरी हो जाती थी कि व्यंगपूर्वक लोग कहा करते थे कि तब तक एक बालक सफेद बालोवाला बूढा हो जाता था। वहाके किलेदारको घूस देकर एक छोटेसे मराठा किलेपर भी अधिकार करनेमे रु० ४५,००० नकदके लगभग खर्चा हो जाता था। इतना रुपया प्रत्येक किलेपर व्यय करके मराठोंके सारे किलोंपर अधिकार करना औरंगजेबके लिए सर्वथा असम्भव था। तथापि घूस देकर या उसका घेरा डालकर एकके बाद दूसरे किलेको लेनेमे औरंगजेब हठपूर्वक बराबर लगा ही रहा। घेरा डालकर किलेपर अधिकार करनेमें तो कोई दस गुना अधिक रुपया व्यय होता था।

अन्तमे दक्षिणमे लडनेवाली मुगल सेनाका उत्साह और हिम्मत बिलकुल ही टूट गए। इस अनन्त निरर्थक युद्धसे सैनिक हैरान हो गए,[1] किन्तु फिर भी औरंगजेब न तो किसीके विरोधकी ओर ध्यान देता था और न किसीकी हितकर सलाह ही सुनता था।

५ शासनमे शिथिलता और सार्वजनिक उपद्रव

बढे हुए खर्चों तथा दक्षिणमे चलनेवाले इस निरन्तर युद्धकी उत्तरी भारतकी स्थितिपर भी अहितकर प्रतिक्रिया हुई। साम्राज्यके उन पुराने सुव्यवस्थित शान्तिपूर्ण सुसमृद्ध प्रान्तोंसे भी वहाँके युवा पुरुष, वहाँकी सचित सम्पत्ति तथा सुयोग्य व्यक्ति सुदूर दक्षिणको खिचे चले गए। वहाँके श्रेष्ठ सैनिक, सर्वोच्च अधिकारी और वहा एकत्रित सारी आमदनी दक्षिणमे भेज दी गई। हिन्दुस्तानके इन सूबोंका शासन निम्नकोटिके अधिकारी ही चलाने लगे। उनके साथ अब बहुत ही थोडी सेना रहती

---

१ औरंगजेबने मुअज्जमको लिखा था कि "रेगिस्तान और जगलोंमें मेरे साथ घूमते रहनेके कारण अब मेरे अधिकारी यह चाहने लगे हैं कि मेरी मृत्यु हो जावे।" (एनेकडोट्स—स० ११)।

थी तथा प्रान्तीय आमदनीका इतना थोडा भाग पीछे रहने दिया जाता था कि केवल उतनेमे ही अपना गौरव बनाए रखना सूबेदारके लिए असम्भव-सा हो जाता था। दक्षिणकी ही तरह कुछ समय बाद उत्तरमे भी अब कभी-कभी सब तरहके उपद्रवी लोग सिर उठाने लगे। इन उत्तरी सूबेदारोकी बाकी रही आमदनी पहिले ही समुचित नही थी, और वास्तवमे अब वह भी दिनोदिन घटने लगी। देश-व्यापी अशान्तिके कारण किसानोसे लगान भी पूरा वसूल नही होता था। किसानोको पूरी तरह बरबाद कर देनेवाली मुगल जागीरोकी वास्तविक शासन-प्रबन्ध-व्यवस्थाकी अपेक्षा साम्राज्यके लिए अधिक हानिकारक वस्तु ढूँढे नही मिलती। एकके बाद नियुक्त होनेवाले दूसरे जागीरदारके या एक ही जागीरदारके एक ही साथ दो परस्पर विरोधी गुमाश्तोमे उस जागीरके किसानोका सब कुछ ले लेनेकी होड-सी लग जाती थी। शाही खालसा प्रदेशमे भी ऐसी ही बरबादी करनेवाली नीति बरती जाती थी और हर एक जिलेका प्रत्येक तहसीलदार किसानोसे भरसक सब-कुछ चूसनेका प्रयत्न करता था।

यो मुगल शासन एक विषम चक्करमे जा फँसा था, राजनैतिक उपद्रवो तथा माली शासनके गलत तरीकोके कारण जागीरोसे वसूल होनेवाला रुपया दिनो दिन कम ही होता जा रहा था। आमदनीके निरन्तर घटते रहनेके कारण सूबेदारको भी विवश होकर अपने पास रखे जानेवाले सैनिकोमे बारम्बार कमी करनी पडती थी। सशस्त्र सैनिकोकी सख्या घटनेसे प्रान्तके उपद्रवी लोग अधिकाधिक सिर उठाते थे, जिससे किसानोकी दुर्दशा बढती ही थी और यो माली आमदनी म और भी अधिक कमी हो जाती थी।

राजपूत तथा स्वयको क्षत्रिय जातिका बतानेवाले सब हिन्दुओका एकमात्र उद्योग तथा पेशा था युद्ध करना। जब मुगलोने सारे उत्तरी भारतपर अपना एकछत्र शासन स्थापित किया तब पश्चिममे भारतीय सीमापर होनेवाले युद्धो या सुदूर दक्षिणमे तब तक स्वाधीन रहे प्रदेशोको जीतनेमे राजपूतोको लगाया गया। मुगल सेनामे सम्मिलित हो राजपूत पहिले मुगल झण्डेके नीचे मध्य एशिया और कन्धारमे लडे थे। परन्तु औरगजेबके शासन-कालम मुगलोकी यह सैनिक कार्यवाही भारतीय सीमाओमे ही सीमित हो गई। दक्षिणके बाकी रहे राज्योंके औरगजेब

द्वारा जीत लिए जानेके बाद दो विभिन्न कारणोंसे राजपूतोंमे बेकारी बढ गई। प्रथम तो उन जीते गए राज्योंकी सेनाओंके स्वामी विहीन स्थानीय सैनिकोको भी नौकर रखना आवश्यक हो गया। दूसरे अब जीते जानेको बहुत ही थोडा प्रदेश रह गया था। ऐसी परिस्थितिमे राजपूत घरानेके महत्त्वाकाक्षी नवयुवकोंके लिए केवल दो ही रास्ते रह गए थे, या तो अपने पैत्रक राज्य या जागीरपर अधिकार करनेके लिए वे अपने ही घरानेवालोसे लडें या लूटमार करने लगें।

६. औरगजेबके शासन-कालमे भारतीय सभ्यताका पतन : उसके कारण तथा लक्षण

औरगजेबके शासन-कालमे मध्यकालीन भारतीय सभ्यताके पतनके सुस्पष्ट लक्षण कई एक बातोमे देख पडे। ललित कलाओंका ह्रास हो गया था, साथ ही तबकी नई पीढीके लोगोंका बौद्धिक स्तर भी पहिले वालोंसे बहुत ही नीचा था। अकबर और शाहजहाँके समयकी पौरपत्व पूर्ण परम्पराओंमे बडे हुए लोगोमें स्वतन्त्र विचारकी बुद्धि अधिक थी तथा अधिक जिम्मेदारी सभालने और पूरी-पूरी सूझ-बूझसे काम करनेकी योग्यता उनमे बहुतायतसे पाई जाती थी। ज्यों-ज्यो १७वी शताब्दी बीतती गई उस प्रकारके वे सारे पुराने उच्चाधिकारी एक-एक कर मरते गए। अब उनके स्थानपर जो अधिकारी आए उनमे पहिलेवालोंकी-सी उदारता, क्षमता और हिम्मत न थी। सदैव सशक रहनेवाला औरगजेब स्वय उन्हे समुचित साधन और अवसर नही देता था, एव ये अधिकारी जिम्मेदारी उठाने या अपनी सूझ-बूझ और प्रेरणासे कुछ भी काम करने से हिचकिचाते थे, और अपनी निजी उन्नति के लिए भी चाटुकारिता तथा अपने सरक्षकोकी सिफारिशसे ही काम निकालते थे। अपने बहुत ही लम्बे जीवन-कालमे औरगजेबकी जानकारी तथा उसका अनुभव दिनो दिन बढते ही गए, जिससे उसके समयकी नवयुवा पीढी औरगजेबकी तुलनामें बौद्धिक दृष्टिसे स्वयको बहुत ही हीन और छोटा अनुभव करती थी। ज्यो ज्यो उसकी उम्र बढती गई औरगजेब अधिकाधिक हठी होता गया और तब वह दूसरोकी बातपर ध्यान न देकर अपनी ही मनमानी अधिक करता था। उसकी मृत्यु पर्यन्त किसीको भी यह साहस नहीं होता था कि वह औरगजेबकी बातको काटे या उसका विरोध करे।

कोई भी उसे निष्कपट सलाह नही देता था और न कोई अप्रिय सत्य बात ही उसे कह सकता था। सुदूर दक्षिणमे चलनेवाले निरन्तर युद्धोसे उसे अवकाश ही नही मिलता था तथा वहाके पडावोंके कठोर जीवनमे समुचित वातावरणका भी पूर्ण अभाव था एव उच्चवर्गीय समाजकी राजसी सभ्यता निरन्तर गिरती ही गई। तब ये अमीर और सरदार ही समाजके कर्णधार होते थे, एव सारे भारतीय समाजके बौद्धिक वर्गका भी धरातल धीरे धीरे नीचा होता गया। अब विशुद्ध साहित्यिक फैजीके स्थानपर जफर जटली जैसे अनगढ कविकी कृतियोसे ही उनका मनोरजन होता था।

निरन्तर बिगडती हुई भारतकी इस बदली हुई दुर्दशापूर्ण हालतको देखकर इतिहासकार भीमसेन और खफीखाको बहुत ही खेद होता था, तथा वे अकबर और शाहजहाके समयके व्यक्तियोके गुणो और उनके गौरवको ओर बडी ही लालसा भरी दृष्टिसे देखते थे। औरगजेब स्वय भी भविष्यकी आशकाओंसे ग्रस्त होकर निराशाके साथ दु खपूर्वक सिर हिलाता था और अपनी मृत्युके बाद पूर्ण सर्वनाश होनेकी ही भविष्य-वाणी करता था।

औरगजेबके शासन-कालके पिछले वर्षोंमे और उसके उत्तराधिका-रियोंके समय भी सुयोग्य व्यक्तियोको कभी पूर्ण प्रोत्साहन नही दिया गया, और उसकी निजी योग्यताके आधारपर ही किसीकी उन्नति नही की गई। पतित व्यक्तियो, चापलूसो, सवरे हुए दभी लोगो, बडे अमीरोके सम्बन्धियो या पुराने अधिकारी वर्गके घरानोंके भाई-बेटोको सन्तुष्ट करनेके लिए ही साम्राज्यके विभिन्न पद उन्हे दिए जाते थे, उन पदोंके साथ अनिवार्य रूपसे सम्बद्ध आवश्यक जन-सेवाके पवित्र उत्तरदायित्व-की ओर कोई भी ध्यान नही देता था। औरगजेबके शासन-कालमे मुसलमानी धर्मान्धता तथा सकीर्ण दृष्टिकोण और पिछले मुगलोके समयमे विलासिता तथा आलस्यके कारण ही साम्राज्यका शासन बरबाद हो गया और पतनोन्मुख साम्राज्य अपने साथ ही भारतीय जन समाजको भी पतनके गहरे खड्डुमे खीच ले गया।

७ मुगल कुलीन वर्गका नैतिक पतन

अमीरोंके घरानोमे नैतिक पतनके चिह्न सुस्पष्ट रूपसे देख पडने

लगे थे और इनसे ही मुगल साम्राज्यको सबसे अधिक हानि पहुँची। पुराने अमीर घरानोंके आचार-विचार १७वीं शताब्दीके पिछले वर्षोंमें बहुत ही निन्दनीय हो गए थे। उन घरानोंके वशज स्वयं बहुत ही निकम्मे और सर्वथा अयोग्य हो गए थे, तथापि निम्न श्रेणीके जिस किसी भी सुयोग्य व्यक्तिको उच्च शासकीय पदोंपर काम करनेके लिए आगे बढाया जाता था उसके प्रति वे ईर्ष्या करते थे उसके प्रति नीच व्यवहार कर उसका अप मान करते थे और उसकी उन्नतिमे बाधा डालनेका भरसक प्रयत्न करते रहते थे। मुगल अमीरोंके नैतिक पतनका एक बहुत ही भयपूर्ण उदाहरण हम वजीरके पौत्र मिर्जा तफज्जुलके चरित्रमे मिलता है। अपने साथी गुण्डोको लेकर वह दिल्लीमे अपने महलसे निकलता और तब बाजारमे दूकानोको लूटता तथा डोलियोंमें बैठकर नगरकी आम सडकोंपरसे निक लनेवाली या यमुना नदीकी ओर जानेवाली हिन्दू स्त्रियोंको उडाकर उनके साथ व्यभिचार करता था, फिर भी न तो वहाँ कोई ऐसा शक्ति-शाली या साहसी न्यायाधीश ही था जो उसे दण्ड दे सकता और न ऐसे अत्याचारोको रोकनेके लिए वहाँ पुलिसका कोई समुचित प्रबन्ध ही था। "जब कभी अखबारो या अधिकारियोकी सूचनाओ द्वारा इन घट-नाओंकी ओर सम्राट्का ध्यान आकर्षित किया जाता था, वह स्वयं कुछ भी नही करता था और उन मामलोंको वजीरके ही सिपुर्द कर देता था।"

सबसे उपजाऊ प्रान्तोमे जमीनकी पैदावारके सारे अतिरिक्त भागको समेटकर मुगल अमीर अपने निजी भडारोमे ले जाते थे, जिससे भारतके इन मुगल अमीरोका भी रहन सहन ऐसा ऐश्वर्य और सुखपूर्ण हो गया था जिसका ईरानके स्वयं शाह या मध्य एशियाके सुलतान भी सपना नही देख सकते थे। अतएव दिल्लीके अमीरोंके महलोमे विषय भोग अपनी चरम सीमाको पहुँच गए थे। उनके हरम सदैव अनेकानेक देशों और अनगिनत विभिन्न जातियोकी नाना विधिके ढग, चरित्र तथा बुद्धिवाली अनेको स्त्रियोसे भरे रहते थे। मुसलमानी कानूनके अनुसार ऐसी रखेलियोंसे होनेवाले पुत्रोको भी विवाहित स्त्रियोंसे उत्पन्न पुत्रोंके ही बराबर पैतृक सम्पत्तिका भाग मिलता है। समाजमे भी इन दासी पुत्रोका स्थान किसी प्रकार हीन नही होता है। उन अमीरोके हरमोंमें जो कुछ भी होता था उसे देख-सुनकर विवाहित स्त्रियोंसे उत्पन्न पुत्र भी कम उमरमें ही उन सब दुर्गुणोको सीख लेते थे। नीच कुलकी व्यभि

चारी प्रवृत्तिवाली नवयुवा सुन्दर स्त्रियाँ उनकी माताओकी प्रतिद्वन्द्वी बनकर उन महलोमे रहती थी और उनके बढे हुए ठाट-बाट और प्रभाव-के कारण उनकी माताओको अपमानित होना पडता था।

मुगल अमीर और सरदारोंके पुत्रो की शिक्षाका कोई ठीक प्रबन्ध नही था और न उन्हे किसी बातकी व्यवहारिक शिक्षा ही मिल पाती थी। हिजडो और दासियोंके लाड प्यारमे ही उनका लालन पालन होता था। जन्मसे लेकर युवा होने तक उनका जीवन पूर्ण सरक्षण मे ही बीतता था और उनकी राहके सारे काटे उनके नौकर ही दूर कर देते थे। छुटपनसे ही कुकर्मोंसे परिचित हो जाते थे, विलासपूर्ण जीवनके कारण उनका शरीर सुकोमल बन जाता था, और उसपर भी उन्हे अपनी श्रेष्ठता तथा अपने धनके अत्यधिक महत्त्वका पाठ पढाया जाता था। इन बालकोको घरपर पढानेवाले शिक्षकोकी स्थिति बहुत ही दयनीय थी, जहा तक स्वय उनके छात्रकी इच्छा न हो वे कोई भी अच्छी बात नही कर सकते थे। इसी कारण मुगल अमीरोंके पुत्रोका नैतिक पतन हताश कर देनेवाली अबाध तेजीसे हो रहा था। उनमेसे अधिकाश और शाह-आलम एव कामबख्श जैसे औरगजेबके पुत्र भी उस हद तक पहुँच गए थे कि तब उनका कुछ भी सुधार हो सकना सभव नही रहा। औरगजेब बारम्बार उन्हे आदेश देता रहता था, परन्तु उसकी कोई सुनता न था, जिससे अन्तमे निराश होकर उसने कहा—"लगातार कहते-कहते मैं तो पागल हो गया, किन्तु तुममेसे किसीने मेरी बातोपर कुछ भी ध्यान नही दिया।"

अनियन्त्रित व्यभिचार, चोरी छिपे मदिरा-पान और जुआखोरीके दुर्गुणोंके साथ ही अमीर घरानो तथा मध्यमवर्गके भी पुरुषोमे अप्राकृतिक व्यभिचारकी लत प्राय पाई जाती थी। कहे जानेवाले कई सत भी इस पापाचरणसे नही बच सके थे। उसपर भी रोक लगानेके लिए औरग-जेबके सारे आदेश और जनतामे सदाचार बढानेके लिए नियुक्त अधि-कारियोंके अनवरत प्रयत्न भी मुगल अमीरोको मदिरा पीनेसे रोकनेमे सफल नही हुए। इतिहासकारोंके समकालीन विवरणोमे कई अमीरोंके आमोद-प्रमोदके विचित्र तरीको तथा उनकी सर्वथा अनोखी रुचिका उल्लेख मिलता है। (मनूची, ४, पृ० २५४–६, २६२)।

लगे थे और इससे ही मुगल साम्राज्यको सबसे अधिक
पुराने अमीर घरानोंके आचार-विचार १७वीं शताब्दीके पि
ही निन्दनीय हो गए थे। उन घरानोंके वशज स्वय बहुत
सर्वथा अयोग्य हो गए थे, तथापि निम्न श्रेणीके जिस
व्यक्तिको उच्च शासकीय पदोपर काम करनेके लिए आगे
उसके प्रति वे ईर्ष्या करते थे उसके प्रति नीच व्यवहार
मान करते थे और उसकी उन्नतिमे बाधा डालनेका प्र
रहते थे। मुगल अमीराके नैतिक पतनका एक बहुत ही
हमे वजीरके पौत्र मिर्जा तफख्खुरके चरित्रमे मिलते
गुण्डोको लेकर वह दिल्लीमे अपने महलमे निकलता
दूकानोको लूटता तथा डोलियोमे बैठकर नगरकी आ
लनेवाली या यमुना नदीकी ओर जानेवाली हिन्दू
उनके साथ व्यभिचार करता था, फिर भी न तो ए
शाली या साहसी न्यायाधीश ही था जो उसे दण्ड
अत्याचारोको रोकनेके लिए वहाँ पुलिसका को
था। "जब कभी अखबारो या अधिकारियोकी सू
नाओकी ओर सम्राट्का ध्यान आकर्षित किया
कुछ भी नही करता था और उन मामलोक
देता था।"

सबसे उपजाऊ प्रान्तोमे जमीनकी पैदावार
समेटकर मुगल अमीर अपने निजी भडारोमे
इन मुगल अमीरोका भी रहन सहन ऐसा ऐ
था जिसका ईरानके स्वय शाह या मध्य
नहीं देख सकते थे। अतएव दिल्लीके
अपनी चरम सीमाको पहुँच गए थे। उ
और अनगिनत विभिन्न जातियोकी
बुद्धिवाली अनेको स्त्रियोसे भरे रहते थे
ऐसी रखेलियोसे होनेवाले पुत्रोको भी
ही बराबर पैतृक सम्पत्तिका भाग
पुत्रोका स्थान किसी प्रकार हीन
जो कुछ भी होता था उसे देख
भी कम उमरमे ही उन सब दुगुण

कोई प्रयत्न नही किया। सोलहवी और सत्रहवी सदियोंके मुगल सम्राट् और भारतीय अमीर कितने स्वार्थान्ध तथा स्वेच्छाचारी थे, इस वातका पूरा पता किसी भी आधुनिक भारतीय देश-भक्तको इसी वातसे लग जावेगा कि जहाँ वे प्रति वर्ष लाखा रुपये खच कर युरोपमे वनी हुई सुख भोग और कलाको अनेका वस्तुएँ मोल लेते थे, वहाँ जनमाधारणको शिक्षा या सार्वजनिक धन्धेके लिए उन्होने एक भी छापाखाने या लिथो का पत्थर तक मँगवानेको कभी नही सोची।

दासोकी अधिकता होनेके कारण भारतीय समाजका नैतिक और बौद्धिक धरातल बहुत ही गिर गया था। युद्धके कैदियो तथा हारे हुए घरानोंके लोग दास बनाए जाते थे, उसके अतिरिक्त अकालके समयमे या अपने कर्जको चुकानेके लिए भी स्त्री-पुरुषोको उनके माता पिता बेच देते थे। हिन्दुओ और मुसलमानो, दोनोंमे ही यह एक प्राचीन कानूनी तरीका था कि लिया हुआ ऋण समयपर न चुका सकनेकी हालतमे कर्ज देनेवाला ऋणीको सकुटुम्ब विकवा सकता था। कुछ अपराधोका दण्ड यही होता था कि उनके अपराधियोको दास बनाकर उन्हे खुले-आम बेच दिया जावे। इस प्रकारकी दासियोके बेचे जानेके उल्लेख पशवाओके रोजनामचोंमे मिलते हैं। अंग्रेजोंके अधीन पूर्णिया जिलेमे भी यह दास-प्रथा १९वी शताब्दीके चतुर्थांश तक थोडी-बहुत चलती रही।

९. अधिकारियोमे घूसखोरी, अधिकारी वर्गका जीवन और उसका चरित्र

इने गिने हकीम और वैद्यो तथा प्रतिष्ठित पुरोहित या धर्माधिकारी घरानोको छोडनेपर वाकी रहे सारे पढे-लिखे मध्यम वर्गके सब ही लोग नौकरी-पेशा ही थे। व्यापारियो और छोटे छोटे जमीदारोमे ऐसे बहुतसे

ई०के लगभग औरगजेबके पत्रोंमें अंग्रेजी भाषा जाननेवाले केवल एक ही मुसलमानका (मुहम्मदखाँका) उल्लेख मिलता है। गोआ प्रदेशके कुछ शेणवी ब्राह्मण पुर्तगाली भाषा जानते थे, और वम्बईमें रहनेवाले अंग्रेजोंके लिए ये ही मराठी पत्रों का अनुवाद पुर्तगाली भाषामें करते थे। मद्रासकी अंग्रेज और फरासीसी कोठियोंवाले ब्राह्मण दुभाषिये नौकर रखते थे, जो अपने स्वामीको भाषाके अतिरिक्त 'मूरों की (अर्थात फारसी) भाषा भी जानते थे।

८. लोकप्रचलित अन्धविश्वास

सभी वर्ग और जातिके लोग घोर अन्धविश्वासोंमें पूरी तरह फँसे हुए थे। दरिद्री और धनवान सभीके जीवनका प्रत्येक कार्य ज्योतिषीकी सलाहके बिना नहीं हो सकता था। कट्टर औरंगजेबने भी पैगम्बर मुहम्मदके झूठ मूठ चरण चिह्नों और बालोंकी (असार-इ-शरीफकी) परिक्रमा ऐसी श्रद्धा तथा आदरके साथ की थी मानो वे ईश्वरके साक्षात् प्रतीक ही हों। उनके प्रति औरंगजेबकी इस भावना और पत्थरपर बने विष्णुके पद चिह्नोंकी हिन्दुओं द्वारा पूजामें किसी भी प्रकारकी विभिन्नता ढूँढ निकालना कठिन ही है। निम्न कोटिकी मानव-पूजाके कारण जन साधारणका चरित्र बहुत ही पतित हो गया था। जिस प्रकार हिन्दू और सिक्ख गुरुओं और महन्तोंकी पूजा करते थे, उसी प्रकार इन दोनों धर्मों को माननेवालोंके साथ ही, मुसलमान भी संतों, पीरों और फकीरोंको पूजते थे, और चमत्कार दिखाने, तावीज़ देने, जादू टोना करने तथा अचूक दवा देनेके लिए उनसे प्रार्थना करते थे। इन बातोंमें ढोंगी जादूगरोंकी खूब चलती थी, अपने पास पारस मणि होनेका भी वे दिखावा करते थे, और यों अमीर और गरीब सभी उनसे कुछ पानेको इच्छुक रहते थे। कीमिआगिरी द्वारा सोना बना सकनेकी विद्यापर सर्व-साधारण का पूर्ण विश्वास था, और उच्च वर्ग के पढ़े लिखे लोग भी इस विद्याके जाननेवालोंकी सहायता कर उन्हें प्रोत्साहन देते थे और उन्हें सम्राट्के दरबारमें पेश करनेके लिए वादा करते थे।

इस प्रकारके अज्ञान और अहंकारका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि सब ही वर्गके लोग विदेशियोंको उपेक्षा और तिरस्कारकी दृष्टिसे देखने लगे थे। यह सत्य है कि कई धनी मानी भारतीय अमीर तोपें ढालनेवाले युरोपीय मिस्त्रियों, युरोपीय तोपचियों तथा कुछ युरोपीय चिकित्सकोंको भी आश्रय देते थे, क्योंकि उनकी सफलताप्रद विशेष निपुणताको अपनी आँखोंसे देख कर उन्हें उनकी योग्यतापर विश्वास हो गया था। यूरपमें बनी हुई विलास साधनकी वस्तुएँ भी वे बड़ी ही उत्सुकताके साथ मोल लेते थे। तथापि किसी भी भारतीय अमीर या विद्वान्ने युरोपीय भाषाओं,[१] कला-कौशल अथवा युद्ध विद्याको सीखनेका

[१] फारसी जाननेवाले युरोपीय या अरमेनियन लोग ही मुगलोंके शाही दरबारमें पहुँचनेवाले युरोपीय यात्रियोंके लिए दुभाषिएका काम करते थे। सन १७०१

कोई प्रयत्न नही किया। सोलहवी और सत्रहवी सदियोके मुगल सम्राट् और भारतीय अमीर कितने स्वार्थान्ध तथा स्वेच्छाचारी थे, इस बातका पूरा पता किसी भी आधुनिक भारतीय देश-भक्तको इसी बातसे लग जावेगा कि जहा वे प्रति वर्ष लाखो रुपये खर्च कर युरोपमे बनी हुई सुख भोग और कलाकी अनेको वस्तुएँ मोल लेते थे, वहा जनसाधारणकी शिक्षा या सार्वजनिक धन्धेके लिए उन्होने एक भी छापाखाने या लिथो का पत्थर तक मँगवानेकी कभी नही सोची।

दासोकी अधिकता होनेके कारण भारतीय समाजका नैतिक और बौद्धिक धरातल बहुत ही गिर गया था। युद्धके कैदियो तथा हारे हुए घरानोंके लोग दास बनाए जाते थे, उसके अतिरिक्त अकालके समयमे या अपने कर्जेके चुकानेके लिए भी स्त्री-पुरुषोको उनके माता पिता बेच देते थे। हिन्दुओ और मुसलमानो, दोनोमे ही यह एक प्राचीन कानूनी तरीका था कि लिया हुआ ऋण समयपर न चुका सकनेकी हालतमे कर्ज देनेवाला ऋणीको सकुटुम्ब बिकवा सकता था। कुछ अपराधोंका दण्ड यही होता था कि उनके अपराधियोको दास बनाकर उन्हे खुले-आम बेच दिया जावे। इस प्रकारकी दासियोके बेचे जानेके उल्लेख पेशवाओंके रोज़नामचोमे मिलते हैं। अंग्रेजोके अधीन पूर्णिया ज़िलेमे भी यह दास-प्रथा १९वी शताब्दीके चतुर्थांश तक थोडी-बहुत चलती रही।

९ अधिकारियोमे घूसखोरी, अधिकारी वर्गका जीवन और उसका चरित्र

इने गिने हकीम और वैद्यो तथा प्रतिष्ठित पुरोहित या धर्माधिकारी घरानोको छोडनेपर बाकी रहे सारे पढे-लिखे मध्यम वर्गके सब ही लोग नौकरी-पेशा ही थे। व्यापारियो और छोटे-छोटे जमीदारोमे ऐसे बहुतसे

ई०के लगभग औरगजेबके पत्रोमें अंग्रेजी भाषा जाननेवाले केवल एक ही मुसलमानका (मुतमादखाँका) उल्लेख मिलता है। गाआ प्रदेशके कुछ शेणवी ब्राह्मण पुर्तगाली भाषा जानते थे, और बम्बईमें रहनेवाले अंग्रेजोंके लिए ये ही मराठी पत्रों का अनुवाद पुर्तगाली भाषामें करते थे। मद्रासकी अंग्रेज और फरासीसी कोठियोवाले ब्राह्मण दुभाषिये नौकर रखते थे, जो अपने स्वामीकी भाषाके अतिरिक्त 'मूरों की (अर्थात फारसी) भाषा भी जानते थे।

ये जो अपनी धन-समृद्धिके हिसाबसे मध्यम वर्गमे गिने जा सकते थे, परन्तु विद्यामे उनसे वे बहुत पीछे थे और उन्हे साहित्यमे भी कोई रुचि नही होती थी। सैनिक तथा दूसरा सब शासन चलानेके लिए अनगिनित कर्मचारियो और हिसाब जाननेवालोकी भी आवश्यकता होती है।

इगलैण्डके ट्यूडर और स्टुअर्ट बादशाहोके शासन-कालकी ही तरह भारतमे भी सरकारी दफ्तरोमे अपना काम निकलवानेवालोसे खुले-आम विशेष शुल्क या अपना पुरस्कार लेकर उनका काम कर देनेकी सुज्ञात और सर्वमान्य प्रथा थी। इसके अतिरिक्त बडेसे लेकर छोटे तक कई एक अधिकारी घूस लेकर अनुचित पक्षपात या न्याय शासनमे मनचाहा हेर-फेर भी कर देते थे। पदाधिकारियोका यो घूस लेना समाजमे निन्दनीय समझा जाता था और अधिकारी गुप्त रूपसे छिपाकर ही रिश्वत लेते थे। औरगजेबके शासन कालमे भी ऐसे कई अधिकारी थे जो कभी घूस नही लेते थे। परन्तु अधिकार प्राप्त व्यक्तियोका भेंटें लेने या भेंटें मागना भी एक सुप्रचलित और सर्वसाधारण द्वारा मान्य प्रथा थी।[1]

सम्राट्की निजी सेवामे रहनेवाले मन्त्रियो और प्रभावशाली दरबारियोको तो धन एकत्र करनेका बहुत ही सुवर्ण अवसर मिलता था। बादशाहकी व्यक्तिगत सेवाके लिए एकान्तमे (तकरबमे) उपस्थित होनेके समय सुअवसरपर प्रार्थियोका निवेदन सम्राट् तक पहुँचा देने तथा उपयुक्त सिफारिश कर देनेके लिए वे बहुत कुछ रुपया ले लेते थे। अपनेसे ऊपरवाली श्रेणीको भेंटके रूपमे जो कुछ भी देना पडता था, उसे वे अपनेसे नीचेवाली श्रेणीसे वसूल कर लेते थे, और यो वह दबाव ऊपर सम्राट्से चलकर नीचे किसानो तक जा पहुँच जाता था और अन्तमे

---

१ नूरजहाका पिता जहाँगीरका प्रधान मन्त्री बनकर भी बडी ही निलज्जतापूर्वक भेंटें मांगता था। औरगजेबके प्रारम्भिक वजीरोमेंसे जाफ़रखाँका भी यही हाल था। उसे दक्षिणकी सूबेदारीपर बना रहने देनेके लिए सम्राटसे प्रार्थना करनेके हेतु जयसिंहने वजीरको रु० २०,०००) की थैली भेंट की थी। निम्न श्रेणीके साधारण पदको भी पाने या उसपर बने रहनेके लिए उसे शाही दरबारमें प्रत्येकको कुछ न कुछ देना पडा, जिसपर भीमसेनने बहुत ही दुःख और अरुचि प्रगट की है। घूस ले-लेकर कई काजी भी बहुत धनी हो गए थे, जिनमें सबसे अधिक बदनाम अब्दुलवहाब था। यही हाल कई सरदारोंका भी था।

उसका भार धरती जोतनेवाले किसानो तथा व्यापारियोको ही उठाना पडता था।

कायस्थ और खत्री दोनो ही जातियोके मुखियोमे मदिरापानकी कुप्रथा बहुत पाई जाती थी। राजपूत सैनिक भी इस दुर्व्यसनके शिकार थे। कुरानमे की गई रोकके होते हुए भी मुसलमान अमीरो और सैनिक या अन्य पदाधिकारियोमे वहुतसे इसके आदी थे। विशेषतया तुर्की तो इस वारेमें बहुत बदनाम थे। अपने घरोसे बहुत दूर स्थानोपर नियुक्त श्रेणीके अधिकारी कुछ स्थानीय स्त्रियोको रखेलीके रूपमे अपने हरममे एकत्र कर लेते थे।

१० जन-साधारणके जीवनकी पवित्रता और उनके सीधे-सादे आमोद-प्रमोद

मुगल कालीन भारतके सामाजिक जीवनका ऊपर दिया हुआ चित्र बहुत ही अन्धकारपूर्ण देख पडता है, किन्तु यदि हम उसके कई अन्य पहलुओंपर ध्यान नही देंगे तो यह बिलकुल ही अधूरा तथा तदथ असत्य ही समझा जावेगा। अनिवाय रूपसे यह तो स्वीकार करना पडता है कि तब भी करोडो भारतीयोका गृहस्थ जीवन पवित्रतामय और सीधी-सादी चचलता तथा हँसी खुशीसे भरपूर था। इसी सदाचारने भारतीय जन-समाजको पिछले साम्राज्यके पतित रोमन लोगोके-से पूण सवनाशके दुर्भाग्यपूर्ण अन्तसे बचा लिया। पीडित मानव हृदयको सात्वना देने, वीरतापूण धैर्य धरनेका पाठ पढाने तथा अपढ जन-समाजके हृदयोम आवश्यक सहृदयता और सरसता भर देनेके लिए हमारे यहा अनेको लोक-गीत, वीर काव्य तथा कहानियाँ प्रचलित थी। तुलसीदास कृत महाकाव्य "रामचरितमानस"ने हमारे करोडो स्त्री पुरुषोम कतव्य निष्ठा, पौरुष और आत्म-त्यागकी भावना भर दी, तथा सार्वजनिक और व्यक्तिगत जीवनके लिए आवश्यक व्यवहार-बुद्धिकी उन्हे पूरी पूरी शिक्षा दी। हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तोके नगरो और कस्बोमे आज भी लोग प्रति वष उसकी कथाका अभिनय करते हैं, तथा प्रत्येक हिन्दू घरमे उसका पाठ होता है।

वगाल, तिरहुत, उडीसा, आसाम तथा देशके कई एक अन्य भागोमे

शकरदेव और चैतन्य द्वारा प्रचारित वैष्णव धर्मने वहाके लोगोमे एक अनोखी नम्रता और आस्था भर दी थी, जिससे वहा पहिले प्रचलित पशुपतिकी और तान्त्रिक उपासनाका निलज्ज किन्तु धौम्पपूर्ण अनाचार बहुत कम हो गया। १७वी शताब्दीमे यह नया वैष्णव धम विकसित होकर बहुत फैला, और उसके फलस्वरूप जनताके जातीय जीवनमे अनेको नई विशेषताएँ आ गईं, जिनमेसे कुछ थी—व्यक्तिगत भक्तिका बाहुल्य, बालको और असहायोके प्रति सहानुभूति तथा दया, सस्कृतके साथ ही जन समाजकी साधारण बोलचालकी भाषाओके साहित्यकी उन्नति, नाच गानका विशेष प्रचार, और दरिद्रियो तकके दैनिक जीवनमे शृगार एव प्रेमकी समधुरताका सचार। विभिन्न वर्गीय व्यक्तियोमे जो सामाजिक भेद भाव पाए जाते थे, उनको भी दूर कर उनमे भावनाकी समानतासे उत्पन्न होनेवाली एकताको यह स्थापित करती थी। इस लोकप्रिय धार्मिक साहित्यके सिवाय देशके विभिन्न भागोमे पजाबके हीर-राझा जैसे जनताके हृदयोको लुभानेवाले लोकगीत भी जनसाधारणमे प्रचलित थे[1] जिनसे कडी मिहनत तथा राजनैतिक पीडनके भयकर भारको कुछ समयके लिए भुलाकर वे अपना मनोरजन कर लेते थे। उत्तर और दक्षिण, भारतमे सवत्र धार्मिक उपदेशो, व्याख्यानो तथा गभीर साहित्यके स्थानपर अब कीतनोका प्रचार बढा। इन पद्यात्मक धार्मिक कथानकोमे यत्र-तत्र गीत भी होते थे और कथा सुनानेवालेके साथ ही श्रोतागण भी सुर मिलाकर साथ साथ गाते थे। इस प्रकार ये कीतन बहुत ही लोक प्रिय हो गए।

हिन्दी भाषा भाषी प्रदेशोको छोडते हुए अन्य प्रदेशोम बसनेवाले उस समयके साधारण मुसलमानोंके लिए देश भाषामे कोई धार्मिक काव्य साहित्य था ही नही। किन्तु विभिन्न मुसलमान सन्तोकी कब्रापर प्रति वष उसे मनाए जाते थे, जहाँ दूर-दूरसे हजारो यात्री तीथ-यात्रा करने आते थे। ऐसे अवसरपर वहाँ जो मेले लगते थे उनमे प्रत्येक धम और जातिके स्त्री-पुरुष सम्मिलित होते थे। इसके सिवाय नगरोमे रहने

---

१ देशी भाषाओके लोक प्रिय धार्मिक और प्रेमकाव्यका ही यहाँ उल्लेख किया है। उच्च वर्गोंमे प्रचलित होनेवाली एक और देशी भाषाने साहित्यका प्रारम्भ औरगजेबके बाद ही हुआ। उसकी मृत्युके दस वष बाद औरंगाबादके वलीसे इसका आरम्भ होता ह। रेख्ता = उदू।

वाले स्त्री-पुरुष, बूढ़े और बच्चे सभी सैर करनेके लिए हर हफ्ते अपने पासके उपनगरमें स्थित सन्तकी समाधिके उपवनमें चले जाया करते थे। किन्तु ऐसे अवसरोंपर धर्माचरणकी ओर कोई ध्यान नहीं देता था और वे सारा समय आमोद प्रमोदमें ही बिताते। इस प्रकार अनाचार बहुत बढ़ने लगा तब फिरोजशाह तुगलककी तरह औरंगजेबने भी इस प्रथाको बन्द करनेके लिए शाही हुक्म दिया। किन्तु यह प्रथा इतनी अधिक प्रचलित और लोक प्रिय हो गई थी कि उसको यों बन्द नहीं किया जा सकता था। समय-समयपर भरनेवाले ऐसे मेलों और तीर्थ-स्थानोंमें जाना ही तब भारतीय ग्राम-निवासियोंके दिल-बहलावका एकमात्र तरीका था एवं वहां जानेके लिए स्त्री-पुरुष सब ही लालायित रहते थे। मुसलमानोंके लिए अजमेर, कुलबर्गा, निजामुद्दीन औलिया और बुरहानपुर, तथा हिन्दुओंके लिए मथुरा, प्रयाग, बनारस, नासिक, मदुरा और तंजोर जैसे तीर्थ स्थानोंका विशेष सांस्कृतिक महत्त्व था। यहींसे भारतीय संस्कृतिका प्रसार होता था और प्रान्तीय विभिन्नताएँ तथा मानसिक दृष्टिकोणकी संकीर्णता भी यहीं दूर होती थीं।

११ औरंगजेबका चरित्र

औरंगजेब बहुत अधिक साहसी और असाधारणतया वीर था। यों तो उसके अयोग्य निकम्मे प्रपौत्रोंसे पहिलेके तैमूर घरानेके सारे ही वंशजोंमें व्यक्तिगत वीरता पाई जाती थी, परन्तु औरंगजेबमें इस गुणके साथ कई और विशेषताएँ थीं, जिनके लिए हम अब तक यही कहा गया है कि वे उत्तरी युरोपकी जातियोंमें ही खास तौरपर वंशपरम्परागत आई हैं। औरंगजेबमें व्यक्तिगत वीरताके साथ ही ठण्डे दिमागसे नाप-तोलकर ही काम करनेका स्वाभाविक गुण पाया जाता था। पन्द्रह वर्षकी उम्रमें उसने बिना किसी साथीके अकेले ही मदमस्त क्रुद्ध हाथीका सामना किया था। तबसे लेकर ८७ वर्षकी अवस्थामें वागिनखेड़ाका घेरा लगानेवाले मोर्चों की खाइयोंमें निर्भीक खड़े होने तक उसने निरन्तर अपनी व्यक्तिगत निडरता तथा साहसका परिचय दिया। उसका शान्त आत्म-संयम, निकटतम संकटमें भी उसका उत्साहवर्धक बातें कहना, तथा धरमत और खजवाके युद्धोंमें उसका मृत्यु तककी पूर्ण उपेक्षा करना, भारतीय इतिहासकी सुप्रसिद्ध अमर घटनाएँ हैं।

व्यक्तिगत साहस और अनोखी शान्त दृढता उसे प्राप्त थी ही। पुन अपने जीवनके प्रारम्भसे ही औरगजेबने सम्राट् बननेके सकटपूर्ण और कडी मिहनतवाले जीवन ध्येयको प्राप्त करनेका निश्चय कर लिया था, तथा उस महान् पदके उपयुक्त स्वयको बनानेके लिए उसने स्वाभिमान, आत्मगौरव, स्वाध्याय और आत्मसयमके गुणोको प्राप्त करनेका विशेष रूपसे भरसक प्रयत्न किया। अन्य शाहजादोसे सवथा विपरीत औरगजेबका अध्ययन बहुत ही विस्तृत, सूक्ष्म और साथ ही गम्भीर भी था। पुस्तकोके प्रति उसका प्रेम मरते दम तक बराबर बना रहा। अरबी और फारसीके सिवाय वह तुर्की और हिन्दी भी बडी ही सरलताके साथ बोल सकता था। उसीकी प्रेरणा और प्रोत्साहनके फलस्वरूप मुसलमानी कानूनका सबसे बडा सग्रह-ग्रन्थ "फतवा-इ-आलमगीरी" भारतमें ही तैयार हुआ। इस ग्रथके द्वारा भारतमे मुसलमानी कानूनकी सही और सरल व्याख्या आगेके लिए कर दी गई थी, एव इस ग्रन्थके साथ औरगजेबका नाम सम्बद्ध किया जाना सवथा उपयुक्त था।

ग्रन्थोके अध्ययनके अतिरिक्त औरगजेबने बाल्यकालसे ही सोच समझकर बोलने तथा काम करने और दूसरोके साथ व्यवहारमे पूरी चतुराई बरतनेका अभ्यास कर लिया था। जब वह शाहजादा था, तब अपनी व्यवहार कुशलता, चतुराई और नम्रतासे उसने अपने पिताके शाही दरबारके सर्वोच्च अमीरोको अपना मित्र बना लिया था। सम्राट् हो जानेपर भी उसने अपने ये गुण नही छोडे और उन्हे इतना व्यक्त किया कि किसी साधारण प्रजाजनमे भी उनका उतना पाया जाना एक विशेषता होती। इन्ही सारी बातोसे उसके समसामयिक लोग उसे "शाही पोशाकमे एक दरवेश" ही कहा करते थे।

औरगजेबकी पोशाक, उसका खानपान, मनोरजन आदि उसका सारा व्यक्तिगत जीवन बहुत ही सादा और सुनियमित था। उसमे कोई दुगुण नही थे और धनवान् आलसी लोगोके निष्पाप आमोद प्रमोदोसे भी वह बहुत दूर रहता था। उसकी पत्नियोकी सख्या कुरान द्वारा निश्चित चारसे सदैव कम ही रही।[१] अपनी पत्नियोके प्रति वह सदैव पूरी तरह सच्चा

---

१ दिलरस बानू १६५७ ई०में मर गई। नवाबबाईको सन १६६०के बाद दिल्लीमें एकान्त जीवन बिताना पडा। औरगाबादी सन् १६८५में अपनी मृत्यु तक अवश्य औरगजेबके साथ रही। उदयपुरीके साथ औरगजेबका विवाह सन्

और अनुरक्त रहा। यह पढकर हँसी आए विना नही रहती कि औरंगजेबको केवल दो ही बातोका शौक था, करौंदे खाने और 'खडइली' नामक मुख-सुवासक चबाते रहनेका। शासन प्रवन्धकी देख-रेखमे वह आश्चर्यजनक मेहनत करता था। वह प्रतिदिन नियमित रूपसे राजदरवार करता था, और कभी-कभी दरवार दिनमे दो-दो बार भी लगाता था। प्रत्येक बुधवारको न्याय-शासन सम्बन्धी मामलोको सुनता था। इस सबके सिवाय पेश किए गए सभी पत्रो और प्रार्थनापत्रोपर अपने हाथसे ही वह आदेश लिखता था तथा शाही दफ्तरसे दिए जानेवाले जवाबोको भी वह पूराका पूरा लिखवा देता था। २१ मार्च, १६९५के शाही दरवारका इटालियन चिकित्सक गेमेली करेरीने इस प्रकार वर्णन लिखा है—"उसका (औरगजेबका) कद ठिगना, नाक लम्बा, शरीर दुबला और वृद्धावस्थाके कारण झुका हुआ था। उसकी गेंहुँआ रगकी चमडीपर गोल डाढीकी सफेदी और भी अधिक चमकती थी। विभिन्न काम धधोके वारेमे उसे पेश किए गए प्रार्थना-पत्रोपर उसे अपने हाथसे स्वय आवश्यक हुक्म लिखते देखकर मेरे हृदयमे उसके प्रति विशेष आदर उत्पन्न हो जाता था। यह लिखा-पढी करते समय वह चश्मा नही लगाता था और उसके सुप्रसन्न चेहरेको देखकर यही प्रतीत होता था कि उसे अपना यह काम बहुत ही रुचिकर है।"

इतिहासकारोंने लिखा है कि यद्यपि मृत्युके समय उसकी उमर कोई ९० वर्षकी थी, अन्त समय तक उसकी मन शक्ति तथा इन्द्रियाँ ज्योकी-त्यो काम करती थी। उसकी स्मरणशक्ति तो सचमुच ही अद्भुत थी। जिस किसीको भी उसने एक बार देख लिया या जो कोई भी बात उसने एक बार सुन ली उसे वह जीवन भर कभी भूलता न था।" बुढापेके कारण पिछले वर्षोंमे वह कुछ ऊँचा सुनने लगा था, पुन दुर्घटनासे उखडे हुए उसके दाहिने घुटनेका उसके हकीम ठीक-ठीक इलाज नही कर सके थे, जिससे उसका वह पाँव कुछ लगडाने लगा था। इन दो अपवादोंके सिवाय मृत्यु-समय तक उसकी सारी शारीरिक शक्तिया यथावत् ही बनी रही।

१६६० ई०के लगभग हुआ था और औरगाबादीकी मृत्युके बाद उसके शासन-कालके पिछले अर्द्धांशमें यह उदयपुरी ही औरगजेबकी एकमात्र जीवन सगिनी रही।

१२. अत्यधिक केन्द्रीकरण करनेकी उसकी भयकर भूल, शासन-व्यवस्थापर उसके दारुण दुष्परिणाम

किन्तु इतने लम्बे समय तककी उसकी सारी आत्म शिक्षा और उसकी यह अनोखी कार्यशक्ति ही एक प्रकारसे उसकी विफलताका प्रधान कारण बन गई। इनके फलस्वरूप औरगजेबके मनमे अगाध आत्मविश्वास और दूसरोंके प्रति अविश्वास उत्पन्न हो जानास्वाभाविक ही था। प्रत्येक कार्यमे अपने निजी विचारोके अनुसार सर्वांग सम्पूर्णता प्राप्त करनेके लिए भरसक प्रयत्न करनेका वह आदी हो गया था। यही कारण था कि शासन और युद्ध दोनोकी ही छोटीसे-छोटी बातो तककी स्वय व्यवस्था करने तथा आप ही उनका निरीक्षण भी करनेमे वह सदैव लगा रहता था। राज्यके सर्वोच्च शासकके इन अत्यधिक हस्तक्षेपोंके कारण विभिन्न सूबेदार, सेनापति तथा सुदूर प्रदेशोंके स्थानीय शासक भी हर बातके लिए सदैव उसका ही मुँह ताकने लगे, उनमे उत्तरदायित्व की भावना रह ही नही गई थी, एव बदली हुई परिस्थितियोके अनुसार स्वयको तत्परतासे उनके अनुरूप बना लेनेकी योग्यता और आवश्यक प्रेरणा शक्तिका उनमे उत्पन्न हो सकना असम्भव हो गया था। वे दिना दिन जीवनविहीन कठपुतलियोके समान बनते गए जो राजधानीमे स्थित अपने सम्राट् द्वारा धागे खीचे जानेपर ही किसी तरह कार्यके लिए प्रेरित होते थे। भारतके समान विस्तृत तथा विभिन्नतामय साम्राज्यके शासनको अध पतित करनेके लिए इससे अधिकसुनिश्चित दूसरा कोई उपाय हो ही नही सकता था। बारम्बार रोके जानेके कारण साहसी, प्रतिभाशाली और ओजस्वी अधिकारियोका भी सारा उत्साह भग हो जाता था और वे विवश होकर उदासीन और अकर्मण्य बन जाते थे।

ऐसे सम्राट्को अनोखी राजनैतिक या शासकीय प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति कदापि नही कहा जा सकता है। उसमे तो केवल ईमानदारीके साथ निरन्तर मेहनत करते रहनेकी शक्ति थी। किसी बडे महकमेके अधिकारीके पदके लिए वह सर्वथा सुयोग्य और पूर्णतया उपयुक्त था। परन्तु उसमे वह प्रतिभा न थी कि आगे जन्म लेनेवाली भावी पीढ़ियोंके जीवन और विचारोको नूतन ढाचेमे ढालनेके लिए आवश्यक नई नीति तथा नए नियमोको पहिलेसे ही निश्चित कर उनको आरम्भ कर सकने

योग्य बुद्धिवाला दूरदर्शी राजमर्मज्ञ वह बन सकता। यद्यपि अकबर निरक्षर था और यदा-कदा उसका स्वभाव अत्यधिक उग्र भी हो जाता था, भारतके मुगल सम्राटोमे केवल उसीमे ऐसे राजमर्मज्ञके लिए अत्यावश्यक असाधारण बुद्धि पाई जाती थी।

औरंगजेब सतोका-सा कठोर जीवन बिताता था और उन्हीके समान वह अपनेमे सदैव नम्र दीनता भी दिखाया करता था, तथा अपने सारे धार्मिक कृत्योको, कुछ वाह्याडम्बरके साथ ही क्यो न हो, प्रति दिन ठीक समयपर विधिवत् पूरा करता था। अपने चरित्रकी वास्तविक त्रुटियोसे पूर्णतया अनभिज्ञ औरंगजेब अपने कर्त्तव्यके इस सकीर्ण आदर्शसे ही प्रेरित होता था, मनुचीके सुझावके विपरीत उसके इस धर्माचरणका आधार राजनैतिक धूर्तता कदापि न थी। अपने साम्राज्यकी मुसलमान प्रजाके लिए तो वह यो एक आदर्श व्यक्ति बन गया था। वे उसे 'आलमगीर जिन्दा पीर' कहते थे और उन्हे पूरा विश्वास था कि वह चमत्कार कर सकनेवाला पीर है। औरंगजेबको भी यह बात पसन्द थी ऐसा उसके कार्योसे स्पष्ट हो जाता है। अतएव उसमे सारे गुणोके होते हुए भी राजनैतिक दृष्टिसे औरंगजेब पूर्णतया विफल रहा। परन्तु उसका व्यक्तिगत चरित्र ही उसके शासनकी इस पूर्ण विफलताका एकमात्र कारण नही था; उसके तो अन्य कई गहन कारण थे। यह कहना कदापि ठीक नही कि केवल औरंगजेबके ही कारण मुगल साम्राज्यका पतन हुआ। आते हुए इस पतनको रोकनेके लिए उसने निस्सन्देह कोई प्रयत्न नही किया, प्रत्युत समूचे देशमे पहिलेसे ही चल रही कई एक विनाशकारी प्रवृत्तियोको उसने बहुत उत्तेजित किया जिसकी विवेचना आगे की जाती है।

१३. मुगल शासनका वास्तविक स्वरूप और उद्देश्य

मुगल साम्राज्यसे भारतको अनेको लाभ पहुँचे, परन्तु न तो वह यहाके सारे लोगोको एक राष्ट्रके रूपमे सुसगठित कर सका और न उसके समयमे यहाँ एक सुदृढ सशक्त स्थायी शासनका निर्माण ही हो पाया।

ताजमहल और तख्तताऊसके रत्नो और सोने चादीसे ही चकाचौंधित होकर मुगल भारतके साधारण मानवकी दुर्दशाकी ओर से दृष्टि

नही मोड लेनी चाहिए। तब मानवकी स्थिति अधम दासमे किसी प्रकार अधिक अच्छी न थी। यदि उनपर अत्याचार करनेवाला व्यक्ति कोई अमीर, उच्च अधिकारी या जमीदार होता, तब तो उसके विरुद्ध जन-साधारणको न तो कोई आर्थिक स्वतन्त्रता ही थी और न कोई व्यक्तिगत स्वाधीनता ही, अपनी दाद फरियाद सुनाकर न्याय पानेका कोई अपरिहार्य अधिकार जन-साधारणको तब प्राप्त नही था। राजनैतिक अधिकारोके सपने भी कोई नही देख सकता था। समूचे देशकी सारी प्रजाको मानवीय भेडोंके समान ही समझा जाता था, परन्तु एक सशक्त चतुर सम्राट्के शासन-कालमे अमीरोकी दशा भी उससे किसी प्रकार अच्छी न थी। अमीरोका कोई भी सुनिश्चित कानूनी अधिकार नही प्राप्त थे, क्योकि राज्य शासनका कोई विधान था ही नही। अपनी भौतिक सम्पत्ति और मालमत्तेपर भी उन्हे पूर्ण अधिकार प्राप्त नही थे। सिंहासनपर बैठनेवाले निरंकुश शासककी इच्छापर ही सब कुछ निर्भर रहता था। वास्तवमे तबका राज्य-शासन तो विद्रोहो या विप्लवकी आशकासे सयत तानाशाही ही थी। देशकी सारी शक्ति और साधनोंसे राजदरबारका उद्भव होता था, तथा उस राजदरबारका एकमात्र केन्द्र था वहाका सम्राट्, इस प्रकार समूचे देशकी सम्मिलित शक्तियो और जीवनका अन्तिम फल होता था केवल शासककी समृद्धि तथा उसकी सतोषपूर्ण आत्मनिर्भरता।

अन्य निरंकुश राजतत्रोके समान ही मुगल-कालीन भारतमे भी सवश्रेष्ठ सम्राट्के शासनमे सारे जन-साधारणका सुख बहुत ही अस्थायी बना रहता था, क्योकि वह सब बिलकुल केवल एक ही व्यक्तिके चरित्र पर निर्भर रहता था। "पढाई लिखाई और अन्य शिक्षाकी मुगल-कालीन पद्धति ऐसी ठीक तथा सपूर्ण न थी कि उससे सुयोग्य उत्तराधिकारियोकी परम्परा बराबर चलती ही जाती। अपनी आपसी ईर्ष्या और द्वेषके कारण विभिन्न बेगमें युवा हो जानेपर भी अपने शाहजादोको राजधानीके राजनैतिक मामलोमे कुछ भी भाग लेनेसे सदैव रोकती रहती थी। यदि कोई शाहजादा राज्यके मामलोमे ठीक तरह भाग लेता था तो उसके सम्बन्धमे अपने पिताके विरुद्ध षड्यन्त्र करनेकी आशका की जाने लगती थी। जहाँ शासनकी जिम्मेदारी एक मन्त्री-मण्डलपर हो, वहाँ ही वशपरम्परागत राजतन्त्र किसी प्रकार स्थायी हो सकता है, क्योकि राजसिंहासनपर बैठनेवालेके दुराचारो या उसकी अयोग्यतापर

ऐसा जिम्मेदार मन्त्री-मण्डल ही परदा डाल सकता है।" "मुगल सम्राट् ऐसा मत्री-मण्डल कभी सगठित नही कर सके। अपने शाही दरबारमे वहुतायतसे आ जुटनेवाले ऐसे साहसिकोके दलपर ही सम्राट्को निभर रहना पडता था, जिनका प्रमुख उद्देश्य तथा कार्य अपने सम्राट्का मनोरजन करना ही होता था, वे किमी भी प्रकार आधुनिक ढगके (केविनेट) मन्त्री-मण्डलकी तरह कार्य नही कर सकते थे। वश-परम्परागत कुलीन उच्च घरानोको उन्नत करते रहनेकी नीतिको मुगलोने कभी नही अपनाया।"

कुरानके अनुसार मुसलमानी शासन-व्यवस्था सैनिक शासन ही है, राज्यके सब मनुष्य इस्लाम धमके सच्चे सैनिक होते हैं और सम्राट् (खलीफा) उनका सेनापति होता है। सेनामे साधारण सैनिकोंके साथ अन्य अफसरोको भी कोई अधिकार नही होता है कि वे अपने सर्वोच्च सेनानायकसे कुछ भी पूछें-ताछें या किसी मामलेपर उससे विवाद कर सकें। खलीफा बादशाह ईश्वरकी ही प्रतिच्छाया (जिल्ला-इ-सुभानी) होता है, और ईश्वरके दरबारमे "क्यो या कैसे" पूछनेकी बात ही नही होती है। बादशाहका दरबार ईश्वरके दरबारका ही प्रतिरूप (नमूना-इ-दरबार-इ इलाही) होता है, एव बादशाहके शासनमे भी वही सब कुछ होना चाहिए। मुसलमानी शासन-व्यवस्थाके मूल तत्त्वोके अनुसार हिन्दुओ तथा अन्य गैर-मुसलमान भी राष्ट्रके रूपमे सगठित सैनिक भ्रातृत्व अथवा सैनिकोका एक स्थायी पडाव ही था।

१४. रहन-सहन तथा आदर्शोंकी विभिन्नताके कारण हिन्दुओ और मुसलमानोंका एकीकरण असम्भव हो गया

मुसलमानी राजनीतिके मूल सिद्धान्तोंके अनुसार अल्पसख्यकोको कोई राजनैतिक अधिकार प्राप्त हो ही नही सकते। राजकीय सत्ता बहु-सख्यक प्रमुख जातिको ही प्राप्त होनी चाहिए तथा सारे विभिन्न धर्मों, मतो तथा रहन-सहनको पूणतया दबा समान धम तथा सामाजिक जीवन की स्थापना कर उस राज्यमे एकान्वित जातिकी सृष्टि की जानी चाहिए। ऐसी परिस्थितिमे केवल राजनैतिक आधारपर ही कोई सगठन करनेकी न तो कोई सोच सकता था और न तब वैसा सम्भव ही हो सकता था।

राजनैतिक कारणोंसे दलित तथा शासकीय दृष्टिसे वेहूदा मानी जानेवाली जातियाँ भारतमे तो अत्यधिक बहुसख्यक थी और प्रमुख शासक जातिकी सख्याकी तुलनामे उनका अनुपात तीन गुनेसे भी अधिक हो जाता था; साथ ही आर्थिक दृष्टिसे वे अपने शासकोसे कही अधिक सुयोग्य, समृद्ध तथा धन पैदा करनेवाले होते थे, और शारीरिक शक्ति या बुद्धिमे भी वे मुसलमानोंसे किसी प्रकार कम नही थे।

कई सदियोंके बीत जानेपर भी इन दोनो जातियोमे किसी प्रकारका समन्वय हो सकना सम्भव नही हो पाया, क्योंकि दोनोंके आदर्श तथा रहन सहन एक दूसरेसे सर्वथा विपरीत थे। हिन्दू एकान्तप्रिय, सहिष्णु और अध्यात्मवादी होता है; अपने व्यक्तिगत प्रयत्नो, अप्रकट साधना तथा एकाकी तपके द्वारा आत्म-साक्षात्कार कर स्वय मोक्ष प्राप्ति करना ही उसका सर्वोच्च ध्येय रहता है। उसकी दृष्टिमे जन्म एक अभिशाप तथा उसके सारे मानव सगी-साथी उसे अपने सच्चे ध्येयसे भ्रमित करनेवाले कारण-मात्र हैं। उसके विचारानुसार जीवनका सच्चा सुख प्राप्त करनेके लिए ईश्वरदत्त उपहारोके उपभोगके स्थानपर उनका परित्याग तथा अपने भावोंके उल्लासपूर्ण विकासकी अपेक्षा उनका पूर्ण दमन ही अत्यावश्यक होता है। इसके विपरीत प्रत्येक मुसलमानको यह सिखाया जाता है कि यदि वह इस्लाम धर्मकी सशक्त लडाकू सेनाका सैनिक नही बन सका तो उसका जीवन ही व्यर्थ है। ईश्वरोपासना भी उसे दूसरोंके साथ दलबद्ध होकर ही करनी चाहिए। जिहाद द्वारा अन्य लोगोमे अपने धर्मके प्रचार और उसमे उनके काफिरी धर्मका नाश करनेके लिए तत्परतापूर्वक प्रयत्न करके उसे अपने धर्ममे अपनी दृढ आस्थाका सुस्पष्ट प्रमाण देना चाहिए। वह एक धर्म-प्रचारक है, एव अपने पडोसियोकी आत्माओंके कल्याणकी ओरसे वह कदापि उदासीन नही रह सकता है, प्रत्युत जो भी भौतिक तथा आध्यात्मिक साधन उसे प्राप्य हो उन सबका प्रयोग कर अपने पडोसियोंके कल्याणके लिए उसे अपना कर्तव्य पूरा करना चाहिए। पुन इस्लाम धर्ममे इस बातका सुस्पष्ट रूपसे प्रतिपादन किया गया है कि इस ससारमे जन्म लेना सर्वथा अच्छा है और उनके उपयोगके लिए ही ईश्वरने यह जगत् अपने सच्चे धर्मानुयायियोको उत्तराधिकारमे दिया है।

उनमे पाए जानेवाले व्यावहारिक दृष्टिकोण और सामाजिक एकताके

कारण ही मुसलमान साहित्यके अतिरिक्त अपनी कलाओं और संस्कृतिको हिन्दुओंसे कहीं अधिक विकसित तथा समुन्नत कर सके थे। मुसलमानोंके मनोरंजनके साधनोंमें अधिक सरसता और विभिन्नता पाई जाती है। मुगल-कालमें हिन्दू राजा रईस भी ऐश्वर्य विलासकी ओर झुके थे, परन्तु उनका यह प्रयत्न मुसलमान अमीरोंकी बहुत ही भद्दी नकलसे अधिक नहीं बन सका। भिखमंगों और मेहनत-मजदूरी करनेवालोंके सिवाय अधिकतर मुसलमान जनताका आचरण विशेष सभ्य और उनका रहन-सहन अधिक खर्चीला होता है, इसके विपरीत उसी सामाजिक स्तरके हिन्दू अधिक धनी होते हुए भी मुसलमानोंकी अपेक्षा कहीं अशिष्ट और असंस्कृत होते हैं। निम्न श्रेणीके हिन्दू निस्सन्देह उसी वर्गके मुसलमानोंसे अधिक स्वच्छ और बुद्धिमान् होते हैं।

१५. औरंगजेबके शासन-कालमें हिन्दुओंपर राजनैतिक दमन तथा उनका पददलित किया जाना

सहभोज सम्बन्धी रोकटोकके साथ ही धार्मिक सिद्धान्तों और कृत्योंमें विभिन्नता, आपसमें शादी-ब्याह करनेका निषेध, तथा सांसारिक जीवन सम्बन्धी दृष्टि-कोणमें विपरीतताके कारण भी हिन्दू-मुसलमानोंमें एकान्वय होना सर्वथा असम्भव था। पुनः कुरानमें दिए आदेशोंके अनुसार चलाए जानेवाले कट्टर मुसलमानी शासनमें हिन्दुओंका जीवन ही सर्वथा असम्भव और भार स्वरूप हो जाता था। ईश्वरके सर्वोच्च सेवक होनेके नाते अपने कर्तव्यको पूरा-पूरा समझकर उसे कार्य-रूपमें परिणत करते समय, अनुकरणीय सच्चरित्रता तथा धार्मिक जोशवाला कोई बादशाह, पैसे भी क्षिथक या किसीके प्रति विशेष कृपा दिखाए बिना, यदि अपनी नीतिको तर्कसम्मत चरम सीमा तक ले जाता है, तब उस राजनीतिका अन्तिम परिणाम क्या होता है, इसका सबसे अच्छा उदाहरण हमें औरंगजेबमें देखनेको मिलता है। जिन पाठशालाओंमें हिन्दू शास्त्रोंका पठन पाठन होता था, उन्हें उसने बन्द करवा दिया। हिन्दुओंके मन्दिर तुड़वा डाले गए। हिन्दओंके मेलोंपर रोक लगा दी गई। अपने रहन-सहन द्वारा उन्हें अपने दलित होनेका सार्वजनिक रूपसे प्रदर्शन करना पड़ता था। साथ ही विशेष करों द्वारा उनपर आर्थिक भार भी बहुत अधिक डाल दिया गया था। आठवें अध्यायमें पहिले ही बताया जा चुका है कि उन्हें अब सरकारी नौकरी भी नहीं मिल सकती थी।

इस प्रकार औरगजेबके राज्यमे हिन्दुओको अपना जीवन अज्ञानके अन्धकारमे ही बिताना पडता था। वे न तो अपने धर्मसे कोई सान्त्वना प्राप्त कर सकते थे और न उनका अपना कोई सामाजिक सगठन ही बन सकता था। सार्वजनिक आमोद-प्रमोद भी उनके लिए निषिद्ध थे। राज्य के अनेको कर उनका स्वार्जित धन भी उनके पास नही रहने देते थे। स्वच्छन्द स्वाभाविक गति-विधिसे तथा समुचित सुयोगोके प्राप्त होते रहनेसे उत्पन्न होनेवाला मानवीय आत्म-विश्वास भी उनम नही रहने दिया गया था। सक्षेपमे उन्हे जीवन भर सार्वजनिक अपमान और राजनैतिक असमर्थताओका निरन्तर सामना करना पडता था। जहा तक वह हिन्दू बना रहता था, वहाँ तक स्वर्ग और पृथ्वी दोनोके द्वार उस मानवके लिए बन्द थे। अतएव औरगजेबके शासनका परिणाम यह हुआ कि हिन्दू निरन्तर विद्रोह करनेके लिए उत्तेजित होते गए। यही नही, हिन्दुओ की वृद्धि, उनके सगठन और उनके आर्थिक साधन, सबका ही ह्रास होता गया, तथा साम्राज्यकी दो तिहाई आबादीके इस पतनसे वह साम्राज्य भी अशक्त हो गया।

१६ भारतमे मुसलमानोंका पतन, उसके कारण

औरगजेबकी इस नीतिसे मुसलमान जनताको भी कोई लाभ नही पहुँचा, परन्तु उसका दूसरा ही कारण था। तुर्क केवल सैनिक ही बन सकते थे, उन्हे दूसरा कोई काम धधा नही आता था, एव सारे वयस्क तुर्कोंका सेनामे भर्ती होना स्वाभाविक ही था, युद्ध ही उनका एकमात्र पेशा था। स्थायी रूपसे सैनिक बननेवालोंके लिए लगातार गार्हस्थ्य जीवन बिता सकना कदापि सम्भव नही। मुगल कहे जानेवाले शासक वर्गके लोग वास्तवम तुर्क ही थे। साम्राज्यका शासन-सगठन भी प्रधान तथा सैनिक ढाचेपर बना हुआ था। पुन समाजका नैतिक सौजन्य बहुत कुछ सैनिकोंके आचार-विचारपर ही निर्भर रहता है। अतएव मुगल कालीन मुसलमानी समाजका सारा जीवन और सेनासे असम्बद्ध मुसल मान नागरिकोका रहन-सहन भी छावनीमे अस्थायी रूपसे रहनेवाले सैनिकोका-सा ही होता था।

भारतमे मुसलमानोको जो विशेष स्थिति प्राप्त थी, उसीसे उनका बौद्धिक पतन भी बहुत शीघ्रताके साथ होने लगा। वे भारतमे स्थायी

रूपसे बस गए थे। उनमेंसे कई तो वास्तवमे भारतीय ही थे। तब तक सब हीकी शकल-सूरत, उनके आचार-विचार, रीति रस्मे, आदि भी भारतीय बन चुके थे। तथापि उनके धार्मिक गुरु उन्हे प्राचीन अरबकी ही ओर आकर्षित करते थे, और मानसिक भोजनके लिए पैगम्बरके सदियो पुराने गए-बीते युगका ही आसरा लेनेके लिए उन्हे कहते थे। उनकी धार्मिक भाषा अरबी ही हो सकती थी, किन्तु भारतके मुसलमानोमे एक फी सदी भी अच्छी तरह अरबी नही जानते थे। उधर उनकी सास्कृतिक भाषा फारसी थी, जिसे कुछ अधिक मुसलमानोने कठिनाईके साथ सीख ली थी और उसे बहुत ही अशुद्ध बोलते थे, जिसे सुनकर ईरानमे पैदा हुए लोग हँसी उडाकर उनका तिरस्कार भी करते थे। साहित्यिक लिखा-पढीके लिए भारतीय भाषाओको काममे लेना १८वी शताब्दीके बाद तक भारतीय मुसलमान अपने लिए अपमानजनक समझते थे। अतएव इस जातिके अत्यधिक लोगोके लिए उनका अपना कोई साहित्य था ही नही। बहुत ही थोडे लोग आसानीसे फारसी बोल या लिख-पढ सकते थे, एव उनके सिवाय दूसरोकी शिक्षा इसी कारण रुक रुक जाती थी और अपने व्यक्तिगत जीवनमे भी उन्हे कोई बौद्धिक आनन्द नही प्राप्त हो सकता था। निरन्तर बढनेवाला सजीव धार्मिक साहित्य भी उन्हे नही प्राप्त हो सकता था। हिन्दुस्तानीमे लिखी गई प्रेम सम्बन्धी गजलो या भक्तिपूर्ण गीतो और फारसीमे लिखे गए सूफी काव्यसे ही न तो सारी जातिके सर्वव्यापी अज्ञानको दूर किया जा सकता है और न उनसे समाजमे सस्कृतिका प्रसार ही हो सकता, इस प्रकारके कामोंके लिए वे सर्वथा अनुपयुक्त थे।

यो प्रत्येक कट्टर मुसलमानने सदैव यही अनुभव किया कि वह भारतमे रहता अवश्य था, परन्तु वह भारतका नही था। अपनी इस जन्मभूमि भारतके साथ अपना कोई भी सम्बन्ध स्थापित करनेका उसे साहस भी नही हो सकता था, क्योकि उसे यही सिखाया गया था कि ऐसा करनेसे उसकी आत्माका नाश हो जावेगा। इस देशकी परम्पराओको, यहाकी भाषा तथा सास्कृतिक विशेषताओको उसे कदापि नही अपनाना चाहिए, ये सारी बाते उसे ईरान और अरबसे ही लेनी चाहिए। अपने दीवानी और फौजदारी कानूनके लिए भी उसे बगदाद तथा काहिराके न्यायज्ञोंके ग्रन्थ तथा वहाके न्यायाधीशोंके निर्णयोका ही

आसरा लेना चाहिए। भारतमे रहनेवाला मुसलमान बौद्धिक दृष्टिसे सर्वथा विदेशी था, वह अपने आपको यहाँके वातावरणके उपयुक्त नही बना सका। सभ्य समाजके निर्देशन तथा मानव जीवनको व्यवस्थाके लिए कुरानमे दिए गए आदेश खानाबदोशका जीवन बितानेवाले मनुष्यो के समाजके उपयुक्त गए-बीते युगके थे। अकबर जैसे बुद्धिवादीने तभी यह तर्क किया था कि जिस देशकी अरबसे कोई भी समानता नही थी, वहा १६वी और १७वी शताब्दियोमे रहनेवालोके लिए कुरानके ये आदेश अवश्य पालनीय बनाना सर्वथा अनुचित था।

इस विदेशीय और बिलकुल ही अव्यावहारिक आदर्शके लिए यो अस्वाभाविक परिश्रम करनेसे भारतीय मुसलमानामे जो बौद्धिक शून्यता आ गई थी, उससे उनकी मानसिक और सामाजिक उन्नति ही नही रुक गई, परन्तु उससे कई एक अहितकर कुरीतियाका उनके हृदयोमे उत्पन्न होना और वहा उनका जड जमा लेना एक अवश्यम्भावी बात हो गई। अपने व्यक्तिगत धर्म तथा एक जीवित ज्वलन्त विश्वासके लिए मानव हृदयमे चिरकालसे जो तीव्र उत्कण्ठा चली आ रही है, उसको शान्त करनेके लिए प्रति दिन अरबी पुस्तकका केवल पाठ कर लेना (हिफ्ज इ-कलाम अल्लाह) या जमैयतके साथ नमाज पढनेकी वही उबानेवाली शारीरिक कसरत प्रतिदिन पांच बार करना ही किसी प्रकार काफी नही होता है। अतएव वे प्यासी आत्माएँ कुछ भी ख्यातिवाले अपने पडोसी जीवित सन्तो या भूतकालीन सुप्रसिद्ध सन्तोकी कब्रोकी देखभाल करने-वाले उनके लोभी उत्तराधिकारियोके पास पहुँचो, क्योकि उन दोनोंके ही बारेमे यह विश्वास किया जाता था कि वे चमत्कार कर सकते थे।

कुरान और सुन्नियोके धर्म-शास्त्रकी व्यवस्था यहूदी जातिके लागोने की थी, जिनका जातीय जीवन और चाल-चलन भारतीयोसे स्पष्टतया विभिन्न है, एव केवल इसी कारण कि भारतीय जातिके कुछ लोगोने अरबोंके इस धर्मको स्वीकार कर लिया था, उनमे पाए जानेवाले ये जातीय भेद किसी भी प्रकार दूर नही हो सकते थे। भारतमे प्रचलित इस्लाम धर्मकी ये कभी न पूरी हो सकनेवाली कमिया थी।

१७. हिन्दू समाजकी अवनति और उसकी स्वभावगत कमजोरियाँ

मध्यकालीन हिन्दुओकी दशा भी इतनी ही दु खद थी। उनका एव

राष्ट्रके रूपमे सगठित होना तो दूर रहा, वे अपना सुगठित सम्प्रदाय भी नही बना सकते थे। जनेऊ पहनने, वेद पाठ कर सकने, सार्वजनिक जलाशयो और मन्दिरोमे प्रवेश पाने, छुआछूत और सुदूर दक्षिणमे सामने आने तककी योग्यताको लेकर निरन्तर चलनेवाले जातीय झगडोंके कारण सारा हिन्दू समाज अनगिनित छोटी-छोटी पूर्णतया विभिन्न जातियोमे बँटा हुआ था एव हिन्दुओमे मुसलमानोकी-सी सामाजिक एकता होना एक बिलकुल ही अनहोनी बात थी। समय और सम्पन्नताके साथ हिन्दुओके ये भीतरी भेद भाव बराबर बढते ही गए। मुसलमानी शासन-कालमे अनेकानेक भीतरी प्रवृत्तियोंके फलस्वरूप प्रत्येक जातिमे निरन्तर बनने वाली नई नई उपजातियोसे हिन्दू समाज और भी अधिक अशक्त हो गया।

हिन्दुओके उद्धारके लिए इस समय कोई भी ज्ञान-सम्पन्न देश प्रेमी धर्माचार्य नही पैदा हुआ। छिन्न-भिन्न कर देनेकी यह प्रवृत्ति समाजके साथ ही हिन्दू धर्ममे भी पाई जाती है। मोक्ष मार्ग सम्बन्धी हिन्दू धर्मके मूल सिद्धान्त ऐसे हैं कि उनके कारण हिन्दू धार्मिक समाजमे न तो धर्माचार्योका कोई सशक्त दल बन सकता है, और न ईसाई धार्मिक सग ठनके समान यहाँ किसी एकीभूत शासकीय धार्मिक सत्ताका सगठन ही किया जा सकता है। अपना-अपना रास्ता लेनेवाले ये असगठित धर्म-जिज्ञासु सरलतापूर्वक झूठे ढोगियो और विषयासक्त रगे सियारोके पजोमे जा फँसते हैं। वल्लभाचार्य सम्प्रदाय की धार्मिक प्रक्रियाओमे अन्तत जाकर जिस प्रकार मानव-पूजाको अपनाया गया था, या कर्ताभज और अन्य सम्प्रदायवाले जैसे गुरु-पूजा करते हैं, या मन्दिरोमे देवदासियो तथा मुरलियोके रहनेसे वहाँ जो अनाचार फैलता है, इन सब बातो तथा अन्य निन्दनीय आचारवाले छोटे-छोटे सम्प्रदायोकी भी उपेक्षा करके यदि हम करोडो साधारण मूर्ति-पूजकोकी ओर दृष्टि डालें तो हमे देख पडता है कि हिन्दू पण्डे पुजारी इन पूज्य मूर्तियोका ऐसा प्रदर्शन करते हैं, जिससे अनेक आस्थावान् भक्त पूजकोमे बुद्धिका विकास नही होने पाता है। ये मूर्तियाँ भोजन करती हैं, सोती है, (जगन्नाथ जैसी मूर्तिया प्रति वर्ष एक सप्ताह तक) ज्वर पीडित भी रहती हैं, और ऐसे ऐसे कामुकतामय नृत्य देखती हैं जिन्हे देखकर अवधके नवाबको भी ईर्ष्या होती और अपने हरममें जिनका अनुकरण करवानेको कुतुबशाह भी लालायित हो उठता। जन-साधारण द्वारा माने जानेवाले सामान्य हिन्दू धर्ममे कोई सुधार

सम्भव नही था। उसमे दृढ आस्था न रखनेवाले ऐसे लोगोके छोटे-छोटे दल ही हिन्दू धममे इन आवश्यक सुधारोको अपना सकते थे, जो सत्यको अपनाकर उसका अनुसरण करनेमे सब-कुछ छोड देनेको तत्पर रहते थे। किन्तु ऐसे सुधारक दलोमे भी दो-तीन पीढियोंके वाद गुरु-पूजाका पूण प्राधान्य हो जाता था।

१८ भारतमें हिन्दू और मुसलमान किस प्रकार साथ-साथ रहते थे, यदा कदा मेल हो जाता था, परन्तु आपसी युद्धका अप्रकट डर सदैव बना रहता

ऊपर जो कुछ लिखा जा चुका है, वह सब होते हुए भी कई एक वातोमे हिन्दू और मुसलमान दोनो ही समाजोका एक दूसरेसे सम्वन्ध आए विना नही रहता। पूर्ण ब्रह्म परमात्माकी उपासना, सासारिक भोग-विलासका त्याग और सव प्राणियोके प्रति दयाके सच्चे धार्मिक आदश दोनो ही धर्मोमे समान रूपसे पाए जाते थे। किन्तु धर्मान्ध व्यक्ति तथा जनसाधारणके लिए इन ऊँचे विचारो तक उठना कदापि सम्भव नही था। कठोर तपस्या करनेवाले या सिद्धि प्राप्त चमत्कार कर सकनेवाले प्रसिद्ध मुसलमान सन्तोको हिन्दू राजा रईस और साधारण जनता भी आदरकी दृष्टिसे देखते थे। इसी प्रकार सूफी मत भी इन दोनो धर्मावलम्बियोको एकत्र कर उनमे मेल उत्पन्न करता था। किन्तु सूफी मत प्रधानतया केवल भावनापूण बौद्धिक सुखास्वाद था, वह कोई जीवनपूण धर्म नही था, पुन सूफी मतका प्रभाव इने गिने पढे-लिखो और अधिकारी वगके लोगो तक ही सीमित था।

गम्भीर एक-ईश्वरवाद और विश्व-व्यापी मानव भ्रातृत्वकी ऊँची भावनाओको जन-साधारण ठीक तरह समझ भी नही सकते थे। विचार वान् तत्वज्ञानियोंकी अपेक्षा धर्मान्ध व्यक्तियोका जनताके हृदयपर अधिक अधिकार था। प्रारम्भमे हिन्दू और मुसलमानो या मुसलमानोमे भी शिया और सुन्नियोमे आपसी झगडे चलते रहे, जिनमे राज्यकी सेना सदैव मुसलमानो और उनमे भी कट्टर सुन्नियोका पक्ष लेती थी। कुछ समय वाद प्रत्येक वस्तीके विभिन्न धर्मों या मतोवाले निम्न श्रेणीके लोगोमे आपसी समझौता हो गया और हर धम या मतवालोने अपने-अपने आधकारो तथा मर्यादाओकी सीमाएँ समझ ली, जो यथेष्ट समय वीतनेपर

पवित्र रीति रिवाजके रूपमे मानी जाने लगी। इस प्रकार अपनी इन निश्चित सकीण सीमाओमे वे मिल-जुल कर रहने लगे। किन्तु जहाँ तक स्थानीय समाज स्थिर रहता था वहाँ तक ही यह धार्मिक विराम-सन्धि बनी रहती थी। दोनो धमवालोकी सख्याओ या उनके विचारोमे कुछ भी उलट-फेर होने, बाहरसे किसी कट्टर धम प्रचारकके वहा आने, या किसी कट्टर शासकके गद्दीपर बैठनेके फलस्वरूप जन-समूहकी धार्मिक असहनशीलताकी सोई हुई भावनाएँ फिर भडक उठती थी, जिनके उदाहरण सन् १६८५मे श्रीनगरमे (कश्मीरमे) शियाओका सव-सहार, औरगजेबका हिन्दू मन्दिरोको ध्वस तथा भ्रष्ट करवाना, मालवाके राजपूतोका जजिया वसूल करनेवालेकी दाढी उखडवा डालना वहुत ही आवेशपूर्ण कई राठौड और मराठे शासकोका मसजिदें तुडवाकर बदला लेना, जैसी घटनाओमे देख पडते हैं। अतएव औरगजेबके शासन-कालमे मिश्रित आबादीवाली हर एक बस्तीके भारतीय समाजकी हालत निरन्तर डावाडोल ही बनी रहती थी।

१९ भारतीय लोगोमे प्रगतिकी भावनाका अभाव, जिससे उनका ह्रास

अन्तत मुगल कालीन भारतीय लोग, हिन्दू और मुसलमान दोनो ही गतिहीन थे, अपने पूवजोकी बुद्धिमानीकी प्रशसा कर अपने युगको निकृष्ट समझते थे तथा उसका तिरस्कार करते थे। अतएव हर प्रकारके नये प्रयोगो या स्वतन्त्र विचारोकी निन्दा ही की जाती थी और उन्हे पिछले समयके महापुरुषोकी पूजनीय प्रमाण-स्वरूप बातोपर धम विरुद्ध शकाएँ उठाना तथा अपने समकालीन युगके छोटी बुद्धिवाले उद्धत लोगोका उनकी तुलनामे अपना महत्त्व बतानेकी ढीठता करना ही समझा जाता था। अकबरकी मृत्युके साथ ही भारतमे प्रगतिकी भावनाका अन्त हो गया। उसके बाद भारतीय सस्कृति स्थिर ही बनी रही, और उसमे जब कोई भी उन्नति करना सम्भव नही रहा, तब उस सस्कृतिका ह्रास होना सवथा अवश्यम्भावी ही हो जाता है।

"इस्लामकी लडाईके कारण उस धमके अनुयायी सब ही देशोमे एक हद तक बराबर सफल होते गए, किन्तु वही तक जाकर उनकी उन्नति रुक गई, जब कि जीवित जगत्का नियम आगे भी उन्नति करते

हो जाना है। युरोपमे बराबर उन्नति होती जा रही थी, परन्तु इधर उसकी तुलनामे प्रगति विहीन पूर्वी देश निन्तर पिछडते ही जा रहे थे। यो प्रत्येक बीते हुए वर्षके साथ एशिया और यूरोपके ज्ञान, सगठन, सचित साधनो और प्राप्त योग्यतामे दूरी अधिकाधिक बढती ही गई, जिससे युरोपीय लोगोका मुकाबला करना एशियाई लोगोके लिए दिनोदिन अधिक कठिन होता गया। अपने ही समाजमे जिस प्रकार अकर्मण्य आत्म सन्तुष्ट घरानोको पीछे ढकेलकर साहसी और उद्योगी घराने स्वय उसके नेता बन जाते हैं, उसी प्रकार ससारमे भी प्रगतिशील जातिया पुरातनप्रेमी जातियोको निकाल बाहर कर उनका स्थान स्वय ग्रहण करती हैं। अतएव अग्रेज़ोका मुगल साम्राज्यको जीतना समूचे अफ्रीका और एशियापर यूरोपीय जातियोके अवश्यम्भावी आधिपत्यकी प्रक्रियाका ही एक पहलू मात्र था।"

(मेरा ग्रन्थ, 'मुगल एडमिनिस्ट्रेशन', तीसरा सस्करण, पृष्ठ २५५-६)।

२० औरगजेबके शासन-कालका महत्त्व : किस प्रकार भारतीय राष्ट्र सगठित हो सकता है ?

पचास वर्ष लम्बे इस उद्योगपूर्ण शासन-कालके सविस्तार अध्ययनसे एक ही सत्य हमारे सामने सुस्पष्ट हो जाता है। यदि भारत कभी एक सगठित राष्ट्रकी जन्म भूमि बनकर भीतरी शान्ति बनाए रखना, अपनी बाहरी सीमाओकी ठीक तरह सुरक्षा करना, अपने आर्थिक साधनोकी पूरी-पूरी उन्नति तथा अपने साहित्य, कला एव विज्ञानका समुचित विकास करना चाहता है तो हिन्दू और इस्लाम दोनो ही धर्मोका पुर्नजन्म अत्यावश्यक होगा। हर एक धर्मको नव-जागरण और साधनाकी बहुत ही कडी तपस्याएँ करनी होगी, तथा तर्क एव विज्ञानके आदेशानुसार उनका अत्यावश्यक कायाकल्प करवाना होगा। स्मरणीय कि विजेता कमालपाशाने इसी शताब्दीके प्रारम्भिक युगोमे यह बात करके दिखा दी कि इस्लाम धर्मका पुनर्जन्म सर्वथा असम्भव नही है। गाज़ी मुस्तफा कमालपाशाने यह प्रमाणित कर दिया है कि अपने समयका सबसे बडा मुसलमानी राज्य भी अपने सविधानको धर्म-निरपेक्ष बना सकता है, बहु विवाह और स्त्रियाको बलपूर्वक पर्देमे रखनेकी प्रथाओका अन्त कर

सकता है, सब धर्मावलम्बियोंको समान राजनैतिक अधिकार दे सकता है और फिर भी वह देश मुसलमानोंका ही राज्य बना रह सकता है।

औरंगजेबकी प्रजा उनसे कहीं अधिक सम्मिश्रित थी, सारे भारतीय ससारपर अकेले औरंगजेबका ही एकाधिपत्य था और उसके इस साम्राज्यपर अधिकार करनेके लिए लालायित युरोपीय राष्ट्र भी तब वहाँ नाक लगाए नहीं बैठे थे, तथापि औरंगजेबने कमालपाशाके इस आदर्शको कार्य-रूपमे परिणत करनेका कोई प्रयत्न नहीं किया। राज्यारूढ होनेके समय औरंगजेबको कई विशेष सुविधाएँ प्राप्त थी, और उसकी प्रारम्भिक सुशिक्षा एव उसके उच्च नैतिक चरित्रने औरंगजेबको एक आदर्श मुसलमान बना दिया था, तथापि औरंगजेब एक विफल शासक ही रहा, जिससे ससारको इस शाश्वत सत्यका सुस्पष्ट प्रमाण मिल गया कि किसी देशकी जनताके महान् हुए बिना वह साम्राज्य न तो महान् बन सकता है और न किसी प्रकार स्थायी ही। किसी भी देशकी जनताके महान् बननेके लिए यह अत्यावश्यक है कि वह अपने यहाँकी सब जातियोंवालोंको समान अधिकार और समान साधन तथा सुविधाएँ दे और यों एक सुसगठित राष्ट्रका निर्माण करे। ऐसे राष्ट्रके सारे ही अगोंमे एक-जातीयताकी भावना होनी चाहिए, जीवन और विचारोंकी सारी मुख्य बातोंमे उनमें मतभेद नहीं होना चाहिए और साथ ही दूसरी छोटी-छोटी बातों या घरेलू जीवनमे पाई जानेवाली व्यक्तिगत विभिन्नताएँ भी सहर्ष सहन की जाती हों और यों व्यक्तिगत स्वाधीनताके आधारपर ही विभिन्न जातियोंकी स्वाधीनता स्वीकृत की गई हो। राष्ट्रीय हितोंको ही आगे बढाना ऐसे राष्ट्रके शासनका एकमात्र उद्देश्य होना चाहिए, उनके विरोधमे किन्हीं स्थानीय या साम्प्रदायिक हितोंकी पूर्ण उपेक्षा ही होनी चाहिए। ऐसे राष्ट्रके समाजके लिए यह अत्यावश्यक है कि बिना किसी डर या आशकाके तथा बिना किसी प्रकारकी रोक या बाधाके ज्ञानको विकसित करनेके लिए वह निरन्तर प्रयत्नशील रहे। साधुता, कल्याण और सत्यकी इस विशुद्ध ज्योतिको अपनानेसे ही भारतीय राष्ट्रीयताका पूर्ण विकास हो सकता है।

●

अध्याय २०

औरंगजेबका साम्राज्य : उसके साधन, व्यापार और उसकी शासन-व्यवस्था

१ मुगल साम्राज्य : उसका विस्तार और आमदनी

सन् १७०७ ई०मे जब औरगजेबकी मृत्यु हुई तब उसका सारा साम्राज्य २० विभिन्न प्रान्तो अथवा सूबोमे बँटा हुआ था, जिनमेसे १४ सूबे उत्तरी भारत अर्थात् हिन्दुस्तानमे थे तथा ६ सूबे दक्षिणमे थे, इनके सिवाय एक सूबा काबुलका था जो अफगानिस्तानके अन्तगत है। इन सब सूबोके नाम ये है—

(१) हिन्दुस्तानके सूबे—आगरा, अजमेर, इलाहाबाद, बगाल, बिहार, दिल्ली, गुजरात, कश्मीर, लाहौर, मालवा, मुलतान, उडीसा, अवध और थत्ता (अथवा सिन्ध)।

(२) दक्षिणके सूबे—खानदेश, बरार, औरगाबाद (जो पहिले अहमदनगर कहलाता था), बीदर (पुराना तेलगाना), बीजापुर और हैदराबाद।

एक शताब्दी पहिले सन् १६०५ ई०मे अकबरकी मृत्युके समय उत्तरी भारतके चौदहो सूबे तथा दक्षिणके पहिले दो सूबे मुगल साम्राज्यके अधीन हो चुके थे। अहमदनगरका सूबा तब नाम-मानके लिए ही मुगल साम्राज्यमे मिल गया था। शाही कागज पत्रोमे कधार अथवा दक्षिणी अफगानिस्तानको बहुत समय पहिले ही मुगल साम्राज्यका एक सूबा मान लिया गया था, परन्तु इस प्रदेशपर अधिकार बारम्बार बदलता रहता था, कभी उसपर ईरानके शाहका अधिकार हो जाता था और कभी वह फिर दिल्लीके मुगलोके हाथमे आ जाता। अन्तमे सन् १६४९ ई०मे वह सदाके लिए मुगलोके अधिकारसे निकल गया। जब मुगलोका उसपर पूर्ण अधिकार था तब भी कधार सूबा उपजाऊ नही था, एव उस

प्रान्तमें साम्राज्यको हानि ही उठानी पडती थी। काबुल अथवा उत्तरी अफगानिस्तानपर मुगलोंका आधिपत्य सन् १७३९ ई० तक बराबर बना रहा, तब नादिरशाहने उसे अपने अधीन कर लिया। किन्तु अकबरके समयमें उस सूबेकी वार्षिक आमदनी २० लाख रुपये ही थी, जो औरंगजेबके समयमें बढकर ८० लाख रुपये हो गई, किन्तु इसमेंसे बहुत ही थोडा रुपया वहाँसे वसूल हो पाता था। अतएव इस अध्यायमें अफगानिस्तानके इन दोनों सूबोंपर विचार नहीं किया जावेगा।

औरंगजेबके मुगल साम्राज्यमें उत्तरी और कश्मीर तथा हिन्दूकुशके दक्षिणका सारा ही अफगानिस्तान सम्मिलित था। दक्षिण-पश्चिममें गजनीसे कोई ३६ मील दक्षिणमें ईरान राज्यसे मुगल साम्राज्यकी सीमा मिलती थी। पश्चिमी तटपर यों कहनेको तो मुगल साम्राज्यकी सीमा पुर्तगालियोंके अधीन गोआके प्रदेशके उत्तरी सीमापर होती हुई भीतरकी ओर घुसकर कनाडा प्रदेशमें (बम्बई प्रान्तके कर्नाटकके) बेलगाँव जिले और तुंगभद्रा नदी तक पहुँच जाती थी। इसके बाद यह सीमा मैसूरके मध्यके लगभग पश्चिमसे पूर्वको जानेवाली रेखाके रूपमें चलती थी, परन्तु यहाँकी सीमाके लिए निरन्तर कशमकश चलती रहती थी और वह सदैव आगे-पीछे सरकती रहती थी। दक्षिण-पूर्वी अन्तिम सिरेपर पहुँचकर वह नीचेको झुक जाती थी और तंजावरके उत्तरमें कोलेरुण नदीके साथ-साथ चलती थी। उत्तर-पूर्वके सिरेपर गोहाटीसे दक्षिणमें बहनेवाली मोनास नदी मुगल साम्राज्य तथा स्वाधीन आसाम राज्यके बीचकी सीमाको निश्चित करती थी। किन्तु यह बात सदैव ध्यानमें रखनी चाहिए कि साम्राज्यकी दक्षिण पश्चिमी, दक्षिणी तथा दक्षिण-पूर्वी सीमाओंपर समूचे महाराष्ट्र, कनाडा, मैसूर और पूर्वी कर्नाटकमें सम्राट्के शासनके विरुद्ध कशमकश चलती ही रहती थी, जिससे इन भागोंके कई स्थानोंमें दो अमली शासन होता था और वहाँ एक ही साथ दो विभिन्न शासक या रुपया वसूल करनेवाले अधिकारी बने रहते थे। अंग्रेज और फरासीसी कोठियोंके कागज-पत्रोंमें ऐसे दो अमली शासनका बहुत ही दुःखजनक वर्णन मिलता है।

अकबरके समय अफगानिस्तानको छोडते हुए बाकी रहे सारे मुगल साम्राज्यकी आमदनी कुल मिलाकर १३ करोड २१ लाखकी होती थी, औरंगजेबके समय वह बढकर ३३ करोड २५ लाख हो गई। लगानके

रूपमे प्रमाण रूप या अधिक-से-अधिक जो कुछ भी वसूल हो सकता था उसकी कुल रकम इतनी होती थी, परन्तु यह पूरी रकम कभी वसूल नही होती थी और वास्तवमे असल आमदनी कम ही होती थी। ऊपर दी हुई आयमे केवल मालगुजारीकी ही आमदनी गिनी गई है, जकात, जज़िया, आदि करोसे प्राप्त होनेवाली सारी आमदनी इसके सिवाय ही थी। जकात करके रूपमे केवल मुसलमानोसे उनकी वार्षिक आमदनीका ४० वाँ हिस्सा अर्थात् ढाई रुपया सैंकडा वसूल होता था, उसकी सारी आय केवल धार्मिक दान पुण्य, आदिमे ही व्यय की जाती थी। औरंगज़ेबके शासन-कालमे विभिन्न करोसे गुजरात प्रान्तमें होनेवाली सरकारी आमदनीके आँकडोसे तुलनात्मक अनुपातका कुछ अनुमान लगाया जा सकता है,—मालगुज़ारी—११३ लाख रुपये, जज़िया—५ लाख रुपये, केवल सूरतके बन्दरगाहपर बाहरसे आनेवाले सामानपर लिए गए महसूलसे—१२ लाख रुपये। (मुगल साम्राज्यके दूसरे बन्दरगाहोके द्वारा बहुत ही कम विदेशी व्यापार होता था, शासन-कालके पिछले वर्षोंमे अवश्य हुगली और मछलीपट्टमके बन्दरगाहोका विदेशी व्यापार बढ गया था)। प्रान्तकी कितनी धरती 'खालसा शरीफ'मे थी और कितनी मनसबदारोको जागीरमे दी हुई थी इसका भी सन् १६९० ई०के लगभग-की सारे साम्राज्यकी मालगुजारी, आदिके इन आँकडोमे कुछ अन्दाज़ा लग सकता है,—जागीरोको निर्धारित मालगुज़ारी—२७ ६४ करोड, और खालसा भागकी निर्धारित मालगुजारी—५ ८१ करोड रुपये।

२. साम्राज्यके अमीर और राजा

मुगल साम्राज्यका शासन प्रबन्ध तथा सारी सैनिक-व्यवस्था ऐसे अधिकारियो द्वारा होती थी, जिनके नाम मुगल सेनाके मनसबदारोकी सूचीमे उनके मनसबके अनुसार क्रमश लिखे रहते थे। इस सूचीमे नाम मात्रके बीस हज़ार घुडसवारोंके मनसबसे लेकर केवल बीस (अकबरके समयमें दस) घुडसवारो तकके मनसबवालोंके नाम रहते थे। इनमेंसे तीन हज़ारीसे अधिकके मनसबवाले 'उमरा-इ-आज़म' अर्थात् बडे सेना नायक कहलाते थे। तीन हजारीसे कम मनसबवाले केवल 'मनसबदार' कहलाते थे।

	सन् १५५६ के लगभग	सन् १६२० के लगभग	सन् १६७४मे	सन् १६९० के लगभग
उमरा (तीन हजारी-से अधिक मनसव-वाले जिनमे शाह-जादे भी सम्मिलित हैं) —	६३	११२	९९	—
कुल सख्या, उमरा और मनसबदार सब मिलाकर—	१,८०३	२,९४५	८,०००	१४,४४९

इन आकडोसे ही यह स्पष्ट हो जावेगा कि औरगजेबके समय मनसब-दारोकी यह सूची कितनी अधिक बढ गई थी और उससे कितना ज्यादा आर्थिक भार पडता होगा।

औरगजेबके समय इन १४,४४९ मनसवदारोमेसे ७,०००के लगभग जागीरदार थे और ७,४५० नकदी, जिन्हे मनसबका वेतन नकद सिक्कोमे मिलता था, ये दोनो प्रकारके मनसबदारोकी सख्या लगभग आधी-आधी थी। शाहजहाके शासनकालमे प्रचलित किए गए नियमोके अनुसार यह आवश्यक होता था कि प्रत्येक मनसवदार निश्चित सख्याके एक चौथाई सैनिक अवश्य ही रखे। ऐसे रखे जानेवाले सैनिकोका वेतन शामिल करते हुए विभिन्न मनसबदारोको उनका वेतन आदि मिलाकर प्रति वर्ष नीचे लिखे अनुसार रुपया मिलता था।

७–हजारी	—	३ ५ लाख रुपये।
५–हजारी	—	२ ५ लाख रुपये।
हजारी	—	५० हजार रुपये।
२०का मनसबदार—		एक हजार रुपये।

सन् १६४७मे साम्राज्यके सैनिकोकी वास्तविक सख्या इस प्रकार थी —

२ लाख घुडसवार एकत्र हुए और जिनके घोडे दागे गए,
८ हजार मनसबदार,
७ हजार अहदी और बरकदाज,

१,८५,००० तावईन या शाहजादो, उमराओ और मनसवदारोके और घुडसवार,—और

४०,००० पैदल वन्दूकची, गोलदाज, आदि।

औरगजेबके समय ज्यो ज्यो नए युद्ध छिडते गए और जब दक्षिणको भी साम्राज्यमे सम्मिलित कर लिया गया, त्यो त्यो मुगल सैनिकोकी सख्या बढती ही गई, यहाँ तक कि सेनाके व्ययका भार उसकी आयके लिए असहनीय हो गया, और तब सैनिकोको समयपर वेतन भी नही मिलता था।

मुगल-साम्राज्यमे यह प्रथा प्रचलित थी कि शाही सेवा करते हुए जो कोई भी मर जाता था, उसकी सारी सम्पत्ति सम्राट् जब्त कर लेता था। इसके अनुसार अमीरोकी अपनी कोई वशपरम्परागत सम्पत्ति थी ही नही। इस तरह सारी सम्पत्ति जब्त किए जानेकी प्रथाका राजनैतिक परिणाम बहुत ही हानिकारक हुआ। इसी प्रथाके कारण भारतमे तब स्वाधीन वशपरम्परागत सामन्त वर्गकी स्थापना नही हो पाई और या यहाँके सम्राटोकी निरकुशतापर लग सकनेवाली सबसे शक्तिशाली रोक भी न रही। सामन्त वर्गके वशपरम्परागत होनेकी हालतमे प्रत्येक पीढी को अपनी पदवी और घरानेकी सम्पत्तिके लिए एकमात्र सम्राट्की कृपा-पर ही निर्भर नही रहना पडता, और तब वे साहसपूर्वक सम्राट्के अत्याचारोका विरोध भी कर सकते थे। इसी प्रथाके कारण मुगल अमीर बहुत ही स्वार्थी हो गए और उत्तराधिकारके लिए होनेवाले युद्धो या विदेशियोके आक्रमणके समय वे विजयी पक्षके साथ जा मिलनेमे बडी ही तत्परता दिखाते थे, क्योकि वे जानते थे कि उनके अधिकारकी धरती तथा उनकी निजी सम्पत्तिपर उनका हक कानून द्वारा भी किसी प्रकार सुनिश्चित तथा सुरक्षित नही था, किन्तु वे भी केवल उस समयके वास्तविक शासककी इच्छापर निभर रहते थे। मध्यकालीन भारतमे न तो कोई स्वाधीन अमीर या राजा ही थे और न प्रभावशाली सगक व्यापारी वर्ग ही कि वे तत्कालीन शासन-व्यवस्थामे सबसे ऊपर सर्व शक्तिमान सम्राट् और सबसे नीचे अनगिनित दरिद्री किसानो एव मज-दूरोके बीचमे अत्यावश्यक रुकावटोका काम दे सकते। ऐसी परिस्थितिमे इन साम्राज्योकी शासन-व्यवस्था अस्थायी तथा दोषपूर्ण ही रही।

३. उद्योग-धंधे और व्यापार

भारतमे अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनीके व्यापार प्रारम्भ करनेके बाद पहले साठ वर्षोंके (१६१२-१६७२) भारतसे बाहर जानेवाले भारतीय मालके मूल्यका औसत एक लाख पाउण्ड अथवा आठ लाख रुपये प्रति वर्षसे अधिकाशका नही था। सन् १६८१ ई०मे यह बढ गया और केवल बंगालसे ही २,३०,००० पाउण्डका माल बाहर गया। भारतमे व्यापार करनेवाली डच कम्पनीका व्यापार भी (१६९०मे) बहुत करके अंग्रेजी कम्पनीके बराबर था, पुर्तगालियोंका व्यापार अवश्य ही इन दोनोंसे कम था। समुद्र मार्ग द्वारा भारतीय भी बाहरी देशोंसे विशेष मात्रामे व्यापार करते थे इसका कोई प्रमाण नही मिलता है। थल मार्गसे ईरान, तुर्की और तिब्बतके साथ भी थोडा-बहुत व्यापार चलता ही रहता था। सोने-चादी, जैसे बहुमूल्य धातुओ तथा धनिकोंके ऐश्वर्य विलासकी कुछ वस्तुओंके अतिरिक्त विदेशोंसे बहुत ही थोडा माल तब भारतमे आता था, और उन सबके बदलेमे यहासे भेजा जाता था सूती कपडा तथा काली मिर्च, नील और शोरे, जैसी इनी-गिनी किस्मोका कच्चा माल। यो आर्थिक दृष्टिसे भारतकी हालत ठीक थी और वह बहुत कुछ आत्म-निर्भर ही था। (सी० जे० हैमिल्टन, ३२ ३३)।

सत्रहवी शताब्दीके पूर्वार्द्धमे अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनीका पूर्वीय देशोंके साथका व्यापार प्रधानतया पाच तरहके माल तक ही सीमित था। इगलैण्डके बाजारमे मलाया प्रायद्वीप और पूर्वी द्वीपोंके गरम मसालो, ईरानके कच्चे रेशम और भारतके शोरे और नीलकी बहुत माग रहती थी। बहुत सा पतला सूती कपडा और कुछ बना-बनाया रेशमी माल भी इगलैण्ड अवश्य जाता था, किन्तु अंग्रेजी कम्पनी जितना भी सूती माल भारतसे मोल लेती थी वह सारा ही इगलैण्डके लिए नही होता था, किन्तु उसका बहुत बडा भाग सुदूर-पूर्व तथा ईरान ले जाकर उसे वहां बेचती थी। विदेशी बाजारोमे बना-बनाया सूती कपडा केवल भारतसे ही पहुँचता था, किन्तु रेशमी मालके बारेमे भारतकी यह स्थिति नही थी। बहुत ही थोडा रेशमी माल यहाँसे बाहर जाता था। इगलैण्डमे कच्चा रेशम प्रधानतया ईरान और चीनसे ही आता था। १७वी शताब्दीके पूर्वार्द्धमे चीनके साथ रेशमका व्यापार बहुत बढ

गया और तब इगलैण्डमे आनेवाले बने बनाए रेशमी मालका अधिकतर हिस्सा चीनसे ही आने लगा। (सी० जे० हेमिल्टन, पृ० ३१-३२)।

मुगल कालमे विदेशोंसे भारतमे प्रधानतया बहुमूल्य धातु, चादी और सोना, ही आते थे, थोडा बहुत तावा और शीशा भी आ जाता था। इन सब धातुओंके लिए भारतको विदेशोपर ही निर्भर रहना पडता था। लोहा और इस्पात भारतमे प्राप्य थे, परन्तु विदेशोंसे यहा आनेवाले ये धातु सस्ते पडते थे एव उनकी भी माग यहाँ बनी रहती थी। भारतमे सारा बढिया ऊनी कपडा यूरप और विशेषकर फ्रासमे आता था, जिसे सकरलात कहते थे। विदेशोंसे आनेवाला बहुत-सा दोहरा कपडा तथा अन्य ऊनी माल भारतके शाही दरबार और यहाके धनिकोमे बिक जाता था। बाहरसे आनेवाली वस्तुओंमे घोडे भी कम महत्त्वके न थे। वे विशेषतया ईरानकी खाडीसे समुद्रकी राह, या खुरासन, मध्य एशिया और काबुलसे थल मार्ग द्वारा उत्तर-पश्चिमी घाटियोमेसे होकर भारत आते थे। पहाडी टट्टू, जिन्हे टागन या गुण्ट कहते है, पूर्वी हिमालयके राज्यो, तिब्बत और भूटानमे बगाल, कूचविहार, मोरग और अवध होते हुए आते थे। सर्दी के दिनोमे ताज़े और गर्मीके दिनोमे सूखे फल उत्तरी भारतमे बहुतायतसे पाए जाते थे, अतएव बहुत अधिक परिमाणमे वे मध्य एशिया, अफग़ानिस्तान और ईरानसे आते थे। गरम मसाले—लौंग, जायफल, दाल चीनी और इलायची—डच लोग हिन्द एशियाके पूर्वी टापुओसे लाकर यहा बेचते थे, ये मसाले उन्ही टापुओमे आते थे। भोग विलास और वैभवकी वस्तुएँ अनेकानेक विदेशोंसे आती थी, कस्तूरी और चीनीके बतन चीनसे, मोती ईरानकी खाडीमे बहरैन और लकासे, हाथी लका और पेगूसे, बढिया किस्मकी तम्बाकू अमेरिकासे, काचके बर्तन शराब और अनेकानेक कौतूहलोत्पादक वस्तुएँ यूरपसे, और दास अबीसीनियासे आते थे, किन्तु इन सबकी माँग बहुत कम और मूल्य बहुत अधिक होता था, जिससे वे बहुत ही कम परिमाणमे यहा आती थी। स्थानीय शासकोको एकाएक आवश्यकता पडनेपर युरोपीय व्यापारी कभी-कभी उन्हे कुछ तोपें और गोला-बारूद भी बेच देते थे। परन्तु इनका कोई नियमित व्यापार नही होता था, गैर-कानूनी होनेके कारण ये इने गिने सौदे प्राय बहुत ही गुप्त रूपसे किए जाते थे। हिमालय प्रदेशसे पहिले अवध होकर और बादम पटनाकी राहसे व्यापारी यात्रियोंके कुछ काफिले भारतमे आ जाया करते थे, टट्टुओ और भेडो

पर (!) लादे वे अपने साथ थोडे थोडे परिमाणमे सोना, तावा, कस्तूरी और यकाकी पूँछें (जो पखो या चँवरीके तौरपर काममे आती थी), तथा वेचनेको कुछ खाली पहाडी टट्टू भी ले आते थे। इनके वदलेमे वे यहाँसे नमक, रूई, काचके वतन, आदि अपने साथ ले जाते थे। पुतगाली ही पहिले-पहल यूरपमे वना हुआ कागज भारतमे लाए, एव वादमे डच लोग भी उसे लाने लगे (फिर भी अव तक उसे साधारणतया वोलचालमे 'पुतगाली कागज़' ही कहते है), इस युरोपीय कागज़की खपत दक्षिणके स्वाधीन राज्योमे वहुत होती थी। परन्तु उनके निजी उपयोगके लिए वहुत ही वढिया कागज वनानेके लिए कश्मीर तथा कुछ अन्य स्थानोम मुगल सम्राटोंके राजकीय कारखाने थे, उसी किस्मका कागज़ आज भी यूरपमे 'इण्डिया पेपर' कहलाता है। दफ्तरोंके साधारण काम तथा दूसरे लोगोंके निजी कायके लिए कागज़ी कहलानेवाले मुसलमान लोग आवश्यक कागज़ वना देते थे। प्रत्येक नगरमे कागज़ियोका यह उद्योग-धधा चलता रहता था और सूवोंके केन्द्रोंमे तो शहरसे लगा हुआ उनका अपना अलग पुरा ही होता था।

भारतसे उन दिनो विदेशोमे जानेवाली वस्तुओमे सवसे महत्त्वपूण था साधारण सूती कपडा, जिसे 'केलिको' कहते थे, यह या तो सादा होता था या छापा हुआ, जिसे 'छीट' कहते थे। पूर्वी टापुओमे इन छीटो की वहुत खपत होती थी, और १७वी शताब्दीके अन्त तक इगलैण्डमे भी इनकी माँग वहुत वढने लगी थी। महीन सूती कपडा 'मलमल' भी भारतसे ही जाता था। इनके अतिरिक्त शोरे, नील, रेशम और भोजन वनानेमे उपयोगी कुछ और मसालोंके साथ ही काली मिच जैसा कच्चा माल भारतसे ले जाते थे। हुगलीसे सफेद शक्कर, मछलीपट्टम् होकर हीरे और माणक, वगाल और मद्राससे दास, और इगलैण्डमे मोमवत्तियाँ वनानेके लिए सूतका धागा भी थोडे-थोडे परिणाममे वाहर जाता था। १७वी शताब्दीका अन्त होते-होते रेशमी तापता और कलावत्तूके कामके रेशमी कपडे वहुतायतसे वाहर जाने लगे और अग्रेज़ी कम्पनीके प्रयत्नोंसे वगालमे रेशमकी रगाई एव वुनाईके काममे वहुत सुधार हो गए। मछलीपट्टमूसे लेकर पाडीचेरी तकके मद्रासके सारे समुद्र तटपर और उसके वाद, यद्यपि वह प्रदेश इससे वहुत पीछे था, हुवलीसे लेकर कार-वारके सारे कन्नड देशमे भी तव भारतके सबसे अधिक माल पैदा करने-

वाले सूतके उद्योग धंधे थे। किन्तु गोलकुण्डा राज्यका अन्त होने तथा मराठोंके उत्थानके बाद इस प्रदेशमें जो युद्ध प्रारम्भ हुए उनसे यह सारा प्रदेश बरबाद हो गया और १८वी शताब्दीके प्रारम्भमें बंगाल ही सूतके उद्योग-धंधोंका प्रमुख केन्द्र बन गया।

४. मुगल साम्राज्यकी शासन-पद्धति

मुसलमानी राज्य वास्तवमें सैनिक शासन होता था, और अपने अस्तित्वके लिए उसे बादशाहकी निरकुंश सत्तापर ही निर्भर रहना पड़ता था क्योंकि युद्धके समय बादशाह ही मुसलमानोंका सर्वोच्च सेनापति होता था। उसके कोई नियमित मन्त्रि-मण्डल नहीं होता था। सम्राट्के बाद वजीर या दीवान ही राज्यका सबसे बड़ा अधिकारी होता था, दूसरे मन्त्री किसी भी तरह वजीर या दीवानके साथी नहीं माने जा सकते थे क्योंकि उनका पद निश्चित रूपसे उससे हीन होता था। दूसरे मन्त्रियोंकी जानकारीके बिना ही कई महत्वपूर्ण प्रश्नोंको सम्राट् और वजीर ही मिलकर तय कर डालते थे। साधारण मन्त्रियोंकी बात तो दूर रही वजीर स्वयं भी सम्राट्के आदेशोंपर किसी प्रकारकी रोक नहीं लगा सकता था, सम्राट्की इच्छापर ही उन पदोंपर उनका बना रहना निर्भर था। अतएव उस समयके मन्त्रीगण किसी भी प्रकार आधुनिक ढंगका मन्त्रीमण्डल (केबीनेट) नहीं बना सकते थे। यथार्थ मूल सिद्धान्तोंके अनुसार प्रत्येक मुसलमान बादशाह धर्म और राज्य दोनोंका ही समान रूपसे एकमात्र मुखिया होता है, अपनी प्रजाके लिए तो वह उस समयका खलीफा ही है।

मुगल शासनमें ये प्रधान महकमे होते थे —

१—साम्राज्यका कोष और माली विभाग, जिसका प्रबन्ध, 'दीवान' के हाथमें रहता था।

२—शाही दरबार और महलोंका विभाग, जिसकी देखभाल 'खान इ-सामान' करता था।

३—वेतन चुकाने और हिसाब दफ्तरका विभाग, जिसे 'बख्शी' सम्हालता था।

४—धार्मिक कानून, जिसका भार काजियोंका काजी उठाता था।

५—धार्मिक वृत्तियो और दान पुण्यका विभाग, जिसका प्रबन्ध सदरके हाथमे था।

६—सार्वजनिक आचारोको कुरानके अनुसार नियन्त्रित करनेका विभाग, जिसके अधिकार मुहतसिवको थे।

इनसे कुछ निम्नतर श्रेणीके परन्तु ऐसे ही महकमोंके समान थे —

७—तोपखाना, जिसका प्रधान मीर आतिश (या दारोगा इ-तोपखाना) होता था, और

८—खबरो और डाकका विभाग, जो डाक-चौकियोंके दारोगाकी देख रेखमे रहता था।

माली मामलो सम्बन्धी सारी लिखा-पढी, सूबोंसे तथा युद्ध क्षेत्रपर गई हुई सेनाओंसे आनेवाले सारे सरकारी कागज-पत्र शाही दीवानके पास ही पहुँचते थे, और जमाबन्दी निश्चित करने या मालगुजारी वसूल करने सम्बन्धी सारे प्रश्नोको भी वही तय करता था। विभिन्न सूबोंके दीवानाकी नियुक्ति तथा उनका नियन्त्रण भी उसीके हाथमे रहता था। कोई भी रुपया चुकाने सम्बन्धी सारे आदेशोपर उसके हस्ताक्षर होने आवश्यक थे। सम्राट्के आदेशोकी सूचना देनेके लिए वह स्वय 'हस्व-उल्-हुक्म' (सम्राटके आदेशसे लिखे गए पत्र) लिखता था, और कई बार महत्त्वपूण व्यक्तियो या विदेशी राज्योंके बादशाहोंके नाम लिखे जाने-वाले शाही पत्रोंके मसौदे भी वह बनाता था।

सेनासे सम्बद्ध या दूसरे महकमोमे नियुक्त सभी शाही अधिकारी शाही मनसबदार होते थे, एव उन सबके वेतनका हिसाब बख्शी ही करता था और तब उनको चुकानेको स्वीकृति भी बख्शीको देनी होती थी। चढाईपर गई हुई सेनाको वेतन चुकानेका काम भी बख्शीके विभाग-को करना पडता था। साम्राज्यके बहुत बढ जानेसे औरगजेबके शासन-कालके अन्तिम दिनोमे एक मुख्य बख्शी होता था, जो पहला बख्शी कहलाता था, और उसके हाथके नीचे तीन सहकारी होते थे जो क्रमश दूसरा, तीसरा और चौथा बख्शी कहलाते थे। चढाईपर जानेवाली प्रत्येक सेनापर उस बारके लिए एक प्रधान सेनापति नियुक्त किया जाता था। कई बार कुछ अधिकारियोको 'सिपहसालार'का खिताब दिया गया, परन्तु यह एक विशेष आदर-सूचक पदवी ही थी, सारी मुगल सेनाके

प्रधान सेनापतिका अधिकार उन लोगोको कभी सौंपा नही गया। समस्त मुगल सेनाका प्रधान सेनापति एकमात्र सम्राट् ही था।

शाही राजभवन-विभागका प्रमुख अधिकारी 'खान-इ-सामान' होता था। सम्राट्के निजी नौकरोकी देख-रेख, सम्राट्के दैनिक व्यय, भोजन, भण्डार आदिका सारा प्रवन्ध वही करता था। यात्राओंके समय वह सदैव सम्राट्के साथ जाता था। शाही कारखानो अथवा उद्योग-धधोंका प्रवन्ध एव उनके वेतन आदिका व्यय चुकानेका काम भी इसी विभागसे होता था।

सिद्धान्तत बादशाह ही सारे साम्राज्यका सर्वोच्च न्यायाधीश भी था, और हर एक बुधवारको वह स्वय मुकद्दमो मामलोकी सुनवाई करता था। किन्तु उसके इस न्यायालयमे किसी मामलेकी प्रारम्भिक सुनवाई नही होती थी। यह तो अपीलें सुनने या दूसरे न्यायाधीशो द्वारा दिए गए फैसलोपर पुनर्विचारका ही सर्वोच्च न्यायालय था। मुसलमानोंके सारेके सारे फौजदारी मामलो तथा बहुतसे दीवानी मुक-द्दमोकी सुनवाई प्रधान न्यायाधीशके रूपमे काजी करता था। मुसलमानी कानूनके अनुसार ही यह कार्यवाही चलती थी। काजीकी सहायताके लिए एक मुफ्ती रहता था, जो न्याय-शास्त्रपर अरबीमे लिखी गई पुस्त-कोको पढ-पढाकर उस मामलेके उपयुक्त आवश्यक कानूनी सिद्धान्तोंके सारको काजीके सम्मुख रख देता था, तब उन सब बातोपर विचार कर काजी अपना फैसला देता था।

शाही काजी 'काजी-उल्-कजात' कहलाता था। वह सदैव सम्राट्के साथ रहा करता था। प्रत्येक सूबेके नगरो या बडे-बडे गाँवोके स्थानीय काजियोको वही नियुक्त या पदच्युत करता था।

मुख्य सदर 'सद्र-उस् सदूर' कहलाता था। सम्राट् और शाहजादो द्वारा धार्मिक लोगो, विद्वानो तथा फकीरोंके निर्वाहका प्रवन्ध करनेके लिए धर्मार्थ दी हुई धरतीका प्रवन्ध तथा आवश्यक देख रेख करनेका काम उसके विभागका था। धर्मार्थ दिया हुआ द्रव्य समुचित रूपसे काममे आ रहा है या नही यह देखना उसका कर्तव्य होता था। दान-पुण्य या निर्वाहके लिए नए प्रार्थियोके निवेदनोकी जाँच और उनके सम्बन्धमे निर्णय करनेका काम भी उसीका था। सम्राट्की ओरसे खैरात भी वही बाँटता था और साम्राज्यका धर्मादा विभाग भी उसीके जिम्मे

रहता था। सूबेके सदरोकी नियुक्ति और उनकी देख रेख भी वही करता था।

जन-साधारणका जीवन कुरानके नियमोंके अनुसार ठीक तौरपर चल रहा है या नही, यह देख-भाल कर उसको उचित रूपमे नियमित करते रहनेका काम मुहतसिबका था। पैगम्बरके आदेशोके अनुसार सब तरहकी शरावें, भाँग और अन्य नशीली वस्तुओंके सेवनको सख्तीके साथ रोकना, खुले-आम जुआ न खेलने देना तथा सार्वजनिक रूपसे वेश्यावृत्ति नही चलने देना भी उसक कर्त्तव्य था। इस्लाममे नही विश्वास करनेवालो-को, पैगम्बरके निन्दको, प्रति दिन नियमित रूपसे पाँच बार नमाज नही पढनेवालो तथा रमजानके महीनोमें उपवास न रखनेवालोको उपयुक्त दण्ड देना भी उसके अधिकारकी वात थी। नए बने हुए मन्दिरोको तुडवानेका काम भी उसे ही सौंपा गया था।

मुगल साम्राज्यके सूबोका प्रान्तीय शासन केन्द्रीय व्यवस्थाका ही छोटा नमूना-मात्र होता था। प्रान्तके सर्वोच्च अधिकारीको शासकीय तौरपर 'नाज़िम' कहते थे, परन्तु वह प्राय 'सूबेदार' ही कहलाता था। उसके नीचे दीवान, बख्शी, काजी, सदर, शाही मालका सरक्षक और मुहतसिब होते थे। सूबोमे 'खान इ-सामान' अवश्य ही नही होता था। अपने-अपने प्रान्तमे प्रत्येक सूबेदार सम्राट्के समान ही व्यवहार करता था।

प्रान्तीय शासन-व्यवस्था सूबेके मुख्य नगरमे ही केन्द्रित रहती थी। सूबेके अन्य महत्त्वपूण स्थानो या परगनोमे फौजदार रहते थे जो वहाँ शान्ति वनाए रखते थे, विद्रोहियो और अपराधियोको दण्ड देते थे और मालगुजारी वसूल न होनेकी हालतमे माली अधिकारियोकी भी सहायता करते थे। गांवोकी ओर तो कोई ध्यान ही नही दिया जाता था। अपनी अयोग्यताके कारण या गाँवोंके प्रति उनकी तिरस्कार-भावना-से ही क्यों न हो शाही अधिकारी गावोमे चलते जानेवाले जीवनसे कोई छेड-छाड नही करते थे और गावोके लोग अपनी स्वय शासित पचायतो द्वारा अपना काम आप ही निबटा लेते थे।

वडे शहरोंमे कोतवाल रहता था। वहा शान्ति और सुव्यवस्था बनाए रखनेके अतिरिक्त उसे कई अन्य काय भी सम्हालने पडते थे। शहरकी सफाई, वाजारमे वज़न-तोल और भावोपर नियन्त्रण, और

१६४५—फरवरी जनवरी, १६४७—औरगजेबका गुजरातकी सूबेदारी करना।

१६४७—७ मार्च—दादाजी कोण्डदेवकी मृत्यु, शिवाजीका स्वाधीन होकर आदिलशाही क़िलोपर अधिकार करने लगना।

२५ मई—औरगजेबका बल्ख नगरमे पहुँचकर अक्तूबरमे वहासे वापस लौटना।

१६४८—मार्चसे जुलाई, १६५२—औरगजेबका मुलतान और सिन्धकी सूबेदारी करना।

१६४९—१४ मई-५ सितम्बर—औरगज़ेब द्वारा कन्धारका पहला घेरा।

१६५२—२ मई-९ जुलाई—औरगजेब द्वारा कन्धारका दूसरा घेरा।

१६५२—१६५८ तक—औरगजेबका दूसरी बार दक्षिणकी सूबेदारी करना।

१६५५—२१ नवम्बर—कुतुबशाहका मीरजुमलाके पुत्रको कैद करना।

१६५६—१५ जनवरी—शिवाजीका जावली जीतना, और ६ अप्रेलको रायगढका किला लेना।

जनवरी—औरगजेबका गोलकुण्डापर आक्रमण, २३ जनवरीको मुगलोका हैदराबादपर अधिकार करना।

७ फरवरीसे ३० मार्च—औरगजेबका गोलकुण्डाका घेरा डालना, अप्रेलमे सन्धि हो गई।

जुलाई—मीरजुमलाका दिल्ली पहुँचना और वहाँ उसका मुगल साम्राज्यका वज़ीर नियुक्त होना।

४ नवम्बर—मुहम्मद आदिलशाहकी मृत्यु, अली द्वितीयका राज्यारोहण।

१६५७—औरगज़ेबका बीजापुरपर आक्रमण।

२से २९ मार्च—बीदरका घेरा डालकर अन्तमे औरगज़ेबका उसे जीत लेना।

४ मई-९ अगस्त—कल्याणीके किलेका घेरा डालना तथा उसे जीतना।

४ अक्तुबर—औरगजेबका इस चढाईसे वापस लौटना।

६ सितम्बर—दिल्लीमे शाहजहाका बीमार होना, और २६ अक्तूबरको उसका आगरा पहुँचना।

नवम्बर—बगालमे शुजाका स्वय ही सिंहासनारूढ होना।

५ दिसम्बर—मुरादका गुजरातमें स्वतः राज्याभिषेक करना।
२० दिसम्बर—सूरतपर अधिकार करके मुरादका उसे लूटना।

१६५८—५ फरवरी—राज्याधिकारके हेतु युद्धके लिए औरंगजेबका औरंगाबादसे रवाना होना।
१४ फरवरी—सुलेमान शिकोहका बहादुरपुरके युद्धमें शुजाको हराना।
१५ अप्रेल—धरमतके युद्धमें औरंगजेब और मुरादका जसवन्तको हराना।
२३ मई—शाही आज्ञा द्वारा निश्चित्त औरंगजेबके राज्यकालके प्रथम वर्षका आरम्भ।
२९ मई—सामूगढ़में दाराकी हार।
८ जून—आगराके किलेमें शाहजहाँका कैद किया जाना।
२५ जून—औरंगजेबका मुरादको कैद करना, (जिसको ४ दिसम्बर, १६६१को मार डाला गया)।
२१ जुलाई—औरंगजेबका प्रथम राज्याभिषेक।

१६५९—५ जनवरी—खजवाके युद्धमें शुजाकी हार।
१३ मार्च—दो राईके युद्धमें औरंगजेबके हाथो दाराकी आखिरी पराजय।
५ जून—औरंगजेबके द्वितीय विधिवत् राज्याभिषेकका समारोह।
९ जून—दारा और सिपरशिकोहका कैद होना।
३० अगस्त—दाराको मृत्यु-दण्ड।
१० नवम्बर—शिवाजीका अफजलखाँको मारना।

१६६०—६ मई—शुजाका ढाकासे भागना और तब मीरजुमलाका वहाँ अधिकार करना, (फरवरी, १६६१में शुजाका अराकानमें अन्त)।
९ मई—पूनापर शायेस्ताखाँका अधिकार होना और १५ अगस्तको चाकणपर अधिकार करना।
२७ दिसम्बर—सुलेमान शिकोहका कैदी बनाकर दिल्ली लाया जाना, (मई, १६६२में उसका मारा जाना)।

१६६१—३ फरवरी—उमरखिण्डमें शिवाजीका कारतलखाको हराना।
मई—मुगलोका शिवाजीसे कल्याण ले लेना।
२२ मई—ईरानके राजदूत बुदकबेगकी औरंगजेबसे भेट।

१९ दिसम्बर—मीरजुमलाका कूचविहार नगरपर अधिकार करना।

१६६२—१७ मार्च आसामकी राजधानी गढ़गांवपर मीरजुमलाका अधिकार करना।

१२ मई—औरंगजेबका बीमार पड़ना, २४ जूनको वह पूर्णतया निरोग हो गया।

१६६३—१ जनवरी—मीरजुमलाके साथ आसामके राजाका सन्धि करना, १० जनवरीको मीरजुमला वापिस लौट पड़ा, और ३१ मार्चको वह मर गया।

५ अप्रेल—रातके समय शायेस्ताखांके डेरेपर शिवाजीका आक्रमण।

१८ मई-१६ अगस्त—औरंगजेबकी कश्मीर-यात्रा।

१६६४—६से १० जनवरी—शिवाजीका पहली बार सूरत बन्दरको लूटना।

२३ जनवरी—शाहजी भोंसलेकी मृत्यु।

१६६५—३० मार्च—जयसिंहका पुरन्दर किलेका घेरा डालना।

११ जून—शिवाजीकी जयसिंहसे भेंट।

१३ जून—पुरन्दरकी सन्धि।

१० अप्रेल—हिन्दुओंपर लगनेवाली चुंगीको औरंगजेबका दुगुनी कर देना।

२० नवम्बर—जयसिंहका बीजापुरपर आक्रमण, वहांसे ५ जनवरी, १६६६को लौटना और २८ अगस्त, १६६७को बुरहानपुरमें उसकी मृत्यु।

१६६६—२२ जनवरी—शाहजहांकी मृत्यु।

२६ जनवरी—शायेस्ताखांका चटगांवको जीतना।

१२ मई—औरंगजेबके शाही दरबारमें शिवाजीका उपस्थित होना।

१९ अगस्त—शिवाजीका आगरासे भाग निकलना, १२ सितम्बरको शिवाजीका रायगढ पहुंचना, अप्रेल, १६६७ ई०में शिवाजीका औरंगजेबकी अधीनता स्वीकार करना।

१६६७—२४ फरवरी—कामबख्शका जन्म।

मार्च—पेशावरमें यूसुफजाइयोंका विद्रोह।

१६६८—फरवरी—औरगजेवका शाही दरवारमे सगीत वन्द करना। औरगजेवका शिवाजीको राजा मान लेना।

१६६९—९ अप्रेल—सारे मुगल साम्राज्यमे मन्दिर तोडनेके लिए औरग जेवका हुक्म देना। अगस्तमे वनारसका विश्वनाथ मन्दिर तोडा गया। अगली जनवरीमे मथुराके केशवरायके मन्दिरका ध्वस हुआ।

१६७०—१ जनवरीके लगभग—शिवाजीका मुगलोंसे फिर युद्ध आरम्भ करना, अपने किलोको वापिस लेना और मुगल प्रदेशपर दूर-दूर तक आक्रमण करना।

३-५ अक्तूबर—शिवाजीका दूसरी वार सूरत लूटना।
१७ अक्तूबर—डिडोरीके युद्धमे शिवाजीका दाऊदखाँको हराना।
दिसम्बर—शिवाजीका खानदेश औ" वरारको लूटना।

१६७१—जनवरी—माल महकमेसे औरगजेवका सारे हिन्दू कर्मचारियो को हटाना। वुन्देलखण्डमे औरगजेवके विरुद्ध छत्रसालके युद्धका आरम्भ, (राजा वनकर १७३१में उसकी मृत्यु हुई)।

१६७२—अकमलखाँके नेतृत्वमे अफरीदियोका विद्रोह।
मार्च—सतनामियोका विद्रोह।
२१ अप्रेल—अब्दुल्ला कुतुवशाहकी मृत्यु, अवुलहसनका राज्या-रूढ होना।
२४ नवम्वर—अली आदिलशाह द्वितीयकी मृत्यु, सिकन्दरका राज्यारोहण। खवासखाँका बीजापुरमे वजीर वनना, (११ नवम्वर, १६७५को वह अधिकारच्युत किया गया)।

१६७३—शिवाजीका ६ मार्चको पन्हाला, १ अप्रेलको पार्ली, और २७ जुलाईको सताराका किला जीतना।

१६७४—२४ फरवरी—नेसरीमे प्रतापरावके मारे जानेपर हम्वीररावको सेनापति वनाना।

७ अप्रेल—औरगजेवका हसन अव्दालके लिए दिल्लीसे रवाना होना और दिसम्बर, १६७५ तक औरगजेवका वहाँ ठहरना।
६ जून—शिवाजीका राज्याभिषेक।
१८ जून—जीजाबाईकी मृत्यु।

१६७१—अप्रेल-मई—शिवाजीका फाडा किले और कारवारके जिलेको हस्तगत करना ।

११ नवम्बर—बहलोलखाँका बीजापुरका वजीर बनना, (२३ दिसम्बर, १६७७को उसकी मृत्यु हुई) ।

दिसम्बर—गुरु तेगबहादुरका शिरच्छेदन, तजोरपर आक्रमण कर व्यकोजीका वहाँ अधिकार स्थापित करना ।

१६७६—१ जून—हलसगीमें बहलोलका बहादुरखाँको हराना, इस्लामखाका मारा जाना ।

८ अक्तूबर—औरंगजेबका असदखाँका मुगल साम्राज्यका वजीर बनाना ।

१६७७—१ जनवरी—कर्नाटकपर चढाईके लिए शिवाजीका प्रस्थान, फरवरीमें हैदराबादमें ठहरना, २४ मार्चसे १ अप्रेल तक श्री शैलम निवास, १३ मईके लगभग जिंजीके किलेपर शिवाजीका अधिकार होना, २३ मईके लगभग शिवाजीका वेलूरके किलेका घेरा डालना, (जुलाई २१, १६७८को वेलूरके किलेपर शिवाजी-का अधिकार हो गया), २६ जूनको तिरुवाडीमें शेरखा लोदीको हराना, १८-२३ जुलाईके लगभग तिरुमलवाडीमें व्यकाजीके साथ शिवाजीकी भेंट, महाराष्ट्र लौटते समय ५ नवम्बरको मैसूर-के पठारपर शिवाजीका बढना, १६ नवम्बरको व्यकोजीका सताजीपर आक्रमण, ४ अप्रेल, १६७८के लगभग शिवाजीका पन्हाला पहुँच जाना ।

१९ मार्च—अमीरखाका अफगानिस्तानकी सूबेदारीपर नियुक्त होना, (८ जून १६७८को वह वहा पहुँचा और २८ अप्रेल, १६९८ को मृत्यु होने तक वह उसी पदपर बना रहा) ।

७ जुलाई—बहादुरखाका कुलबर्गा जीतना, अगस्तमें बहादुर-खाके स्थानपर दिलेरखाँकी नियुक्ति, दिलेरकी गोलकुण्डापर चढाई एव सितम्बरमें मालखेडमें दिलेरकी हार ।

१८ नवम्बर—औरंगजेबका शाही दरबारमें बहुत सादगीपूर्ण चाल-चलनका प्रारम्भ करना ।

१६७८—२१ फरवरी—सिद्दी मसूदका बीजापुरका वजीर बनना, दिसम्बर, १६८३में उसके त्यागपत्र देनेपर आका खुरोसका वजीर बनना ।

आका खुसरो ११ अक्तूबर, १६८४को मर गया।
१० दिसम्बर—जमरूदमें जसवन्तसिंहकी मृत्यु।
१३ दिसम्बर—शम्भूजीका भागकर दिलेरखासे मिलना,
४ दिसम्बर, १६७९के लगभग शम्भूजी वापस पन्हाला लौटे।

१६७९—१९ फरवरी—औरगजेबका अजमेर पहुँचना, मारवाडपर मुगल आक्रमण ओर २६ मईके दिन इन्द्रसिंहको मारवाड देना।
२ अप्रेल—इस्लामके अतिरिक्त अन्य सारे धर्मावलम्बियोपर औरगजेबका जजिया कर लगाना।
१५—जुलाई दुर्गादासका बालक अजीतको दिल्लीसे निकाल ले जाना।
२५ सितम्बर—औरगजेबका दूसरी बार अजमेर पहुँचना, अक्तूबरमें मारवाडको मुगल साम्राज्यमें सम्मिलित करना।
७ अक्तूवर—१४ नवम्बर—दिलेरखाका बीजापुर किलेपर चढाई करना तथा बादमे आसपासके प्रदेशमें उसका लूटमार करना।
४ नवम्वर—शिवाजीका मुगलोपर आक्रमण कर १५ १८ नववरको जालनाको लूटना, परन्तु रणमस्तखा द्वारा हराए जानेपर २१ नवम्बरके लगभग शिवाजीका पट्टाको वापस लौटना।

१६८०—२३ जनवरी—औरगजेबका उदयपुर नगरमे प्रवेश, २३ फरवरीको चित्तौड होते हुए २२ मार्चको उसका वापस अजमेर जा पहुँचना।
४ अप्रेल—शिवाजीकी मृत्यु।
१८ जून—मराठोंके राजा बनकर शभूजीका रायगढमे प्रवेश।
२२ अक्तूबर—महाराणा राजसिंहकी मृत्यु, जयसिंहका महाराणा बनना। शायेस्ताखाका दूसरी बार बगालका सूबेदार नियुक्त किया जाना।

१६८१—१ जनवरी—शाहजादे अकबरका स्वयको सम्राट् घोषित करना।
१६ जनवरी—विद्रोहके असफल होनेपर शाहजादे अकबरका दौराईके युद्ध-क्षेत्रसे भागना। तब १ जूनको महाराष्ट्रम पाली नामक स्थानपर शम्भूजीके आश्रयमे अकबरका जा पहुँचना।
३० जनवरी—१ फरवरी—मराठोका बुरहानपुरके उपनगरोंको लूटना।

मार्च—विहारमें विद्रोही गंगाराम नागरका पटनाके किलेको घेरना, (१६८४में गंगारामकी मृत्यु हुई)।

१४ जून—महाराणा जयसिंहका औरंगजेबके साथ राजसमुद्रकी सन्धि करना।

६ सितम्बर—जहाँनआराकी मृत्यु।

८ सितम्बर—औरंगजेबका अजमेरसे दक्षिणके लिए रवाना होना, १३ नवम्बरको उसका बुरहानपुर और २२ मार्च १६८२ को औरंगाबाद पहुँचना।

अक्तूबर—शम्भूजीका सोयराबाई, अन्नाजी, आदि षड्यन्त्र कारियोंको मृत्यु दण्ड देना।

१३ नवम्बर—पालीमें शम्भूजीकी अकबरसे भेंट।

१६८२—जनवरी—जंजीरापर शम्भूजीका गोलाबारी करना।

अप्रैल—मुगलोंका रामसेजका घेरा डालना, एवं विफल होनेपर अक्तूबरमें वहाँसे उनका वापिस लौटना।

१८ मई—शाहूका (अथवा द्वितीय शिवाजीका) जन्म।

नवम्बर—मुगलोंका कल्याणपर अधिकार, अगले २३ मार्चको उनका कल्याण खाली कर देना।

दिसम्बर—अकबरका पालीसे बाँदा आना।

१६८३—५ अप्रैल—शम्भूजीका पुर्तगालियोंके साथ युद्ध।

सितम्बर—अकबरका विचोलिम पहुँचना और वहाँसे ईरान जानेके लिए एक जहाज किराये करनेका प्रयत्न करना।

२०—सितम्बर—रामघाटपर चढाई करनेके लिए शाहआलमका औरंगाबादसे रवाना होना।

२२ अक्तूबर—गोआके वाइसरायका फोण्डाके किलेको घेरना, और ३१ अक्तूबरको हारकर उसका वहाँसे वापस लौटना।

१४ नवम्बर—मराठोंका सान्ते इस्तेवाओको जीतकर गोआपर चढाई करना।

१ दिसम्बर—मराठोंका बरदेस और साष्टी जिलोंपर आक्रमण कर वहाँ एक माह तक लूटमार करना।

१६८४—५ जनवरी—शाहआलमका विचोलिम होते हुए गोआकी ओर बढना, सावन्तवाडी और दक्षिणी रत्नागिरीको लूटते हुए २०

फरवरीको रामघाट लौटना, और १८ मईको शाहआलमका अहमदनगर पहुँचना।

२० जनवरी—सोमगढमे अकबरका शम्भूजी और पुतगालियोमे सन्धि करवाना।

मई—बम्बईके अग्रेजोंके साथ शम्भूजीका मित्रतापूर्ण सन्धि करना। श्रीनगर (कश्मीरमे) शिया और सुन्नियोका आपसी झगडा।

१६८५—जनवरी—व्यकोजीकी मृत्यु, तजोरमे शाहजी द्वितीयका राज्यारोहण।

फरवरी—नेम सावन्तका शम्भूजीके विरुद्ध विद्रोह।

१ अप्रेल—मुगलो द्वारा डाले गए बीजापुरके घेरेका प्रारम्भ। राजारामके नेतृत्वमे जाटोंके विद्रोहका आरम्भ होना।

८ अक्तूबर के लगभग—मुगलोका दूसरी बार हैदराबाद शहरपर अधिकार कर लेना।

अक्तूबर—धर्मांध कट्टर खोजाओका भडौंचके किलेपर अधिकार कर लेना।

दिसम्बर—मालवामे मुलूकचन्दका पहाडसिंह गौडको मारना; परन्तु गौडोका यह विद्रोह फिर भी १६९२ तक चलता ही रहा।

१६८६—७ मार्च—गोलकुण्डामे मादन्नाका वध।

३ जुलाई—बीजापुरका घेरा लगानेवाले मुगल सैनिक पडावमे औरगजेबका पहुँचना।

१२ सितम्बर—बीजापुरका पतन, सिकन्दर आदिलशाहका राज्यच्युत किया जाना, (१७००मे उसकी मृत्यु)।

२८ अक्तूबर—बगालमे अग्रेजोका हुगलीका घेरा डालकर मुगलोंके विरुद्ध युद्ध छेडना।

१६८७—२८ जनवरी—हैदराबादपर मुगलोका अधिकार होना।

फरवरीको गोलकुण्डाके घेरेका आरम्भ, २१ सितम्बरको गोलकुण्डाका पतन।

२१ फरवरी—शाहआलमका कैद किया जाना।

फरवरी—अकबरका जहाज़ पर ईरानके लिए प्रस्थान, २४ जून, १६८९को उसका इस्फहान पहुँचना, (१७०४मे मृत्यु)।

मार्च—दुर्गादासका वापस मारवाडको लौटना, राठौडोंका मुगलोंको दवाना, दुर्जनमाल हाडाका बूँदीपर अधिकार कर लेना।
११ जून—अंग्रेज विद्रोहियोंका हुगली छोडकर भागना।
२८ नवम्बर—पाम नायकका आत्मसमर्पण कर वेरडकी अपनी राजधानी सागरको मुगलोंको सौंप देना, उसकी मृत्यु १ जनवरी, १६८८को हुई।

१६८८—११ जनवरी—मराठोंका कांजीवरम्‌को लूटना।
फरवरीके लगभग—राजाराम जाटका सिकन्दरामें स्थित अकबर-का मकबरा लूटना।
मार्च—आजमका बेलगाँवके किलेपर अधिकार करना।
६ अगस्त—सिद्दी मसूदका अडोनीका किला मुगलोंको देना।
अक्तूबर—अंग्रेज व्यापारियोंका भारतके पश्चिमी समुद्री तटपर औरंगजेबसे युद्ध।
नवम्बर—बीजापुरमें प्लेगका प्रारम्भ, जो दो माह तक चलता रहा।

१६८९—१ फरवरी—शम्भूजी और कविकलशका पकडा जाकर १५ फरवरीको उनका शाही पडावमें पहुँचना, ११ मार्चको दोनोंका शिरच्छेदन।
८ फरवरी—रायगढमें राजारामका राज्याभिषेक, ५ अप्रैलको राजारामका रायगढसे निकल भागना, और १ नवम्बरको उसका जिंजी पहुँचना।

२७ मार्च—मातवरखाँका कल्याण वापस जीतना।
१९ अक्तूबर—जुल्फिकारखाका रायगढका किला लेना और साथ ही शाहूको भी कैद कर लेना।
२५ दिसम्बर—औरंगजेबका अंग्रेजोंको क्षमा करना और उनके साथ सुलह हो जाना।

१६९०—२८ जनवरी—मुगलोंका सनसनीपर धावा।
२१ मई—औरंगजेबका गलगलामें पडाव, जो मार्च, १६९१से लेकर मई, १६९२ तकके कालको छोडकर मार्च, १६९५ तक बना रहा।
२४ अगस्त—अंग्रेजोंका कलकत्ता बसाना।
अगस्त—जुल्फिकारखाका कांजीवरम् पहुँचना।

१६९१—१६ दिसम्बर—असदखाँ और कामवख्शका जिंजी पहुँचना।

१६९२—१३ दिसम्बर—सन्ता घोरपडेका काँजीवरमके फौजदार अली-मर्दानखाँको पकडना।

१६ दिसम्बर—धन्ना जादवका जिंजीसे बाहर इस्माइलखा मकाको कैद करना।

२० दिसम्बरके लगभग—असदखाका कामवख्शको कैद करना।

१६९३—२३ जनवरी—जुल्फिकारखाँका जिंजीका घेरा उठाकर वाडि-वाशको भागना।

मातबरखाका उत्तरी कोंकणके पुर्तगालियापर धावा।

१६९४—फरवरी मई—जुल्फिकारखाँका जबरदस्ती वसूल करना और दक्षिणी अर्काट जिलेको जीतना।

सितम्बर—जुल्फिकारखाँका पुन जिंजीका घेरा डालना, दिसम्बर, १६९५मे घेरेको उठाकर जनवरी, १६९६से मार्च, १६९७ तक उसका अर्काटमे पडाव डाले रहना। अकबरकी पुत्रीको दुर्गादासका औरगजेबके पास पहुँचा देना।

१६९५—२१ मईसे १९ अक्तूबर, १६९९—औरगजेबका इस्लामपुरीमे पडाव।

मई—शाहआलमका कैदसे छूटनेपर पजाबका सूबेदार बनाया जाना।

८ सितम्बर—गज इ-सवाई जहाजकी समुद्री लूट।

अक्तूबर—मुग़लोका वेलोरका घेरा डालना, १४ अगस्त १७०२-को वेलोरपर मुगलोका अधिकार हुआ।

नवम्बर—सन्ता घोरपडेका दुडेरीमे कासिमखाको घेरना, वही कासिमखाकी मृत्यु हुई।

१६९६—२० जनवरी—बसवापट्टणमे सन्ताका हिम्मतखांको मारना।

मार्च—सन्ताका पूर्वी कर्नाटक पहुँचना, नवम्बर दिसम्बरमे मध्य मैसूरपर आक्रमण।

मई—शोभासिह और रहीमखाका बगालमे विद्रोह। देवगढमे बख्तबुलन्द गोण्डका युद्ध आरम्भ करना।

१६९७—मार्च—सतारामे धन्नाका सन्ताको हराना।

जून—सन्ताकी हत्या होना ।
मई जून—जबरदस्तखांका विद्रोही रहीमखाको मार भगाना, रहीमखांका अगस्त, १६९८मे मारा जाना ।

नवम्बर—बगालके नये सूबेदार अजीमुश्शानका वर्धमान पहुँचना । जुल्फिकारखांका पुन जिजीका घेरा डालना ।

१६९८—८ जनवरी—जुल्फिकारखांका जिजोके किलेको जीत लेना ।
मई—दुर्गादासका अकबरके पुत्र बुलन्दअख्तरको औरगजेबको सौपना । औरगजेबका दुर्गादास और अजीत दोनोको ही मनसब और जागीरें देकर उन्हे अनुगृहीत करना ।

१६९९—फरवरी—राजारामका विशालगढ जा पहुँचना ।
मार्च—औरगजेब और युरोपीय सौदागरोमे हिन्द सागरकी सुरक्षा सम्बन्धी समझौता ।
१९ अक्तुवर—मराठा किलाका घेरा लगानेके लिए औरगजेबका इस्लामपुरीसे प्रस्थान ।
२६ अक्तूवर—राजारामका सतारासे चल देना ।
नवम्बर—कृष्णा सावन्तके नेतृत्वमे मालवापर मराठोका प्रथम आक्रमण ।
९ दिसम्बर—औरगजेबका सताराका घेरा डालना, २९ अप्रेल, १७००को सतारापर मुगलोका अधिकार हुआ ।

१७००—२ मार्च—सिंहगढमे राजारामकी मृत्यु, उसके पुत्र कर्णका गद्दीपर बैठना और २३ मार्चको उसकी मृत्यु होना, तब ताराबाईके पुत्रको शिवाजी तृतीयके नामसे गद्दीपर बैठाना ।
९ जून—औरगजेबका पार्लीपर अधिकार कर लेना ।

१ अक्तूबर—खवासपुरमे शाही पडावका मान नदीकी बाढमे बह जाना, बादशाहका घुटना उखड जाना ।

१७०१—९ मार्च—औरगजेबका पन्हालाके किलेका घेरा डालना ।
अप्रैल—सर विलियम नारिसका अग्रेजोंके दूतके रूपमे औरगजेबसे भेंट करना । मुर्शिदकुलीखाका बगालका दीवान नियुक्त किया जाना ।

१७०२—१६ जनवरी—औरगजेबका खेलना पहुँचकर उस किलेका घेरा